प्रकाशक—
अशोककुमार गोधिया

कपड़े के व्यापारी
सुभाष चौक
कटनी (म. प्र.)

•

प्रति— २०००

•

•

मई, १९७८

•

मुद्रक—
शिरीषचन्द्र शिवहरे
फाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस
श्रीनगर रोड, अजमेर (राज.)

समर्पण

*

* *

* * *

* * * *

* * * * *

* * * * * *

* * * * * * *
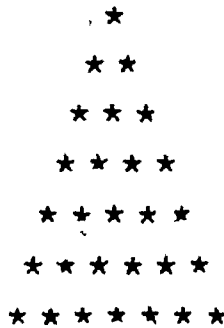
सभी पुस्तकों का प्रकाशन
आचार्य, उपाध्याय, साधु, लेखक एवं
सम्पादक समुदाय के
परिश्रम का ही फल है;
अतः उन्हीं के चरणों में
सादर 'समर्पित'

सोहनलाल गोलेछा
कटनी

पुस्तक प्राप्ति स्थान

१. एस. सोहनलाल अशोककुमार गोलेछा
कपड़े के व्यापारी
सुभाष चौक, कटनी (म. प्र.) ४८३५०१

२. श्री जिनदत्तसूरि मण्डल
दादावाड़ी, अजमेर (राज.)

•

विषयानुक्रम

प्रकाशकीय

हिन्दी सरल भाषा में छोटे तथा बडे तपो की तपावली की कमी कई वर्षों से अनुभव करता था। जिसकी पूर्ति इस 'तप-रत्नाकर' से पूरी करके बहुत प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। पूर्ण विश्वास है कि इसको पढ़कर कई आत्माएँ तप मे श्रद्धावंत होगी तथा तप करके अनन्तकाल के कर्मों का नाश कर क्रमशः कुछ ही भवों मे मोक्ष प्राप्त करेंगी।

कई बार मासक्षमण तथा इससे भी बडी तपस्याओ में पारणे मे असावधानी हो जाने के कारण लोगों को प्राणों से हाथ धोने पड़े हैं इसलिए छोटे तथा बड़े तपों को कैसे करना, क्या सावधानी रखना यह भी स्पष्ट कर दिया है। तप से कर्मो का नाश तो होता ही है साथ ही साथ अनेक बीमारिया दूर होती हैं, स्वास्थ्य लाभ होता है वह भी संक्षेप में दे दिया है।

यथासभव तप सम्बंधी सभी आवश्यक जानकारी तथा विधि - विधान भी दे दिए हैं ताकि तपस्वी को प्रायः सभी प्रकार की जानकारी मिल जावे।

अलग अलग प्रान्तों के पच्चक्खाण के समय में काफी अन्तर रहता है इसलिए भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रमुख स्थानों के पच्चक्खाण के कोष्टक पुस्तक के अन्त मे दे दिये गये है। इसलिए बाहर जाते समय 'तप - रत्नाकर' को साथ में रखना उपयोगी रहेगा।

अंत में श्री चांदमलजी साहब सीपाणी, अजमेर को धन्यवाद देना नहीं भूल सकता जिन्होंने इस पुस्तक का अनुवाद-भाषांतर, संपादन, प्रूफ संशोधन एवं प्रकाशन सम्बंधी

आदि सम्पूर्ण कार्य, सहज एवं निःस्वार्थ भाव से नि:शुल्क किया है। अतः उनका जितना भी आभार माना जाय कम है। वे जिनशासन की निःस्वार्थ सेवा कर रहे हैं। श्री सीपाणीजी जिनदत्तसूरि मंडल, अजमेर एवं श्री गुलाबकंवर ओसवाल उच्च प्राथमिक बालिका विद्यालय, अजमेर के मानद मंत्री भी हैं एवं आपके सद्प्रयत्नो के कारण ये दोनों संस्थाए उन्नति की ओर अग्रसर है।

आशा है यह पुस्तक आपको उपयोगी सिद्ध होगी। कृपया इस सम्वंध मे अपने विचार, सुझाव, संशोधन आदि जो भी हों भेजें ताकि अगली आवृत्ति में उन पर विचार किया जा सके।

पुस्तक का लागत मूल्य काफी अधिक होने से प्रचार-प्रसार हेतु हमने इसका मूल्य सिर्फ रु. ५) ही रखा है। इसके अलावा यह पुस्तक प.पू. साधु–साध्वी महाराज को भेंट मे दी जायगी।

अशोक कुमार गोलेछा
एम.कॉम.,एलएल.बी.
कपड़ा व्यापारी,
सुभाष चौक, कटनी (म.प्र.)

दि. १-३-७६

आभार

जब जब विभिन्न तपावलि मैं पढ़ता था तब तब तप संबंधी समझ, तप माहात्म्य मन मे बढते जाते थे और फिर निरंतर तपस्याओं मे वृद्धि होती गई। तब ऐसी भावना हुई कि ऐसी तपावली का प्रकाशन हो जावे जिसमे तपस्वियो को सारी जानकारी एक ही पुस्तक से मिल सके। उसी भावना के अनुरूप यह पुस्तक आपश्री के हाथो में है।

मैं जब कभी तीर्थ स्थान या बाहर जाता हूँ तब सुनता हूँ कि यहां पर तो नवकारसी, पोरिसी इतने बजे आ जाती है वहां पर इतने बजे आती है। कुछ लोगो को समय संबंधो शका भी बनी रहती है। तब भावना हुई कि एक ही पुस्तक में यदि सभी प्रांतों के पच्चक्खाण-कोष्टक एक ही पुस्तक मे छप जावे तो तपस्वियों को सही समय मालूम हो जायगा फिर चाहे वे देश या परदेश मे कही भी हो। इसलिए अनेक प्रान्तो के पच्च-क्खाण (समय दर्शन) एकत्र कर इसमे छापे गये है।

भारतवर्ष के अधिकांश भाग के पच्चक्खाण-कोष्टक छप सके हैं इसलिए उन सभी महानुभावो तथा आचार्यों-मुनियों को जिन्होंने पच्चक्खाण-कोष्टक भेजने की कृपा की है उनका आभार मानता हूं।

यद्यपि पुस्तक काफो बड़ी हो चुकी है तथापि भाषा इतनी सरल सीधी है कि वह सब ही को समझ में आसके ऐसी है।

पुस्तक में प्राय: सभी तपों के विधि-विधान, देव वंदन विधि, तप ग्रहण विधि, तप पारणा विधि आदि का समावेश किया

गया है ताकि तपस्वियो को सुविधा रहे। इनके अतिरिक्त विविध जानकारी, ज्ञातव्य बातें, सूतक विचार, वस्तुकाल विचार आदि कई बातो का उल्लेख कर पुस्तक को हर प्रकार से उपयोगी बनाने का प्रयास रहा है। अतः जहां जहां से भी जो जो भी विवरण एव जानकारी ली गई है उन सब ही लेखको का आभारी हूँ तथा कुछ बाते अनुभव के आधार पर लिखी हैं उनमे कुछ भी जैनागमो के विरुद्ध लिखा गया हो तो मिच्छा मि दुक्कडम् लेता हूँ।

व्रतधारी व्याख्यान दिवाकर पंडित हीरालालजी दुगड़ देहली को धन्यवाद देना नही भूल सकते जिनके सुझाव पर ही यह तप-रत्नाकर प्रकाशित हो रही है।

इस पुस्तक के कतिपय सकलन मे स्व० श्री गौतमसागरजी महाराज साहब ने भी अपना अमूल्य समय एवं मार्ग दर्शन दिया है अतः उनका भी आभार स्वीकार करता हूं।

गणाधीश श्री उदयसागरजी मा० सा० का बहुत उपकार मानता हूँ जिनसे इस पुस्तक के सम्बंध मे अनेक तरह से मार्ग दर्शन मिलता रहा है। कार्य की अत्यधिक व्यस्तता के होते हुए भी उनसे सभी प्रकार का समाधान-सहयोग बराबर मिलता रहा है। अत. नत मस्तक उनका आभारी हूँ।

प० पू० आचार्य श्री भुवनसूरीश्वरजी म० सा० का विशेषरूप से अत्यत आभारी हूँ जिन्होने 'श्री तपोरत्न महोदधि' मे दिये सब ही तपों का हिन्दी अनुवाद इस पुस्तक मे प्रकाशित करने की आज्ञा सहर्ष प्रदान की। उनके इस उदार-दृष्टि के कारण ही वास्तव मे यह पुस्तक पाठकों के सम्मुख है। अतः मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हूँ।

यदि इस तपावली से भव्य आत्माओं को तपस्याएं करने का भाव हुआ और तप करने मे आगे बढ़े तो अपना प्रयास सफल समझूंगा। अनुमान है कि जो भव्य आत्माए इसको दो बार भी ध्यान से पढ़ेगे तो वे अधिकाश तप की ओर अवश्य ही अग्रसर होंगे। यह तपावली छोटे बड़े सभी तपस्वियो के लिए उपयोगी तो है ही परन्तु जहा पर साधु-साध्वी का योग यदाकदा ही हो पाता है वहां की भव्य आत्माओ को यह पुस्तक अत्यत उपयोगी होगी। इसलिये कृपया इस पुस्तक को उनको भेट देकर पुन्य उपार्जन करें।

सोहनलाल गोलेछा
कटनी (म. प्र.)

किंचिद् वक्तव्य

तपश्चरण की आवश्यकता—

जीव की चार गतियों में मनुष्यगति को श्रेष्ठ माना गया है। यद्यपि देवगति मे सुख-वैभव की कमी नहीं होती, परन्तु सर्वोत्कृष्ट सुख-मोक्ष की प्राप्ति के लिए तो मनुष्य गति सिवाय दूसरा कोई उत्तम साधन नही है। इसी अपेक्षा को लेकर देव भी दस दृष्टातों से दुर्लभ मानव जीवन प्राप्त करने के लिए लालायित रहते है।

मानव जीवन का निर्माण धर्म के दृढ मूल पाये पर ही निर्भर है। मानव जीवन का तेज धर्माचरण है। यदि मानव जीवन मे से यह तेज लुप्त हो जाय तो जीवन का मूल्य बिना नूर के हीरे जैसी अर्थात् काच के टुकड़े के माफिक नही के बराबर है। दान, शील, तप और भाव ये चार धर्म के स्तभ है।

जिन पूजा, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि धर्म क्रियाएं निर्जरा के हेतुभूत हैं, परन्तु निकाचित कर्मों के क्षय के लिए तो 'तप' ही एक अमोघ उपाय है। तीर्थंकर परमात्मा, चक्रवर्ती, वासुदेव, वलदेव, महर्षि और प्रभाविक आचार्य भगवंत भी तपश्चर्या से ही शिवसुख प्राप्त कर सके हैं। अनंत पुण्य राशि वाले चक्रवर्ती भी छः खण्ड की साधना के समय अट्ठम तप का अवलंबन लेते है, यही बात 'तप' की सर्वोत्कृष्टता सिद्ध करती है।

श्रीमंत और साधन सम्पन्न हो वही दान धर्म का आचरण कर सकता है, विशुद्ध शील का पालन करने के लिए

भी मनोबल, एवं सानुकूलता चाहिए; परन्तु सामान्य मानव भावना शीलता से शरीर शक्ति अनुसार तप-धर्म का सेवन कर सकता है। आगम ग्रंथों में इस बात को दरशानें वाले अनेक उदाहरण उपलब्ध हो सकते है।

तप का महत्त्व—

ताप्यन्ते रसादिधातवः कर्माणि वा अनेनेति तपः ।।

जिस क्रिया के द्वारा शरीर का रस, रुधिर आदि सात प्रकार की धातुओं अथवा कर्म समूह दूर हों उसे "तप" कहा जाता है। शास्त्रकार भगवंतों ने समय समय पर तप के अनेक गुण गान किये है। चरम जिनपति भगवंत श्री महावीर स्वामी ने भी साढे बारह वर्ष तक घोर तप कर केवलज्ञान प्राप्त किया था।

जीवन में तप की उपयोगिता—

स्वास्थ्य की दृष्टि से भी तप का जीवन में अनूठा स्थान है। टाइफाइड के विषम ज्वर के समय मानव को लंघन कराया जाता है यह एक प्रकार का तप जैसा है परन्तु वह जबरन है, यदि तपश्चर्या अपनी इच्छा से श्रद्धा के साथ की जाय तो दोनों के बीच जमीन आकाश जितना अन्तर है। यह अवश्य समझ में आ जायगा। भौतिक विलास और मात्र खाने पीने मे लीन रहने वाली पश्चिमी समाज ने भी 'उपवास' का मूल्यांकन करना सीखा है। जो भावना अपने शास्त्रकार भगवंतों ने अपने को जन्म से ही दी है ऐसा कहे तो इसमे लेशमात्र अति-शयोक्ति नही है।

इलाज कर कर थक गये और केसर जैसे विषम और असाध्य रोग से परेशान हुए मनुष्यो ने भी उपवास, आयंबिल

अथवा तपश्चर्या के नियम - उपनियम से पुनः स्वास्थ्य लाभ करने के उदाहरण भी जानने व सुनने को मिले है।

जैन शास्त्रकार भगवतों ने तपश्चर्या की मर्यादा भी निश्चित की है। किसी भी प्रकार की स्पृहा या आकांक्षा से किया गया तप इच्छित फल देने वाला नही हो सकता, ऐसा तप ऊसर भूमि मे वीज वोने की तरह निष्फल होता है। महर्षि नंदीषेण को साढ़े वारह कोटि स्वर्ण की वृष्टि करने की शक्ति प्राप्त हुई या राजर्षि विष्णु कुमार को अनेक लब्धियां प्राप्त हुई यह तो तप का आनुषंगिक फल है।

तप दो प्रकार के हैं. वाह्य और अभ्यंतर और इन दोनो के भी छैः छैः भेद है, जो गुरुगम से जानना चाहिए। यहा तो सिर्फ उनके मात्र नाम ही वताये जाते हैं।

वाह्य तप	अभ्यंतर तप
१. अनशन	१. प्रायश्चित्त
२. ऊनोदरिका	२. विनय
३. वृत्तिसंक्षेप	३. वैयावृत्य
४. रसत्याग	४. स्वाध्याय
५ काय क्लेश	५. ध्यान
६. संलीनता	६. कायोत्सर्ग

आज शनैः शनैः जड़वाद अपना पंजा फैलाता जा रहा है उसी तरह दूसरी तरफ समाज में 'तपश्चर्या' की रुचि भी विशेष रूप से जागृत होती जा रही है। यदि अच्छा और पुष्टिकारक भोजन किया जाय तो वह शरीर को पुष्ट वनाने के अलावा कांतिमान भी वनाता है, उसी तरह तपश्चर्या भी यदि

विधि पूर्वक समझकर की जाय तो उसका इहलौकिक और पारलौकिक उत्तम फल मिलता है। इसी दृष्टिकोण को लेकर यह पुस्तक प्रकाशित की जा रही है।

विशिष्टता—

तप के लिए मात्र विधि बताने वाली पुस्तके यदाकदा प्रगट होती रहती हैं, परन्तु उससे किये जाने वाले तप की महत्ता और गंभीरता समझ में नहीं आती। इस कमी को दूर करने का प्रयास इस पुस्तक में किया गया है। प्रारम्भ में हर-एक तप का संक्षिप्त विवेचन किया गया है, जिससे यह समझा जा सके कि कौनसा तप किया जा रहा है? तप करने का उद्देश्य क्या है? इस प्रकार समझपूर्वक किये गये तप से भावोल्लास में भी वृद्धि होती है। विवेचन बहुत ही संक्षिप्त पद्धति से किया गया है, जिससे पाठकगण ऊब न जावे तथा पुस्तक अति विस्तृत भी न हो जावे। प्रसग प्रसंग पर तप से सम्बंधित सक्षिप्त कथाएं भी दी गई है।

इस पुस्तक मे कुल १७१ तपों का विवरण है। तप के लिए 'आचार दिनकर' और 'विधिप्रपा' जैसे उत्तम ग्रंथ भी उपलब्ध हैं।

—

तप महिमा

१. अहिंसा और संयम - पूर्वक तप को सर्वश्रेष्ठ मंगल कहा है।

२. तप ताप को दूर करने के लिये है।

३. तप कर्म की निर्जरा कराकर आत्म - धर्म को उपलब्ध कराने वाला तप पद भी तत्त्वभूत है, क्षमा सहित करने से आत्मा में रहे हुए चिकने कर्म भी क्षय हो जाते हैं। इच्छाओं का निरोध यही तप का सच्चा स्वरूप है। तप पद यह संतोष गुणों का भंडार है। जैसे जैसे तप गुण बढ़ता जाता है वैसे वैसे संतोष गुण बढ़ता जाता है। तब जीव को अनन्त ऐश्वर्य की प्राप्ति होनी सहज यानी सरल बन जाती है। तीर्थंकर तथा गणधर भगवान् जैसे उत्तमोत्तम महापुरुषों ने भी तप किया है।

४. तपस्या में वह शक्ति है कि तपस्वी अपने लक्ष की प्राप्ति में तो सफल होता ही है साथ ही वह बडे से बड़े कार्य को भी पूर्ण कर लेता है।

५. जिससे शरीर तथा कर्म तपे उसे तप कहते है।

६. जो सिद्धि दान, मंत्र, तंत्र से भी नही होती वह सिद्धि तपस्या से होती है।

७. तप से कर्मक्षय, कर्मक्षय से केवलज्ञान, केवलज्ञान से मोक्ष अर्थात् हमेशा के लिए अनन्त सुखो की प्राप्ति हो जाती है।

८. तप निकाचित कर्मों को क्षय करने का अमोघ उपाय है।

९. जिस प्रकार हीरे मे चमक रहती है। उसी प्रकार मनुष्य जीवन मे भी तप की आवश्यकता है।

१०. अनन्त पुन्याई वाले चक्रवर्ती भी छैः खंड को साधने के समय अट्ठम तप करते है।

११. कर्म काष्ठ प्रति जालवा, परतिख अगिन समान,
ते तप पद पूजो सदा निर्मल धरिये ध्यान।

१२. कर्म खपावे चीकणा, भाव मंगल तप जाण,
पचास लब्धी उपजे, नमो नमो तप जग भाण।

संग्रहकर्ता—
सोहनलाल गोलेछा, कटनी

स्व० श्री सम्पतलालजी सा०

का

संक्षिप्त जीवन परिचय

आपका जन्म वि० संवत् १९५० मे मिति पौष सुदी १० को हुआ। बचपन से ही आपकी प्रवृत्ति बहुत धार्मिक रही है। आपने सिर्फ १८ वर्ष की उम्र मे ही कटनी आकर कपड़े का व्यवसाय प्रारंभ किया जिसे अपने पुरुषार्थ, कौशल और बुद्धि की सूझबूझ के बलपर कई गुना बढ़ाया। इस व्यवसाय मे आपने न केवल कटनी मे वरन चारों ओर आस-पास के क्षेत्र में काफी ख्याति अर्जित की। इसके साथ साथ समाज में भी आपने अपना उच्च स्थान बनाया।

कहा जाता है कि दया धर्म का मूल है। श्री सम्पतलालजी का हृदय पूर्णतया दया से ओतप्रोत था। लगभग ७७ वर्ष की अवस्था मे भी आप सुबह बाजार जाकर गरीबों के खाने का सामान (केले, सन्तरे, आम, पपीता इत्यादि) लाकर उसे अपने हाथो से उन्हें बाँटते थे। यह कार्य आपकी दिनचर्या का अंग बन गया था। दूसरी तरफ आप इस क्षेत्र में विचरने वाले साधु साध्वियों की भावभक्ति का पुनीत कार्य सम्पन्न करते थे। कटनी मे पधारने वाले साधु साध्वियों के लिये आवश्यक लगभग सभी सामान आपके पास हर समय तैयार रहता था। जो कि रास्ते में अन्य कही उपलब्ध नही हो पाता था। इस तरह आप अपार लाभ का अर्जन करते थे।

जैन दर्शन के प्रति आपकी दृढ़ श्रद्धा थी। जिसके वशीभूत

होकर आपने समय समय पर कई संघ निकलवाने का आयोजन किया। आपने पहला सघ वि० सवत् २०13 में सिद्धाचलजी आदि तीर्थों का निकलवाया जो कि सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ एवं इस तरह आपने साधर्मी भाइयो की भक्ति का पूरा पूरा लाभ उठाया।

आप साधर्मी भाइयों की भक्ति के महत्त्व को विशेष मान्यता देते थे। आपने पहला सघ श्रीसिद्धाचलजी का, दूसरा संघ श्री जैसलमेर लोद्रवाजी का जिसमें यात्रियो की दो बसें थी। सभी यात्रियो ने दर्शन, सेवापूजा, भक्ति का भरपूर लाभ उठाया। यहाँ पार्श्वप्रभु का आपको प्रत्यक्ष परचा मिला। इस प्रकार आनन्दपूर्वक द्वितोय सघ का आयोजन सफल हुआ।

लगभग आज से २० वर्ष पहले आपने सन् १९६० ई० में तीसरा संघ निकाला। यह सघ सम्मेतशिखरजी, वाराणसी आदि पंचतोर्थी की यात्रा हेतु निकाला गया था। इस के अन्तर्गत आपको पार्श्वनाथ प्रभु का प्रत्यक्ष परचा मिला। इससे समस्त भाइयो को अपार हर्ष हुआ। इस तरह समय समय पर जो जो लाभ आपको मिल सकता था उसका आपने भरपूर लाभ उठाने का भरसक प्रयत्न किया। तन, मन, धन से जिस तरह से भी सभव था आपने अधिकाधिक पुण्य अर्जन करने का प्रयत्न किया।

सिद्धाचलजी तीर्थ मे बाबू के मन्दिर मे चन्दाप्रभुजी की मूर्ति की प्रतिष्ठा कराने का भी आपको परम सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस प्रकार बड़ी धूमधाम के साथ यह महान् पुनीत कार्य भी वि० सवत् २०२३ जेठ वदी, ७ को सम्पन्न हुआ।

सन् १९६७ ई० मे जबलपुर नगर सदर बाजार मे आर्यपुत्र

मुनि श्री उदयसागरजी के शिष्य मुनि श्री प्रभाकरसागरजी महाराज के उपदेश से आपने दादागुरुदेव श्री जिनकुशल-सूरीश्वरजी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई। दादा गुरुदेव के प्रति आपको पूर्व से ही असीम श्रद्धा रही है। एवं दादागुरुदेव का भी आपको प्रत्यक्ष परचा मिलता रहा है।

इस तरह हम देखते हैं कि श्री सम्पतलालजी का सम्पूर्ण जीवनकाल पुनीत कार्यों से भरा पड़ा है। आप बहुत ही सरल एवं शांत प्रकृति के पुरुष थे। जो जैसा कार्य करेगा वैसा ही फल पायेगा इस उक्ति को आपने सत्यकर दिखलाया।

सारांश यह है कि आपका सारा जीवन धार्मिक प्रवृत्तियों से ओतप्रोत रहा। इसके साथ पंचप्रतिक्रमण के प्रकाशन में भी आपने यथेष्ट धन राशि प्रदान करने की उदारता दिखलायी।

श्री सम्पतलालजी के अचानक पांव में चोट आ गई जिसकी तकलीफ करीबन दो माह तक बनी रही। इन दो महीनों मे भी आप पद्मावती आलोयन एवं अन्य धार्मिक सूत्र सुनते ही रहते थे। तारीख २७ जनवरी सन् १९७० ई० मिति माघ वदी ५ मंगलवार वि० संवत् २०२६ को आप श्रीजी शरण हुए। मरण के पहले ही आपने कह दिया था कि मेरे पीछे किसी भी प्रकार का शोक-संताप मत करना। यह शरीर तो नाशवान ही है। इसके लिये शोक-संताप क्यों ?

आपके जीवन के सद्चरित्र एवं सद्व्यवहार का प्रमाण है कि श्मशान भूमि पर लोगो ने कहा कि आज वेदाग आदमी चला गया।

श्री सोहनलाल जी

का

संक्षिप्त जीवन परिचय

आपका जन्म दिनांक ३०-११-१९१५ को धार्मिक कुटुम्ब में हुआ। इसीलिये लड़कपन से ही जीवन में धार्मिक आचरण आरम्भ हुआ। रोज मंदिर जाना तथा प्रायः भगवान् की पूजन करना चलता रहा, फिर धर्मपत्नी श्रीमती मोहनदेवी विशेष धार्मिक ज्ञान तथा आचरण वाली महिला (वृतधारिणी) से विवाह हुआ। कई बार कुटुम्ब सहित कई तीर्थों की यात्राएँ की।

फरवरी, १९५५ में अपनी धर्मपत्नी मोहनदेवी के आग्रह पर पालीताना यात्रा करने गये। वहां पर कई लोगों को ९९ (निन्नाणू) यात्रा करते हुए देखा और जब मालूम हुआ कि विधि से निन्नाणू यात्रा करने वाले को तीसरे भव मोक्ष प्राप्त होता है तब निन्नाणू यात्रा करने की प्रबल भावना जागृत हुई और यात्राएँ करना शुरू भी कर दिया। इसी बीच में श्रीमती मोहनदेवी को बड़ा मोतीझरा निकल आया। दवा चलती रही फिर भी मोहनदेवी प्रेरणा करती रही "कि यात्रा विधि पूर्वक रोज करते रहो मेरा स्वास्थ्य तो सुधर जायेगा यदि न भी सुधरा तो देह नाशवान है, आत्मा अमर है धर्म के सिवाय अन्य सब नश्वर है" तारीख २०-४-५५ बैसाख बदी तेरस को पालीताना मे सेठ माधुलालजी की धर्मशाला मे साध्वियों से नवकारमन्त्र आदि सुनते हुए अंतिम श्वास लिया। कहा जाता

है कि जो आत्मा पालीताने मे मरण प्राप्त करतो है वह ऊंची गति में ही जातो है। तारीख या २३-४-५५ को ही सोहनलालजी ने पालीताने में चौथा व्रत (ब्रह्मचर्यव्रत) ग्रहण किया। फिर कुछ दिन बाद बारह व्रत भी ग्रहण कर लिये। ऐसे विपत्ति के समय भी आपने निन्नाणू यात्राएे चालू ही रखीं और विधि पूर्वक समाप्त करके जेठ सुदी मे घर को वापस लौटे। हालांकि कई लोगों ने कहा कि जेठ मे गर्मी बहुत पड़ती है इसलिये अभी घर जावो फिर ठंड में बाकी यात्राऐ पूरी कर लेना।

अक्टूबर, १९५६ मे आप फिर से पालीताना गये और बारह व्रत अल्प परिग्रह से ग्रहण किये। फिर तो यात्राओं का मोह बढा और हर वर्ष जगह-जगह यात्रा करने जाने जगे।

मूर्ति स्थापन पालीताने में

श्री चन्द्रप्रभु स्वामी भगवान् की प्रतिमा बाबु के मंदिरजी मे घनवसी टूक में (श्री आदेश्वर भगवान् के रंग मंडप के गोखले मे) जेठ वदी सातम संवत २०२३ को स्थापन की। साथ में पिताजी श्री संपतलालजी तथा पुत्र अशोककुमार आदि भी थे। वापसी मे शखेश्वरजी, केसरियाजी आदि तीर्थ यात्रा करते हुये कटनी आये।

सन् १९६७ में जबलपुर सदर बाजार के मंदिरजी मे पूज्य पिताजी श्री सपतलालजी और अनेक कुटुम्बियों के साथ मे दादागुरुदेव श्री जिनकुशलसूरीश्वरजी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई और वही जबलपुर में ही तपस्याओं का उजमणा (उद्यापन) किया।

तारीख १२-१०-५६ को पालीताने मे नियम लिया कि

जब तक साधुव्रत प्राप्त न हो, तब तक लौंग, जलेबी, घेवर और सिवैयों का त्याग। कुछ ही दिन बाद पालीताने में ही नियम लिया कि जब तक साधुपना प्राप्त न हो तब तक किसी भी चीज में ऊपर से घी नहीं लेना। जैसे कि खिचड़ी, दाल-चांवल, सोगरा आदि पर जो ऊपर से घी डालते हैं उसका त्याग। चाय और पान का त्याग तो करीबन २१-२२ वर्ष पहले ही कर दिया था। फिर कुछ ही वर्षों के बाद सुपारी का भी त्याग कर दिया। तारीख २२-४-६७ चैत सुदी बारस को भव आलोचरण ग्रहरण की, एक महान् तपस्वी साधुजी से।

कटनी में मंदिरजी न बने तब तक का त्याग

यह त्याग ता: १५-२-७२ से किया—कढाई विगय का त्याग एवं तेल विगय का त्याग। ता: २३-३-७२ को शक्कर का भी त्याग किया (हलुआ, शरबत, सीकजी, चूरण आदि मे मिला हो तो छूट, गुड़ को भी छूट, दवाई आदि मे मिश्री की चासनी की छूट) ता: १-१-७३ को शक्कर का भी पूर्णतया त्याग गुड़ की छूट तथा दवाई आदि में मिश्री की चासनी की छूट। नव लोगस्स का कायोत्सर्ग प्रति दिन करना।

ता: १०-५-७२ को सब प्रकार के हरे फल तथा हरे साग सब्जी का त्याग (मौसम्बी तथा गन्ने की छूट) चूंकि गन्ने के खाने से उसके फोतरे तथा छिलकों में मिठास होने के कारण अनेक जीव मरते है इसीलिये परम पूज्य आचार्य श्री से गन्ने का त्याग करके मई १९७५ में नीबू की छूट रखली साधुपना प्राप्त होने पर गुरुजी से पूछकर सुधारा-बघारा करने की छूट। ता. २४-९-७२ से रोज ४ विगय त्याग करना। ११-९-७३ से ५ वर्ष तक रोज एकासन करना। और

कुछ ही समय वाद चैत से आषाढ़ तक एकासना में जल खुला बाकी ८ महिने ठाम—एकासना करना (एकल ठाणा) वैसे तो प्राय। सन् १९६९ से रोज एकासना आदि ही करते हैं।

७ फरवरी, १९७६ को पालीताने में ५०४ जिनप्रतिमाओं की दुवारा प्रतिष्ठा की गई उसमे सवसे पहली प्रतिमा नम्वर १ श्री वासुपूज्य भगवान् की पधराने का लाभ अपने पुत्र अशोककुमार तथा कुटुम्वियों के साथ एवं प्रपौत्र चन्द्रकुमार (आषीश कुमार) के साथ पधराई। (विराजमान की)। छोटे भाई हेमचन्द व उनका परिवार भी साथ मे था। अभी तक ६ या ७ अट्ठाइयां तथा १, ९ दिन का उपवास किया। एक वार श्री चक्रेश्वरी देवी ने भी दर्शन देने की कृपा की है। ता: ३०-४-७६ को पालीताने गये वहां पर वर्षी तप के पारणे वाले तपस्वियों को सुखसाता पूछते थे और उनके तप की अनुमोदना करते थे उस समय आंखो में पानी आ जाता था। पालीताने मे १०३, १०४ डिग्री बुखार आने लगा फिर भी एकासना चालू रहा। वापिस कटनी आये कमजोरी वढ़ती ही गई वैद्यों तथा डॉक्टरों ने एकासना वंद करके ३-४ वार दवाई लेने को वहुत जोर देकर समझाया फिर भी एकासना चालू ही रखा तथा दवा सिर्फ एकासना में ही ली, कमजोरी काफी वढ़ गई सवसे क्षमा याचना भी करली तथा स्थानीय पत्र में ता: ५-६-७६ को छपवा भी दिया।

"क्षमा-याचना

मुझसे किसी के प्रति अविनय हुआ हो या मेरे कारण किसी को भी दु:ख पहुंचा हो तो मैं उन सवसे हाथ जोड़कर मन, वचन, काया से क्षमा चाहता हूं।"

"गलती स्वीकार"

पालीताने में ता. १०-५-७६ बैसाख सुदी ११ तथा ता: ११-५-७६ बैसाख सुदी १२ को गर्मी अधिक पड़ने से तथा बुखार १०३-१०४ तक बढ़ जाने से दोनो दिन एकासना के समय मे मौसम्बी का रस तथा गुड के पानी मे नीबू का सत मिलाकर ४-६ बार पिया जिसकी आलोचना आचार्य भगवान् से साफ साफ लिखकर ली। आलोचना सम्पूर्ण भी कर दी। अपनी इस गलती को पालीताने में भी साफ-साफ बताई तथा कटनी आने पर कुटुम्बियों को भी माफ साफ बताई।

आपको श्री चक्रेश्वरी देवी तथा श्री पद्मावती देवी का सानिध्य प्राप्त है।

सन् १६७३ से चौपहरी पौषध, राई अथवा देवसी प्रतिक्रमण रोज करते है एवं बाकी का समय देसावगासिक या सामायिक मे व्यतीत करते हैं। तथा भविष्य में भी ऐसा ही करते रहने को भावना है। परदेश मे छूट।

आपके २ पुत्र तथा ५ पुत्रियां है। बडे पुत्र त्रिलोकचन्द हैं जो जबलपुर में कपड़े का व्यापार करते हैं और छोटे पुत्र अशोककुमार है जो कटनी में कपड़े का व्यापार करते हैं। दोनों ही धार्मिक वृत्ति वाले, सदाचारी तथा मिलनसार हैं।

आषाढ़ सुदी चौदस ता: ३० जून से (२ सावन) मगसर वदी पंचमी ता: ३० नवम्बर तक अर्थात ५ महिने तक ठाम आयम्बिल करने का नियम ग्रहण कर लिया है।

परम पूज्य पिताजी श्री सम्पतलालजी तथा धर्मपत्नी श्री मोहनदेवी अच्छे देवलोक मे गये हैं इसलिये सिर्फ धार्मिक चेतना देने की सिर्फ १ या २ वार कृपा की है। कुटुम्ब मे इस चेतना से काफी जागृति हुई तथा धर्म मे श्रद्धा बढ़ी है।

"सेठ प्रतापचन्द जी"

आप वृतधारी श्रावक थे। अत्यंत सरल स्वभावी थे। इसीलिये सब लोग आपको चौथे आरे का नमूना कहते थे। सदर बाजार जबलपुर मे आप हर दिन सम्पूर्ण ओसवाल समाज में एक चक्कर लगाते और सब से सुखसाता पूछ लेते थे। आपश्री की सरलता तथा न्यायप्रियता देखकर ब्रिटिश गवर्नमेंट के उच्च अधिकारियों ने "राय साहब" की पदवी देने को कहा परन्तु आपने स्वीकार नही की। आप सोहनलालजी के दादाजी थे। छोटे बड़े सब आपको बाबा कहते थे। आपश्री भी देवलोक गए हैं कभी-कभी चेतना भी देते हैं।

आपको स्वप्न में देवताओं ने नरक तथा स्वर्ग का स्वरूप दिखाया जिससे धर्म मे विशेष श्रद्धा हो गई। यह घटना करीब २५ से ३० वर्ष की उम्र मे हुई थी।

आपने अब तक निम्न तपस्यायें की हैं—

१.	दस पच्चखाण तप	
२.	श्री बीस स्थानकजी की ओली तप	उपवास से
३.	श्री ज्ञान पंचमी तप	उपवास से
४.	श्री मौन इग्यारस तप	उपवास से
५.	श्री भव आलोयणा विधि से की	२२-४-६७
६.	श्री चौदह पूर्व तप	उपवास से
७.	श्री पैंतालीस आगम तप	उपवास से
८.	श्री नवपद ओली (सिद्ध चक्राधन) तप	अलूणी
	उजमणा किया जबलपुर में १६-८-६७ को	एकधान से
९.	श्री नवकार तप	
१०.	श्री अष्ट-कर्म सुदन तप	

११. श्री बीस स्थानकजी की ओली तप (दुबारा) एकासन से
१२. श्री सोलिये तप
१३. श्री इग्यारह गणधर तप
१४. श्री अगियार अंग तप — उपवास से
१५ श्री ज्ञान दर्शन चारित्र तप
१६. श्री श्रुत देवता तप — उपवास से
१७. श्री निर्वाण दीपक तप — छट्ठ से (बेला)
१८. श्री गणधर तपस्या
१६ श्री आगमोक्त केवलि तप
२०. श्री पंच महाव्रत तप
२१. श्री चैत्री पूनम पर्व तप
२२ श्री गौतम पडघा तप
२३. श्री नवपद ओली (सिद्ध चक्राधन तप)
अलूणी एक धान से — (दूसरी बार)
२४. श्री नवपद ओलो (सिद्ध चक्रावन तप)
अलूणी एक धान से — (तीसरी बार)
(जीवन पर्यंत नवपदजी की ओली करने की भावना है)
२५. श्री वृहन्नद्यावर्त तप
२६. श्री मेरू तेरस तप (चालू है १६-१-६६ से) उपवास से
२७. श्री पोष दशमी तप १६-१-६० से — उपवास से
२८. श्री दश विधि यति धर्म तप — उपवास से
२६. श्री सात सौख्य आठ मोक्ष तप — ठाम एकासन से
३०. श्री तीर्थंकर वर्धमान तप — एकासन से
३१. श्री समवसरण तप
३२. श्री सिंहासन तप
३३. श्री श्रुत देवता तप

३४. श्री चतुर्विध संघ तप (आयम्बिल लगातार तथा एकासन से)

३५. श्री आयंबिल वर्धमान तप ता: २१-७-७७ से चालू किया है बिना नमक के

३६. चौदह पूर्व तप (दूसरी बार) ठाम एकासन से

३७. श्री तीर्थंकर-ज्ञानतप ठाम एकासन तथा एकासन से

३८. श्री सिद्धचक्रजी की ओली (चौथी बार) चालू है ता: १८-१०-७७ से अलूणी

३९. बारह दिन का उपवास ता: ४-७-७८ से १५-७-७८ तक

४०. ता: ८-८-७८ सावन सुद ४ को १०१ अलूणा आयम्बिल का प्रत्याखान किया (चौउव्विहार और ता: ६-८-७८ से आयम्बिल चालू कर दिए

"चमत्कार के दर्शन"

श्री पावापुरी महातीर्थ पर हर वर्ष निर्वाण के दिन भगवान् का छत्र स्वय अपनेआप (प्रात:काल मे) ४-५ मिनिट तक हिलता चलता रहता है। यह चमत्कार भी सन् १९७५ मे वीर सम्वत २५०० की समाप्ति एव २५०१ की शुरूआत पर देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

देव वन्दन विधि

प्रथम एक खमासरणा देवे। पीछे "इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! चैत्यवंदन करू ? इच्छ" कह कर वाया गोड़ा ऊंचा कर चैत्यवदन कहकर नमोत्थुणं० कहे। पश्चात् खमासमरण देकर इरिया वहियं० तस्स उत्तरी० अन्नत्थ० कहकर एक लोगस्स का काउसग्ग करके प्रकट लोगस्स कहे। पीछे खमा० देकर इच्छा० सन्दि० भगवन्! चेत्यवन्दन करु ? इच्छं कहकर चैत्यवदन करे इसके बाद ज किंचि० नमोत्थुणं० कहकर खड़े हो जाय। पश्चात् अरिहंत चेइआरण०। अन्नत्थ० कहकर एक नवकार का काउसग्ग करना, पीछे 'नमो अरिहंताण' कहते हुए काउसग्ग पारकर 'नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्य: कहकर पहली थुई कहे। इसके बाद लोगस्स० सव्वलोए० कहकर एक नवकार का काउसग्ग करके दूसरी थुई कहे। पीछे 'पुक्खरवदोवरड्ढे० सुग्रस्स भगवग्रो० अन्नत्थ० कहकर एक नवकार का काउसग्ग करके तीसरी थुई कहे। पश्चात् सिद्धाणं बुद्धाणं० वेयावच्चगराण० अन्नत्थ० कहकर एक नवकार का काउसग्ग करके नमोऽर्हत० कहकर चौथी थुई कहे। अब नीचे बैठकर 'नमोत्थुण०' कहे, अनन्तर खड़े होकर फिर अरिहत चेइआरण० अन्नत्थ० एक नवकार का काउसाग पारकर नमोऽर्हत० कहकर पहलो थुई कहे पश्चात् लोगस्स० सव्वलोए० अन्नत्थ० कहकर एक नवकार का काउसग्ग पारकर दुसरी थुई कहे। पीछे पुक्खरवरदीवड्ढे० सुग्रस्स भगवग्रो० अन्नत्थ० एक नवकार का काउसग्ग करके तीसरी थुई कहे। पश्चात् सिद्धाणं बुद्धाणं वेयावच्चगराणं० अन्नत्थ० एक नवकार का काउसग्ग करके नमोऽर्हत० कहकर चौथी थुई

कहे। अब नीचे बेठकर नमोत्थुणं० जावंति चेइआई० जावंत के वि साहू० नमोर्हत्० उवसग्गहर० या कोई स्तवन कहकर जय वीयराय कहे पश्चात् नमोत्थुणं कहे।

ऊपर मुजब देववंदन करने के बाद स्वाध्याय या ध्यान करे। जल आदि पीने की इच्छा हो तो नीचे लिखी विधि के अनुसार पच्चक्खाण पारकर जल आदि लेवे।

काल वेला हो तो जिन मंदिर या उपाश्रय या पौशाल में 'देववंदन' करे।

चैत्यवंदन (लघु)

१. डुंगर उपर डुंगरी, बाजणिया किवाड़,
सबके तोरण वान्दसु, आदिश्वर भगवान।

२. अजितनाथ प्रभु केवली, समवसर्या भगवंत
मेघतणी पसरसता वाणी श्री अरिहंत।

३. सोना केरो डूंगरो दिसे गेर गंभीर,
प्रह उठोने वान्दसु, शांतिनाथ जगदीश।

नोट—हर तप मे तप संबंधित चैत्यवंदन, स्तवन आदि ही कहना चाहिये कदाचित स्थिरता न हो तो ऊपर मुजब लघु चैत्यवदन भी कहे जा सकते हैं।

पच्चक्खाण सूत्राणि

१—नवकारसहिअं-पच्चक्खाण ।[1]

उग्गए सूरे, नमुक्कार-सहिअं मुट्ठि-सहिअं पच्चक्खाइ चउव्विहंपि आहारं, असणं, पाणं, खाइमं, साइमं अण्णत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तिआगारेण, विगईओ पच्चक्खाइ, अण्णत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, लेवालेवेणं, गिहत्थसंसिट्ठेणं, उक्खित्तविवेगेणं, पडुच्च-मक्खिएणं, पारिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं। देसावगासियं उवभोगोपरिभोगं पच्चक्खाइ, अण्णत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं महत्तरागारेणं, सव्वसमाहि-वत्तियागारेणं वोसिरइ ।

२—नवकारसहिअं पच्चक्खाण ।[2]

उग्गए सूरे नमुक्कारसहिअ पच्चक्खाइ, चउव्विहपि आहारं-असणं, पाणं, खाइमं साइम, अण्णत्थणाभोगेणं सहसागारेण वोसिरइ ।

---

१. यह पच्चक्खाण उसके लिये है जो प्रतिदिन चौदह नियम स्मरण करता है। सर्वत्र पच्चक्खाण मे जहा जहा 'पच्चक्खाइ' और 'वोसिरइ' पाठ आते हैं, वहा वहा यदि पच्चक्खाण स्वय बोलता हो तो 'पच्चक्खामि' और 'वोसिरामि' और दूसरो को पच्चखाण कराना हो तो 'पच्चक्खाइ' और 'वोसिरइ' बोले। एव पारिहावणियागारेण साधु के लिये हैं, गृहस्थ के लिये नही है, इसलिये ये गृहस्थ न बोले।

२. यह पक्च्चखाण जो चौदह नियम स्मरण नही करता है उसके लिये है अर्थात् जो श्रावक नियम नही स्मरण करता हो, वह नियम का और देसावगासिक का आगार नही पच्चक्खे ।

क. नमुक्कारसी का पच्चक्खाण दो घड़ी का होता है।

ख. पोरसी एक पहर (तीन घटे) की होती है।

ग. साढ पोरसी डेढ़ पहर (साढ़े चार घटे) की होती है।

घ पुरिमड्ढ दोपहर (छ घटे) का होता है।

३—पोरिसी–साड्ढपोरिसी–पच्चक्खाण।

पोरिसिं, साड्ढपोरिसिं, मुट्ठिसहिअ पच्चक्खाइ। उग्गए सूरे, चउव्विहंपि आहारं, असणं, पाणं, खाइमं, साइमं अण्णत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ।

४—पुरिमड्ढ–अवड्ढ–पच्चक्खाण।

सूरे उग्गए पुरिमड्ढं, वा पच्चक्खाइ चउव्विहंपि आहारं, असणं, पाणं, खाइमं, साइमं अण्णत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छण्णकालेणं, दिसामोहेणं साहुवयणेणं, महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ।

५—एकासण–बिआसण–पच्चक्खाण।

पोरिसिं साड्ढपोरिसिं वा पच्चक्खाइ, उग्गए सूरे चउव्विहंपि आहारं, असणं, पाणं, खाइमं, साइमं अण्णत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं पच्छण्णकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, एकासणं बिआसणं वा पच्चक्खाइ, दुविहं तिविहंपि आहारं, असणं, खाइमं, साइमं, अण्णत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं सागारिआगारेणं आउंटणपसारेणं, गुरुअब्भुट्ठाणेणं, पारिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तिआगारेणं, वोसिरइ।

---

५. यहां पर साधु के लिए एकासण, बिआसण, आयंबिल, नीवि और तिविहार उपवास के पच्चक्खाण मे छः आगार और होते हैं—“पाणस्स लेवेण वा, अलेवेण वा, अच्छेण वा, बहुलेण वा, ससित्थेण वा, असित्थेण वा।”

क. अवड्ढ तीन पहर (नौ घंटे) का होता है।

ख. एकासण मे एक बार भोजन एक आसन से किया जाता है।

६—एगलठाण-पच्चक्खाण।

पोरिसिं साड्ढपोरिसिं वा पच्चक्खाइ, उग्गाए सूरे चउव्वि-हंपि आहार, असणं, पाण, खाइमं, साइम, अण्णत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छण्णकालेण, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेण, एकासणं, एगट्ठाण, पच्चक्खाइ, दुविह तिविहं चउव्विहंपि आहारंअसणं, खाइम, साइम, अण्णत्थणा-भोगेण, सहसागारेणं, सागारिआगारेण, गुरुअब्भुट्ठाणेणं, पारिट्ठावणियागारेण, महत्तरागारेण सव्वसमाहिवत्तियागारेण वोसिरइ।

७—आयंबिल-पच्चक्खाण।

पोरिसिं साड्ढपोरिसिं वा पच्चक्खाइ, उग्गाए सूरे चउव्विहंपि आहारं-असण, पाण, खाइमं, साइम अण्णत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छण्णकालेण, दिसामोहेण, साहुवयणेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेण, आयबिलं पच्चक्खाइ, अण्णत्थणाभो-गेण, सहसागारेण, लेवालेवेण, गिहत्थसंसिट्ठेण उक्खित्त-विवेगेणं, पारिट्ठावणियागारेण, महत्तरागारेण, सव्वसमाहिव-त्तियागारेणं, एकासणं पच्चक्खाइ, तिविहंपि आहारं, असणं, खाइम, साइम अण्णत्थणाभोगेण, सहसागारेणं, सागरिआगा-रेणं, आउटणपसारेणं, गुरुअब्भुट्ठाणेण, पारिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेण, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ।

---

६. एगलठाणे मे एक ही समय भोजन व जल एक स्थान मे होता है।

७. आंबिल मे प्रायः नीरस आहार लिया जाता है, यानी नमक सोंठ आदि के मिलाने से सरस बना आहार नहीं लेना, कारण ? नवांग सूत्र टीकाकार श्री अभयदेवसूरिजी महाराज अनुत्तरोपपातिकदशांग सूत्र की टीका मे लिखते हैं कि—"आयबिल नाम शुद्धौदनादि" अर्थात् आंबिल

८—निव्विगइय—पच्चक्खाण ।

पोरिसि साड्ढपोरिसिं वा पच्चक्खाइ, उग्गए सूरे चउ-व्विहंपि आहारं, असणं, पाणं, खाइम, साइमं अण्णत्थणा-भोगेणं, सहसागारेणं पच्छण्णकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, निव्विगयं, पच्चक्खाइ, अण्णत्थणा-भोगेणं, सहसागारेण, लेवालेवेण, गिहत्थससिट्ठेणं उक्खित्त-विवेगेणं पडुच्चमक्खिएणं पारिट्ठावणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, एकासण पच्चक्खाइ तिविहंपि

नाम उसका है जिसमे केवल चावल आदि शुद्ध अनाज ही लिया जाय और शुद्ध अनाज वह ही कहा जा सकता है जिसमे नमक सोठ, हीग कालीमिर्च आदि किसी भी स्वाद वृद्धिकारक वस्तु की मिलावट न हो। निशीथचूर्णी में पाठ है कि—"दोहि दव्वेहि आविल" मतलब—कोई भी एक अन्न और दूसरा पानी इन दो द्रव्यो से आयविल होता है। इस तरह अभयदेवसूरिजी महाराज के समकालीन आचार्य श्री यशोदेवसूरिजी स्वरचित 'प्रत्याख्यान स्वरूप गाथाओ मे लिखते हैं कि "जावइय उवजुज्जइ तावइयं भायणे गहे अणं। जलनिब्बुडु काउ भुतव्व एस इत्थ विही ॥१॥ इन्ही प्राचीन शास्त्रकारों की आज्ञानुसार बड़े दादा साहब श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज भी 'स्वरचित सदेह दोहावली प्रकरण' मे लिखते हैं कि—"गिहिणो इह विहियायविलस्स कप्पति दुवि दव्वाइ। एग समुच्चियमव, वीय पुणे फासुयं नीर ॥१॥

नोट :—वर्तमान समय मे गुजरात देश की तरफ जो आयम्बिल किया जाता है, वह आयम्बिल नही है निवि है। कारण आयम्बिल में दो द्रव्य लेने की आज्ञा है, पहला उवाला हुआ अन्न दूसरा गरम पानी।

आयबिल एवं नीवी के फर्क का खुलासा इस बात से भी हो जाता है कि—

दो आयविल	=	१	उपवास ।
तीन नीवि	=	१	उपवास ।

आहार-असणं, खाइमं, साइमं, अण्णत्थणाभोगेणं सहसागारेणं, सागारिआगारेणं, आउटणपसारेण, गुरुअब्भुट्ठाणेणं परिट्ठावणिआगारेणं महत्तरागारेण सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ!

९—चउव्विहाहार-उपवास पच्चक्खाण।

सूरे उग्गए अब्भत्तट्ठं पच्चक्खाइ, चउव्विहंपि आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अण्णत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेण वोसिरइ।

१०—तिव्विहाहार-उपवास-पच्चक्खाण।

सूरे उग्गए अब्भत्तट्ठं पच्चक्खाइ, तिविहंपि आहार—असणं, खाइमं, साइमं, अण्णत्थणाभोगेण सहसागारेण पाणहार पोरिसिं, साड्ढपोरिसिं, पुरिमड्ढं, अवड्ढ वा पच्चक्खाइ अण्णत्थणाभोगेण सहसागारेण, पच्छण्णकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेण वोसिरइ।

११—विगइ-पच्चक्खाण।

विगईओ पच्चक्खाइ, अण्णत्थणाभोगेण, सहसागारेण, लेवालेवेण गिहत्थससिट्ठेणं, उक्खित्तविवेगेण पडुच्चमक्खिएण, पारिट्ठावणियागारेण वोसिरइ।

१२—देसावगासिक पच्चक्खाण।

देसावगासिय उवभोगोपरिभोग पच्चक्खाइ, अण्णत्थणाभोगेणं, सहसागारेण, महत्तरागारेन सव्वसमाहिवत्तियागारेण वोसिरइ।

११-१२. ये दोनो पच्चक्खाण प्रत्येक पच्चक्खाण के अन्तिम पद 'वोसिरइ" के पहले जो चौदह नियम धारता हो उच्चरे। जो चौदह नियम नहीं धारता हो तो ये दोनों पच्चक्खाण न उच्चरे।

१३—दत्ति—पच्चक्खाण।

पोरिसिं साड्ढपोरिसिं पुरिमड्ढं अवड्ढं वा पच्चक्खाइ, उग्गए सूरे चउव्विहंपि आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अण्णत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छण्णकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, एकासणं एगट्ठाणं दत्तियं पच्चक्खाइ, तिविहंपि चउव्विहंपि आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं अण्णत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, सागारिआगारेणं, गुरुअब्भुट्ठाणेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ।

सन्ध्याकालीन पच्चक्खाण

१४—दिवसचरिम-चउव्विहाहार-पच्चक्खाण।

दिवसचरिमं पच्चक्खाइ, चउव्विहंपि आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अण्णत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ।

१५—दिवसचरिम-दुविहाहार-पच्चक्खाण।

दिवसचरिम पच्चक्खाइ, दुविहंपि आहारं, असणं, खाइमं, अण्णत्थणाभोगेणं, सहसागारेण, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ।

१६—पाणहार—पच्चक्खाण।

पाणहार दिवसचरिमं पच्चक्खाइ, अण्णत्थणाभोगेणं सहसागारेण, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेण, वोसिरइ।

---

१४. इस पच्चक्खाण में पाचवां 'चोलपट्टागारेण' चोलपट्टा का आगार साधु के लिये होता है।

१४, १५, एवं १६ मे तीनो पच्चक्खाण दिन के अंत भागमे प्रारंभ होकर दूसरे दिन सुर्योदय तक के लिये किये जाते हैं।

१७ भवचरिमं-पच्चक्खाण ।

भवचरिमं पच्चक्खाइ तिविहंपि चउव्विहंपि आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अण्णत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्त-रागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ ।

१८—गंठिसहिअ मुट्ठिसहिअ और अंगुट्ठसहिअ आदि अभिग्रह का पच्चक्खाण ।[1]

सगंठिहिअं मुट्ठिसहिअं वा पच्चक्खाइ, अण्णत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, वोसिरइ ।

पच्चक्खाण की आगार संख्या

दोच्चेव नमुक्कारे, आगारा छच्च हुंति पोरिसिए ।
सत्तेव य पुरिमड्ढे, एगासणम्मि अट्ठेव ।। १ ।।

सत्तेगट्ठाणस्स उ, अट्ठेव य अबिलम्मि आगारा ।
पचेव अब्भत्तट्ठे, छप्पाणे चरिमि चत्तारि ।। २ ।।

पंच चऊरो अभिग्गहे, निव्वीए अट्ठ नव य आगारा ।
अप्पावरणे पंच उ, हवंति सेसेसु चत्तारि ।। ३ ।।

पच्चक्खाण करने का फल

पच्चक्खाणमिण सेविऊण भावेण जिणवरुद्दिट्ठं ।
पत्ता अणंतं जीवा सासयसुक्ख अणाबाहं ।। १ ।।

।। इति पच्चक्खाणसूत्राणि ।।
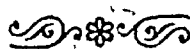
पच्चक्खाण पारने की विधि

(खरतरगच्छ)

खमासमरण पूर्वक इरियावहियं० तस्स उत्तरी० अन्नत्थ० कहकर एक लोगस्स का काउसग्ग करे। पश्चात् प्रकट लोगस्स कहकर 'इच्छामि० इच्छा० पच्चक्खाण पारने को मुहपत्ति पडिलेहुं ? इच्छ'। कहकर खमासमण देकर मुहपत्ति पडिलेहे। पीछे 'इच्छमि० इच्छा० पच्चक्खाण पारुं। यथाशक्ति' कहकर, फिर 'इच्छामि० इच्छा० पच्चक्खाण पारेमि ? तहत्ति कहकर मुट्ठी बन्दकर एक नवकार गिने। पीछे जो पच्चक्खाण किया हो उस पच्चक्खाण का नाम लेकर "पच्चक्खाण फासियं, पालियं, सोहियं तीरियं, किट्टिय आराहियं जं च न आराहियं तस्स मिच्छा मि दुक्कडं" बोलकर एक नवकार गिने। पश्चात् खमासमण देकर 'इच्छा० चैत्यवंदन करूं ? इच्छ' कहकर 'जयउ सामिय०' जंकिंचि० जावंति चेइआइं० जावत केवि साहू० नमोऽर्हत० उवसग्गहर० जयवीयराय० तक कहे। पीछे क्षणमात्र (स्वाध्याय) सज्झाय ध्यान करके पानी पीवे। तथा उपधानवाही होवे तो पोरसी प्रमुख पच्चक्खाण पारकर आहार करे। पीछे आसन पर बैठा हुआ ही 'दिवसचरिमं' (तिविहार) पच्चक्खे अनन्तर इरियावहियं० कहकर चैत्यवंदन करे। (यह चैत्यवंदन आहार संवरण निमित्त का है)

सर्व तपस्या ग्रहण करने की विधि

प्रथम शुभ दिन शुभ घडी शुभ मुहुर्त में अच्छे वस्त्र पहन कर गुरु के पास जावे। गुरुजी को वन्दन करके ज्ञान पूजा करे। तदनन्तर गुरु के मुख से (ओलो तप) अथवा जिस तप का भी निश्चय किया हो ग्रहण करे तथा इरियावहिय० पडिक्कमे। फिर एक लोगस्स का काउसग्ग पार प्रगट लोगस्स कहे। फिर नीचे बेठ के तप आराधन करने के निमित्त मुहपत्ति का पडिलेहण करे। पीछे दो वन्दना देकर स्थापनाचार्यजी को खमासमण दे "इच्छा कारेण सदिसह भगवन् (ओलो तप) या जो तप निश्चित किया हो सो बोले "गहणत्थ चेइयं वंदावेह" ? इच्छ कह चेत्यवन्दन करे। नमु-थुण पूर्वक अरिहंत चेइयाणं सम्पूर्ण पढ अणत्थ कह एक एक णमोक्कार का चार दफा ध्यान करे तथा थुइयां कहे। फिर नीचे बेठ के प्रगट नमुत्थुणं कहे। पीछे खडे हो "शान्तिनाथ स्वामी आराधनार्थं करेमि काउसग्गं' कह एक लोगस्स का काउसग्ग पार के निम्न थुई कहे।

श्रीमते शान्तिनाथाय, नमः शान्ति विधायिने।
त्रैलोक्यस्यामराधीश, मुकुटाभ्यर्चितांध्रये ॥

पुनः "शान्ति देवता आराधनार्थं करेमि काउसग्ग" अणत्थ कह एक णमोक्कार का काउसग्ग पार "शान्तिः शान्ति करः श्रीमान्, शातिदिशतु मे गुरुः। शान्तिरेव सदा तेषां, येषां शान्तिर्गृहे गृहे ॥" को थुई बोले। पश्चात् "श्रुतदेवता आराधनार्थं करेमि काउसग्ग अणत्थ" कह एक णमोक्कार का काउसग्ग पार थुई कहे।

भुवन देवता आराधनार्थं करेमि काउसग्गं "अणत्थ कह एक णमोक्कार का काउसग्ग पार थुई कहे। "क्षेत्रदेवता आराधनार्थं करेमि काउसग्ग" अणत्थ कह एक णमोक्कार का काउसग्ग पार थुई कहे। शासन देवता आराधनार्थ करेमि काउसग्गं" अणत्थ कह एक णमोक्कार का काउसग्ग पार "या पाति शासनं जैने, सद्यः प्रत्यूह नाशिनो। साभिप्रेत समृद्ध्यर्थं भूयाच्छासन देवता" की थुई कहे। अन्त में "समस्त वेयावृत्ति देव आराधनार्थं करेमि काउसग्ग" अणत्थ कह एक णमोक्कार का काउसग्ग पार "श्रीशक प्रमुखा यक्षाः जिन शासन संस्थिताः। देवान् देव्यस्तदन्येऽपि संघ रक्षन्त्व पापतः" की थुई कहे। तत्पश्चात् नीचे बैठ नमुत्थुणं पूर्वक जयवीयराय तक सम्पूर्ण चैत्यवन्दन करे। पीछे खमासमण दे "भगवन्! (अमुक तप) ग्रहणार्थं करेमि काउसग्ग कह एक लोगस्स कहे। पीछे खमासमण दे तीन णमोक्कार गिने। पुनः एक खमासमण दे "इच्छकार" भगवन्! अमुक तप ग्रहण दंडक उच्चरावोजी" कहे। गुरु के 'उच्चरावेमो' कहने पर जो तप ग्रहण किया हो उसी तप का नाम ले गुरुमुख से तीन वार निम्न लिखित पाठ सुने—

"अहण्हं भंते! तुम्हाणं समीवे। (अमुक तवं) उव संपज्जाणं विहरामि (तंजहा)। दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ। दव्वओणं (अमुक तवं) खित्तओणं इत्थ वा अणत्थ वा कालओणं जाव परिमाण, भावओणं जाव गहेणं ण गहिज्जामि छलेण ण छलिज्जामि, जाव, मण्णिवाएणं ण भविज्जामि, जाव अण्णेण वा केणइ रोगायं केणवा परिणाम वसेण। एसो मे परिणामो ण परिवज्जइ। ताव मे एसतवो रायाभियोगेणं, गणाभियोगेणं, बलाभियोगेणं, देवाभियोगेणं, गुरु णिग्गहेणं,

वित्ति कंतारेणं, अणत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेण वोसिरे ।

पीछे गुरु के "हत्थणं सुत्थणं अत्थणं अदुभएणं सम्मं धारणीयं चिरंपालणीयं गुरु गुणेहि बुढाहि णित्थारगापारगा होत्था" कहने पर खमासमण देकर गुरुमुख से पच्चक्खाण करे यदि गुरु न हो तो स्वयं मुख से उच्चरे ।

नोट:— चावल, नैवेद्य, फल, नारियल, और कम से कम १ रु० ज्ञानपूजा पर अवश्य चढावे । चौकी या पट्टे पर स्वस्तिक, तीन ढेरी और सिद्धशिला के आकार का अर्धचन्द्र बनाकर मिठाई और फल चढाके बीच मे नारियल और रुपया चढ़ा दे, फिर मुहपत्ति हाथ मे ले शुद्ध भाव से जो तपस्या करनी हो उसकी गुरुमुख से विधि करे ।

सांकेतिक शब्द

ख= खमासमण देना ।

सा= स्वस्तिक करना

लो= लोगस्स का कायोत्सग करना

न= नवकारो वालो गिनना ।

हरएक तप में करने की सामान्य विधि

१. दोनों वक्त प्रतिक्रमण करना।

२. काल समय देववंदन विधि पूर्वक करना।

३. दो वक्त पडिलेहण करना।

४ विधि पूर्वक पच्चक्खाण करना और पारना।

५. जिनेश्वर की पूजा - भक्ति करना।

६. गुरुवंदन करना और उनसे पच्चक्खाण लेना।

७. ज्ञान की पूजा - भक्ति करना।

८. प्रभु के पास बतलाई संख्या के अक्षत (चावल) से स्वस्तिक कर उस पर यथाशक्ति फल, नैवेद्य, व नाणा चढ़ाना।

९. प्रत्येक तप मे बतलाये अनुसार गिनना–२० नवकारवाली प्रमाण गिनना।

१०. बताई संख्या के अनुसार खमासमण देना।

११ बताई संख्या के अनुसार लोगस्स का कायोत्सर्ग करना।

१२. तपस्या के दिन सज्झाय-ध्यान विशेष रूप से करना।

१३. ब्रह्मचर्य का पालन करना, भूमि शयन करना।

१४. साधु - साध्वी की वैयावच्च करना।

१५. तप के पारणे पर यथाशक्ति स्वामीवात्सल्य करना। अधिक न बन सके तो समान तप करने वाले श्रावक या

श्राविका को यथाशक्ति एक, दो, चार आदि को भोजन कराना।

१६. बडे बडे तप के अंत या मध्य में उसका महोत्सव-पूर्वक उद्यापन करना। सामान्य तपों में बताये अनुसार उद्यापन करना।

१७ प्रत्येक तप मे अचित्त पानी ही उपयोग मे लेना।

१८. प्रत्येक तप में रात्रि को चउविहार करना।

१९. कोई भी तप सासारिक–पौद्गलिक आशा से नही करना।

२०. कषाय को जेसे बने वैसे कम करना। क्षमायुक्त तप किया जाय, वही तप पूर्ण फलदायक होता है। यह ध्यान रखना।

२१. तपस्या शुरू करने के मुहुर्त, विधि-विधान तिथी-मिति आदि के सम्बंध मे साधु साध्वी से समझकर करना विशेष लाभदायक है।

२२. अच्छा दिन देखकर शुक्ल पक्ष मे तपस्या शुरू करना चाहिए। एकम को छोडकर अन्य मिति से शुरू करना। (वर्षी तप चैत्र वद ८ से शुरू किया जाता है)

२३. तपस्या करने के मुहुर्त तथा अन्य जो गच्छ भेद से भिन्न लगे वह साधु-साध्वी मण्डल से पूछकर शंका समाधान कर लेना।

—

तप सम्पूर्ण क्रिया निक्षेप विधि

जिस दिन तपस्या सम्पूर्ण हो उस अन्तिम दिन को संध्या को चउव्विहार करके अथवा प्रातःकाल इरियावहो कह मुहपत्ति की पडिलेहणा कर दो वन्दना देवें। पाछे 'इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं अमुक उपधान तप णिक्खेवह' कहे। गुरु के णिक्खेवामो कहने पर खमासमण दे। 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन् अमुक तप निक्खेववणेत्थं काउसग्गं करावेह कहे। गुरु के 'करावेमो' कहने पर इच्छामि अमुक तप णिक्खेवणत्थं करेमि काउसग्गं अणत्थ' कह एक णमोक्कार का काउसग्ग पार कर खमासमण देवे। पीछे अमुक उपधान तप णिक्खेवणत्थ चेइयाइं वंदावेह कहे। गुरु के वंदावेमो कहने पर चैत्यवंदन करे।

पडिलेहण विधि (प्रातः)

खमासमण देकर इरियावहियं० तस्सउत्तरी० अन्नत्थ कहकर एक लोगस्स का काउसग्ग करके, प्रगट लोगस्स कहे। पीछे इच्छामि० इच्छा० पडिलेहन संदिसाहुं ? इच्छामि० इच्छा० पडिलेहन करूं ? इच्छं,' कहकर मुहपत्ति पडिलेहे। पीछे इच्छामि० इच्छा० अंगपडिलेहन संदिसाहुं ? इच्छं, इच्छामि० इच्छा० अगपडिलेहन करूं ? इच्छं, कहकर आसन, धोती, कटीसूत्र (कन्दारा) दुपट्टा वगैरह पडिलेहे। पीछे इच्छामि० इच्छाकारेण सदिसह भगवन् ! पसाय करी पडि-लेहण पडि लेहावोजो ? इच्छं' ऐसा कहकर स्थापनाचार्य की पडिलेहना 'शुद्धस्वरूप धारे' का पाठ पूर्वक करके ऊँचे स्थान पर रक्खें। पश्चात् 'इच्छामि० इच्छा० उपधि मुहपत्ति पडिलेहुं ? 'इच्छं' कहकर मुहपत्ति पडिलेहे पश्चात् 'इच्छामि० इच्छा० उपधि पडिलेहन सदिसाहुं ? इच्छ' इच्छामि० इच्छा० उपधि पडिलेहन करूं ? 'इच्छ', कहकर कंबल, वस्त्र आदि सब वस्तुएँ पडिलेहे। पश्चात् पौषधशाला की प्रमार्जना करके कचरे को जयणा पूर्वक परठे। पीछे खमासमण देकर इरियाव-हियं० तस्स उत्तरी० अन्नत्थ० कहकर एक लोगस्स का काउसग्ग करके प्रगट लोगस्स कहे। पीछे इच्छामि० इच्छा० सज्झाय सदिसाहुं ? इच्छं खमा० देकर इच्छा० संदि० भगवन ! सज्झाय करूं ? इच्छं कह कर १ नवकार गिने, बाद उपदेशमाला आदि की गाथाओं को पढ़कर एक नवकार कहे। अगर उपदेशमाला आदि न आते हो तो आठ नवकार गिने।

संध्याकालीन - पडिलेहण - विधि

खमासमण पूर्वक 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! "बहु पडिपुन्ना पोरसी ?" इच्छं' कहकर खमासमण पूर्वक इरियावहियं० तस्स उत्तरी० अन्नत्थ० कहकर एक लोगस्स का काउस्सग्ग करके प्रकट लोगस्स कहे। पीछे इच्छामि० इच्छा० पडिलेहन करु ? इच्छं० इच्छामि० इच्छा० पोषधशाला प्रमाजुं ? इच्छं' कहकर मुहपत्ति पडिलेहे। पीछे इच्छामि० इच्छा० अंग पडिलेहन संदिसाहु ? इच्छं' 'इच्छं' 'इच्छामि० इच्छा० अंगपडिलेहन करूं ! इच्छं' कहकर आसन, धोती, कंदोसूत्र, दुपट्टा आदि पडिलेहे और 'पोषधशाला से कचरा निकाल कर जीवादि देखकर जयणा पूर्वक परठे। पीछे खमासमण पूर्वक इरियावहिया० पडिक्कमे। अनन्तर खमासमण पूर्वक इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! पसाय करी पडिलेहन पडिलेहावोजी ? इच्छं कहकर स्थापनाचार्यजी को शुद्ध स्वरूपवार के पाठ पूर्वक पडिलेहन करके उच्च स्थान पर रक्खे। पीछे इच्छामि० इच्छा० उपधि मुहपत्ति पडिलेहुं ? इच्छं कहकर खमासमण देकर मुहपत्ति पडिलेहे ! पीछे इच्छामि० इच्छा० सज्झाय संदिसाहुं ? इच्छं 'इच्छामि० इच्छा० सज्झाय करूं ? इच्छं" कहकर एक नवकार गिनकर उपदेशमाला की सज्झाय या आठ नवकार गिने। बाद एक नवकार गिने। पीछे पच्चक्खाण करे। यदि उपधानवाही ने आहार किया हो तो दो वांदणा देकर पीछे इच्छामि० इच्छा० उपधि थंडिला पडिलेहन संदिसाहुं ? इच्छं इच्छामि० इच्छा० उपधि थंडिला पडिलेहन करूं ? इच्छं ? इच्छामि० इच्छा० बेसणे ठाऊं ? इच्छं कहकर बैठ जाय और वस्त्र, कंबल, चरवला आदि पडिलेहे। यदि

उपवासी हो तो यहां पर वस्त्रादि को पडिलेहण कर कटिसूत्र और धोती का फिर से पडिलेहण करे। यदि पौषध हो तो २४ थंडिलों का पडिलेहण एव साड़ी सथारा विधि आदि गुरुगम से समझकर करे।

संक्षिप्त उद्यापन विधि

बड़े बाजोट आदि पर पचवर्ण के धान्य से सिद्धचक्र का मण्डल बनावे, चारो तरफ तीन वलय बनावे, प्रथम वलय मे अष्टदल कमल में नवपद की स्थापना करे। सभी पदो पर वर्णानुसार रत्नों को स्थापन करे। पञ्चवर्ण के फल-धान्य गोटे ध्वजा आदि चढावे। दूसरे वलय मे १६-१६ श्रीफल पूंगीफल (सुपारी) चढ़ावे। तीसरे वलय मे ४८ छुहारे (खारक) चढ़ावे। नव निधान के ठिकानो पर नव बडे फल (सफेद कोल्हा आदि) चढावे। नवग्रह–दश दिक्पाल प्रमुख को पकवान आदि चढावे। विस्तार विधि गुरु के वचनानुसार करे। नवपदजी की पूजा पढावे, मङ्गल गीत, बाजे बजवावे, महोत्सव उदार चित्त से करे। मङ्गलदीप आरती प्रमुख कर दूसरे दिन विसर्जन करे। ज्ञान, दर्शन, चारित्र के उपकरण नव नव सख्या से बनावे; चतुर्विध सघ की भक्ति करे। इस प्रकार "अणिगुहियबल' विरीणे" अर्थात् बल और शक्ति को नही छुपा करके यथाशक्ति–अप्रमादी अकषायी–असकलेशी–भावो से–आत्म-स्वरूप—श्री सिद्धचक्र का आराधन करने से श्री श्रीपाल आदि महापुरुषो के जैसे सिद्धि गति मे सहज–शाश्वत-अव्याबाध सुख की प्राप्ति होती है।

॥ श्री सद्गुरुभ्यो नम. ॥

तप रत्नाकर

१. श्री इन्द्रियजय तप

"इन्द्र" अर्थात् जीव। उसे जानने का साधन वह "इन्द्रिय" श्री विशेषावश्यक मे बताया है कि—

"इन्द्रो जीवो सव्वोवलद्धिभोग-परमेसरत्तणओ ।
सोत्ताइभेयमिंदियमिह तल्लिङ्गाइभावाओ" ॥

(२९९३)

अर्थ—समस्त उपलब्धि, समस्त भोग और परम ऐश्वर्य के विस्तार से जीव "इन्द्र" कहलाता है। उसके लिंगादि लक्षणों से श्रोत्रादि भेद वाली (पाँच) इन्द्रियाँ जानना।

हिरण, हस्ती, पतगिया, भ्रमर और मछली—ये इन्द्रियों को पराधीनता से मृत्यु को प्राप्त करती है तो अपन मनुष्य तो पाँचो इन्द्रियो के गुलाम बन जावे तो अपनी क्या स्थिति हो ? यदि इन्द्रियों के वश हुए तो अपना तो अध पतन ही होगा।

इन्द्रिय सुखो की अति लालसा मनुष्य जीवन का विनाश ही लाती है। जो इन्द्रियो के रस मे रचेपचे रहते है वे अनेक प्रकार की भयकर व्याधियो के शिकार होते हैं। अनुभवी पुरुषो ने कहा है कि—एक साथ दो रास्तो पर नही जाया जा

सकता जैसे उत्तर और दक्षिण दोनों दिशाओ मे एक साथ नही जाया जा सकता उसी तरह **इन्द्रिय सुखो की उपभोग को ममता और मोक्ष मार्ग की प्राप्ति** दोनो क्रियाएँ एक साथ सम्भव नही, इसलिए शास्त्रकार भगवन्तो ने फरमाया है कि **मुक्ति प्राप्त करना हो तो इन्द्रियो को जीतो।**

इन्द्रियाँ पाँच प्रकार की हैं।

(१) स्पर्शेन्द्रिय (त्वचा, चमडी)
(२) रसेन्द्रिय (जीभ)
(३) घ्राणेन्द्रिय (नासिका)
(४) चक्षुरिन्द्रिय (आँख)
(५) श्रोत्रेन्द्रिय (कान) ।

पाँचो इन्द्रियो के मुख्य विषय पाँच हैं और अन्तर्भेद तेवीस हैं।

(१)	स्पर्शेन्द्रिय	स्पर्श — ८
(२)	रसेन्द्रिय	रस — ५
(३)	घ्राणेन्द्रिय	वास — २
(४)	चक्षुरिन्द्रिय	रूप — ५
(५)	श्रोत्रेन्द्रिय	शब्द — ३

(१) स्पर्श द्वारा—१ हलका, २ भारी, ३ कोमल, ४ खुरदरा, ५ ठण्डा, ६ गरम, ७ चिकना और ८ रूखा—ये आठ बाते जानी जा सकती है।

(२) जीभ से—१ मीठा, २ खट्टा, ३ खारा, ४ कड़वा और ५ तीखा जाना जा सकता है।

(३) सूँघने से—१ अच्छी सुगन्ध, २ खराब सुगन्ध जानी जा सकती है।

(४) नैत्र से—१ सफेद, २ काला, ३ हरा, ४ पीला और ५ लाल जाना जा सकता है।

(५) कान से—१ सचित्त शब्द, २ अचित्त शब्द और ३ मिश्र शब्द जाने जा सकते हैं। जीवित प्राणियो का शब्द-ध्वनि वह सचित्त, जड पदार्थों की आवाज वह अचित्त और दोनो के मिश्रण रूप आवाज वह मिश्र। जैसे मनुष्य सगीत गाता हो और साथ मे वाजा बजाता हो।

इद्रियों के इन विषयो मे राग अथवा द्वेष होना, सुख अथवा दु.ख की कल्पना पैदा होने देना वह इद्रियो की आसक्ति कही जाती है। कोमल शय्या अथवा स्वादिष्ट भोजन देखकर प्रसन्न होना या खुरदरी शय्या अथवा कर्कश आवाज सुनकर अप्रीति करना वह 'इद्रियासक्ति' है। उसे जीतने का प्रयास करना वह 'इद्रिय जय' कहलाता है।

श्री इद्रियजय तप की विधि

पूर्वार्द्धभक्तमेकं च, विरसाम्ले उपोषितम्।
प्रत्येकमिद्रियजयः, पञ्चविंशतिवासरः ॥१॥

अर्थ—पुरिमड्ढ, एकासना, नीवी, आयबिल और उपवास।

इस प्रकार पाच दिन करने से एक इंद्रियजय का तप हुआ। इस तरह पाचों इंद्रियो के जय के लिए पांच ओली करने से पच्चीस दिन मे यह तप पूरा होता है। तपस्या के दिनों में भूमि शयन करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना।

उद्यापन मे जिनेश्वर के पास अथवा ज्ञान के पास पूजा-पूर्वक पच्चीस पच्चीस पकवान (मोदक) फल आदि रखना और उतनी ही संख्या मे मोदक साधुओं को वहोराना। सघ वात्सल्य करना। **यह तप करने से दुष्ट इंद्रियों की अशुभ प्रवृत्ति नही होती।** यह साधु तथा श्रावक दोनों को करने का तप है। गुणना आदि निम्न प्रकार करना—

	सा.	ख.	लो	न.
पहली ओली—स्पर्शनेन्द्रिय जय तपसे नमः	८	८	८	२०
दूसरो ओली—रसनेद्रियजय तपसे नमः	५	५	५	२०
तीसरो ओली—घ्राणेन्द्रियजय तपसे नमः	२	२	२	२०
चौथी ओली—चक्षुरेन्द्रियजय तपसे नमः	५	५	५	२०
पांचवी ओली—श्रोत्रेद्रियजय तपसे नम.	३	३	३	२०

अथवा "इद्रियजयाय नमः" इस तरह पांचो ओलियों मे गिनना। तथा स्वस्तिक, खमासमण और कायोत्सर्ग पांच पांच करना। नवकारवाली वीस गिनना।

---

२. कषायजय तपः

श्री प्रज्ञापना सूत्र के तेरहवे पद मे कहा है कि—

कलुसन्ति जं च जीवम्, तेण कसाइ त्ति वुच्चन्ति ।

अर्थ—जीव के शुद्ध स्वरूप को जो कलुषित करता है वह **'कषाय'** कहलाता है। "कष" का दूसरा अर्थ ससार। जिससे संसार का **आय**—लाभ हो वह **'कषाय'**।

१ क्रोध—द्वेष, गुस्सा, अक्षमा या वैर लेने की वृत्ति।

२ मान—अभिमान, अहकार, मद।

३. माया—लुच्चाई, कपट, दगा दूसरे को छेड़ने की वृत्ति।

४ लोभ—तृष्णा, लालसा, असंतोष अधिक से अधिक लेने की वृत्ति।

कषाय के ऊपर लिखे अनुसार चार भेद हैं परन्तु उनमें हरएक के अनंतानुबन्धी, अप्रत्याख्यान्, प्रत्याख्यान, और सज्वलन इस प्रकार चार चार भेद से सोलह विभाग होते हैं। अनतानुबन्धी यह तीव्र कषाय है और वह सामान्य रूप से सब जीवो मे होते है। अप्रत्याख्यान आदि कषाय उत्तरोत्तर मन्द होते है।

भव वृद्धि के हेतुभूत इन कषायो को जय करना चाहिए।

श्री कषायजय तप की विधि

इक्कासरणगं तह, निव्विगइयमायंबिलमभत्तट्ठं ।
इय होइ लयचउक्कं कसायविजए य तवचरणो ॥१॥

प्रथम दिन एकासना, दूसरे दिन नीवी, तीसरे दिन आयंबिल, चौथे दिन उपवास, इस हिसाब से एक कषाय के लिए चार दिन की एक ओली हुई, ऐसी कषाय विजय तपस्या में चार ओली करना अर्थात् सोलह दिन मे यह तप पूरा होता है।

उद्यापन मे जिनेश्वर के पास अथवा ज्ञान के पास पूजा पूर्वक सोलह सोलह मोदक फल आदि रखना। मुनियों को भी उतना ही वहोराना। **यह तप करने से सर्व कषायों का नाश होता है।** यह साधु और श्रावक को करने का आगाढ तप है। गुणना आदि प्रत्येक दिन नीचे लिखे अनुसार करना—

	सा.	ख.	लो.	न.
१. अनंतानुवन्धि क्रोधजयाय नमः	१६	१६	१६	२०
२. अप्रत्याख्यान क्रोधजयाय नमः	,,	,,	,,	,,
३ प्रत्याख्यान क्रोधजयाय नमः	,,	,	,,	,,
४. सज्वलन क्रोधजयाय नमः	,,	,,	,,	,,
५ अनंतानुवधि मानजयाय नमः	,,	,,	,,	,,
६ अप्रत्याख्यान मानजयाय ममः	,,	,,	,,	,,
७. प्रत्याख्यान मानजयाय नमः	,,	,,	,,	,,
८ सज्वलन मानजयाय नमः	,,	,,	,,	,,
९. अनंतानुवधि मायाजयाय नमः	,,	,,	,,	,,
१०. अप्रत्याख्यान मायाजयाय नमः	,,	,,	,,	,,
११ प्रत्याख्यान मायाजयाय नमः	,,	,,	,,	,,
१२. सज्वलन मायाजयाय नमः	,,	,,	,,	,,
१३ अनतानुवधि लोभजयाय नमः	,,	,,	,,	,,
१४ अप्रत्याख्यान लोभजयाय नमः	,,	,,	,,	,,
१५ प्रत्याख्यान लोभजयाय नमः	,,	,,	,,	,
१६ सज्वलन लोभजयाय नमः	,,	,,	,,	,,

अथवा "सर्व कषायजयाय नमः" इस तरह सोलह दिन गिनना। अथवा चार चार दिन निम्न प्रकार गिनना :—

१. क्रोध जय तपसे नमः (पहली ओली)	४	४	४	२०
२. मान जय तपसे नमः (दूसरी ओली)	४	४	४	२०
३ माया जय तपसे नमः (तीसरी ओली)	४	४	४	२०
४. लोभ जय तपसे नमः (चौथी ओली)	४	४	४	२०

---

३. श्री योग शुद्धि तप

'योग' अर्थात् मन, वचन और काया की प्रवृत्ति। वह कर्म को आत्मा की तरफ खींच कर लाने मे कारण भूत है जिससे उसे 'आस्रव' कहा जाता है। कर्म का जो आस्रव पुण्यबंध के लिए हो तो शुभ और पापबध के लिए हो तो अशुभ कहा जाता है। श्री तत्त्वार्थसूत्र के छटे अध्याय मे कहा है कि—**काय-वाङ्-मनः कर्म योगः ॥१॥ स आस्रवः ॥२॥ शुभः पुण्यस्य ॥३॥ अशुभ पापस्य ॥४॥**

मन वानर की तरह चंचल है, ध्वजा के छोर जैसा अस्थिर है और पवन की तरह स्वतंत्रता से भटकने वाला है; परन्तु उसी मन को ध्यान मे लगाने से या एकाग्र करने से मोक्ष प्राप्ति मे सहायक बन सकता है।

वचन भी जैसे तैसे नही बोलना। द्वादशागी के प्रति श्रद्धावंत रहकर भाषा बोलना वह वचन की शुभ प्रवृत्ति है। प्राज्ञ पुरुष को निरवद्य और सत्य भाषा ही बोलना चाहिए।

काया अर्थात् शरीर-देह, पापकारी प्रवृत्ति छोड़ना यह काया की शुभ प्रवृत्ति है। श्रीमद् कलिकाल सर्वज्ञ भगवंत श्री हेमचद्राचार्यजी महाराज ने श्री योगशास्त्र के चौथे प्रकरण मे रहा है कि—

शरीरेण सगुप्तेन, शरीरी चिनुते शुभम् ।
सहतारम्भिणा जन्तु-घातकेनाशुभम् पुनः ॥७७॥

कायोत्सर्गादिक क्रियावाले शरीर से आत्मा "शुभ" कर्म का संचय करती है तथा सतत आरम्भ-वाला और परिणाम स्वरूप जीव-हिंसादि प्रवृत्ति-वाला शरीर से अशुभ कर्म उपार्जन करता है।

मनोयोग, वचनयोग, काययोग को शुद्ध करने के लिए योग शुद्धि तप आवश्यक है।

श्री योग शुद्धि तप की विधि

योगे प्रत्येकं विकृतिकाचाम्लं चाप्युपोषितम् ।
एवं नवदिनैर्योगशुद्धिः संपूर्यते ततः ॥१॥

यह तप मन, वचन और काया के योग (व्यापार) को शुद्ध करने वाला होने से योगशुद्धि तप कहलाता है, इसमे मनोयोग के आश्रयी को पहले दिन नीवी, दूसरे दिन आयंबिल और तीसरे दिन उपवास। इसी प्रकार वचन और काया के योग के आश्रयी को भी तीन तीन दिन करना। अर्थात् नौ दिन मे यह तप पूर्ण होता है।

उद्यापन मे जिनेश्वर के पास अथवा ज्ञान के पास छः विगय के पदार्थ तथा नौ नौ मोदक, फल आदि रखना। ज्ञान पूजा तथा देव पूजा करना, अष्ट मागलिक करना। **यह तप करने से मन, वचन और काया के योग की शुद्धि होती है।** यह साधु तथा श्रावक को करने का आगाढ तप है।

(उद्यापन मे अष्ट मगल करने के लिए जैन प्रबोध में लिखा है।)

गुणना आदि निम्न प्रकार से करना—

		सा.	ख	लो.	न.
१	मनोयोग तपसे नमः (पहली ओली)	३	३	३	२०
२	वचोयोग तपसे नमः (दूसरी ओली)	३	३	३	२०
३	काययोग तपसे नम (तीसरी ओली)	३	३	३	२०

---

४. श्री धर्मचक्र तप

छे खण्ड पृथ्वी की साधना करने वाले चक्रवर्ती पृथ्वीपीठ पर श्रेष्ठ माना जाता है क्योकि उसकी ऋद्धि-सिद्धि, वैभव, विलास तथा सम्पत्ति की बराबरी कोई नही कर सकता। चक्रवर्ती अपने "चक्र" की सहायता से विजय प्राप्त करता है।

परन्तु शास्त्रकार भगवत फरमाते है कि "धर्मचक्र" के सामने तो चक्रवर्ती का वह चक्र भी फीका पड़ जाता है क्योकि धर्मचन्द्र मे नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव इन चारों गतियों

को नष्ट करने की सामर्थ्य होती है और उसके द्वारा ही अवि-नाशी, अनुपम, अक्षय भण्डार जैसी सिद्धिगति प्राप्त की जा सकती है।

यह "धर्मचक्र" श्री तीर्थंकर भगवतो का देवोकृत अतिशय है। अतिशय अर्थात् प्रभाव सूचक लक्षण। श्री तीर्थंकर भगवतो को चौतीस अतिशय होते हैं। जब वे विचरण करते हैं तब देवता आकाश मे "धर्मचक्र"—विकुर्वी को साथ २ फिराते हैं।

ऐसे उत्तम कोटि के "धर्मचक्र" को प्राप्त करने के लिए धर्मचक्र तप करना आवश्यक है।

श्री धर्मचक्र तप की विधि

विधाय प्रथमं, षष्ठं षष्टिमेकान्तरांस्तथा।

उपवासान् धर्मचक्रे, कुर्याद्वह्न्यर्क(१२३)वासरैः ॥१॥

प्रथम विधि—धर्म का चक्र अर्थात् समूह अथवा भगवान् अरिहंत का अतिशय रूप धर्मचक्र, उसकी प्राप्ति का कारण होने से धर्मचक्र तप कहलाता है। इसमे एक छट्ठ करके पारणा करना। पीछे एकान्तर साठ उपवास करना। इस प्रकार यह तप १२३ दिन में पूरा होता है।

उद्यापन मे रत्नजडित स्वर्ण अथवा चादी का धर्मचक्र बनवाकर जिनेश्वर के पास पूजा पूर्वक रखना। मुनिराज को अन्नादि वहोराना, यथाशक्ति सघ पूजा, स्वामीवात्सल्य करना। यह तप करने से अतिचार रहित बोधि की प्राप्ति होती है। यह तप यति तथा श्रावक को करने का आगाढ तप है (आचार दिनकर)

दूसरी विधि—प्रथम एक अट्ठम कर पारणा करना। पीछे एकान्तर ३७ उपवास करना। इसके बाद एक अट्ठम कर पारणा करना। अर्थात् उपवास ४३ और पारणे के ३६ दिन मिलाकर ८२ दिन मे यह तप पूर्ण होता है उद्यापन पहली विधि में बताये अनुसार।

तीसरी विधि—२४ आयंबिल निरंतर करना। उद्यापन ऊपर बताये अनुसार (विधि प्रपा.)

चौथी विधि—प्रथम एक अट्ठम करके पारणा करना। पीछे तीस एकातर उपवास करना। पीछे एक अट्ठम करके पारणा करना। पीछे तीस एकांतर उपवास करना। अन्त मे एक अट्ठम कर पारणा करना। इस तरह उपवास ६९ तथा पारणे के दिन ६३ मिलाकर १३२ दिन में तप पूर्ण होता है।

(इस तप को महा धर्म चक्रवाल तप भी कहते है).

गुणना नीचे लिखे अनुसार—

	सा.	ख.	लो.	न.
धर्मचक्रिणे अरिहताय नमः अथवा—नमो अरिहंताणं	१२	१२	१२	२०

५-६. श्री लघु अष्टाह्निका तपद्वय

आठ दिवस के तप को अष्टाह्निका तप कहा जाता है, जैसे आठ दिवस के महोत्सव को हम 'अष्टाह्निका महोत्सव' कहते हैं। जिन दिनो मे यह तप किया जाता है वे दिन शाश्वती अट्ठाई के पवित्र दिन हैं, यह इस तप की विशिष्टता है।

श्री लघु अष्टाहिका तप की विधि

अष्टमीभ्यां समारभ्य, शुक्लाश्व्युतचैत्रयोः ।
राकां यावत्सप्तवर्षं स्वशक्त्याऽष्टाहिकातपः ।। १ ।।

यह आठ आठ दिनों का तप होने से अष्टाहिका तप कहा जाता है। यह तप आश्विन और चैत्र मास की शुक्ल अष्टमी से आरम्भ कर पूर्णिमा को पूरा करना। हमेशा अपनी शक्ति के अनुसार एकासना, नीवी, आयम्बिल या उपवास करना। इस प्रकार सात वर्ष तक करना। तप के दिनो मे बड़ी स्नात्र विधि से जिन पूजा करना।

उद्यापन मे छप्पन छप्पन मोदक, फल, पुष्प आदि द्वारा देव पूजा करना। मुनिराज को अन्नादि वहोराना। यथाशक्ति सघ पूजा करना। ये दोनों तप दुर्गति का नाश करने वाले हैं। यह साधु तथा श्रावक को करने का आगाढ तप है।

नोट—(१) यहां आश्विन अष्टाहिका तप और चैत्र अष्टाहिका तप, अलग २ तप होने से व विधि एक समान होने से तप की संख्या दो बताई गई है। (गुणना आगे के सातवे तप मे बताये अनुसार करना।)

---

७. श्री अष्ट कर्म सूदन तप

निकाचित कर्मो को नष्ट करने मे शास्त्रकार भगवंतों ने तप को अमोघ साधन बताया है। उसमे भी यह तप मुख्यतया कर्मों का सूदन-नाश के लिए ही है।

आठ कर्म और उनका स्वरूप निम्न प्रकार है, जिनके क्षय से सिद्ध दशा प्राप्त होती है।

१. **ज्ञानावरणीय**—नाम, जाति, गुण और क्रिया आदि युक्त विशेष बोध वह **ज्ञान**, उसे जो कर्म आवरे वह ज्ञानावरणीय। उसके मतिज्ञानादि पाच भेद है।

ज्ञानावरणीय कर्म का स्वभाव पाटे की तरह है। जैसे घन, घनतर, पाटा चक्षु के तेज का कम व ज्यादा आच्छादन करता है वैसे कम व ज्यादा तीव्र ज्ञानावरणीय कर्म कम व ज्यादा अश मे ज्ञान का आच्छादन करता है।

२ **दर्शनावरणीय**—नाम, जाति आदि रहित सामान्य बोध वह **दर्शन**, उसे आवरे वह दर्शनावरणीय। उसके नौ भेद है।

इस कर्म का स्वभाव प्रतिहारी-द्वारपाल जैसा है। जैसे द्वारपाल लोगों के वृत्तात को जानने की इच्छा वाले राजा के पास जाने वाले लोगो को रोकता है वैसे यह कर्म जीव रूपी राजा को घटादि पदार्थरूप लोक का दर्शन-सामान्य बोध नही होने देता।

३. **वेदनीय**—सुख अथवा दु:ख रूप वेदाय-अनुभव मे आवे वह वेदनीय कर्म। इसके शाता और अशाता दो भेद है।

इस कर्म का स्वभाव शहद से सनी तलवार जैसा है। जैसे तलवार को चाटते समय पहले शहद का स्वाद आने से सुख मिलता है और पीछे जीभ कट जाने से दु:ख होता है।

४ मोहनीय—सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्र का घात करे वह मोहनीय। इसके मिथ्यात्व, मोहनीय आदि अट्ठाइस भेद हैं।

इस कर्म का स्वभाव मदिरा जैसा है। जैसे मदिरा पान से जीव हिताहित के विवेक को भूल जाता है वैसे इस कर्म के वशवर्ती होने से जीव पारमार्थिक हिताहित का विवेक खो बैठता है।

५ आयुष—देवादि गति मे स्थिति करना-रहना। इसके देव, नारक, मनुष्य और तिर्यंच चार भेद हैं।

इस कर्म का स्वभाव कैदी जैसा है। जैसे कैद मे पड़ा जीव उसकी मुद्दत पूरी हुए बिना छूट नही सकता वैसे आयुष कर्म के उदय से स्थिति पूरी हुए सिवाय जीव छूट नही सकता।

६ नाम कर्म—गति, जाति आदि विविध अवस्था का अनुभव होता है। इसके देवगत्यादि एक सौ तीन भेद हैं।

इस कर्म का स्वभाव चित्रकार जैसा है। जैसे चित्रकार विविध प्रकार के चित्र बनाता है वैसे यह कर्म जीव के जाति, गति, शरीर आदि विविध रूप करता है।

७ गोत्र कर्म—जन्म होना वह गोत्र। इसके ऊच और नीच दो भेद है।

इस कर्म का स्वभाव कुम्हार जैसा है। जैसे कुम्हार मागलिक कार्य के लिए तथा मदिरा भरने के लिए घडे बनाता है वैसे यह जीव उच्च गोत्र भी देता है और नीच गोत्र भी देता है।

८ अंतराय—दानादि शक्तियों का घात करता है। इसके दानान्तरायादि पांच भेद है।

इस कर्म का स्वभाव भंडारी जैसा है। जैसे भण्डारी राजा को दान करने मे प्रतिबध लगाता है वैसे यह कर्म जीव को दानादि करने से रोकता है।

[नोट—इन आठो कर्मो का विशेष विवरण नवतत्त्व, कर्मग्र थ, कम्मपयडी आदि ग्र थो से जानना।]

श्री अष्ट कर्म सूदन तप की विधि

प्रत्याख्यानान्यष्टौ, प्रत्येकं कर्मणां विघाताय।
इति कर्मसूदनतपः, पूर्णं स्याद्युगरसमिता हैः ॥१॥
उपवासमेकभक्तं, तथैकसिक्थैकसंस्थिती दत्ती।
निर्विकृतिकमाचाम्लं कवलाष्टकं च क्रमात्कुर्यात् ॥२॥

आठ कर्मों का क्षय करने के लिए इस प्रकार तप करना:—

प्रथम दिन उपवास, दूसरे दिन एकासना, तीसरे दिन एक सिकथ (एक दाणा) स्थान पर चऊव्विहार आयबिल, चौथे दिन एक अगी (एकलठाणा) एकासना ठाम चऊव्विहार, पाचवे दिन ठाम चऊव्विहार एकदत्ती (एक बार पात्र मे आजावे वही खाना), छटे दिन लूखी नीवी, सातवे दिन आयबिल तथा आठवें दिन आठ कवल का एकासना करना। इन आठ दिनों मे गुणना निम्न प्रकार से करना। बीस नवकार वाली गिनना।

१. ज्ञानावरणीय कर्मक्षये श्रीअनंतज्ञानसंयुताय नमः
२. दर्शनावरणीय कर्मक्षये श्रीअनंतदर्शनसंयुताय नमः
३ वेदनीय कर्मक्षये श्रीअव्यावाधगुणसंयुताय नमः
४. मोहनीय कर्मक्षये श्रीअनतचारित्रगुणसयुताय नमः
५. आयु. कर्मक्षये श्रीअक्षयस्थितिगुणसयुताय नमः
६. नाम कर्मक्षये श्रीअरूपीनिरजनगुणसयुताय नमः
७. गोत्र कर्मक्षये श्रीअगुरुलघुगुणसंयुताय नमः
८. अन्तराय कर्मक्षये श्रीअनन्तवीर्यगुणसयुताय नमः

अथवा निम्न प्रकार गुणना—	प्रकृति
१. श्री अनन्त ज्ञानगुणधारकाय नमः	५
२. श्री अनत दर्शनगुण धारकाय नमः	९
३. श्री अव्यावाध गुण धारकाय नमः	१
४. श्री क्षायिक सम्यक्त्व गुणधारकाय नम	२०
५. श्री अक्षय स्थिति गुणधारकाय नमः	४
६. श्री अमूर्त गुणधारकाय नमः	१०३
७. श्री अगुरुलघु गुणधारकाय नमः	२
८. श्री अनंतवीर्य गुणधारकाय नम.	५

कायोत्सर्ग, स्वस्तिक तथा खमासरणा कर्म प्रकृति के अनुसार करना।

जिस दिन जिस कर्म का तप हो उस दिन उस कर्म की पूजा मे से एक एक ढाल क्रमशः पढ़ाना (स्नात्र सहित) (इसकी विधि चौंसठ प्रकार की पूजा से जानना)

उद्यापन में आठ कर्म की १५८ प्रकृति बताने वाली आठ शाखाओ को १५८ पत्तो वाला चादी का वृक्ष और कर्म वृक्ष को छेदने के लिए उसकी जड मे रखने को सोने की कुल्हाड़ी तथा चौंसठ मोदक ज्ञान के पास रखना अथवा देव के पास रखना। ज्ञान की पूजा करना तथा दान देना। बड़ी स्नात्र विधि से जिन पूजा करना। सघ वात्सल्य करना। इस प्रकार प्रथम ओली हुई। ऐसी आठ ओली करना अर्थात् चौंसठ दिन में कर्म सूदन तप पूर्ण होता है। **इस तप के फल से कर्म क्षय होते हैं**। यह साधु तथा श्रावक के करने का आगाढ तप है।

अथवा दूसरी तरह यह तप इस प्रकार भी किया जाता है।

प्रथम एक अठ्ठम करना। पीछे साठ एकान्तर उपवास करना तथा अत मे एक अठ्ठम करना। कुल ६६ उपवास और ६२ पारणे के दिन मिलाकर चार माह और आठ दिन मे यह तप पूर्ण होता है। इस रीति से तप करते हुए सिद्ध पद की माला गुणना। ज्ञान, गुरु और सघ की भक्ति करना। उद्यापन ऊपर प्रमाणे करना।

इस प्रकार साधु तथा श्रावक को करने योग्य ग्यारह* आगाढ तप श्री जिनेश्वर ने बताये हैं। मुनियो की तपस्या के उद्यापन के लिए मूल ग्रन्थ मे इस प्रकार बतलाया है—

उद्यापने च गृहिभिः, कार्यं कर्म यथोदितम्।
काराप्यं यतिभिः श्राद्धैस्तदभावे च मानसम् ॥१॥

---

* ऊपर लिखे ७ के अलावा उपधान तप योगोद्वहन, श्रावक की ११ प्रतिमा और मुनि की १२ प्रतिमा—कुल ११

अर्थ—गृहस्थियों को उद्यापन मे तपविधि में बतलाए अनुसार करना । तथा साधुओं ने तपस्या की हो तो उसका उद्यापन श्रावक से कराना अथवा ऐसा न हो तो मानसिक उद्यापन करना ।

यद्दिनान्तरितं कार्यं, तदनागाढमुच्यते ।
एकश्रेण्य विधेयस्, यत्तादागाढ जगौ जिनः ॥२॥

अर्थ—जो तप दिवस के अन्तर से किया जावे वह अनागाढ तप कहलाता है और जो लगातार श्रेणिबद्ध किया जावे वह आगाढ तप कहा जाता है ऐसा जिनेश्वर ने कहा है—

॥ इति जिनोक्तानि तपांसि ॥

अथ गीतार्थोक्तानि तपांसि

८. एक सौ बीस कल्याणक तप

"कल्याणक" यह श्री तीर्थंकर भगवंत जैसे सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति को ही हो सकता है। उनके च्यवन (गर्भावतार), जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष गमन—इस प्रकार पाँच कल्याणक होते हैं। कल्याणक दिन अर्थात् उत्तमोत्तम दिन। श्री तीर्थंकर भगवंत के कल्याणक के समय नारकी जैसे दारूण दुखी जीवो को भी क्षणिक सुख का अनुभव होता है। कहा है कि :—

"जेमना कल्याणक दिवसे, नरके पण अजवालु"

घोर अंधकार मे डूबे जीव को प्रकाश की प्राप्ति यह कम उपकारक बात नही है। इस भरतक्षेत्र मे चौबीस तीर्थंकर भगवतो के हरएक के पाच-पाच कल्याण की गिनती एक सौ बीस होती है।

एक सौ बीस कल्याणक तप की विधि

यस्मिन् दिने तीर्थंकरस्य गर्भावतारजन्मव्रतकेवलानि।

मोक्षो बभूवात्र दिने तपो यत्कल्याणकं तत्समुदाहरन्ति ॥ १ ॥

अर्थ—जिस दिन तीर्थंकर भगवंत का गर्भावतार (च्यवन) जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान, और मोक्ष हुआ हो, उस दिन जो तप किया जाय वह कल्याणक तप कहलाता है ॥१॥

कल्याणक एकस्मिन्नेकाशनमेतद्द्वयोर्विरसम् ।
आचाम्लं त्रितयेऽपि हि चतुष्टयेऽप्यनशनं प्राहुः ॥२॥

अर्थ—जिस दिन एक कल्याणक हो उस दिन एकासना करना, दो कल्याणक हो उस दिन नीवी करना, तीन कल्याणक हो उस दिन आयविल करना और चार कल्याणक के दिन उपवास करना ऐसा कहा है ॥२॥

(पांच कल्याणक के दिन एकासना पूर्वक उपवास करना । ऐसा आचार उपदेश में अधिक कहा है)

अथवा एक कल्याणक के दिन एकासना, दो कल्याणक के दिन आयंबिल, तीन कल्याणक के दिन आयंबिल और एकासना, चार कल्याणक के दिन उपवास और पांच कल्याणक के दिन उपवास तथा एकासना करना ।

चौबीस तीर्थंकर के च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण इन पाच कल्याणक के १२० दिनो मे उपवास आदि तप करना । एकासने से जो पच कल्याणक की आराधना करे वह मृगसर सुदि १० का आयबिल करे और मृगसर सुदि ११ को उपवास कर ५ कल्याणक की आराधना करे और जो उपवास से पंच कल्याणक की आराधना करे वह मृगसर सुदि दसम और एकादसी को प्रथम छट्ठ करके प्रारम्भ करे तो पांच वर्ष मे कल्याणक तप पूरा होता है ।

उद्यापन श्री कनकसिंह राजा की तरह चौबीस जिनेश्वरों की प्रतिमा भरावे । तिलक २४, पकवान २४ खाजा २४, एवं पूजा के उपकरण २४-२४ रखे ।

१. च्यवन कल्याणक के दिन "परमेष्ठिने नम. मंत्र का जाप दो हजार (२० नवकार वाली) करना ।

२. जन्म	,,	,,	अर्हते नमः	,,	,,
३. दीक्षा	,,	,,	नाथाय नमः	,,	,,
४. केवलज्ञान	,,	,,	सर्वज्ञाय नम.	,,	,,
५. निर्वाण	,,	,,	पारगताय नम.	,,	,,

१. च्यवन कल्याणक के दिन सार्धमिक वात्सल्य करना ।

२. जन्म	,,	,,	गुड़ व घी का दान करना ।
३. दीक्षा	,,	,,	खोपरा व गुड देना ।
४. केवलज्ञान	,,	,,	संघ पूजा करना ।
५. निर्वाण	,,	,,	बडी पूजा पढाना ।

जो उपवास से यह तप करता है उसे हरएक कल्याणक के दिन उपवास करना । दो अथवा अधिक कल्याणक जिस दिन हो उसकी आराधना दूसरे वर्ष करना । जहां भगवंत की कल्याणक भूमि हो वहां बड़े महोत्सव पूर्वक सघ सहित यात्रा करने जाना । विधियुक्त यात्रा करना । तथा सब भगवतो के पंच कल्याणको का उत्सव करना ।

गुणना निम्न प्रकार गिनना—

तिथि	महीना	कल्याणक
	कार्तिक वद	
५	श्री संभवनाथ सर्वज्ञाय नमः	केवल
१२	श्री पद्मप्रभार्हते नमः	जन्म
१२	श्री नेमिनाथ परमेष्ठिने नम.	च्यवन
१३	श्री पद्मप्रभनाथाय नमः	दीक्षा
०))	श्री महावीर पारंगताय नमः	मोक्ष

तिथि	महीना	कल्याणक
	कार्तिक सुद	
३	श्री सुविधिनाथ सर्वज्ञाय नम॰	केवल
१३	श्री अरनाथ सर्वज्ञाय नमः	केवल
	मृगसर वद	
५	श्री सुविधिनाथार्हते नम.	जन्म
६	श्री सुविधिनाथनाथाय नमः	दीक्षा
१०	श्री महावीरनाथाय नमः	दीक्षा
११	श्री पद्मप्रभ पारंगताय नमः	मोक्ष
	मृगसर सुद	
१०	श्री अरनाथार्हते नमः	जन्म
१०	श्री अरनाथ पारंगताय नमः	मोक्ष
११	श्री अरनाथनाथाय नमः	दीक्षा
११	श्री मल्लिनाथार्हते नमः	जन्म
११	मल्लिनाथाय नमः	दीक्षा
११	श्री मल्लिनाथ सर्वज्ञाय नमः	केवल
११	श्री नमिनाथ सर्वज्ञाय नम	केवल
१४	श्री संभवनाथार्हते नमः	जन्म
१५	श्री सभवनाथनाथाय नमः	दीक्षा
	पौष वद	
१०	श्री पार्श्वनाथार्हते नमः	जन्म
११	श्री पार्श्वनाथनाथाय नमः	दीक्षा
१२	श्री चद्रप्रभार्हते नमः	जन्म

१३	श्री चंद्रप्रभनाथाय नमः	दीक्षा
१४	श्री शीतलनाथ सर्वज्ञाय नमः	केवल

पौष सुद

६	श्री विमलनाथ सर्वज्ञाय नमः	केवल
९	श्री शांतिनाथ सर्वज्ञाय नमः	केवल
११	श्री अजितनाथ सर्वज्ञाय नमः	केवल
१४	श्री अभिनदन सर्वज्ञाय नमः	केवल
१५	श्री धर्मनाथ सर्वज्ञाय नमः	केवल

माघ वद

६	श्री पद्मप्रभ परमेष्ठिने नमः	च्यवन
१२	श्री शीतलनाथार्हते नमः	जन्म
१२	श्री शीतलनाथनाथाय नमः	दीक्षा
१३	श्री आदिनाथपारंगताय नमः	मोक्ष
०))	श्री श्रेयांसनाथ सर्वज्ञाय नमः	केवल

माघ सुद

२	श्री अभिनंदनार्हते नमः	जन्म
२	श्री वासुपूज्य सर्वज्ञाय नमः	केवल
३	श्री धर्मनाथार्हते नम.	जन्म
३	श्री विमलनाथार्हते नमः	जन्म
४	श्री विमलनाथनाथाय नमः	दीक्षा
८	श्री अजितनाथार्हते नमः	जन्म
९	श्री अजितनाथनाथाय नमः	दीक्षा
१२	श्री अभिनदननाथाय नमः	दीक्षा
१३	श्री धर्मनाथनाथाय नमः	दीक्षा

फाल्गुन वद

६	श्री सुपार्श्वनाथ सर्वज्ञाय नमः	केवल
७	श्री सुपार्श्वनाथपारंगताय,नमः	मोक्ष
७	श्री चंद्रप्रभ सर्वज्ञाय नमः	केवल
६	श्री सुविधिनाथ परमेष्ठिने नमः	च्यवन
११	श्री आदिनाथ सर्वज्ञाय नमः	केवल
१२	श्री श्रेयासनाथार्हते नमः	जन्म
१२	श्री मुनिसुव्रत सर्वज्ञाय नमः	केवल
१३	श्री श्रेयासनाथनाथाय नमः	दीक्षा
१४	श्री वासुपूज्यार्हते नमः	जन्म
०))	श्री वासुपूज्यनाथाय नम.	दीक्षा

फाल्गुन सुद

२	श्री अरनाथ परमेष्ठिने नमः	च्यवन
४	श्री मल्लनाथ परमेष्ठिने नमः	च्यवन
८	श्री संभवनाथ परमेष्ठिने नमः	च्यवन
१२	श्री मल्लिनाथ पारंगातय नमः	मोक्ष
१२	श्री मुनिसुव्रतनाथाय नमः	दीक्षा

चैत वद

४	श्री पार्श्वनाथ परमेष्ठिने नम.	च्यवन
४	श्री पार्श्वनाथ सर्वज्ञाय नमः	केवल
५	श्री चंद्रप्रभ परमेष्ठिने नमः	च्यवन
८	श्री आदिनाथार्हते नमः	जन्म
८	श्री आदिनाथाय नम.	दीक्षा

चैत सुद

३	श्री कुंथुनाथ सर्वज्ञाय नमः	केवल
५	श्री अजितनाथ पारंगताय नमः	मोक्ष
५	श्री सभवनाथ पारंगताय नमः	मोक्ष
५	श्री अनतनाथपारंगताय नमः	मोक्ष
९	श्री सुमतिनाथ पारंगताय नमः	मोक्ष
११	श्री सुमतिनाथ सर्वज्ञाय नमः	केवल
१३	श्री महावीरार्हते नम.	जन्म
१५	श्री पद्मप्रभ सर्वज्ञाय नम.	केवल

वैशाख वद

१	श्री कुथुनाथ पारंगताय नमः	मोक्ष
२	श्री शीतलनाथ पारंगताय नम·	मोक्ष
५	श्री कुथुनाथनाथाय नम.	दीक्षा
६	श्री शीतलनाथ परमेष्ठिने नम.	च्यवन
१०	श्री नमिनाथ पारगताय नम.	मोक्ष
१३	श्री अनन्तनाथनाथाय नम·	दीक्षा
१४	श्री अनन्तनाथार्हते नमः	जन्म
१४	श्री अनन्तनाथ सर्वज्ञाय नम.	केवल
१४	श्री कुंथुनाथार्हते नमः	जन्म

वैशाख सुद

४	श्री अभिनदन परमेष्ठिने नमः	च्यवन
७	श्री धर्मनाथ परमेष्ठिने नमः	च्यवन
८	श्री अभिनंदन पारगताय नमः	मोक्ष
८	श्री सुमतिनाथार्हते नमः	जन्म

९	श्री सुमतिनाथनाथाय नमः	दीक्षा
१०	श्री महावीर सर्वज्ञाय नमः	केवल
१२	श्री विमलनाथ परमेष्ठिने नमः	च्यवन
१३	श्री अजितनाथ परमेष्ठिने नमः	च्यवन

जेठ वद

६	श्री श्रेयांसनाथ परमेष्ठिने नमः	च्यवन
८	श्री मुनिसुव्रतार्हते नमः	जन्म
९	श्री मुनिसुव्रत पारंगताय नमः	मोक्ष
१३	श्री शांतिनाथार्हते नमः	जन्म
१३	श्री शांतिनाथ पारगताय नमः	मोक्ष
१४	श्री शांतिनाथनाथाय नमः	दीक्षा

जेठ सुद

५	श्री धर्मनाथ पारगताय नमः	मोक्ष
९	श्री वासुपूज्य परमेष्ठिने नमः	च्यवन
१२	श्री सुपार्श्वनाथार्हते नमः	जन्म
१३	श्री सुपार्श्वनाथनाथाय नमः	दीक्षा

आषाढ़ वद

४	श्री आदिनाथ परमेष्ठिने नमः	च्यवन
७	श्री विमलनाथ पारंगताय नमः	मोक्ष
९	श्री नमिनाथनाथाय नमः	दीक्षा

आषाढ़ सुद

६	श्री महावीर परमेष्ठिने नमः	च्यवन
८	श्री नेमिनाथ पारगताय नमः	मोक्ष
१४	श्री वासुपूज्य पारंगताय नमः	मोक्ष

श्रावण वद

३	श्री श्रेयांसनाथ पारंगताय नमः	मोक्ष
७	श्री अनन्तनाथ परमेष्ठिने नम.	च्यवन
८	श्री नमिनाथार्हते नमः	जन्म
९	श्री कुंथुनाथ परमेष्ठिने नमः	च्यवन

श्रावण सुद

२	श्री सुमतिनाथ परमेष्ठिने नमः	च्यवन
५	श्री नेमिनाथार्हते नमः	जन्म
६	श्री नेमिनाथनाथाय नमः	दीक्षा
८	श्री पार्श्वनाथ पारगताय नमः	मोक्ष
१५	श्री मुनिसुव्रत परमेष्ठिने नमः	च्यवन

भाद्रवा वद

७.	श्री शातिनाथ परमेष्ठिने नमः	च्यवन
७.	श्री चद्रप्रभ पारंगताय नमः	मोक्ष
८.	श्री सुपार्श्वनाथ परमेष्ठिने नमः	च्यवन

भाद्रवा सुद

९.	श्री सुविधिनाथ पारंगताय नम,	मोक्ष

आसोज वद

०))	श्री नेमिनाथ सर्वज्ञाय नमः	केवल

आसोज सुद

१५	श्री नमिनाथ परमेष्ठिने नम	च्यवन

शेष विधि ऊपर बताये अनुसार जानना । हरएक कल्याण

के स्वस्तिक १२ करना। खमासमरण १२ देना, कायोत्सर्ग १२ लोगस्स का करना और नवकारवाली २० गिनना।

९-१०-११ श्री ज्ञान, दर्शन, चारित्र तप

ज्ञान

आत्म तत्त्व की पहिचान करना या वास्तविक कल्याण-साधन के मार्ग की पहिचान करना वह सम्यग्ज्ञान। यद्यपि ज्ञान और क्रिया का परस्पर सम्वध है फिर भी ज्ञान को अधिक महत्व दिया गया है; जैसे **नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।...सम्यग्ज्ञान क्रियाभ्याम् मोक्षः।** प्रथम जानने के वाद ही कार्य को आचरण मे लाया जा सकता है। जैनागमों मे ज्ञान पांच प्रकार का वताया है—१. मतिज्ञान २. श्रुतज्ञान ३. अवधिज्ञान ४. मन:पर्यवज्ञान ५. केवलज्ञान।

१. **मतिज्ञान**—पाच इंद्रियो और मन के द्वारा जो ज्ञान हो वह मतिज्ञान। आंखों से दृश्यमान, जीभ से चखा जाय, नाक से सूघा जाय, कान से सुना जाय और त्वचा से स्पर्श करा जाय वह सब मतिज्ञान है। स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और अनुमान भी मतिज्ञान का ही विषय है। मतिज्ञान के २८ भेद हैं।

२. **श्रुतज्ञान**—शब्द से अथवा शास्त्र द्वारा जिसका बोध हो वह श्रुतज्ञान। पैंतालीस आगम, पचागी तथा दूसरे शास्त्रो का श्रुतज्ञान मे समावेश होता है। श्रुतज्ञान के चौदह भेद हैं।

३. अवधिज्ञान—मन और इंद्रियो की अपेक्षा बिना आत्मा को रूपी पदार्थों का जो मर्यादित ज्ञान हो वह अवधिज्ञान। अवधिज्ञान के अनुगामी, अननुगामी आदि ६ भेद हैं।

४. मनः पर्यवज्ञान—सिर्फ मन के पर्याय को प्रत्यक्ष जाने वह मन पर्यवज्ञान। मनः पर्यवज्ञानी ढाई द्वीप मे रहे सज्ञी पंचेंद्रिय के मन के पर्यायो को प्रत्यक्ष और मनोगत भावो को अनुमान से जान सकता है। मनः पर्यवज्ञान के विपुलमति और ऋजुमति दो भेद हैं।

५. केवलज्ञान—पूर्ण ज्ञान। सर्व द्रव्य और सर्वपर्यायो का जो ज्ञान वह केवलज्ञान। केवलज्ञान के भेद नही होते।

इस प्रकार पाचों ज्ञान के (२८+१४+६+२+१) कुल इक्कावन भेद हैं जिन्हे गुरुगम से जानना।

शास्त्रकारो ने ज्ञान की अत्यत महत्ता बताई है। यहा तो सिर्फ एक ही उक्ति बताते हैं—

बहु कोडयो वरसे खपे, कर्म अज्ञाने जेह।
ज्ञानी श्वासोच्छ्वासमां, कर्म खपावे तेह॥

दर्शन

दर्शन अर्थात् दृष्टि। विवेक दृष्टि रूप तत्त्वश्रद्धा वह सम्यग्-दर्शन अथवा सम्यक्त्व। सत्य प्राप्त करने की आतरिक जागृति या रुचि ही सच्ची श्रद्धा कहलाती है और वही सम्यक्त्व है। सम्यग्दर्शन के तीन भेद निम्न प्रकार हैं।

१. **क्षायिक सम्यग्दर्शन**—अनतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ तथा सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्रमोहनीय और मिथ्यात्वमोहनीय के क्षय से जो सत्य तत्त्व की रुचि पैदा हो वह क्षायिक सम्यग्दर्शन ।

२. **ओपशमिक सम्यक्त्व**—मिथ्यात्त्व मोहनीय आदि की सात प्रकृतियो के उपशम से जो सत्य तत्त्व की रुचि पैदा हो वह ओपशमिक सम्यक्त्व ।

३. **क्षायोपशमिक सम्यक्त्व**—सम्यक्त्व मोहनीय सिवा वाकी की छैः प्रकृति के क्षयोपशम से और सम्यक्त्व मोहनीय के उदय से जो सत्य तत्त्व की रुचि पैदा हो वह क्षायोपशमिक सम्यक्त्व ।

सम्यग्दर्शन अथवा सम्यक्त्व का क्या महत्त्व है उस सम्वध में पू. श्री भद्रावाहुस्वामी ने श्री उवसग्गहर स्तोत्र मे कहा है कि—

तुह सम्मते लद्धे, चिंतामणि-कप्पपायवब्भहिए ।
पावंति अविग्घेणं, जीवा अयरामरं ठाणं ॥

मिथ्यात्व से बचने के लिए और समकित मे दृढ होने के लिए समकित के सडसठ वोल मे विस्तार से स्वरूप समझाया गया है, वह गुरुगम से जानने का अवश्य प्रयास करना ।

चारित्र

पापकर्म से पीछे हटना यही सम्यक् चारित्र । अपने जीवन को पाप के संयोग से दूर रख निर्मल बनाना और यथाशक्ति प्रय-

हित करना यही 'सम्यक् चारित्र' का ध्येय है। चारित्र के दो भेद हैं। एक सर्वविरति और दूसरा देशविरति। साधुओ के लिए सर्व विरत्ति पाच और श्रावको के लिए देशविरति। सर्वविरति पाच महाव्रत के पालक होते हैं और श्रावक पाच अणुव्रत धारक गिने जाते है। सर्वविरति चारित्र के प्रकार ये हैं— १. सामायिक, २ छेदोपस्थापनीय, ३. परिहार विशुद्धि, ४. सूक्ष्मसंपराय और ५. यथाख्यात।

श्रावकों के योग्य अणुव्रत तथा गुणव्रत और शिक्षाव्रत का स्वरूप विशेष जानने योग्य हैं और वह गुरुगम से जानकर यथाशक्य आचरण करने का प्रयास करना चाहिए।

जहाज का खल्लासी जानकार हो फिर भी वायु अनुकूल न हो तो इच्छित स्थान पर नही पहुँचा जा सकता वैसे ही मनुष्य ज्ञानवान होने पर भी सम्यक् चारित्र रूपी अनुकूल पवन बिना सिद्धि स्थान पर नही पहुँच सकता।

श्री ज्ञान, दर्शन, चारित्र तप की विधि

एकान्तरोपवासैश्च त्रिभिर्वापि निरन्तरैः।
कार्यं ज्ञानतपश्चोद्यापने ज्ञानस्य पूजनम् ॥१॥

एकान्तरे तीन उपवास करना अथवा लगातार उपवास तीन करना। इस प्रकार ज्ञान तप करना।

उद्यापन मे साधु को पुस्तक तथा ज्ञान के उपकरण वहोराना। ज्ञानपूजा करना ज्ञान के पास छै. विगय के पदार्थ रखना। इस तप के करने से ज्ञान को प्राप्ति होती है। इसमे

यथाशक्ति सिद्धांति पुस्तक लिखवाकर रखेना (प्रवचन सारोद्धार)

दर्शन तप भी इसी प्रकार करना। उद्यापन मे वडी स्नात्र विधि से देव पूजा पढ़ाना। जिन प्रतिमा के पास छैं· विगय के पदार्थ रखना। मुनिराज को वस्त्र, पात्र आदि वहोराना। समकित की छैः भावना का श्रवण करना। मदिर का प्रमार्जन, पूंजना आदि करना। **इस तप से निर्मल वोधि का लाभ होता है।**

चारित्र तप भी इसी प्रकार करना। उद्यापन मे मुनिराज को छै. विगई के पदार्थ, वस्त्र, पात्र आदि वहोराना। **इस तप को करने से निर्मल चारित्र की प्राप्ति होती है।** ये तीनों तप मुनिवर तथा श्रावक को करने का आगाढ तप है।

अठ्ठम के दिनो मे पौण्ध अथवा देशावकासिक करना चाहिए
गुणना वगैरह इस प्रकार—

	सा.	ख.	लो.	न
ज्ञान तप—ॐ ह्रीं नमो नाणस्स	५१	५१	५१	२०
दर्शन तप—ॐ ह्रीं नमो दंसणस्स	६७	६७	६७	२०
चारित्र तप—ॐ ह्रीं नमो चारित्तस्स	७०	७०	७०	२०

अथवा स्वस्तिक आदि ज्ञान तप मे पाच, दर्शन तप में बारह और चारित्र तप मे सित्तर करना।

---

१२. श्री चांद्रायरा तप

शुक्लपक्ष मे जैसे चंद्रकला की वृद्धि होती है और कृष्णपक्ष मे चद्रकला कम होती जाती है उसीके अनुसार जो तपस्या चढते-उतरते क्रम से की जाती है वह **चाँद्रायण** तप कहलाता है। उसका क्रम नीचे विधि मे पूरी तरह बताया है इसलिए इस सम्बंध मे विशेष विवेचन नही किया गया है।

चौंसठ इद्रो मे दो इंद्र ज्योतिषी के है—एक चद्र और दूसरा सूर्य। चद्र स्वामीत्व की दृष्टि से चढता है।

समभूतला पृथ्वी से ७९० योजन ऊंचा ज्योतिषचक्र शुरू होता है। ८०० योजन पर सूर्य होता है और ८८० योजन पर चन्द्र होता है। श्री वृहत्संग्रहणी में कहा कि—**असीइतदुवरि ससी य रिक्खेसु ॥५०॥** चद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा इस प्रकार पाच तरह के ज्योतिषी हैं। इनमे चंद्र विशेष महर्द्धिक है। गति मे सब से मद गति चद्र की है, उससे अधिक गति सूर्य की, इस तरह बढते २ शीघ्र गति तारों की है। जबकि महर्द्धिक-पन मे उलटा क्रम समझना। तारो से अधिक महर्द्धिक नक्षत्र और यह क्रम सबसे महर्द्धिक चद्र गिना जाता है।

चंद्र के विमान को उठाने वाले सोलह हजार देव है। उसके परिवार में मंगल, वुध आदि ८८ ग्रह, अभिजित् आदि २८ नक्षत्र और ६६९७५ कोटानुकोटि तारे हैं।

मनुष्य क्षेत्र मे चंद्र चर है अर्थात् फिरता है। जबकि अढाई द्वीप के बाहर रहे चद्र का विमान स्थिर है। इस सम्वधी विशेष जानकारी के लिए वृहत्संग्रहणी पढ़ना।

श्री चांद्रायण तप की विधि

चांद्रायणं च द्विविधं प्रथमं यवमध्यकम् ।
द्वितीयं वज्रमध्यं तु तपोश्चर्या विधीयते ॥१॥

यवमध्ये प्रतिपदं शुक्लामारभ्य वृद्धितः ।
एकैकयोर्ग्रासदत्त्यो राकां यावत्समानयेत् ॥२॥

ततः कृष्णप्रतिपदमारभ्यैकैकहानितः ।
अमावास्यां तदेकत्वे यवमध्यं च पूर्यते ॥३॥

वज्रमध्ये कृष्णपक्षमारभ्य प्रतिपत्तिथि ।
कार्या पंचदशग्रासदत्तिभ्यां हानिरेकतः ॥४॥

अमावास्याश्च परतो ग्रासदत्तिं विवर्धयेत् ।
यावत्पञ्चदशैव स्युः पूर्णमास्यां च मासतः ॥५॥

एवं मासद्वयेन स्यात्पूर्णं च यववज्रकम् ।
चांद्रायणं यतेर्वृत्तेः संख्या ग्रासस्य गेहिनाम् ॥६॥

चंद्र का अयन अर्थात् जाना अर्थात् हानि और वृद्धि, इस कारण यह चाद्रायण तप कहलाता है। यह दो तरह का है। पहला यवमध्य और दूसरा वज्रमध्य । उसका स्वरूप इस प्रकार है—जव की तरह जिसका मध्यभाग स्थूल (मोटा) हो तथा आदि और अत भाग पतला हो वह यवमध्य कहलाता है। तथा वज्र की तरह जो बीच मे पतला हो तथा आदि और अंत मे स्थूल (मोटा) हो वह वज्रमध्य कहलाता है। यहा

स्थूलता और हीनता के कारण दत्ति तथा ग्रास की बहुलता और अल्पता जानना। पहला यवमध्य चाद्रायण इस प्रकार करना। शुक्लपक्ष को एकम को एक, बीज को दो, इस प्रकार एक एक दत्ति तथा कवल (ग्रास) की वृद्धि कर पूर्णिमा के दिन पद्रह दत्ति तथा कवल (ग्रास) लेना। पीछे कृष्णपक्ष की एकम को पद्रह, बीज को चवदह, इस तरह एक एक दत्ति तथा कवल (ग्रास) कम कर अमावस्या को एक दत्ति और कवल लेना। इस प्रकार यवमध्य चाद्रायण यति तथा श्रावक दोनो के लिए जानना। वज्रमध्य चांद्राथण साधु और श्रावक दोनो को इस प्रकार से करना। कृष्णपक्ष की एकम को पद्रह ग्रास तथा दत्ति से आरम्भ कर एक एक कम करने से अमावस्या के दिन एक ग्रास और दत्ति रह जाता है। शुक्लपक्ष की एकम को एक ग्रास और दत्ति से प्रारम्भ कर एक एक बढाने से पूर्णिमा को पंद्रह ग्रास तथा दत्ति होती है। इस प्रकार वज्रमध्य चाद्रायण भी एक माह मे पूरा होता है। इस तरह यवमध्य और वज्रमध्य चाद्रायण दो माह मे पूरे होते हैं। यहां दत्ति की जो सख्या दी गई है, वह साधु के लिए समझना तथा ग्रास की संख्या को गृहस्थ के लिए समझना (पंचाशक)।

उद्यापन मे जिन प्रतिमा को बड़ी स्नात्रविधि से स्नात्र कराकर छः विगय के नैवेद्य सहित ४८० मोदक, फल आदि रखना। तथा चंद्र की चादो की मूर्ति तथा स्वर्ण के जव-बत्तीस और वज्र कराकर भगवान् के पास रखना। मुनियों को वस्त्र, पात्र, अन्न आदि वहोराना। सघ की पूजा भक्ति करना। **यह तप करने से सब पापों का क्षय तथा पुण्य की वृद्धि होती है।** यह साधु तथा श्रावक को करने का आगाढ तप है। यदि सिर्फ

यवमध्य चाद्रायरण करे तो २४० मोदक रखना तथा वज्र नही रखना। यदि वज्रमध्य चाद्रायरण करे तो उसमे भी २४० मोदक रखना और जव नही रखना।

दूसरी विधि

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा (एकम) से आरम्भ कर एक उपवास, एक आयविल इस तरह पंद्रह दिन करना। उद्यापन में मोदक १५ तथा चादी का चद्र वनवाकर प्रभु के पास रखना। गुणना आदि निम्न प्रकार—

	सा.	ख.	लो.	न.
नमो सिद्धाण	८	८	८	२०

पहली विधि से करे तो कवल (ग्रास) की संख्या के अनुसार स्वस्तिक करना।

---

१३. श्री तीर्थंकर वर्धमान तप (श्री श्रमरण संघ तप)

"तीर्यतेऽनेनेति तीर्थम"—जिसके द्वारा तिरा जाय वह तीर्थ। जैसे—आलंवन से भयकर भवसागर से पूरा पूरा पार उतरा जाय वह तीर्थ। ऐसा तीर्थ 'श्रुत' और 'चारित्र' रूपी धर्म है। ऐसे धर्म तीर्थ के प्रवर्तक को **श्री तीर्थंकर** कहते हैं।

ऐसे श्री तीर्थंकर भगवत अनंत हो गये है और अनत होगे परन्तु इस अवसर्पिणी काल मे अपन जिस भरतक्षेत्र मे रहते हैं उसमे चौबीस तीर्थंकर हुए हैं जिनके पवित्र नाम निम्न है—

१.	श्री ऋषभदेव	१३.	श्री विमलनाथ
२.	श्री अजितनाथ	१४.	श्री अनंतनाथ
३.	श्री संभवनाथ	१५.	श्री धर्मनाथ
४.	श्री अभिनदन	१६.	श्री शातिनाथ
५.	श्री सुमतिनाथ	१७.	श्री कुथुनाथ
६.	श्री पद्मप्रभ	१८.	श्री अरनाथ
७.	श्री सुपार्श्वनाथ	१९.	श्री मल्लिनाथ
८.	श्री चद्रप्रभ	२०	श्री मुनिसुव्रत स्वामी
९.	श्री सुविधिनाथ	२१.	श्री नमिनाथ
१०.	श्री शीतलनाथ	२२.	श्री नेमिनाथ
११.	श्री श्रेयासनाथ	२३.	श्री पार्श्वनाथ
१२.	श्री वासुपूज्य स्वामी	२४.	श्री वर्धमान स्वामी

श्री तीर्थंकर वर्धमान तप की विधि

ऋषभादेर्जिनसंख्यावृद्धया तावंति चैकभक्तानि ।
वीरदेराण्येवं वलमानं वर्धमानतपः ।।१।।

अथ चैकेकमर्हन्तं प्रत्येकाशनकानि च ।
पञ्चविंशतिसंख्यानि षट्शताहेन पूर्यते ।।२।।

जिसकी वृद्धि हो वह वर्धमान कहलाता है । यह तप इस प्रकार करना । प्रथम श्री ऋषभदेव स्वामी के निमित्त एक

एकासना करना । श्री अजितनाथ स्वामी के निमित्त दो एकासना करना । इस तरह बढ़ते २ श्री महावीर स्वामी के निमित्त चौबीस एकासना करना । इसके पश्चात् पश्चानुपूर्वी के द्वारा श्री महावीर स्वामी के निमित्त एक एकासना, श्री पार्श्वनाथ स्वामी के निमित्त दो एकासना, इस तरह वढ़ते २ श्री ऋपभदेव स्वामी के निमित्त चौवीस एकासना करना । अर्थात् हरएक भगवत के निमित्त कुल पच्चीस पच्चीस एकासने होते है ।

अथवा एक साथ हरएक भगवत के निमित्त पच्चीस पच्चीस एकासन करना । इस प्रकार यह तप कुल छै सौ दिन में पूर्ण होता है ।

उद्यापन मे चौवीस जिनेश्वरो की वडी स्नात्र पूजा कर चौवीस चौवीस पुष्प, फल, मोदक, पकवान आदि से पूजा करना । तथा जिस दिन जिस तीर्थंकर के आश्रयी तप चलता हो उस दिन उन प्रभु की विशेष पूजा भक्ति करना । सघ की पूजा, वात्सल्य करना । **यह तप करने से तीर्थंकर नाम कर्म का बंध होता है ।** यह_साधु तथा श्रावक को करने का आगाढ तप है । एकासना के वजाय नीवी अथवा आयबिल करने का भी जैन प्रवोध तथा जैनसिंधु मे कहा है ।

जिन २ तीर्थंकरो का तप चलता हो उन २ तीर्थंकरों के नाम की वीस नवकारवाली गिनना जैसे श्री ऋपभदेव स्वामीने नम , श्री अजितनाथ स्वामीने नमः आदि । स्वस्तिक, खमासमण और लोगस्स वारह वारह करना ।

---

१४. श्री परमभूषण तप

लौकिक व्यवहार मे भी मानव की उच्चता-श्रेष्ठता उसके वस्त्रालंकारो से जानी जा सकती है। सबको अपने आपको शोभायमान दिखाना अच्छा लगता है परन्तु ऐसी सपत्ति पुण्यानुसार ही प्राप्त होती है। मनुष्य की अपेक्षा चक्रवर्ती की ऋद्धि-सिद्धि अजोड़ गिनी जाती है। द्रव्य से वैसी ऋद्धि भूषण प्राप्त करने और भाव से मोक्ष रूपी सर्वोत्कृष्ट आभूपण प्राप्त करने के लिए यह तप करना आवश्यक है।

श्री परमभूषण तप की विधि

शुभैर्द्वात्रिंशदाचाम्लैरेकभक्तं तदन्तरे।
वासराणां चतुःषष्टया, तपः परमभूषणम् ॥१॥

जिस तप के करने से ज्ञान, दर्शन, और चारित्रादिक अथवा चक्रवर्ती के जैसे मुकुट कुंडलादि उत्कृष्ट आभूषण प्राप्त होते हैं इसलिए इसे परमभूषण तप कहते हैं। इस तप में एकान्तर एकासने वाले बत्तीस आयबिल करना अर्थात् यह तप ४४ दिन मे पूर्ण होता है। (अथवा लगातार बत्तीस आयबिल करना—"जैन प्रबोध")।

उद्यापन में बड़ी स्नात्र विधि से जिन पूजन कर जिनेश्वर को रत्नजड़ित स्वर्ण मुकुट, कुंडल, हार, तिलक आदि आभूषण चढाना तथा बत्तीस बत्तीस पकवान, फल आदि रखना। **इस तप के करने से परम संपत्ति तथा गुण की प्राप्ति**

होती है। यह यति और श्रावक को करने का अनागाढ तप है। गुणना इस प्रकार है—

	सा.	ख.	लो.	न.
ॐ नमो अरिहंताणं	१२	१२	१२	२०

---

१५. श्री जिनदीक्षा तप

राग और द्वेष आदि सब दोषो से रहित उसका नाम जिन। संस्कृत धातु जि—अर्थात् जीतना, उससे जिन शब्द बना है। अर्हत्, परमात्मा, वीतराग, परमेष्ठी आदि उसके पर्यायवाची शब्द हैं। चालू अवसर्पिणी काल मे भरतक्षेत्र के आश्रयी जो चौवीस तीर्थंकर भगवंत हुए हैं वे जिन कहलाते हैं।

दीक्षा अर्थात् सर्वविरति, संसार की धन-दौलत तथा कामिन्यादि का संग छोड़, समस्त गृह तथा कुटुम्ब की जंजाल को छोड़ उच्च कल्याण मार्ग पर चढ़ने की आकाक्षा से पंच महाव्रत करने की प्रतिज्ञा ग्रहण करे वह सर्वविरति अथवा दीक्षा।

श्री स्थानांगजी सूत्र के पांचवे स्थानक मे कहा है कि **पञ्च महव्वय पण्णत्ता, तं जहा—१ सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, २ सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं जाव ५ सव्वाओ परिग्गाहाओ वेरमणम्।** अर्थात्

१ हिंसा, २ असत्य, ३ स्तेय, ४ मैथुन और ५ परिग्रह का सर्वथा त्याग उसका नाम सर्वविरति अथवा भागवती दीक्षा।

दीक्षा-स्वीकार के सिवाय इस जीव को कभी मुक्ति प्राप्त नही होती। यह पारमेश्वरी दीक्षा दस दृष्टात से दुर्लभ इस मानव देह के सिवाय अन्य योनि मे प्राप्त नहीं हो सकती। इसीलिए सुख-वैभव में सब प्रकार से श्रेष्ठ इद्र महाराज आदि देव विरति वालो को पूजनीय मानते है। पूजा की ढाल मे कहा है कि—"विरति को प्रणाम कर, इंद्र सभा में बैठे हैं"।

दीक्षा के प्रसंग पर जब रजोहरण (ओघा) की प्राप्ति होती है तब मानव हर्षातिरेक से नाचने लगते है, यह इस बात को सूचित करता है कि—इस भयकर भवसागर से तिरने के लिए प्रवहण समान रजोहरण तुझे मिला है। जिनेश्वर भगवतो की दीक्षा के आश्रयी यह तप किस प्रकार करना वह नीचे बताया जाता है।

श्री जिनदीक्षा तप की विधि

दीक्षातपसि चार्हद्भिर्येनैव तपसा व्रतम् ।
जगृहे तत्तथा कार्यमेकान्तरितयुक्तितः ॥ १ ॥

श्री अरिहत की दीक्षा को अनुकरण करने वाला तप, दीक्षा तप कहा जाता है, इसमे* जिस तीर्थंकर ने जो तपस्या करके दीक्षा ग्रहण की हो वह तप एक साथ अथवा एकान्तर उपवास से पूरा करना। श्री सुमतिनाथ स्वामी ने एकासना करके दीक्षा ली इसलिए उनके आश्रय से एकासना करना।

---

*सुमइत्त्थ निच्च भत्तेण, निग्गतो वासुपूज्य जिण चऊत्थेण पासो मल्लीवि य, अट्ठमेण सेसा ऊ छट्ठेण ॥२५॥ आ नि पत्र स. २०४

श्री वासुपूज्य स्वामी ने उपवास करके दीक्षा ली इसलिए उनके आश्रय से उपवास करना। श्री पार्श्वनाथजी और श्री मल्लिनाथजी ने अट्ठम करके दीक्षा ली इसलिए उनके आश्रय से एक एक अट्ठम करना। बाकी के बीस तीर्थंकरो ने छट्ठ करके दीक्षा ली इसलिए उनके आश्रय से एक एक छट्ठ करना। सब मिलाकर ४७ उपवास तथा एक एकासना हुआ। हरएक प्रभु के आश्रयी तप के अंतर मे एकासना करना अर्थात् ७० दिन में तप पूरा होता है क्योकि अतर के २३ दिनो में एक एकासना पाचवें प्रभु के आश्रयी करने का होने से २२ दिन अतर के हुए।

उद्यापन मे एकासना कर बड़ी स्नात्र विधि से जिनेश्वर का स्नात्र कर अष्ट प्रकारी पूजा पढ़ाना, छैं विगई के पदार्थ तथा मोदक ४८, फल ४८ आदि प्रभु के पास रखना। यह तप करने से निर्मल व्रत की प्राप्ति होती है। यह साधु तथा श्रावक के करने का अनागाढ तप है। जिस तीर्थंकर के नाम का तप चलता हो उन प्रभु के नाम के साथ "नाथाय नमः" पद जोड़कर बीस नवकारवाली गिनना, तथा स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

ऊपर लिखे अनुसार, छट्ठ, अट्ठम करने की शक्ति न हो तो एकान्तर एकासने से ४७ उपवास और एक एकासन कर ९४ दिन मे तप पूरा करना।

---

१६. श्री तीर्थंकर ज्ञान तप

नवें, दसवे और ग्यारहवें ज्ञान, दर्शन और चारित्र तप के विवेचन मे ज्ञान सम्बधी विवेचन आ गया है वास्ते इस सम्बध मे यहां विवेचन नही किया जाता है।

श्री तीर्थंकर ज्ञान तप की विधि

येन तीर्थंकृता येन तपसा ज्ञानमाप्यत ।
तत्तत्तया विधेयं स्यादेकान्तरिवृत्तितः ॥

श्री तीर्थंकर के ज्ञान के अनुसार किया जाने वाला तप ज्ञान तप कहलाता है। इसमे जिस तीर्थंकर ने जिस तप द्वारा ज्ञान प्राप्त किया उस तीर्थंकर के आश्रयी वह तप एकान्तरवृत्ति से करना। अर्थात् श्री आदिनाथ, श्री मल्लिनाथ, श्री नेमिनाथ और श्री पार्श्वनाथ ने अठ्ठम द्वारा केवलज्ञान प्राप्त किया इसलिए उनके आश्रयी चार अठ्ठम करना, श्री वासुपूज्यस्वामी को एक उपवास से केवलज्ञान हुआ इसलिए उनके आश्रयी एक उपवास करना। बाकी के उन्नीस तीर्थंकरो को छठ्ठ से केवलज्ञान हुआ इसलिए उनके आश्रयी १९ छठ्ठ करना। सब मिलकर ५१ उपवास हुए। इनके अतर मे एकासन करना से ७४ दिन मे तप पूरा होता है। इनके २३ अन्तर मे २३ एकासना समझना। उद्यापन दीक्षा तप के अनुसार करना, परन्तु मोदक वगैरह ५१ रखना।

इस तप के फल से विशुद्ध ज्ञान की प्राप्ति होती है। यह साधु और श्रावक को करने का अनागाढ तप है। जिस तीर्थंकर के आश्रयी तप चलता हो उन प्रभु के नाम के साथ "**सर्वज्ञाय नमः**" पद जोड़ कर बीस नवकारवाली गिनना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

ऊपर बताये अनुसार छठ्ठ, अठ्ठम करने की शक्ति न हो तो एकान्तर उपवास से ५१ उपवास करना और इस तरह १०१ दिन मे तप पूरा करना।

---

१७. श्री तीर्थंकर निर्वाण तप

समस्त कर्मो का क्षय कर मुक्ति पद को प्राप्त करना वह निर्वाण। आजकल 'निर्वाण' शब्द का जिस तरह प्रयोग किया जाता है वह ठीक नही है जैसे अमुक मनुष्य की निर्वाण तिथि। प्राय: जिस व्यक्ति का इस संसार मे पुनर्जन्म नही होता है उसी व्यक्ति के लिए 'निर्वाण' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

'कर्म' के अस्तित्व के सम्बध मे अब किसी को भी समझना बाकी नही रहा। यह तो अब निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुका है। जैनियो की 'कर्म-फिलासफी' से अच्छे अच्छे प्रकाड विद्वान भी मुग्ध बन गये हैं।

'कर्मवर्गणा' के पुद्गल लोकाकाश मे सर्वत्र भरे पड़े हैं, परन्तु जीव की तथाविध प्रवृत्ति द्वारा तथा उस प्रकार के पुद्गल आकर्षित होकर जीव को चिपकते है इसका नाम कर्म बंधन। तीर्थंकर भगवत शेष रहे कर्मो को नष्ट करने के लिए अंतिम समय में जो तपश्चर्या करते हैं वह 'निर्वाण तप' कहलाता है। निर्वाण प्राप्त करने के बाद उनका इस भवसागर मे पुनरागमन होता ही नही। इस सम्बध मे श्री उमास्वाती वाचकवर्य ने अपने तत्त्वार्थसूत्र मे कहा है कि—

दग्ध बीजे यथाऽत्यन्तं, प्रादुर्भवति नाङ्कुरः।
कर्म बीजे तथा दग्धे, न रोहति भवाङ्कुरः॥

श्री तीर्थंकर निर्वाण तप की विधि

येन तीर्थंकृता येन तपसा मुक्तिराप्यत ।
तत्तथैव विधेयं स्यादेकान्तरितवृत्तितः ॥१॥

तीर्थंकर के निर्वाण से पहिचाने वाला जो तप वह निर्वाण तप कहलाता है। जिस तीर्थंकर ने जो तपस्या करके मुक्ति प्राप्त की हो, वह तप उसी प्रकार से एकान्तरवृत्ति से करना। श्री आदिनाथजी ने छैः उपवास कर मुक्ति प्राप्त की, महावीर स्वामी ने छठ्ठ तप द्वारा मुक्ति प्राप्त की, बाकी के सब तीर्थंकरों ने एक माह के उपवास द्वारा मुक्ति प्राप्त की, इन सब तप के उपवास एकान्तर एकासने से करना; क्योंकि इस प्रकार अविच्छिन्न तप करने की वर्तमान मे किसी की शक्ति नही है।

उद्यापन मे बड़ी स्नात्र द्वारा चौबीस चौबीस मोदक, फल आदि रखना। साधु भक्ति संघ भक्ति करना। **इस तप के करने से आठ भव के भीतर मोक्ष की प्राप्ति होती है।** यह साधु तथा श्रावक को करने का अनागाढ तप है। जिस तीर्थंकर के आश्रयी यह तप चलता हो उनके नाम के साथ "पारंगताय नमः" पद जोड कर वीस नवकारवाली गिनना। स्वस्तिक वगैरह बारह बारह करना।

दीक्षा, ज्ञान और निर्वाण तप का कल्याणक तप में समावेश होता है, परन्तु उसमे इतना विशेष है कि—कल्याणक का तप आगाढ होने से कल्याणक के दिनो को स्पर्श करके ही किया जाता है। और ये तीन तप अनागाढ होने से ये तप की सख्या से किये जाते है। अर्थात् एक ही दिन च्यवन और

जन्म कल्याणक हो तो उपवास से कल्याणक तप करने वाला एक कल्याणक की आराधना कर दूसरे कल्याणक की आराधना दूसरे वर्ष उस दिन करना है। और एकासना अथवा आयंबिल से कल्याणक तप करने वाला एक तीर्थंकर को या दो तीर्थंकर के कल्याणक की आराधना कर बाकी रही आराधना दूसरे वर्ष उसी दिन करता है। अर्थात् वह तप कल्याणक की तिथि से सम्बधित है। और दीक्षा, ज्ञान और निर्वाण इन तीन कल्याणक के ऊपर बताये तप तीर्थंकर भगवतो ने किए तप के उपवास के अनुसार करने के हैं। इनके लिए निश्चित दिन पर ही करने का नियम नही है। इसमें भी निर्वाण कल्याणक सम्बधी तप तो २२ मास और आठ दिन का होने से एकान्तर उपवास से ४४ माह और १६ दिन मे पूरा हो सकता है।

---

१८. श्री ऊनोदरिका तप (पांच प्रकार से)

ऊनोदरिका अर्थात् नियत प्रमाण से कम भोजन करना। उस तप को बाह्य तप के जो छै: प्रकार है उसमे समाविष्ट किया गया है। श्री आचारप्रदीप ग्रन्थ मे कहा है कि **'ऊनमुदरमूनोदरम् तस्य करणमूनोदरिका।**

पुरुष और स्त्री के आहार का प्रमाण कितना? इस सम्बध मे कहा है कि—

बतीसं किर कवला, आहारो कुच्छिपूरओ भणिओ ।
पुरिसस्स महिलिआए, अट्ठावीसं हवे कवला ॥
कवलाण य परिमाणं, कुक्कुडि अंडय पमाणमेत्तं तु ।
जो वा अविगिय-वयणो, वयणम्मि छुहेज्ज वीसत्थो ॥

साधारणतया पुरुष को वत्तीस कवल (ग्रास) और स्त्री को अट्ठाइस कवल (ग्रास) का भोजन प्रमाण कहा है। कवल (ग्रास) का प्रमाण कुकडी के अण्डे जितना या मुंह को पूरा खोलने के वजाय सरलता से मुह मे रखा जा सके उतना समझना ।

यह ऊनोदरिका तप पाच प्रकार से किया जा सकता है। उसका विशेष विवेचन नीचे बताया जाता है ।

श्री ऊनोदरिका तप की विधि

अप्पाहारा १ अवड्ढा २ दुभाग ३ पत्ता ४ तहे व देसूणा ५ ।
अट्ठ ८ दुवालस १२ सोलस १३ चउवीस २४ तहिक्कतीसा ३१ या ॥

अल्पाहारा, अपार्धा, द्विभागा, प्राप्ता और किंचिदूना ये पांच प्रकार के ऊनोदरिका तप कहे जाते है। इनमे एक से आठ कवल (ग्रास) तक अल्पाहारा, नौ से बारह कवल (ग्रास) तक अपार्धा, तेरह से सौलह कवल (ग्रास) तक द्विभागा, सतरह से चौबीस कवल (ग्रास) तक प्राप्ता और पच्चीस से इकतीस कवल (ग्रास) तक किंचिदूना । ये पाचो तरह की ऊनोदरिका तीन तीन तरह की है। वह इस प्रकार—एकादि

कवल के द्वारा जघन्य, दो आदि कवल से मध्यम और आठ आदि कवल से उत्कृष्ट। इस प्रकार से पांचो तरह की ऊनोदरिका को समझना। इसमे अल्पाहारा ऊनोदरिका एक ग्रास से जघन्य, दो, तीन, चार और पांच ग्रास से मध्यम और छ:, सात और आठ ग्रास से उत्कृष्ट जानना। अपार्धा ऊनोदरिका नौ ग्रास से जघन्य, दस और ग्यारह ग्रास से मध्यम और बारह ग्रास से उत्कृष्ट जानना। द्विभागा ऊनोदरिका तेरह ग्रास से जघन्य, चौदह तथा पंद्रह ग्रास से मध्यम और सोलह ग्रास से उत्कृष्ट समझना। प्राप्ता ऊनोदरिका सतरह और अठारह ग्रास से जघन्य, उन्नीस, बीस, इक्कीस और बाईस ग्रास से मध्यम और तेवीस तथा चौवीस ग्रास से उत्कृष्ट समझना। किंचिदूना ऊनोदरिका पच्चीस तथा छब्बीस ग्रास से जघन्य, सत्तावीस, अट्ठाइस तथा उनतीस ग्रास से मध्यम और तीस व इकतीस ग्रास से उत्कृष्ट समझना। पुरुष का आहार वत्तीस ग्रास का होता है। इसलिए इकतीस ग्रास तक किंचिदूना ऊनोदरिका होती है। इस प्रकार पांचो प्रकार की ऊनोदरिका पद्रह दिन मे समाप्त होती है।

स्त्रियो का आहार अट्ठाइस कवल का होता है। इसलिए उनके लिए पाँच प्रकार की ऊनोदरिका इस प्रकार समझना—एक से सात ग्रास तक अल्पहारा, आठ से ग्यारह ग्रास तक अपार्धा, बारह से चौदह कवल तक द्विभागा, पंद्रह से इक्कीस कवल तक प्राप्ता तथा बाईस से सत्ताइस कवल तक किंचिदूना ऊनोदरिका। ये पांचो भी जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट के हिसाब से तीन तीन प्रकार से इस प्रकार—अल्पाहारा ऊनोदरिका एक तथा दो ग्रास से जघन्य, तीन, चार तथा पांच ग्रास से

मध्यम और छः व सात ग्रास से उत्कृष्ट। अपार्धा ऊनोदरिका आठ ग्रास से जघन्य, नौ ग्रास से मध्यम और दस तथा ग्यारह ग्रास से उत्कृष्ट। द्विभागा ऊनोदरिका बारह ग्रास से जघन्य, तेरह ग्रास से मध्यम और चौदह ग्रास से उत्कृष्ट। प्राप्ता ऊनोदरिका पंद्रह तथा सोलह ग्रास से जघन्य, सतरह, अठारह, और उन्नीस ग्रास से मध्यम और बीस व इक्कीस ग्रास से उत्कृष्ट। किंचिदूना ऊनोदरिका बाइस तथा तेवीस कवल से जघन्य, चौबीस व पच्चीस ग्रास से मध्यम तथा छब्बीस व सत्ताइस ग्रास से उत्कृष्ट समझना। इस प्रकार पंद्रह दिन मे यह तप पूरा होता है। यह द्रव्य ऊनोदरिका जानना।

भाव ऊनोदरिका आगम मे इस प्रकार बताई है—

कोहाइ अणुदिणं चाओ जिणवयणभावणाओ अ।
भावोणोदरिया वि हु पन्नत्ता वीयराएहिं ॥१॥

निरतर क्रोधादि का त्याग करना तथा जिनेश्वर के वचनो की भावना भाना। यह भाव ऊनोदरिका वीतराग ने बताई है।

लोक प्रवाह ऊनोदरिका इस प्रकार है—प्रथम दिन आठ कवल, दूसरे दिन बारह, तीसरे दिन सोलह, चौथे दिन चौबीस तथा पाचवे दिन इकतीस ग्रास लेना। स्त्रियो को प्रथम दिन सात, दूसरे दिन ग्यारह, तीसरे दिन चौदह, चौथे दिन इक्कीस तथा पांचवे दिन सत्ताइस ग्रास लेना। इस प्रकार यह तप पाच दिन मे पूरा होता है।

गुणना इस प्रकार—

	सा	ख	लो.	न.
ऊनोदरितपसे नमः	१२	१२	१२	२०

१९. श्री संलेखना तप

जिसके द्वारा पूरी तरह 'शोषण' हो वह संलेखना। शरीर और कषाय आदि का शोषण करना होता है। श्री पंचवस्तुक में कहा है कि—

संलेहणा इह खलु, तवकिरिया जिणवरेहिं पण्णत्ता।
जं तीए संलिहिज्जइ, देह-कसायाइ णिअमेणम् ॥१३६६॥

देह और कषायों को कम करने के लिए 'सलेखना" वृद्धावस्था, रूग्णावस्था, अथवा प्रवल वैराग्य के कारण 'संलेखना' करने की भावना हो तव शक्ति के अनुसार आचरण करना और तप स्वीकार करने के वाद मन के भाव निर्मल रहे ऐसी कोशीश करना।

इस संलेखना के जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट तीन प्रकार आगमो मे वताये हैं। जघन्य वारह पक्ष अर्थात् छे. मास, मध्यम वारह माह और उत्कृष्ट वारह वर्ष का।

सलेखना के पांच अतिचार नीचे लिखे अनुसार है उनको दूर करने का प्रयत्न करना।

१. इहलोकाशंसा—मृत्यु के बाद मैं इस लोक मे ही जन्म लू, मनुष्य भव मिले, राजादि होऊं ऐसी इच्छा।

२. परलोकाशंसा—मृत्यु के वाद देवता होऊ, इंद्र होऊँ।

३. जीवितांशंसा—इस सलेखना अवस्था मे अधिक समय तक जीवित रहूं, लोग आदि विशेष सत्कार सन्मान आदि करे।

४. **मरणाशंसा**—सन्मान तथा सत्कार आदि के अभाव मे जल्दी मृत्यु हो ऐसी इच्छा करना।

५. **कामभोगाशंसा**—देवलोक मे अथवा मनुष्यलोक मे जहा भी उत्पन्न होऊ वहां मुझे काम तथा विपुल भोग की प्राप्ति हो।

ये अतिचार 'संलेखना' मे बाधक हैं, इसलिए इन्हे दूर करना।

श्री संलेखना तप की विधि

चत्तारि विचित्ताइं विगइ निज्जूहिआइं चत्तारि।
संवच्छरे अ दुन्निउ एगंतरिअं च आयामं ॥१॥

नाइनिविगओ अ तवे छम्मासे परम्मिअं च आयामं।
अवरे वि अ छम्मासे होइ विगट्ठं तवो कम्मं ॥२॥

वासं कोडिसहिअं आयामं कट्टु आणुपुव्वोए।
एसो बारस वरिसाइ होइ संलेहणाइ तवो ॥३॥

प्रथम चार वर्ष विचित्र तप करना। पीछे दूसरे चार वर्ष एकान्तर नीवी से उपवास उसी प्रकार करना। इसके बाद दो वर्ष तक एकान्तर नीवि से आयबिल करना। इसके बाद छे. माह तक उपवास तथा छट्ठ परिमित भोजन वाला आयंबिल के आंतरे से करना। इसके बाद छैः माह तक आयबिल के आतरे से चार चार उपवास करना। इसके पश्चात एक वर्ष तक आयंबिल करना। इस प्रकार बारह वर्ष मे यह तप सम्पूर्ण

होता है। 'नमो तवस्स" इस पद के गुणने की वीस नवकार वाली गिनना। स्वस्तिक वगैरह बारह बारह करना।

यत्र मे इस प्रकार लिखा है :—

वर्ष ४ यावत् उ २ ए। उ ४ ए। उ ५ ए। उ ६ ए। उ १५ ए। उ ३० ए।

वर्ष ४ यायत् उ २ नि। उ ३ नि। उ ४ नि। उ ५ नि। उ १५ नि। उ ३० नि।

वर्ष २ यावत् आ। नि। आं। नि। इत्यादि पूरणीया।

मास ६ यावत् उ १ आं। उ २ आं। उ ३ आ। पूरणीया।

मास ६ यावत् उ ४ आं। उ ४ आ। उ ४ आं। पूरणीया।

वर्ष १ यावत् आचाम्लानि कर्तव्यानि।

---

२०. श्री सर्व संख्या श्री महावीर तप

वर्तमान अवसर्पिणी काल के चौबीस तीर्थंकर भगवतो मे श्री वर्धमान स्वामी का आयुष्य सिर्फ ७२ वर्ष का ही था। उसमे भी उनके दीक्षित जीवन के तो ४२ वर्ष ही थे। भगवंत ने अपने शेष रहे निकाचित कर्मों को खपाने के लिए छद्मस्थावस्था में उग्र घोर तपश्चर्या की और नीचे लिखे अनुसार बारह वर्ष और साढे छैः माह तक विविध तपस्यायें कर अत मे केवलज्ञान प्राप्त किया।

भगवत श्री महावीर स्वामी ने जो तपस्याये की है, उससे तो आश्चर्य चकित होना पडता है। तप पद की पूजा में कहा है कि—

साड़ाबार वर्ष जिन उत्तम, वीरजी भूमि न ठाया हो।

भगवंत श्री महावीर स्वामी के अनुयायी होने के कारण हमें भी यथाशक्ति तपाराधन करना ही चाहिए।

श्री सर्व संख्या श्री महावीर तप की विधि

बारस चेव य वासा मासा छ च्चेव अद्धमासो अ।
वीरवरस्स भगवओ एसो छउमत्थ परियाओ ॥१॥

श्री महावीर स्वामी प्रभु ने छद्मस्थावस्था मे साढे बारह वर्ष तपस्या की। उन्होने जो तपस्या की, वह इस प्रकार है— एक छै मासी तप, एक दूसरा छै मासी तप जिसमे ५ दिन कम, नौ चतुर्मासी तप, दो त्रिमासिक तप, दो ढाईमासी तप, छै दो मासिक तप, दो डेढ मासी तप, बारह मास क्षमण, बोहत्तर पक्ष क्षमण, दो दिन की भद्र प्रतिमा, चार दिन की महाभद्र प्रतिमा, दस दिन की सर्वतोभद्र प्रतिमा, दो सौ उन्तीस छठ्ठ, बारह अठ्ठम, तीन सौ उनचास पारणे के दिन तथा एक दीक्षा का दिन, सब मिलकर बारह वर्ष साढे छै: मास हुए। यह तप यथाशक्ति एकान्तर उपवास से करना। शक्ति न हो तो इन तपो मे से कोई भी तप शक्ति तथा काल के अनुसार करना।

उद्यापन मे श्री महावीर प्रभु की बडी स्नात्र पूजा कर अष्ट प्रकारी पूजा करना। छै: विगई के पकवान, विविध फल आदि

रखना। (गोधूम १ मन, घी आधा मन) संघ वात्सल्य व संघ पूजा करना इस तप के फल से तीर्थंकर नाम कर्म का बंध होता है। यह साधु तथा श्रावक को करने का आगाढ तप है। "श्री महावीरनाथाय नमः" इस मंत्र की वीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि वारह वारह करना।

---

२१. श्री कनकावलि तप

कनकावलि अर्थात् स्वर्ण का हार। स्वर्ण के हार मे जैसे शेर—लताएं और अनार—चद्र होते हैं, उसके माफिक इस व्रत में उसी प्रकार विविध रीति से तपस्या की जाती है।

श्री कनकावलि तप की विधि

तपसः कनकावल्याः, काहलादाडिमे अपि।
लता च पदकं चान्त्यलता दाडिमकाहले ॥१॥
एकद्वित्र्युपवासतः प्रगुणिते संपूरिते काहले,
तत्राष्टाष्टमितैश्च षष्ठकरणैः संपादयेद्दाडिमे।
एकाद्यैः खलु षोडशान्तगणितैः श्रेणी उभे युक्तितः,
षष्ठैस्तैः कनकावलौ किल चतुस्त्रिंशन्मितो नायकः ॥२॥

तपस्वियो के हृदय को शोभायमान होने से यह कनकावलि नाम का तप कहलाता है। इसमे प्रथम उपवास कर पारणा करना, पीछे छठ्ठ कर पारणा करना, पीछे अठ्ठम कर पारणा

करना, इस तरह एक काहलिका पूर्ण होती है। इसके पश्चात् आठ छठ्ठ करना, जिससे एक दाडिम पूर्ण होता है। बाद में एक उपवास कर पारणा करना, दो उपवास कर पारणा करना, तीन उपवास कर पारणा करना, इस प्रकार बढते बढते सोलह उपवास कर पारणा करना। ऐसा करने से हार की एक लता (शेर) पूर्ण होती है। इसके पश्चात् चौतीस छठ्ठ करने से उस लत्ता के नीचे पदक सम्पूर्ण होता है। बाद में सोलह उपवास कर पारणा करना, पंद्रह उपवास कर पारणा करना, चौदह उपवास कर पारणा करना, इस तरह घटाते घटाते एक उपवास कर पारणा करना। ऐसा करने से हार की दूसरी लता पूरी होती है। इसके बाद आठ छठ्ठ करने से उसकी ऊपर की दाडिम पूरी होती है। फिर अठ्ठम कर पारणा करना फिर छठ्ठ कर पारणा करना और पीछे एक उपवास कर पारणा करना, इससे ऊपर की दूसरी काहलिका पूरी होती है। यहां जो उपवास, छठ्ठ और अठ्ठम लिखे है उनका पारणा कर तुरन्त दूसरे दिन ही उपवास आदि करना परन्तु बीच में बाधा नही डालना। इस तप मे कुल पारणे के दिन ८८ होते हैं, तथा उपवास ३८४ होते हैं, अर्थात् यह तप एक वर्ष, तीन माह और बाईस दिन मे पूरा होता है। (इस प्रकार चार दफा करने से पाच वर्ष, दो माह, और अठ्ठाइस दिन होते है, इस प्रकार चार गुणा तप करने का श्री प्रवचन सारोद्धार मे बताया है)। यहां पारणे मे पहली श्रेणी मे विगई सहित इच्छित भोजन करे, दूसरी श्रेणी मे नीवी, तीसरी श्रेणी में अलेप द्रव्य अर्थात् जिस वस्तु के खाने मे हाथ वगैरह न सने (भरे) जैसे चना, वाल आदि खाना, तथा चौथी श्रेणी मे आयबिल करना। (सब पारणे के दिन एकासना ही करना)।

उद्यापन में बडी स्नात्र विधिपूर्वक अष्ट प्रकारी पूजा पढाना। उपवास की सख्या के अनुसार स्वर्ण टंक की माला बनवाकर प्रभु के गले में पहनाना। तथा छैः निगई के पकवान, विविध फल आदि रखना। साधुओं को अन्न वहोराना, सघ वात्सल्य, संघ पूजा करना। इस तप को करने से भोग तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह मुनियो तथा श्रावको को करने का आगाढ तप है। विशेष बात यह है कि अतकृद्दशादि सूत्रों मे कनकावलि के पदको मे तथा दाडिमो में बगडा (षष्ठ) है उनके स्थान मे तगडा (अट्ठम) कहा है और रत्नावलि मे अट्ठम है उसके स्थान पर षष्ठ रखना ऐसा भी प्रवचन सारोद्धार की टीका मे कहा है। गुणना "ॐ नमो अरिहंताण" पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक वगैरह बारह बारह करना।

---

२२. श्री मुक्तावलि तप

मुक्तावलि अर्थात् मोती की माला। जैसे मोती की माला मे चढ-उतर मोती होते हैं वैसे इस तप मे भी चढ-उतर तपस्या की जाती है।

श्री मुक्तावलि तप की विधि

मुक्तावल्यां चतुर्थादि षौडशाद्यावलीद्वयम्।
पूर्वानुपूर्व्या पश्चानुपूर्व्या ज्ञेयं यथाक्रमम् ॥१॥
एकद्वयेकगुणैकवेदवसुधावाणैकषड्भूमिभिः,
सप्तैकाष्टमहीनवैकदशमिशू रुद्रभूभानुभिः।

भूविश्वैः शशिमन्विलातिथिधराविद्यासुरीर्भिमितै—
रेतद्व्युत्क्रमणोपवासगणितैर्मुक्तावली जायते ।।२।।

तपस्वियो को गले के आभरण रूप निर्मल मुक्तावलि सदृश होने से यह तप मुक्तावलि कहलाता है। इस मुक्तावलि मे उपवास आदि सोलह तक दो आवली आनुपूर्वी द्वारा तथा पश्चानुपूर्वी द्वारा अनुक्रम से जानना। इसमे प्रथम एक उपवास कर पारणा, पीछे छट्ठ पर पारणा, पीछे उपवास पर पारणा, पीछे अट्ठम पर पारणा, पीछे उपवास पर पारणा, पीछे चार उपवास पर पारणा, पीछे उपवास पर पारणा, पीछे पांच उपवास पर पारणा, पीछे उपवास पर पारणा, पीछे छैः उपवास पर पारणा, पीछे उपवास पर पारणा, पीछे सात उपवास पर पारणा, पीछे उपवास पर पारणा। इस तरह सोलह उपवास पर पारणा, पीछे उपवास पर पारणा। इसके पश्चात् पश्चानु पूर्वी से लेना अर्थात् प्रथम सोलह उपवास पर पारणा, पीछे उपवास पर पारणा, पीछे पंद्रह उपवास पर पारणा, पीछे उपवास पर पारणा पीछे चौदह उपवास पर पारणा, पीछे उपवास पर पारणा, इस तरह अन्त मे एक उपवास पर पारणा करना। इस प्रकार उपवास ३०० तथा पारणे के दिन ६० मिलकर एक वर्ष मे यह पूरा होता है। इसे कनकावलि की तरह चार दफा करने से चार वर्ष मे सम्पूर्ण होता है।

उद्यापन मे वड़ी स्नात्र पूजा पढाकर प्रभु के गले मे मुक्तावलि (मोती की माला) पहनाना, संघ वात्सल्य, सघ पूजा करना। इस तप को करने से विविध प्रकार के गुणों की

श्रेणी प्राप्त होती है। यह यति तथा श्रावक को करने का आगाढ़ तप है। गुणना 'नमो अरिहंताणं' पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

२३. श्री रत्नावलि तप

स्वर्ण और मोती से भी रत्न की कीमत विशेष होती है। इसलिए कनकावलि और मुक्तावलि तप से भी इस रत्नावलि तप में लता-शेर, तरल-चन्द्र आदि विशेष होते हैं।

श्री रत्नावलि तप की विधि

काहलिका दाडिमकं लता तरल एव च।
अन्या लता दाडिमकं काहलिकेति च क्रमात् ॥१॥
एकद्वित्र्युपवासैः सः काहले दाडिमे पुनः।
तरलश्चाष्टमसथो रत्नावल्यां लतेव तत् ॥२॥
एकद्वित्र्युपवासतो ह्युभे इमे संपादिते काहले,
अष्टाष्टाष्टमसंपदा विरचयेद्युक्त्या पुनर्दाडिमे।
एकाद्यैः खलु षोडशान्तगणितैः श्रेणीद्वयं च क्रमात्,
पूर्णं स्यात्तरलोऽष्ठमैरपि चतुस्त्रिशन्मितैर्निर्मलैः ॥३॥

गुणरूप रत्नों की आवली होने से यह तप रत्नावलि कहलाता है। इसमें अनुक्रम से काहलिका, दाडिम, लता, तरल

(पदक), दूसरी लता, दाडिम और काहलिका—इस प्रकार रत्नावलि होती है। इसमे प्रथम कहालिका के निमित्त एक उपवास, पीछे पारणा करना। इसके बाद दो उपवास पर पारणा, फिर तीन उपवास पर पारणा। इसके पश्चात् दाडिम के निमित्त आठ अट्ठम करना, पीछे एक उपवास पर पारणा, फिर दो उपवास पर पारणा, इस प्रकार अनुक्रम से सोलह उपवास करने स एक लता (शेर) होती हैं। पीछे चौतीस अट्ठम करने से पदक होता है। इसके वाद पश्चानुपूर्वी से अर्थात् सोलह उपवास पर पारणा, पीछे पन्द्रह उपवास पर पारणा, इस प्रकार उतरते उतरते एक उपवास पर पारणा। ऐसा करने से दूसरी लता पूरी होती है। पीछे दूसरे दाडिम के निमित्त आठ अट्ठम करना। पीछे अट्ठम कर पारणा करना। फिर छट्ठ कर पारणा और बाद मे उपवास कर पारणा करने से काहलिका पूर्ण होती है। इस प्रकार उपवास के कुल दिन ४३४ तथा पारणे के ८८ दिन होते है। सब मिलकर ५२२ दिन मे यह तप सम्पूर्ण होता है। [किसी के मतानुसार यह तप चार बार करने से पाच वर्ष, नौ मास और अठारह दिन मे पूरा होता है]

उद्यापन मे वडी स्नात्र पूजा कर मूल्यवान निर्मल रत्नो की माला प्रभु के गले मे पहिनाना। गुरुपूजा, सघ पूजा, सघ वात्सल्य करना। इस तप को करने से विविध प्रकार की लक्ष्मी मिलती है। यह यति तथा श्रावक को करने का आगाढ तप है। गुणने मे "नमो अरिहंताणं" की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

२४. श्री लघु सिंह निष्क्रीडित तप

पशुओं का राजा सिंह होता है, क्योंकि वह चकोर और शूरवीर है। बाघ अथवा दीपड़े की तरह वह चालाक या कपटी नहीं होता इसलिए वह सर्वश्रेष्ठ प्राणी गिना जाता है। उसमें यह विशेषता है कि—जैसे जैसे वह आगे बढता है वैसे वैसे अपनी पीठ पीछे देखता जाता है। उसकी दृष्टि के अनुसार जो तप किया जाता है वह "सिंहनिष्क्रीडित" कहलाता है।

श्री लघु सिंह निष्क्रीडित तप का विधि

गच्छन् सिंहो यथा नित्यं पश्चाद्भागं विलोकयेत् ।
सिंहनिष्क्रीडिताख्यं च तथा तप उदाहृतम् ॥१॥
एकद्व्येकत्रियुग्मैर्युगगुणविशिखैर्वेदषट्पञ्चताक्ष्यैः,
षट्कुंभाश्वैर्निधानाष्टनिधिहयगजैः षट्हयैःपञ्चषड्भिः ।
वेदैर्वाणैर्युगद्वित्रिशशिभुजकुभिश्चोपवासैश्च मध्ये,
कुर्वाणानां समन्तादशनमिति तपः सिंह निष्क्रीडितं
स्यात् ॥२॥

जैसे सिंह चलते चलते पीछे का भाग देखता है, उसी प्रकार सिंह निष्क्रीडित तप बताया गया है। इसमें प्रथम एक उपवास पर पारणा, पिछे दो उपवास पर पारणा, पीछे एक उपवास पर पारणा, पीछे तीन उपवास पर पारणा, पीछे दो उपवास, पीछे चार उपवास, पीछे तीन, फिर पांच, फिर चार, फिर छे, फिर पाच, फिर सात, फिर छे, फिर आठ, फिर सात,

फिर नौ, फिर आठ, इस प्रकार उपवास कर पारणा करना। पीछे पश्चानुपूर्वी से करना अर्थात् पहले नौ उपवास, पीछे सात, पीछे आठ, पीछे छैः, पीछे सात, फिर पांच, फिर छैः, फिर चार, फिर पाच, फिर तीन, फिर चार, फिर दो, फिर तीन, फिर एक, फिर दो और फिर एक उपवास कर पारणा करना। इस प्रकार इस तप मे १५४ दिन उपवास और पारणे के ३३ दिन मिलकर १८७ दिन होते है। (यह तप भी चार बार करने से दो वर्ष, अट्ठाइस दिन मे पूरा होता है, ऐसा भी मत है)।

उद्यापन मे बडी स्नात्र विधि से प्रभु की पूजा पढाना। उपवास की सख्या के अनुसार मोदक, फल, पकवान आदि रखना। यह यति तथा श्रावक को करने का आगाढ तप है। गुणने मे "नमो अरिहंताणं" की बीस माला। स्वस्तिक वगैरह बारह बारह करना।

---

२५. श्री बृहत् सिंह निष्क्रीडित तप और उसकी विधि

चौबीसवे तप मे बताये दिनो की अपेक्षा इसमे अधिक दिन होते हैं इसलिए इसे "बृहत्" कहा है—

एकद्व्येयकपाटयोनियमलैर्वेदत्रिबाणाब्धिभिः
षट्पञ्चाश्वरसाष्टसप्तनवभिर्नागैश्च दिग्नन्दकः।

के वाद पारणा करना। दूसरी श्रेणी में प्रथम तीन उपवास, फिर चार, फिर पांच, पीछे एक और फिर दो उपवास कर पारणा करना। तीसरी श्रेणी मे पांच उपवास पीछे एक, पीछे दो, फिर तीन, और फिर चार, उपवास कर पारणा करना। चौथी श्रेणी में प्रथम दो उपवास पीछे तीन, पीछे चार, फिर पाच और फिर एक उपवास कर पारणा करना। पाचवी श्रेणी मे प्रथम चार, पीछे पाच, पीछे एक फिर दो और फिर तीन उपवास कर पारणा करना। सब के अंत में एक ही पारणे का दिन आवे। इस प्रकार कुल उपवास ७५ तथा पारणे के दिन २५ मिल कर तीन माह और दस दिन मे यह तप पूरा होता है

उद्यापन मे जिनेश्वर भगवत का स्नात्र करना, फल, नैवेद्य, मोदक, शक्ति अनुसार रखना। इस तप के फल से कल्याण की प्राप्ति होती है। यह मुनि तथा श्रावक को करने का आगाढ तप है।

"श्री महावीरस्वामिनाथाय नमः" इस पद की बीस माला गिनना, स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

२७. श्री महाभद्र तप और उसकी विधि

एकद्वित्रिचतुःपञ्चषट्सप्तभिरुपोषणैः ।
निरन्तरैः पारणकमाद्यश्रेणौ प्रजायते ॥१॥

द्वितीयपाल्यां वेदेषुषट्सप्तैकद्विवाह्नीभः ।
तृतीयपाल्यां सप्तैकद्वित्रिवेदशरै रसैः ॥२॥
चतुर्थपाल्यां त्रिचतुःपंचषट् सप्तभूभुजैः ।
पञ्चम्यां रससप्तैकद्वित्रिवेदशिलीमुखैः ॥३॥
षष्ठम्यां द्वितिचतुःपञ्चषट्सप्तैकैरुपोषणैः ।
सप्तम्यां पञ्चषट्सप्तभूयुग्मत्रिचतुष्टयैः ॥४॥
एवं संपूर्यते सप्तश्रेणिभिर्मध्यपारणैः ।
महाभद्रं तपः सप्तप्रस्तारपरिवारितम् ॥५॥

यह महाभद्र तप भी पूर्व की तरह होता है, इसमे तप के दिन अधिक होते है वह इस प्रकार है—प्रथम श्रेणी में, एक, दो, तीन, चार, पाच, छैः और सात उपवास अनुक्रम से आंतरा रहित पारणे वाले करना। दूसरी श्रेणी मे चार, पाच, छैः सात, एक दो और तीन उपवास आंतरा रहित पारणे से करना। तीसरी श्रेणी मे सात, एक, दो, तीन, चार, पाच और छैः उपवास उसी तरह करना। चौथी श्रेणी मे तीन, चार, पांच, छैः, सात, एक और दो, उसी तरह करना। पाचवो श्रेणी में, छैः, सात, एक, दो तीन, चार और पाच उपवास वेसे ही करना। छटी श्रेणी मे दो, तीन चार, पाच, छैः सात और एक उपवास उसी तरह करना। सातवी श्रेणी मे पाच, छैः, सात, एक, दो, तीन और चार उसो आंतरा रहित पारणे से करना। इस तरह इस तप से उपवास १९६ और पारणे के दिन ४९ मिलकर कुल २४५ दिन मे यह तप पूरा होता है।

उद्यापन मे बडी स्नात्र पूजा कराना। यथाशक्ति फल

रुद्राशारविभद्र...विषुधैर्मार्तंडमन्वन्विते—
विंश्वेदेवतिथिप्रमाणमनुभिश्चाष्टिप्रतिथ्यन्वितैः ॥१॥
कलामनुतिथित्रयोदशचतुर्दशार्कान्विते —
स्त्रयोदशशिवांशुभिर्दशगिरीशनन्दैरपि ।
दशाष्टनवसप्तभिर्गजरसाश्ववाणै रसैश्चतु—
र्विशिखवह्निभिर्युगभुजत्रिभूद्वीन्दुभिः ॥२॥
उपवासैः क्रमात्कार्या पारणा अन्तरान्तरा ।
सिंहनिष्क्रीडितं नाम बृहत्संजायते तपः ॥३॥

यह तप भी पहले जैसा है, परन्तु इसमे तपस्या के दिन अधिक हैं। इसमें प्रथम एक उपवास पर पारणा, पीछे दो उपवास पर पारणा, पीछे एक उपवास, फिर तीन, फिर दो, फिर चार, फिर तीन, फिर पांच, फिर चार, फिर छै., फिर पाच, फिर सात, फिर छे , फिर आठ, पीछे सात, पीछे नौ फिर आठ, फिर दस, फिर नौ, फिर ग्यारह. फिर दस, फिर वारह, फिर ग्यारह, फिर तेरह, फिर वारह, पीछे चौदह, पीछे तेरह, पीछे पंद्रह, पीछे चौदह, पीछे सोलह और फिर पंद्रह उपवास कर पारणा करना। इसके बाद पश्चानुपूर्वी से इस प्रकार करना—प्रथम सोलह उपवास, पीछे चौदह, फिर पद्रह, फिर तेरह फिर चौदह, फिर वारह, फिर तेरह, फिर ग्यारह, फिर वारह, फिर दस, फिर ग्यारह, फिर नौ, फिर दस, फिर आठ, पीछे नौ, पीछे सात, पीछे आठ, फिर छै, फिर सात, फिर पाच, फिर छैः, फिर पाच, फिर चार, फिर पाच, फिर तीन, फिर चार फिर दो, फिर तीन, फिर एक, फिर दो और अंत मे एक उपवास कर पारणा करना। इस प्रकार हरएक के

वाद पारणा करना। इस तरह कुल उपवास के दिन ४६७ तथा पारणे के दिन ६१ मिलकर कुल ५५८ दिन अर्थात् १ वर्ष, छै: माह और अठारह दिन मे यह तप पूरा होता है। (यह तप भी चार बार करने से छैः वर्ष, दो माह और बारह दिन मे पूरा होता है यह मतांतर है)।

उद्यापन में बड़ी स्नात्र पूजा करा कर उपवास की संख्या के अनुसार पुष्प, फल तथा मोदक आदि नैवेद्य अर्पण करना। साधुओ को अन्नादि वहोराना, सघ वात्सल्य करना। **इस तप का फल उपशम श्रेणी की प्राप्ति रूप है।** यह मुनि तथा श्रावक को करने का आगाढ तप है। नम्बर २१ से २५ तक के तप चार बार करने को श्री प्रवचन सारोद्धार मे कहा है। गुणना 'नमो अरिहताण" की वीस माला। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

२६. श्री भद्र तप और उसकी विधि

एकद्वित्रिचतुःपञ्चत्रिचतुःपञ्चभूद्वयैः
पञ्चैकद्वित्रिवेदैश्च द्वित्रिवेदेषुभूमिभिः ॥१॥
चतुःपञ्चैकद्वित्रिभिश्चोपवासैः श्रेणिपञ्चकम् ।
भद्रे तपसि मध्यस्थपारणश्रेणिसंयुतम् ॥२॥

यह तप भद्र अर्थात् कल्याणकारी होने से भद्र तप कहलाता है। इसमे प्रथम श्रेणी मे पहले एक उपवास कर पारणा करना। फिर दो, तीन, चार और पाच उपवास कर हरएक

नैवेद्य, मोदक आदि रखना। गुरु पूजा, संघ पूजा आदि करना। इस तप के फल से सर्व विघ्न नाश होते हैं तथा पुण्य की प्राप्ति होती है। यह मुनि तथा श्रावक का करने का आगाढ तप है, गुणना वगैरह 'भद्रतप' के अनुसार करना।

---

२८. श्री भद्रोत्तर तप और उसकी विधि

आद्यश्रेणौ पञ्चषड्भिः सप्ताष्टनवभिस्तथः।
द्वितीयायां च सप्ताष्टनवबाणरसैरपि ॥१॥
तृतीयायां नंदबाणषट्सप्तष्टभिरुत्तमैः।
चतुर्थ्यां रससप्ताष्टनवबाणमितैः क्रमात् ॥२॥
पञ्चम्यामष्टनन्देषुषट्सप्तभिरुपोषणैः।
निरन्तरं पारणाभिर्भद्रोत्तरतपो भवेत् ॥३॥

भद्र अर्थात् कल्याण कारक अर्थात् उत्तम होने से भद्रोत्तर तप कहलाता है। इसमे प्रथम श्रेणी मे अनुक्रम से पाच, छैः, सात, आठ और नौ उपवास आतरे रहित पारणावाले करना। दूसरी श्रेणी में सात, आठ, नौ, पाच और छैः उपवास करना। तीसरी श्रेणी में नौ, पांच, छैः, सात और आठ उपवास करना। चौथी श्रेणी मे छैः, सात, आठ, नौ और पाच उपवास करना। पांचवी श्रेणी मे आठ, नौ, पाच, छैः और सात उपवास निरंतर पारणे वाले करना। इस तप मे १७५ दिन उपवास तथा पारणे के २५ दिन मिलकर दो सौ दिन मे यह तप सम्पूर्ण होता है।

उद्यापन भद्र तप की तरह करना। इस तप को करने से वांछित सिद्धि मिलती है। यह मुनि तथा श्रावक को करने का आगाढ तप है। गुणना आदि भद्र तप (सं. २६) के अनुसार करना।

---

२९. श्री सर्वतोभद्र तप और उसकी विधि

आद्या पञ्चषडश्वनागनवभिर्दिक्छंभुमि. श्रेणिका,
नागैर्नन्दककुप्शिवैः शररसैरश्वैर्द्वितीया च सा।
रुद्रैर्बाणरसाश्वनागनवभिर्दिग्भिस्तृतीया भवेत्,
तुर्या सप्तगज्जैश्च नन्ददशभिः श्रीकंठबाणै रस ।।१।।
काष्टारुद्रशरै रसैर्हयगजैर्नन्दान्वितैः पञ्चमी,
षष्ठी षट्तुरगेभनन्ददशभि. श्रीकंठबाणैः परा।
नन्दाशाशिवबाणषट्हयगजैः पूर्णावलि सप्तमी,
ते वै पारणाकान्तरा निगदिता नित्योपवासा बुधै. ।।२।।

सब तरह से कल्याणकारी होने से यह तप सर्वतोभद्र कहलाता है। यहा प्रथम श्रेणी अनुक्रम से निरतर पारणे वाले पाच, छै, सात, आठ, नौ, दस और ग्यारह उपवास के द्वारा होती है। दूसरो श्रेणी आठ, नौ, दस, ग्यारह, पाच, छैः और सात उपवास द्वारा होती है। तीसरी श्रेणी मे ग्यारह, पाच, छैः सात, आठ, नौ और दस उपवास द्वारा होती है। चौथी श्रेणी सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह, पॉच और छे, उपवास द्वारा

होती है। पाचवी श्रेणी दस, ग्यारह, पाच, छैः, सात, आठ और नौ उपवास द्वारा होती है। छठी श्रेणी छैः, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह और पांच उपवास द्वारा होती है। सातवी श्रेणी नौ, दस, ग्यारह, पांच, छैः, सात और आठ उपवास द्वारा होती है। इस तप मे ३९२ दिन उपवास तथा पारणे के दिन ४९ होते है। इस प्रकार यह तप कुल ४४१ दिन में पूरा होता है। उद्यापन भद्र तप की तरह करना।

कुछ आचार्य इन चारो भद्रादि तप के उद्यापन मे उपवास की सख्या के अनुसार पुष्प, फल, पकवान आदि रखने को कहते है। **इस तप से सब प्रकार की शाँति तथा समस्त कर्मों का क्षय होता है।** यह साधु तथा श्रावक को करने का आगाढ तप है। गिनना आदि तप सख्या २६ के अनुसार करना।

---

३०. श्री गुणरत्न संवत्सर तप

रत्न से भी गुण रूपी रत्न का मूल्य अनेक गुणा अधिक है। गुणवान होना और साथ ही गुणानुरागी होना यह वहुत कठिन है। इस विश्व मे गुणवान मनुष्य मिल जायगे, परन्तु वे भी किसी गुणवान के प्रति मत्सर भावना वाले होगे, कोई द्वेष रखने वाले होगे, कोई चुगलखोर होगे, कोई कपटी होगे, इसीलिए कहा है कि–**गुणी च गुणरागी च सरलो विरलो जनः।** स्वय गुणवान और साथ ही गुणानुरागी मनुष्य विरला ही होता है।

श्री गुणरत्न संवत्सर की विधि

गुणरत्नं षोडशभिर्मासैः संपूर्यते पुनस्तत्र ।
मासे चैकादिषोडशान्ताः स्युरुपवासाःपञ्चदश ॥१॥

गुणरूपी रत्नो की प्राप्ति के कारण यह गुणरत्न तप कहलाता है। यह तप श्री महावीर स्वामी प्रभु के शिष्य स्कदजी ने किया था। इसमे प्रथम मास मे एक उपवास और एक पारणा, इस प्रकार पंद्रह उपवास और पंद्रह पारणा मिलकर तीस दिन में पूरा होता है। दूसरे माह में दो उपवास पर एक पारण करने से वीस उपवास तथा दस पारणा मिलकर तीस दिन मे पूरा होता है। तीसरे माह मे तीन २ उपवास पर एक पारणा करने से चौवीस उपवास तथा आठ पारणा मिलकर वत्तीस दिन होते हैं। चौथे माह मे चार चार उपवास पर एक पारणा करने से चौवीस उपवास तथा छे पारणा मिलकर तीस दिन होते है। पाचवें माह में पाच उपवास पर पारणा करने से पच्चीस उपवास और पाच पारणा मिलकर तीस दिन होते है। छठे माह मे छेः छेः उपवास पर पारणा करने से चौवीस उपवास और चार पारणा मिलकर अट्ठाइस दिन लगते हैं। सातवें माह मे सात सात उपवास पर पारणा करने से इक्कीस उपवास और तीन पारणा मिलकर चौवीस दिन होते हैं। आठवें माह मे आठ आठ उपवास पर पारणा करने से चौवीस उपवास और तीन पारणा मिलकर सत्ताइस दिन होते है। नवे माह मे नौ नौ उपवास पर पारणा करने से सत्ताइस उपवास और तीन पारणा मिलकर तीस दिन होते है। दसवे माह मे दस दस उपवास पर पारणा करने से तीस उपवास

और तीन पारणा मिलकर तीस दिन होते हैं। ग्यारहवें माह मे ग्यारह ग्यारह उपवास पर पारणा करने से तैंतीस उपवास और तीन पारणा मिलकर छत्तीस दिन होते हैं। बारहवे माह मे बारह बारह उपवास पर पारणा करने से चौबीस उपवास व दो पारणा मिलकर छब्बीस दिन होते हैं। तेरहवे माह मे तेरह तेरह उपवास पर पारणा करने से छब्बीस उपवास तथा दो पारणा मिलकर अट्ठाइस दिन लगते हैं। चौदहवें माह में चौदह चौदह उपवास पर पारणा करने से अट्ठाइस उपवास व दो पारणा मिलकर तीस दिन होते हैं। पंद्रहवे माह मे पंद्रह पंद्रह उपवास पर पारणा करने से तीस उपवास व दो पारणा मिलकर बत्तीस दिन लगते है। सोलहवें माह में सोलह सोलह उपवास पर पारणा करने से बत्तीस उपवास तथा दो पारणा मिलकर चौतीस दिन होते है। इस प्रकार यह तप सोलह महीनो मे अर्थात् ४८० दिन मे पूर्ण होता है।

उद्यापन मे वड़ी स्नात्र से जिन पूजा, साधु पूजा, संघ पूजा आदि यथाशक्ति करना। **इस तप से मनुष्य उच्च गुणस्थान** पर चढ़ता है। यह साधु और श्रावक के करने का आगाढ तप है।

'**गुणरत्नसंवत्सर तपसे नमः**' इस पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक वगैरह बारह बारह करना।

३१. श्री ग्यारह अंग तप

श्री तीर्थंकर भगवत जव केवलज्ञानी होते हैं उसके वाद ही उनके विचार श्रुत रूप मे गणधर भगवत झेलते है अर्थात् तीर्थंकर अर्थ से द्वादशागी की प्ररूपणा करते है और गणधर भगवंत उन्हें सूत्र रूप मे गूंथते है।

भगवत महावीर देव के उपदेश को उनके ग्यारह गणधरों ने झेला था। और उस पर से उन्होने द्वादशागी—वारह अंग की रचना की थी। वर्तमान मे वारहवाँ अग 'दृष्टिवाद' विच्छेद हो गया है। ग्यारह अंग विद्यमान है।

अग' शब्द सूत्र रूप पुरुप के अंग रूप मे प्रयोग में लिया है। नदिसूत्र की चूर्णि में सूत्र पुरुष का परिचय निम्न प्रकार दिया है।

आचाराग और सुयगडाग— दो पैर

ठाणाग और समवायाग— दो नला

भगवती और ज्ञाता धर्मकथाग— दो जघा

उपासकदशाग और अतकृतदगाग— पीठ और पेट

अनुत्तरोववाई और प्रश्न व्याकरण— दो हाथ

विपाक— गरदन

दृष्टिवाद— मस्तक

१. आचारांग सूत्र—इस मूत्र मे साधुओं के आचार का वर्णन है। इसके पच्चीस अध्ययन है। श्लोक प्रमाण २५०० हैं।

इस पर पूज्य श्री शीलाकाचार्य की १२००० श्लोक प्रमाण टीका है। चूर्णी ८३०० श्लोक की है और पूज्य श्री भद्रबाहु-स्वामी कृत निर्युक्ति ३६८ श्लोक प्रमाण है।

२. सुयगडांग सूत्र–इस सूत्र मे अन्य दर्शन जैसे बौद्ध, सांख्य मीमांसक वगैरह की चर्चा और उपदेश है। इसके २३ अध्ययन है। मूल श्लोक २१०० है, इस पर श्री शीलाकाचार्य की १२८५० श्लोक प्रमाण टीका है। चूर्णी १०००० श्लोको की है और श्री भद्रबाहुस्वामीकृत निर्युक्ति २५० श्लोक प्रमाण है।

३. स्थानांग सूत्र—इस सूत्र में एक, दो, तीन, चार इस प्रकार क्रमशः दस स्थानक बताकर तात्त्विक व्याख्या की गई है। अध्ययन दस हैं और श्लोक प्रमाण ३७७० हैं। श्री अभयदेवसूरिजी द्वारा रचित टीका १५२५० श्लोक प्रमाण है।

४. समवायांग सूत्र—इस सूत्र मे श्री स्थानागजी सूत्र मे शेष रही बातो का दस स्थानक के उपरात वाली संख्याओ का वर्णन है। मूल श्लोक १६६७, चूर्णी ४०० श्लोको की है। श्री अभयदेवसूरिजी कृत टीका ३७७६ श्लोक प्रमाण है।

५. भगवती सूत्र (विवाह पन्नति)–इस सूत्र मे श्री गौतम-स्वामीजी ने भगवत श्री महावीर स्वामी को जीव अजीव सम्बधी पूछे गये ३६००० प्रश्न और उनके उत्तर हैं। इस सूत्र के ४१ शतक है और मूल श्लोक १५७५२ हैं। चूर्णी ४००० श्लोको की है। इस सूत्र पर श्री अभयदेवसूरिजी ने टीका बनाई है और उस पर संशोधन कर श्री द्रोणाचार्यजी ने

१८६१५ श्लोकों की टीका बनाई है। उपाध्याय श्री दानशेखरजी ने वि. स. १५६८ मे इस सूत्र की १२००० श्लोक प्रमाण लघुवृत्ति की भी रचना की है।

६. **श्री ज्ञाताधर्म कथा**—इस सूत्र में तीसरे आरे के प्रात भाग से पांचदे आरे की शुरूआत तक की अर्थात् भगवंत श्री महावीर स्वामी के जीवन काल पर्यंत के जैन शासन के प्रभावशाली सतियों और वीर पुरुषों के चरित्र हैं। अध्ययन १६ है, मूल श्लोक ५०० हैं और श्री अभयदेवसूरिजी की टीका ४२५२ श्लोक प्रमाण है।

७. **उपासकदशांग सूत्र**—इस सूत्र म आणंद, कामदेव आदि भगवंत महावीर के दस मुख्य श्रावकों के चरित्र हैं। अध्ययन १०, मूल श्लोक ८१२, श्री अभयदेवसूरिजी को टीका ६०० श्लोक प्रमाण है।

८. **अंतगडदशांग सूत्र**—इस सूत्र मे भगवत श्री महावीर स्वामी के अन्तकृत केवली होकर मोक्ष गये मुनियो के चरित्र हैं। मूल श्लोक ६००, और श्री अभयदेवसूरिजी को टीका ३०० श्लोक प्रमाण है।

९. **अनुत्तरोववाई सूत्र**—इस सूत्र में जो मुनिवर अनुत्तर विमान मे उत्पन्न हुए उनका वर्णन है। मूल श्लोक १९२, श्री अभयदेवसूरिजी की टीका १०० श्लोक प्रमाण है।

१०. **प्रश्नव्याकरण सूत्र**—इस सूत्र मे आश्रव तथा संवर का वर्णन दिया गया है। मूल श्लोक १२५० और श्री अभयदेव-सूरिजी की टीका ३४६० श्लोक प्रमाण है।

११. विपाक सूत्र—इस सूत्र में सुख और दुःख तथा कर्मफल सम्बधी वीस अध्ययन हैं। मूल श्लोक १२१६ और अभयदेव-सूरिजी कृत टीका ६०० श्लोक प्रमाण है।

श्री ग्यारह अंग तप की विधि

एकादश्यां समारभ्य शुक्लायां रुद्रसंख्यया।
मासैस्तपो यथाशक्ति पूर्यतेऽङ्गतप स्फुटम् ॥

शुक्ला एकादशी से प्रारम्भ कर ग्यारह माह की एकादशी कर यथाशक्ति तप करने से अंग तप पूर्ण होता है।

श्री आचारांग आदि ग्यारह अंग का तप होने से अंग तप कहा जाता है। इसमें शुक्ल एकादशी के दिन यथाशक्ति एकासना, नीवी, आयंबिल या उपवास करना। इस प्रकार हर एक शुक्ल पक्ष की एकादशी को अथवा दोनों पक्ष की एकादशी को करना। यह ग्यारह माह में पूर्ण होता है। (दोनों पक्ष की एकादशी करने से ग्यारह पखवाड़े में तप पूरा होता है, ऐसा भी किसी आचार्य का मत है)

उद्यापन लघु पंचमी की तरह करना। विशेष अर्थात्-इस तप में ग्यारह अंग लिखवाना तथा ग्यारह ग्यारह वस्तु रखना। यह तप करने से आगम के बोध की प्राप्ति होती है। यह यति तथा श्रावक को करने का आगाढ तप है।

१. श्री आचारंग सूत्राय नमः
२. श्री सुयगडांग सूत्राय नमः
३. श्री ठाणांग सूत्राय नमः

४. श्री समवायांग सूत्राय नमः
५. श्री भगवती सूत्राय नमः
६. श्री ज्ञाताधर्मकथाग सूत्राय नमः
७ श्री उपासकदशाग सूत्राय नमः
८ श्री अतगडदशांग सूत्राय नमः
९. श्री अनुत्तरोववाई सूत्राय नमः
१०. श्री प्रश्न व्याकरण सूत्राय नमः
११. श्री विपाक सूत्राय नमः

---

३२. श्री संवत्सर तप

सवत्सर अर्थात् वर्ष, जैसे अपने सिर पर विशेप देना हो गया हो और लेनदारो को एक साथ नही दे सकते तो देने की किश्ते करते है उसी प्रकार इस सवत्सर तप में भी किश्तें बनाई गई हैं। महीने की हरएक चतुर्दशी तीनों चौमासी और पर्युषण में आने वाली संवत्सरी, उससे सम्बधित विधि नीचे बताई गई हैं अर्थात् उस सम्बध में विशेष कुछ लिखना वाकी नही रहता।

यदि कर्ज का बोझ बढता जावे तो एक दिन वह असह्य हो जाता है इसीलिए शास्त्रकार भगवतो ने दीर्घ विचार कर इस प्रकार के हपते किये है। पक्खी प्रतिक्रमण करते समय 'अतिचार' के बाद बोलते है कि—'पक्खी तप प्रसाद करावशोजी' इसका अर्थ यही है कि—यदि जागृति न हो तो उसके लिए जागृत बनो।

श्री संवत्सर तप की विधि

सांवत्सरं तपः सांवत्सरिके पाक्षिकेऽपि च ।
चातुर्मासे कृते लोचे, क्रियते तदुदीर्यते ॥१॥

एक वर्ष में जो तप किया जाता है वह सवत्सर तप कहलाता है, उसमे पाक्षिक आलोचना अर्थात् पंद्रह दिन को आलोचना के लिए हरएक चतुर्दशी को उपवास करना अर्थात् बारह महीनों को चौबीस चतुर्दशो के उपवास करना तथा चातुर्मास को आलोचना के लिए तोनो चौमासो अर्थात् कार्तिक चोमासी, फाल्गुण चौमासी तथा आषाढ़ चौमासो को दो दो उपवास करने से छैः उपवास होते है, तथा सवत्सरी की आलोचना के लिए सवत्सरी के तीन उपवास करना । ये सब मिलकर तैतोस उपवास करना । यह तप करने से वर्ष में किए पापो का क्षय होता है । यह यति तथा श्रावक को करने का आगाढ तप है । (दूसरा वर्षीतप अलग तरह का है—देखो तप स. १३७)

"संवत्सरतपसे नमः" को वोस माला गिनना तथा स्वस्तिक आदि बारह बारह करना ।

---

३३. श्री नंदीश्वर तप

तिरछा लोक मे असंख्यात द्वीप हैं । उनमे प्रथम द्वीप, जिसमे हम रहते हैं वह जबूद्वीप है और अंतिम समुद्र स्वयंभूरमण है । इसके बाद अलोकाकाश है ।

१ जम्बू द्वीप २ घातकीखड ३ पुष्करावर्त ४ वारुणीवर द्वीप ५ क्षीरवर द्वीप ६ घृतवर द्वीप ७ ईक्षुवर द्वीप और आठवां नंदीश्वर है।

नंदी अर्थात् वृद्धि। उसमे भी ईश अर्थात् श्रेष्ठ। अर्थात् सर्व प्रकार की श्रेष्ठ वृद्धि-समृद्धियुक्त नदीश्वर द्वीप है।

यह द्वीप १६३८४०००००० योजन पोहला है। इस द्वीप के मध्य भाग की अपेक्षा से चारों दिशाओ मे श्याम वर्ण के चार अजनगिरि हैं। वे ८४००० योजन उचे हैं और उन चारो के ऊपर एक एक जिन भवन है। इस प्रकार **अंजनगिरि के चार जिन चैत्य।**

इस अंजनगिरि की चारों दिशाओ मे एक एक लाख योजन के फासले पर एक एक लाख योजन लम्बी पोहली बावडियां हैं। एक अजनगिरि की अपेक्षा से चार बावडियां होने से चार अजनगिरि की अपेक्षा से सोलह बावड़िया हुईं। इन बावड़ियों से ५०० योजन दूर एक लाख योजन लम्बा वन है अर्थात् एक बावड़ी के चारो तरफ बन होने से एक अंजनगिरि की चार बावडियो के सोलह वन हुए और चार अजनगिरि की सोलह बावडियो के ६४ वन हुए। इन सोलह बावडियों के ऊपर स्फटिक रत्नमय उज्जवल ६४००० योजन ऊँचा और १००० योजन गहरा 'दधिमुख' पर्वत है। इन सोलह दधिमुख पर्वतों पर एक एक शाश्वत जिनचैत्य होने से **दधिमुख के सोलह जिन चैत्य हुए।**

एक बावडी से दूसरी बावड़ी को जाते समय बीच मे दो दो रतिकर पर्वत आते है। अर्थात् सोलह बावड़ियो के अंतराल

पर बत्तीस रतिकर पर्वत हुए। उन सब पर शाश्वत जिन चैत्य है।

इस प्रकार अंजनगिरि के चार, दधिमुख के सोलह और रतिकर के बत्तीस मिलकर बावन शाश्वत जिनचैत्य शाश्वत प्रतिमाओ से सुशोभित है।

शाश्वती अट्ठाइया तथा तीर्थंकरादि के जन्म, दीक्षा वगैरह कल्याणको के निमित्त सौधर्मेन्द्र के आदेश से देव इस नदीश्वर द्वीप पर अठ्ठाई महोत्सव भक्तिभाव पूर्वक करते हैं। इस द्वीप के शाश्वत जिन चैत्य को लक्ष्य मे रख कर किया जाने वाला यह तप नदीश्वर तप कहलाता है।

श्री शत्रुजय पर्वत पर ऊजम बहिन द्वारा निर्मित 'श्री नंदीश्वर की ट्रूंका देखने से उसकी रचना का वास्तविक खयाल आ सकता है, चारो दिशाओं मे तेरह तेरह मिलकर बावन जिन चैत्यो से मंडित पवित्र नंदीश्वर द्वीप है।

श्री नंदीश्वर तप की विधि

नंदीश्वरतपो दीपोत्सवदर्शादुदीरितः
सप्त वर्षाणि वर्षं वा क्रियते च तदर्चनैः ॥१॥

नंदीश्वर का तप दीपावली की अमावस्या से आरम्भ करना बताया है। वह सात वर्ष अथवा एक वर्ष उसकी (नंदीश्वर की) पूजा द्वारा पूर्ण किया जाता है।

नंदीश्वर द्वीप मे स्थित चैत्यो की आराधना के लिए यह तप कहा गया है। इसमे दीपावली की अमावस्या के दिन पट्ट पर नंदीश्वर का चित्र बनाकर उसकी पूजा करना। उस दिन

शक्ति अनुसार उपवास आयंबिल, एकासना या नीवि करना। बाद में हरएक अमावस्या को वही तप करना। इस प्रकार सात वर्ष करना अथवा एक वर्ष तक करना।

उद्यापन मे बडी स्नात्र विधि से जिनपूजा कर स्वर्ण के बने नंदीश्वर के पास बावन बावन तरह के मोदक, फल, पुष्प, पकवान आदि रखना। साधु पूजा, संघ पूजा, संघवात्सल्य आदि करना। **यह तप करने से आठ भव में मोक्ष प्राप्त होता** है। यह यति तथा श्रावक के करने का आगाढ तप है।

दूसरी विधि

ऊपर जो सात वर्ष तक तप करने को लिखा है, उसमे मतभेद इस प्रकार है। दीवाली की अमावस्या को शुरू कर तेरह अमावस्या तक तप करना। फिर दीवाली की अमावस्या को शुरू कर तेरह अमावस्या तक करना। इस प्रकार चार बार करना। इस प्रकार करने से भी सात वर्ष मे पूर्ण होता है। उपवास बावन होते हैं।

एक वर्ष के सम्बन्ध मे भी मतभेद इस प्रकार है—दीवाली की अमावस्या को छठ्ठ करना पीछे हरएक पूर्णिमा तथा अमावस्या को छठ्ठ करना। इस तरह तेरह माह मे यह तप पूर्ण होता है। अर्थात् '२६' छठ्ठ के ५२ उपवास होते हैं।

'नंदीश्वरद्वीप तपसे नमः' की बीस माला गिनना। स्वस्तिक वगैरह बारह बारह करना।

३४. श्री पुंडरीक तप (चैत्री पूर्णिमा तप)

इस अवसर्पिणी काल के आदि तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान् के पौत्र और भरत महाराजा के पुत्र ऋषभसेन, उन्हीं का दूसरा नाम पुंडरीक है।

परमात्मा को केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद जब देशना दी वह सुनकर भरत महाराज के ऋषभसेन आदि पांच सौ पुत्रो तथा सात सौ पौत्रो ने एक साथ दीक्षा ली। उस प्रथम देशना में श्री पुंडरीक साधु, प्रभु की प्रथम पुत्री ब्राह्मी साध्वी, ईक्षुरस वहोराकर प्रथम पारणा कराने वाले श्रेयांशकुमार श्रावक और परमात्मा की दूसरी पुत्री सुंदरी श्राविका, इस प्रकार चतुर्विध संघ की स्थापना की। श्री पुंडरीक स्वामी को चौरासी गणधरों में मुख्य स्थान दिया गया है। परमात्मा के मुख से 'त्रिपदी' सुनकर उन्होने विस्तृत द्वादशांगी की रचना की।

वे परमात्मा के साथ विचरण करने लगे। परमात्मा के पास उनके इठानवे पुत्र तथा बाहुबली ने भी दीक्षा ली थी। एक बार स्फटिकाचल के शिखर पर विराजमान परमात्मा से श्री पुंडरीक गणधर ने प्रश्न पूछा कि—हे स्वामिन्! बाहुबली प्रमुख अनेक मुनिवरो ने मेरे बाद दीक्षा ली और अल्प समय के चारित्रवान होने पर भी केवलज्ञानी हुए और मैं प्रारम्भ से आपका शिष्य हुआ फिर भी मुझे केवलज्ञान की प्राप्ति क्यों नही होती, मेरे केवलावरण कर्म का कब और किस तरह नाश होगा?

भगवंत ने बताया कि—हे पुंडरीक । इस स्फटिकाचल की पश्चिम दिशा मे विमलाचल (श्री शत्रुंजय) नाम का पर्वत है, वह अनत मुनिवरो को मुक्तिपद देने वाला है और भूतकाल में अनेक जीव उस पवित्र स्थान पर मुक्त हुए है। उस पर्वत के शिखर पर तुम्हे केवलज्ञान प्राप्त होगा। परमात्मा के आदेश से उन्होने अन्य मुनिवरो के साथ श्री विमलाचल पर्वत की ओर प्रयाण किया।

मार्ग मे अनेक जीवो को प्रतिबोधित कर शासन उद्योत करते वे मथुरा नगरी मे पहुँचे। वहाँ युगादीश प्रभु और भरत महाराजा द्वारा निकाले सघ समूह एकत्रित हुए। सब विहार कर श्री विमलाचल तीर्थ पर पहुँचे।

परमात्मा को वहा आये जानकर चारों निकाय के देवों ने समवसरण की रचना की। परमात्मा ने देशना दी और प्रथम पारुषी पूर्ण होने पर परमात्मा के पादपीठ का आश्रय लेकर प्रथम गणधर पुंडरीक स्वामी ने भी भव्य जीवों को देशना दी।

दूसरे दिन इस गिरी की कृपा से मुझे केवलज्ञान की प्राप्ति होने वाली है ऐसा विचार कर श्री पुंडरीक स्वामी ने पाच करोड मुनिवरो के साथ सलेखना की।

पाच करोड मुनिवरो के साथ श्री पुंडरीक स्वामी ने रोष, तोष, और काम का उच्छेदकर तथा देह का शोषण कर अनशन किया। परमात्मा ने भी केवलावरण को नष्ट करने हेतु श्री विमलाचल के अद्भुत माहात्म्य का वर्णन किया।

जिसकी महिमा से श्री पुंडरीक स्वामी तथा साथ के पांच करोड़ मुनिवरों को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

चैत्र मास की शुक्ल पूर्णिमा को श्री पुंडरीक स्वामी और पाच करोड़ मुनिवरो को मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त हुई। देवों ने वहा महोत्सव किया। भरत महाराजा ने अनुपम जिनचैत्य का निर्माण कराया।

तब से श्री चैत्री पूर्णिमा की महिमा जगत् मे प्रसिद्ध हुई। जो आज अरबो वर्षों व्यतीत हो जाने पर भी अविचल रूप से चालू है। मुक्तिपद के अभिलाषी भव्य प्राणियो को यह पुंडरीक (चैत्री पूर्णिमा) तप अवश्य करना चाहिए।

श्री पुंडरीक तप की विधि

सप्त वर्षाणि वर्षं वा पूर्णिमायां यथा बलम्।
तपः प्रकुर्वतां पुंडरीकाख्यं तप उच्यते ॥१॥

पुंडरीक अर्थात् श्री ऋषभदेव के पहले गणधर की आराधना के लिए यह तप है इसलिए पुंडरीक तप कहलाता है। उस गणधर ने चैत्री पूर्णिमा के दिन सिद्धाचल पर सिद्धि प्राप्त की इसलिए उस दिन श्री पुंडरीक स्वामी की प्रतिमा की पूजा करना तथा शक्ति अनुसार उपवास, एकासना आदि तप करना, कसूंबी रंग वाले वस्त्र से पूजा करना, कसूंबी रंग की पील करना, नेत्राजन करना, हल्दी के रंग से भी पूजा करना। इसके बाद हरएक पूर्णिमा को उसी प्रकार तप तथा पूजा करना, इस तरह सात वर्ष अथवा एक वर्ष तक करना।

अथवा बारह वर्ष की बारह चैत्री पूर्णिमा को करना। (पंद्रह वर्ष तक करने को भी बारह मासिक पर्व कथा मे कहा है)

उद्यापन मे स्त्री को, नणंद की पुत्री तथा पुरुषो को बहन की पुत्री को बहुत स्वादिष्ट भोजन कराकर हल्दी का रंग, कसूंबी वस्त्र का भेटणा, ताम्बूल, कंकण, नूपुर आदि देना। साधु साध्वियो को रजोहरण, मुख वस्त्रिका, वस्त्र, पात्र आदि तथा बहुत आहार वहोराना तथा श्रावक के सात घरो पर बहुत मिष्टान भेजना। इस तप के करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। यति तथा श्रावक को करने का यह आगाढ तप है।

"श्री पुंडरीकगणधराय नमः" की बीस माला गिनना। स्वस्तिक वगैरह १५० करना।

श्री चैत्री पूनम तप की विधि

अपने स्थान पर रहकर जिन्हे तप करना हो उनके लिए विधि—मुख्यतया तो श्री पुंडरीक भगवान् की ही प्रतिमा होनी चाहिये। उसके अभाव मे श्री गौतम स्वामी को, उनके अभाव मे श्री ऋषभदेवजी की प्रतिमा, उनके भी अभाव मे जिन भगवान् की प्रतिमा हो उनके पास विधि करना। अंत मे स्थापनाचार्य के पास करना, १५० प्रदक्षिणा देना, १५० खमासमण देना, १५० स्वस्तिक करना, १५० फूलमाला चढाना और १५० लोगस्स का कायोत्सर्ग करना। यदि एक साथ न हो सके तो १०, २०, ३०, ४० और ५० लोगस्स का अलग २ कर १५० लोगस्स को पूरा करना।

☆

३५. श्री माणिक्य प्रस्तारिका तप
(माणिक्य फावड़ा)

फावडे की आकृति मे जैसे चढाव-उतार होता है वैसे इस तप मे कम-अधिक क्रम है। फावड़ा तो लोहे का होता है परन्तु खात मुहुर्तादिक शुभ क्रिया में चांदी या स्वर्ण की हथौड़ी या कुदाली काम मे ली जाती है। जिन विंब स्थापना के समय उनकी गादी के नीचे जैसे स्वर्ण या चांदी का काछुवा रखा जाता है, किसी मकान का उद्‌घाटन करते समय जैसे चादी का ताला खोला जाता है मतलब यह है कि हरएक शुभ प्रसग या कार्य मे उत्तम वस्तु का उपयोग होता है इसीलिए तपश्चर्या जैसी एकात हितकर प्रवृत्ति मे फावड़े को माणिक्य फावड़े की उपमा दो गई है।

श्री माणिक्य प्रस्तारिका तप की विधि

माणिक्यप्रस्तारी आश्विनशुक्लस्य पक्षसंयोगे ।
आरभ्यैकादशिकां राकां यावद्विदध्याच्च ॥१॥

माणिक्य की प्रस्तारिका की तरह इस तप का विस्तार होने से माणिक्य प्रस्तारिका कहलाता है। यह आश्विन शुक्ला एकादशी को आरम्भ कर पूर्णिमा तक करना होता है। अर्थात् एकादशी को उपवास, द्वादशी को एकासना, त्रयोदशी को नीवी, चतुर्दशी को आयविल, पूर्णिमा को वियासणा अथवा एकादशी को उपवास, द्वादशी को आयविल, त्रयोदशी को

नीवी, चतुर्दशी को आयविल और पूर्णिमा को वियासणा करना। तथा इन पाच दिनो मे प्रभात मे सूर्योदय पहले स्नान कर अच्छी भाग्यशाली सुहागिन का मुख मंडन तथा उद्वर्तन करना। पीछे स्वय भी पवित्र सुंदर वस्त्र अथवा कसूंबी वस्त्र का जोडा पहिनना तथा हैसियत के माफिक आभूषण धारण करना, अखड अक्षत की अजली भर कर उस पर एक जायफल रख मगलोच्चार पूर्वक चैत्य की प्रदक्षिणा देकर वह अजली जिनेश्वर के पास रखना।

दूसरी प्रदक्षिणा मे अक्षत की अंजली पर श्रीफल रख जिनेश्वर के पास रखना। तीसरी प्रदक्षिणा मे बीट तथा पर्ण सहित बिजोरा अक्षत पर रख जिनेश्वर के पास रखना। चौथी प्रदक्षिणा मे अक्षत की अजली पर सुपारी रख जिनेश्वर के पास रखना। पीछे सात धान्य, लवण, एक सौ आठ हाथ वस्त्र, एक सौ आठ लाल चणोठी तथा कसूंबी वस्त्र देव के पास रखना। इस प्रकार चार वर्ष तक करना।

उद्यापन मे १०८ पूर्ण कुंभ दिये सहित रखना। तथा एक चादी का दीपक स्वर्ण की बत्ती वाला रखना। सघ पूजा, सघ ात्सल्य करना। यह तप करने से निर्मल गुण की प्राप्ति होती है। यह मुनिराज तथा श्रावक को करने का आगाढ तप है।

'माणिक्य प्रस्तारिका तपसे नमः' की २० माला गिनना तथा स्वस्तिक वगैरह बारह बारह करना।

★

३६. श्री पदमोत्तर तप (कमल की ओली)

पद्म अर्थात् कमल। कमल पुष्प की जाति मे सर्वश्रेष्ठ है। कमल दीखने मे भी रमणीय होता है तथा उसकी सुगध भी आह्लादक होती है। लक्ष्मी का वाहन भी कमल है, इसीलिए उसे कमला कहा जाता है। पक्षियो मे उत्तम राजहस का चारा भी कमल के बीस तंतु है। इस प्रकार कमल उत्तम गिना जाता है।

तीर्थंकर भगवंत जब विचरते है तब देव स्वर्ण के नौ कमलो की रचना करते हैं और उन पर पदन्यास कर परमात्मा पृथ्वी पर विचरते हैं। इस प्रकार कमल की श्रेष्ठता है। कमल यह प्रत्येक वनस्पतिकाय है। सचित्त त्याग का परमात्मा को नियम होता है इसलिए देव स्वर्ण कमल बनाते हैं। बड़ा कमल ऊचाई मे एक हजार योजन से अधिक होता है, क्योकि द्रहों आदि में होने वाले कमल की नाल (दांडी) हजार योजन से भी अधिक लम्बी होती है।

इस तप मे कमल की आठ पखुडी को लक्ष्य कर तप करने का विधान है और उसी तरह नौ बार तपश्चर्या करने की होने से इसे 'कमल की ओली' कहा जाता है।

श्री पद्मोत्तर तप की विधि

प्रत्येक नवपद्मेष्वष्टाष्ट प्रत्येकसख्यया ।
उपवासा मीलिताः स्युर्द्वासप्ततिनुत्तराः ॥१॥

पद्म अर्थात् कमल के जैसे लक्ष्मी की तरह उत्कृष्ट होने से यह तप पद्मोत्तर कहलाता है । इसमे नौ पद्मो की तरह हरएक पद्म मे आठ आठ पखुडी होने से हरएक का एकान्तर एकासना पारणे वाला एक एक उपवास करना । इस तरह नौ बार करना इसलिए यह तप बोहत्तर उपवास और बोहत्तर एकासणा से पूर्ण होता है । यह तप शुक्ल पक्ष की नवमी के दिन प्रारम्भ करना ।

उद्यापन में बडी स्नात्र विधि से जिन पूजा करना । आठ पखुडी वाले स्वर्ण के नौ कमल बनवाकर प्रभु के पास रखना । मुनिराज को अन्नादि वहोराना । संघ पूजा, संघ वात्सल्य करना । यह तप करने से अतुल लक्ष्मी प्राप्त होती है । यति तथा श्रावक को करने का यह आगाढ तप है ।

"पद्मोत्तर तपसे नमः" अथवा "नमो अरिहंताणं" पद की बीस माला गिनना । स्वस्तिक आदि वारह बारह करना ।

☆

३७. श्री समवसरण तप

तीर्थंकर परमात्मा को जब केवलज्ञान उत्पन्न होता है तब चौसठ इंद्र केवलज्ञान महोत्सव करते है । उस समय देव समवसरण की रचना करते हैं और उसमे बैठकर तीर्थंकर परमात्मा देशना देते हैं ।

एक योजन प्रमाण भूमि का वायुकुमार देव कचरा दूर करते हैं । मेघकुमार देव उस पर सुगंधी जल से छिटकाव करते हैं । छैः ऋतु के अधिष्ठायक देव पुष्पो द्वारा उस पृथ्वी की पूजा करते हैं । व्यतरदेव भूमितल से सवा कोस ऊंची स्वर्णरत्नमय पीठ की रचना करते हैं । भवनपति देव पृथ्वी से दस हजार सीढियो द्वारा पहुँचा जा सके ऐसे स्वर्ण के कगारे वाले किले की रचना करते हैं । हरएक सीढ़ी एक हाथ पोहली और एक हाथ ऊची होती है अर्थात् पहला किला पृथ्वीपीठ से सवा कोस ऊचा होता हैं । उस चांदी के किले की दीवाल ५०० धनुष प्रमाण मोटी और तैंतीस धनुष और बत्तीस अगुल पोहली होती है । उस किले मे पुतलियां और अष्ट मागलिक वाले चार दरवाजे होते हैं । किले के चारो कोनो मे जमीन पर चार बावडिया होती हैं । पूर्व दिशा के दरवाजे पर तुबरूदेव, दक्षिण दरवाजे पर पट्वागदेव, पश्चिम दरवाजे पर कपाली देव और उत्तर के दरवाजे पर जटा मुकुटधारी देव द्वारपाल के रूप मे रहते हैं । पहले किले के मध्य मे चारो दरवाजो के पास पचास-पचास धनुष प्रमाण समतल भूमि होती है । इस किले मे देवो तथा मनुष्यो के वाहन रहते हैं ।

स्वर्ण और रत्नमय कगारे वाले दूसरे किले की रचना ज्योतिषी देव करते है जिसके पांच हजार सीढिया होती है। उसके पूर्व द्वार पर जया, पश्चिम द्वार पर विजया, पश्चिम द्वार पर अजिता और उत्तर द्वार पर अपराजिता नाम की दो दो देविया द्वारपालिका रूप मे रहती है। इस किले मे सिह, बाघ, मृग, सर्प, नेवला, तिर्यच जाति वैर छोडकर रहते हैं। इस गढ की ईशान दिशा मे देव छदो की रचना होती है, जहा देशना देने के बाद परमात्मा जाकर विश्राम करते है।

वैमानिक देव रत्न तथा मणिमय कगारे वाले तीसरे किले की रचना करते है जिसके पाच हजार सीढिया होती है। पूर्व द्वार पर सोम, दक्षिण द्वार पर यम, पश्चिम द्वार पर वरुण और उत्तर द्वार पर कुवेर द्वारपाल रूप मे रहते हैं।

इस तीसरे किले के मध्य मे समतल भूमि का पीठ होता है वह एक कोस और छै सौ धनुष प्रमाण विस्तार वाला होता है।

इस भूमितल के मध्य मे परमात्मा के देह प्रमाण से ऊची, चार द्वार वाली और चारो दिशाओ मे तीन तीन सीढी वाली मणिरत्न पीठ होती है। उस पीठ के मध्य भाग मे एक योजन विस्तार वाला अशोक वृक्ष होता है। वह जिनेश्वर भगवत के देहमान से बारह गुणा ऊचा होता है। उस वृक्ष के नीचे देव छद होता है। उसके चारो दिशाओ मे चार स्वर्ण के सिहासन होते है। सामने एक रत्नमय पाद पीठ होता है उस पर परमात्मा चरणन्यास करते है। हरएक सिहासन पर मोती की लडियो से अलकृत तीन तीन छत्र

होते हैं। हरएक सिंहासन की दोनों तरफ दो चंवरधारी देव रहते हैं। सिंहासन के सामने चारो दिशाओं मे धर्मचक्र तथा छोटी छोटी घंटियो से सुशोभित महाध्वज होता है। पूर्व दिशा के ध्वज को धर्मध्वज, दक्षिण दिशा के ध्वज को मानध्वज, पश्चिम दिशा के ध्वज को गजध्वज और उत्तर दिशा के ध्वज को सिंहध्वज कहते हैं।

मणिपीठ, चैत्य वृक्ष, सिंहासन, छत्र, चवर तथा देवछंद आदि की रचना व्यंतर देव करते हैं। यद्यपि चारों निकाय के देव मिलकर समवसरण की रचना करते हैं तथापि कोई उत्तम देव चाहे तो अकेला ही समवसरण की रचना कर सकता है।

यह वर्णन वृत्त (गोल) समवसरण का समझना। चौंरस समवसरण का वृत्तांत 'लोक-प्रकाश" ग्रंथ से जानना चाहिए।

श्री समवसरण तप की विधि

श्रावणमथ भाद्रपदं कृष्णप्रतिपदमिहादितां नीत्वा।
षोडश दिनानि कार्यं, वर्षचतुष्कं स्वशक्त्या तपः ॥१॥

समवसरण की आराधना के लिए यह तप है, इसे भाद्रवा एकम को प्रारम्भ कर अपनी शक्ति के अनुसार बियासना अथवा एकासना आदि करना। इस तरह सोलह दिन करना। हमेशा समवसरण की पूजा करना। इस तरह चार वर्ष तक करना।

उद्यापन (हर वर्ष) मे समवसरण की बडी स्नात्र विधि से पूजा कर छैः विगई की वस्तुओ का थाल (पकवान, फल आदि) रखना। संघवात्सल्य, संघपूजा करना। इस तप के फल से

साक्षात् तीर्थंकर देव के दर्शन होते हैं। यह मुनिराज तथा श्रावक को करने का आगाढ तप है।

प्रवचनसोराद्धार आदि मे ऐसा कहा है कि-पहले वर्ष में सोलह एकासना, दूसरे वर्ष मे सोलह नीवी, तीसरे वर्ष में सोलह आयंबिल व चौथे वर्ष में सोलह उपवास करना।*

यदि लगातार उपवास नही हो सके तो चार चार उपवास के अतर पर पारणा करना। ऐसा जैन प्रबोध मे कहा है। परन्तु चारों वर्षो मे इसी तरह उपवास करने का उल्लेख है। इस तप को बड़ा समवसरण भी कहते हैं।

जो लगातार उपवास नही कर सकते उनके लिए दूसरी रीति यह है कि—पहले दिन एकासना, दूसरे दिन नीवी, तीसरे दिन आयंबिल, और चौथे दिन उपवास। यह एक ओली हुई। ऐसी चार ओली करने से सोलह दिन होते हैं। इस प्रकार चार वर्ष तक करना। (प्रत नं. अ.)

श्री समवसरण तप (दूसरा)

इस तप को छोटा समवसरण भी कहते हैं। इस तप को भाद्रवा वद चौथ से आरम्भ कर भाद्रवा सुदी चौथ के दिन अर्थात् सोलह दिन मे पूर्ण करना। इसमे एकासना आदि यथाशक्ति तप करना।

उद्यापन निम्न प्रकार से करना (आचार दिनकर) :— चार श्रेणी के प्रकार के गुणने इस प्रकार हैं :—

---

* प्रत न अ मे भी यही विधि है।

	सा.	ख.	लो	नो.
श्री भावजिनाय नमः	१०	१०	१०	१०
श्री श्रुत समवसरण जिननाथाय नमः	६	६	६	२०
श्री मनः पर्यव अर्हते नमः	१२	१२	१२	२०
श्री केवलिजिनाय नम	८	८	८	२०

श्री समवसरण तप (तीसरा)

एक्कासणाइएहिं भद्दवय चउक्कगम्मि सोलसहिं।
होइ समोसरणतवो, तप्पूआ पुव्वविहिएहिं ॥१॥

(प्रवचन सारोद्धार गाथा ५६५)

यह तप एकासना आदि करके अर्थात् चार एकासना, चार नीवी, चार आयबिल तथा चार उपवास करने से होता है, अर्थात् पहले दिन एकासना, दूसरे दिन नीवी, तीसरे दिन आयबिल और चौथे दिन उपवास, वह प्रथम श्रेणी हुई। ऐसी चार श्रेणी अर्थात् सोलह दिन मे यह तप पूरा होता है। यह तप श्रावण कृष्णा चतुर्थी से आरम्भ कर भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी को यानी संवत्सरी के दिन पूरा करना। इस तरह चार वर्ष तक करना अथवा भाद्रवा कृष्णा चतुर्थी से भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी तक सोलह उपवास करना, अथवा भाद्रवा कृष्णा प्रतिपदा से शुरू करना। इसमे प्रथम चार उपवास कर पारणे के दिन एकासना अथवा बियासना करना। इस प्रकार चार श्रेणी से करके संवत्सरी के दिन पूरा करे। इस तरह चार वर्ष तक करना। हमेशा समवसरण की पूजा करना।

उद्यापन मे जिन पूजा पूर्वक चार थाल नैवेद्य के भरकर रखना ।

(समवसरण का तप पूरा होने के बाद पाचवे वर्ष में सिहासन तप अवश्य करना चाहिये ऐसी प्रवृत्ति है । उस तप के लिए न. १४६ वाला तप देखना । समवसरण तप के साथ साथ सिहासन तप भी हो सकता है । यह तप एक वर्ष मे करना हो तो हरएक वर्ष ओली नही करके एक वर्ष मे ही सब ओली करने से तप पूरा हो जाता है)

---

३८. श्री वीर गणधर तप

"गण" की जो रचना करता है वह गणधर कहलाता है । साधु समुदाय उनकी निश्रा मे सयमराधना करे । भगवत श्री महावीर के ग्यारह गणधर थे । परमात्मा ऋषभदेव के चौरासी गणधर थे । इस प्रकार प्रत्येक भगवतो के अलग २ सख्या गणधरो की होती है ।

मुख्य गणधर परमात्मा के मुह से "त्रिपदी" सुनकर उस पर से द्वादशांगी रचना करते है । भगवत श्री महावीर प्रभु के ग्यारह गणधरो मे से नौ गणधर भगवान् श्री महावीर की मौजूदगी मे ही मुक्त हुए । मुख्य गणधर गौतम स्वामी को भगवत श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के बाद तुरंत ही केवलज्ञान प्राप्त होना था इसलिए प्रभु के शेष रहे श्री सुधर्मास्वामी को शासन का भार सौपा गया । उन्होने भगवत श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के बाद बीस वर्ष तक शासन का भार उठाया । तब

से "सौधर्म-पट्ट-परंपरा" की शुरूआत हुई। ग्यारह गणधरों के सम्वध मे संक्षिप्त जानकारी निम्न प्रकार है। विशेष विस्तार से जानने के लिए "गणधरवाद" नामक ग्रंथ पढ़ना चाहिए।

इंद्रभूति—(श्री गौतमस्वामी) मगध देश मे स्थित गोवर नामक गाव मे गौतम गोत्रीय वसुभूति द्विज की पृथ्वी नामक पत्नी के सुपुत्र थे। उनके अग्निभूति तथा वायुभूति नामक दो लघु वधु थे।

इसके सिवाय कोल्लाक गाव मे धनुर्मित्र और धम्मिल नामक दो द्विजो के वारुणा और भद्दिला नाम की पत्नी से व्यक्त और सुधर्मा नामक पुत्र हुए थे।

मौर्य गाव मे धनदेव और मौर्य नामक दो द्विज मासीजाई वंधु थे। उनके मंडिक और मौर्यपुत्र नामक पुत्र थे।

विमलपुरी मे देव नामक द्विज के जयति नामक भार्या से अकंपित नामक पुत्र था। कौशला नगरी मे वसु नामक द्विज के नदा स्त्री से अचलभ्राता नामक पुत्र था।

वत्स देश मे स्थित तुंगित गांव मे दत्त द्विज की पत्नी करुणा से मैतार्य नामक पुत्र था। राजगृह नगर मे बाम नामक द्विज की अग्निभद्रा स्त्री से प्रभास नामक पुत्र था।

ये ग्यारह विप्रकुमार चारो वेदों मे निष्णात थे और इनके सैकडो शिष्य थे।

अपापा नगरी मे सोमिल द्विज ने इन ग्यारह विप्रकुमारो को यज्ञ के लिए निमन्त्रित किया था। उस समय वहीं

श्री वीर प्रभु भगवंत को समवसरण मे जातक देव वदन करने को आ रहे थे, यह देखकर इंद्रभूति ने हर्ष से अपने साथियो को कहा कि "अपने यज्ञकर्म के प्रभाव को देखो ! अपने मंत्रबल से आकर्षित होकर देव भी आ रहे हैं ।" इतने मे चाण्डाल के गृह के माफिक यज्ञ-मर्यादा को छोड कर देवो को समवसरण मे जाते देखकर नगर के लोग बोले कि "सर्वज्ञ परमात्मा को वदन करने देव उद्यान मे जा रहे हैं" 'सर्वज्ञ" ऐसे शब्द सुनते ही इंद्रभूति क्रोधित हो उठे । वे बोले कि "मेरे सिवाय अन्य सर्वज्ञ और कौन है ? मूर्ख मनुष्य को इसका पता नही चलता, परन्तु बुद्धिमान गिने जाने वाले देवो को भी इसका ख्याल नही ! वास्तव मे यह वीर इद्रजालिया मालूम होता है जिसने देवो और मनुष्यो को वश मे कर लिए है । अभी जाकर उसको पराजित करता हूँ । इस प्रकार अहकार-पूर्ण वचन बोलकर इंद्रभूति अपने पांच सौ शिष्यो के साथ समवसरण की तरफ रवाना हुए ।

समवसरण को, परमात्मा की ऋद्धि सिद्धि तथा असख्य देवो को अपनी आखो से देख "अरे यह क्या ? इस प्रकार इंद्रभूति आश्चर्य मे डूब गये इतने में जगद्गुरु ने अमृत जैसी वाणी द्वारा इद्रभूति को सम्बोधित किया—"हे गौतम ! इंद्रभूति ! आपका स्वागत है ।" इससे उन्हे अधिक आश्चर्य हुआ कि—क्या वे मेरे गौत्र तथा नाम को भी जानते हैं फिर विचार आया कि—मेरे जगत् प्रसिद्ध नाम को कौन नही जानता ? परन्तु यदि वे मेरे मन के सशय का निवारण कर दे तो उन्हे वास्तव मे सर्वज्ञ जानू । इतने मे तो परमात्मा ने शक्कर जैसी मिठी वाणी मे पुनः कहा कि—"हे गौतम ! तुमको जीव है या नही ऐसा संशय है, परन्तु जीव है, वह चित्त,

चेतन्य, विज्ञान और संज्ञा आदि लक्षणों से जाना जा सकता है। यदि जीव न हो तो पाप और पुण्य का पात्र कौन ? तुम्हारे दान, यज्ञ आदि करने का निमित्त भी क्या ?"

परमात्मा के ऐसे युक्तियुक्त वचन सुनकर उसका मिथ्यात्व दूर हो गया। इसलिए मिथ्यात्व का त्याग कर तुरन्त उन्होंने अपने शिष्यों के साथ परमात्मा के पास से दीक्षा ले ली।

२. अग्निभूति—इद्रभूति को दीक्षित हुए जानकर उनके वघु अग्निभूति ने विचार किया कि—उस इंद्रजालिये ने मेरे भाई को ठग लिया मालूम होता है इसलिए उसे जीतकर मेरे भाई को वापिस लाऊं। ऐसा विचार कर पांच सौ शिष्यों के साथ परमात्मा के पास जाकर बैठ गये। उस समय परमात्मा ने उसे सम्बोधित करते हुए कहा कि—हे अग्निभूति ! तुमको कर्म है कि नही ? ऐसी शका है, परन्तु अतिशय ज्ञानी पुरुष को कर्म प्रत्यक्ष मालूम होता है। तुम जैसे छद्मस्थ पुरुषों को जीव की विचित्रता देखने से अनुमान के द्वारा कर्म जाना जा सकता है। कर्म की विचित्रता से ही सुख दु.ख आदि विचित्र भाव प्राप्त होते हैं इसलिए 'कर्म' हैं ऐसा निश्चय रूप से समझो। कोई राजा है, कोई भिखारी है, कोई हाथी पर बैठता है तो कोई पंदल चलता है, कोई दान देता है तो कोई भीख मांगकर जीवन निर्वाह करता है—यह सब कर्म का ही प्रभाव है। परमात्मा के वचनो से प्रतिबोधित होकर अग्निभूति ने भी अपने शिष्यो सहित परमात्मा से दीक्षा अगीकार की।

३. वायुभूति—इन्होने सोचा कि मेरे दोनो बघुओ को जिन्होने जीत लिया है वे वास्तव में सर्वज्ञ होने चाहिए इसलिए

मैं भी उन की शरण में जाऊं और मेरा संशय दूर करूं। इस प्रकार विचार कर वह भी परमात्मा के पास अपने शिष्यों के साथ गये। परमात्मा ने उससे कहा कि—"हे वायुभूति ! तुमको जीव और शरीर के सम्बंध में बड़ा भ्रम है। प्रत्यक्ष में जीव शरीर से भिन्न मालूम नहीं होता इसीसे जल में परपोटा की तरह जीव शरीर में ही उत्पन्न होकर शरीर में ही मूर्च्छा प्राप्त करता है ऐसा तेरा संशय है परन्तु यह मिथ्या है; क्योंकि सर्व प्राणियों को जीव देश से तो प्रत्यक्ष है, क्योकि उसकी इच्छा आदि गुण प्रत्यक्ष होने से जीव स्वसंविद—अपने को जो अनुभव हो ऐसा है। वह जीव देह और इद्रियों से अलग है और इद्रियां जब नष्ट होती हैं तब भी वे इंद्रियां प्रथम भोगे हुए अर्थ को संभालती हैं।" इस प्रकार सशय दूर होने पर वायुभूति ने भी अपने पांच सौ शिष्यों के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली।

४. व्यक्त—इसने विचार किया कि तीन वेद जैसे इंद्रभूति आदि तीनो बंधुओं ने दीक्षा ली है वास्ते परमात्मा सर्वज्ञ हैं इसमे किसी तरह की शंका नही है। अब मैं भी अपनी शंका का समाधान कर प्रभु का शिष्य बनूं। उन्हे भी परमात्मा ने बताया कि—"हे व्यक्त ! पृथ्वी आदि पंच भूत हैं ही नही ऐसी तुझै शंका है," परन्तु भुवन मे विख्यात हुए स्वप्न, अस्वप्न, गधर्वपुर आदि भेद हो ही नही सकते। इस प्रकार सशय दूर होने पर उसने भी पाच सौ शिष्यो के साथ दीक्षा ले ली।

पीछे तो क्रमशः एक के बाद एक सब ही विप्रकुमार परमात्मा के पास आये और वीर भगवंत ने उन सबके सशम दूर कर अपने शिष्य बनाये। उनका सक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है।

५. सुधर्मा—"यह जीव जैसा इस भव में है वैसा ही परभव मे होता है।" ऐसी तुझे आशका है परन्तु यह गलत है। जीव की पृथक् पृथक् गति कर्माधीन है। और इसीलिए प्राणी विविध प्रकार के हैं। यह सुन संशय दूर होते ही पांच सौ शिष्यो के साथ संयम अगीकार किया।

६. मंडिक—"तुझे बंध और मोक्ष के बारे में शंका है"। परन्तु आत्मा को बंध और मोक्ष होता है यह बात बिलकुल ठीक है। मिथ्यात्व द्वारा किए कर्म का सम्बध वह बंध कहलाता है। बध के कारण डोरी की तरह बंधे प्राणी की तरह, नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव रूप चतुर्गति मे परिभ्रमण करना पड़ता है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र प्रमुख हेतुओ से जिस कर्म का अत्यंतिक नाश होता है वह मोक्ष कहलाता है। यद्यपि जीव और कर्म का सम्बध परस्पर अनादि सिद्ध है परन्तु अग्नि-से जैसे स्वर्ण और पाषाण अलग हो जाते हैं वैसे ज्ञानादिक से जीव कर्म से अलग हो सकता है। इस प्रकार सशय दूर होने पर उन्होने भी अपने ३५० शिष्यो के साथ सयम अगीकार किया।

७. मौर्यपुत्र—"देव सम्बन्धी तुम्हारे सदेह को निकाल दो। इस समवसरण मे बैठे इंद्रादि देव प्रत्यक्ष ही हैं। शेष समय मे मनुष्य लोक की असह्य दुर्गंधो से वे मनुष्य लोक मे नही आते इसलिए उनका अभाव है, ऐसा नही समझना"। इस तरह आशका दूर होते ही उन्होने भी ३५० शिष्यो के साथ दीक्षा ले ली।

८. अकंपित—"आंखो से नही दीखने से नारको के जीव नही है," ऐसा तुम्हारा संशय व्यर्थ है। अत्यंत परवशता

के कारण वे यहां नही आ सकते तथा तुम्हारे जैसे मनुष्य वहां जाने में असमर्थ है। क्षायिक ज्ञान के सिवाय उनका स्वरूप नही जाना जा सकता। इस तरह संशय नष्ट होते ही उन्होने भी पाच सौ शिष्यो के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली।

९. **अचलभ्राता**—"तुम्हारा पुण्य और पाप विषयक संदेह मिथ्या है, क्योकि दीर्घ आयुष्य, अत्यंत ऋद्धि, सुंदर रूप, सम्पूर्ण आरोग्यता आदि पुण्य के प्रत्यक्ष फल देखने में आते हैं, इससे विपरीत पाप के फल हैं।" इस तरह संशय दूर होने पर ३०० शिष्यों सहित सयम स्वीकार किया।

१०. **मेतार्य**—"भवांतर मे प्राप्त होने वाला परलोक नहीं है, ऐसी तुम्हारी शका है परन्तु पृथ्वी, पानी आदि पंचभूतों के वनिस्बत जीव की स्थिति अलग है। पचभूतों का नाश हो जाता है परन्तु जीव मे चेतना शक्ति है, वह परलोक मे जाती है और वहां जातिस्मरण आदि ज्ञान से पूर्वभव का स्मरण होता है।" इस तरह शका का निवारण होते ही तीन सौ शिष्यों के साथ दीक्षा ग्रहण की।

११. **प्रभास**—"मोक्ष है या नही"?, ऐसे तुम्हारे संशय को दूर करो। "वेद से और जीव की अवस्था की विचित्रता से कर्म सिद्ध होता है और शुद्ध ज्ञान, दर्शन और चारित्र से कर्म का क्षय होते ही मोक्ष प्राप्त होता है।" इस तरह शंका दूर होने पर ३०० शिष्यों सहित दीक्षा ले ली।

इस तरह परमात्मा की संशय नष्ट करने वाली और अलौकिक ज्ञान वाली वाणी सुनकर विप्रकुमार प्रतिबोधित हुए और हरएक ने अपने शिष्यो के साथ प्रभु से सर्वविरति

स्वीकार किया। इनमें इंद्रभूति आदि ग्यारह कुमारों को प्रभु ने गणधर पद पर स्थापित किये।

श्री वीर गणधर तप की विधि

चरमजिनस्यैकादशशिष्यगणधारिणस्तदर्थं च।
प्रत्येकमनशनान्यप्याचाम्लान्यथ विदध्याच्च ॥१॥

गणधर की आराधना के लिए जो तप किया जाता है वह गणधर तप कहलाता है। श्री वर्धमान स्वामी के ग्यारह गणधर हैं, उनकी आराधना के लिए हरएक गणधर के आश्रय से एकान्तर ग्यारह ग्यारह उपवास अथवा ग्यारह ग्यारह एकांतर आयंबिल करना (मतांतर से गणधर के आश्रय से एक एक उपवास अथवा आयबिल करने को भी कहा है)।

उद्यापन मे ग्यारह ग्यारह चारित्र के उपकरण मुनियो को देना। गणधर की मूर्ति की पूजा करना। संघ वात्सल्य, संघ पूजा करना। इस तप के फल से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। यह यति तथा श्रावक को करने का आगाढ तप है। गुणना आदि निम्न है। (जिस गणधर का तप चलता हो उस नाम की गुणना करना)

ऊपर का यह तप वैसाख सुदी ११ से शुरू किया जाता है। उस दिन गणधर के देव वांदे। यह तप ११ छट्ठ कर के भी किया जाता है।

	सा.	ख.	लो.	नो.
१. श्री इंद्रभूति गणधराय नमः	११	११	११	२०

२.	श्री अग्निभूति गणधराय नमः	११	११	११	२०
३.	श्री वायुभूति गणधराय नमः	,,	,,	,,	,,
४.	श्री व्यक्तभूति गणधराय नमः	,,	,,	,,	,,
५.	श्री सुधर्मास्वामी गणधराय नमः	,,	,,	,,	,,
६	श्री मडित गणधराय नमः	,,	,,	,,	,,
७.	श्री मौर्यपुत्र गणधराय नमः	,,	,,	,,	,,
८.	श्री अकपित गणधराय नमः	,,	,,	,,	,,
९.	श्री अचलभ्रातृ गणधराय नमः	,,	,,	,,	,,
१०.	श्री मेतार्य गणधराय नमः	,,	,,	,,	,,
११.	श्री प्रभास गणधराय नमः	,,	,,	,,	,,

दूसरी विधि—गणधर एकादशी ११ वर्ष तक करना। प्रथम वैशाख सुद ११ के दिन उपवास करना। श्री इंद्रभूति-सर्वज्ञाय नमः पद की बीस माला गिनना। दूसरे वर्ष वेशाख सुद ११ को उपवास कर श्री अग्निभूति सर्वज्ञाय नमः पद की बीस माला गिनना। इस प्रकार ११ वर्ष ११ गणधरो की आराधना करना।

३९. श्री अशोक वृक्ष तप

अशोक यानि शोक रहित। जिस वृक्ष के अवलम्बन से भय, शोक नाश हो उस वृक्ष को अशोक वृक्ष कहते है। जसे भूमि और क्षेत्र मे गुण होते है वैसे वृक्ष मे भी गुण होते हैं। अशोक वृक्ष का वातावरण ही ऐसा होता है कि—ससार के त्रिविध ताप से तप्त हुए प्राणी को बाह्य और आभ्यतर शाति प्रदान कर सकता है।

अशोक वृक्ष की इस विशेषता के कारण ही उसे भगवत के प्रतिहार्यों मे मुख्य स्थान मिला है। जब जब भगवंत देशना देते हैं और समवसरण की रचना की जाती है तब तब अशोक वृक्ष भगवंत के देह से बारह गुणा ऊंचा होता है।

श्री अशोक वृक्ष तप की विधि

आश्विनशुक्लप्रतिपदमारभ्य तिथीश्च पंच निजशक्त्या।
कुर्यात्तपसा सहितः पंच समा इदमशोकतपः॥१॥

अशोक वृक्ष की तरह यह तप मंगलकारी होने से अशोक तप कहलाता है। इसे आश्विन शुक्ल पक्ष की एकम के दिन शुरू कर शुद पचमी तक अर्थात् पांच दिन तक शक्ति अनुसार एकासना आदि तप करना। हमेशा अशोक वृक्ष सहित श्री जिनेश्वर की पूजा करना। इस तरह पांच वर्ष करना। (जैन प्रबोध तथा जैन धर्म सिंधु मे ऐसा लिखा है कि—आश्विन मास में पद्रह उपवास और पद्रह एकासना एकान्तर करना। इस तरह करने से एक ही वर्ष में यह तप पूर्ण हो जाता है)।

उद्यापन मे अशोक वृक्ष सहित नया जिनबिंब बनवाकर विधि पूर्वक प्रतिष्ठा कराना। छैः ऋतु के पुष्प, फल, सुपारी वगैरह से पूजा करना। यथाशक्ति फल, मोदक, नैवेद्य रखना। इस तप के फल से सब सुखों की प्राप्ति होती है। यह मुनिराज तथा श्रावक को करने का आगाढ तप है।

"अशोकवृक्षतपसे नमः" की बीस माला तथा स्वस्तिक वगैरह बारह बारह करना।

४०. श्री एक सौ सित्तर जिन तप
(विजय ओली तप)

कर्म भूमियों में ही श्री तीर्थंकर भगवंतो के जन्म होते है। अढाई द्वीप मे ऐसी पद्रह कर्म भूमियां हैं। ५ भरत, ५ ऐरवत, ५ महाविदेह, महाविदेह क्षेत्र मे बत्तीस विजय हैं।

भरत तथा ऐरवत क्षेत्र में एक अवसर्पिणी या उत्सर्पिणी काल मे तीसरे आरे के प्रांत भाग से चौथे आरे के तीन वर्ष और साढ़े आठ मास बाकी रहें उतने समय में चौबीस-चौबीस तीर्थंकर हुए हैं और शेष आरो में तीर्थंकर नही होते हैं। परन्तु महाविदेह क्षेत्र में तो अमुक अमुक विजयों में तो तीर्थंकर विचरते ही है। महाविदेह क्षेत्र मे कदापि तीर्थंकरों का विरह नही होता।

कभी ऐसा भी उत्कृष्ट काल आता है कि जिस समय महाविदेह की बत्तीस ही विजयो में और भरत तथा ऐरवत क्षेत्र मे भी तीर्थंकर विचरते हो तब वह संख्या १७० तीर्थंकरों की होती है। महाविदेह की बत्तीस विजय। ऐसे पांच महाविदेह की १६० विजयों में १६० तीर्थंकर, पांच भरत के और पांच ऐरवत के मिलकर कुल १७० तीर्थंकर विचरते हैं।

यह स्वाभाविक ही है कि जिस समय जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र मे तीर्थंकर विचरते हो उसी समय घातकी खण्ड या पुष्करावर्त क्षेत्र मे भी विचरते ही हैं। इस प्रकार महाविदेह और ऐरवत क्षेत्र मे भी जानना।

१७० तीथकर एक ही समय मे विचरते हो ऐसा वर्त्तमान चौवीसी के दूसरे तीर्थंकर श्री अजितनाथ भगवंत के समय अवसर आया था।

श्री एक सौ सित्तर जिन तप की विधि

सप्ततिशतजिनानामुद्दिश्यैकं भक्तं च ।
कुर्वाणानामुद्यापनात्तपः पूर्यते सम्यक् ॥१॥

एक सौ सित्तर जिनेश्वरो की आराधना के लिए यह तप है। इसमे एक सौ सित्तर तीर्थंकरो के आश्रय से आंतरा रहित एक एक एकासना करना अर्थात् एक सौ सित्तर लगातार एकासना करना। अथवा वीस एकासना लगातार कर पीछे एक पारणा करना। इस प्रकार आठ वार करने से एक सौ साठ एकासने होते है। इसके बाद दस एकासना करना अर्थात् १७० एकासना और नौ पारणे होते हैं। अथवा एकान्तर एक सौ सित्तर उपवास करने का भी कितनो का मत है।

उद्यापन में वड़ी स्नात्र विधि से जिन पूजा कर एक सौ सित्तर पकवान, फल, पुष्प आदि रखना। संघ पूजा, संघ वात्सल्य करना। इस तप के फल से आर्यक्षेत्र में जन्म होता है। जिस दिन जिन तीर्थंकर का तप चलता हो, उस दिन उन तीर्थंकर के नाम को गुणना करना। स्वस्तिक, खमासमणा और कायोत्सर्ग बारह बारह करना। माला बीस बीस गिनना। गुणना निम्न प्रकार है।

श्री जंबूद्वीप के महाविदेह के जिन नाम

१ श्री जयदेव सर्वज्ञाय नमः
२ श्री कर्णभद्र " "
३ श्री लक्ष्मीपति " "
४ श्री अनतहर्ष " "
५ श्री गंगाधर " "
६ श्री विशालचंद्र " "
७ श्री प्रियंकर " "
८ श्री अमरादित्य " "
९ श्री कृष्णनाथ " "
१० श्री गुणगुप्त " "
११ श्री पद्मनाथ " "
१२ श्री जलधर " "
१३ श्री युगादित्य " "
१४ श्री वरदत्त " "
१५ श्री चद्रकेतु " "
१६ श्री महाकाय " "
१७ श्री अमरकेतु सर्वज्ञाय नमः
१८ श्री अरण्यवास " "
१९ श्री हरिहर " "
२० श्री रामेन्द्र " "
२१ श्री शांतिदेव " "
२२ श्री अनंतकृत " "
२३ श्री गजेन्द्र " "
२४ श्री सागरचंद्र " "
२५ श्री लक्ष्मीचद्र " "
२६ श्री महेश्वर " "
२७ श्री ऋषभदेव " "
२८ श्री सौम्यकाति " "
२९ श्री नेमिप्रभ " "
३० श्री अजितभद्र " "
३१ श्री महोधर " "
३२ श्री राजेश्वर " "

धातकी खण्ड के प्रथम महाविदेह के जिन नाम

१ श्री वीरचंद्र सर्वज्ञाय नमः
२ श्री वत्ससेन " "
३ श्री नीलकाति " "
४ श्री मुंजकेशि " "
५ श्री रुकिमकस " "
६ श्री क्षेमकर " "
७ श्री मृगांकनाथ सर्वज्ञाय नमः
८ श्री मुनिमूर्ति " "
९ श्री विमलनाथ " "
१० श्री आगमिक " "
११ श्री निष्पापनाथ " "
१२ श्रीवसु धराधीप " "

१३ श्री मल्लिनाथ सर्वज्ञाय नमः
१४ श्री वनदेव " "
१५ श्री वलभृत " "
१६ श्री अमृत वाहन " "
१७ श्री पूर्णभद्र " "
१८ श्री रेवांकित " "
१९ श्री कल्पशाख " "
२० श्री नलिनीदत्त " "
२१ श्री विद्यापति " "
२२ श्री सुपार्श्वनाथ " "
२३ श्री भानुनाथ " "

२४ श्री प्रभंजन सर्वज्ञाय नमः
२५ श्री विशिष्टनाथ " "
२६ श्री जलप्रभ " "
२७ श्री मुनिचंद्र " "
(श्री महा भीम) " "
२८ श्री ऋषिपाल " "
२९ श्री कुडंगदत्त " "
३० श्री भूतानंद " "
३१ श्री महावीर " "
३२ श्री तीर्थेश्वर " "

धातकी खण्ड के दूसरे महाविदेह के जिन नाम

१ श्री धर्मदत्त सर्वज्ञाय नमः
२ श्री भूमिपति " "
३ श्री मेरुदत्त " "
४ श्री सुमित्र " "
५ श्री श्रीषेणनाथ " "
६ श्री प्रभानंद " "
७ श्री पद्माकर " "
८ श्री महाघोष " "
९ श्री चंद्रप्रभ " "
१० श्री भूमिपाल " "
११ श्री सुमतिषेण " "
१२ श्री अतिच्यु " "
(श्री अच्युत) " "

१३ श्री तीर्थभूति सर्वज्ञाय नमः
१४ श्री ललितांग " "
१५ श्री अमरचंद्र " "
१६ श्री समाधिनाथ " "
१७ श्री मुनिचंद्र " "
१८ श्री महेंद्रनाथ " "
१९ श्री शशांक " "
२० श्री जगदीश्वर " "
२१ श्री देवेंद्रनाथ " "
२२ श्री गुणनाथ " "
२३ श्री उद्योतनाथ " "
२४ श्री नारायण " "

२५ श्री कपिलनाथ	सर्वज्ञाय	नमः	२९ श्री शीलारनाथ	सर्वज्ञाय	नमः
२६ श्री प्रभाकर	,,	,,	३० श्री वज्रधर	,,	,,
२७ श्री जिनदीक्षित	,,	,,	३१ श्री सहस्रार	,,	,,
२८ श्री सकलनाथ	,,	,,	३२ श्री अशोकाख्य	,,	,,

श्री पुष्करार्धे प्रथम महाविदेह के जिन नाम

१ श्री मेघवाहन	सर्वज्ञाय	नमः	१७ श्री सिद्धार्थनाथ	सर्वज्ञाय	नमः
२ श्री जीव रक्षक	,,	,,	१८ श्री सफलनाथ	,,	,,
३ श्री महा पुरुष	,,	,,	१९ श्री विजयदेव	,,	,,
४ श्री पापहर	,,	,,	२० श्री नरसिंह	,,	,,
५ श्री मृगांकनाथ	,,	,,	२१ श्री शतानंद	,,	,,
६ श्री सुरसिंह	,,	,,	२२ श्री वृंदारक	,,	,,
७ श्री जगत्पूज्य	,,	,,	२३ श्री चन्द्रातप	,,	,,
८ श्री सुमतिनाथ	,,	,,	२४ श्री चित्र(चंद्र)गुप्त	,,	,,
९ श्री महामहेंद्र	,,	,,	२५ श्री दृढरथ	,,	,,
१० श्री अमरभूति	,,	,,	२६ श्री महायशा	,,	,,
११ श्री कुमारचंद्र	,,	,,	२७ श्री उष्माक	,,	,,
१२ श्री वारिषेण	,,	,,	२८ श्री पद्युम्ननाथ	,,	,,
१३ श्री रमणनाथ	,,	,,	२९ श्री महातेज	,,	,,
१४ श्री स्वयंभू	,,	,,	३० श्री पुष्पकेतु	,,	,,
१५ श्री अचलनाथ	,,	,,	३१ श्री कामदेव	,,	,,
१६ श्री मकरकेतु	,,	,,	३२ श्री समरकेतु	,,	,,

पुष्करार्धे दूसरे महाविदेह के जिन नाम

१ श्री प्रसन्नचंद्र	सर्वज्ञाय	नमः	३ श्री वज्रनाथ	सर्वज्ञाय	नमः
२ ,, महासेन	,,	,,	४ ,, सुवर्णबाहु	,,	,,

५ श्री कुरुचंद्र (कुरुविंद)	सर्वज्ञाय	नमः	
६ ,, वज्रवीर्य	,,	,,	
७ ,, विमलचंद्र	,,	,,	
८ ,, यशोधर	,,	,,	
९ ,, महाबल	,,	,,	
१० ,, वज्रसेन	,,	,,	
११ ,, विमलबोध	,,	,,	
१२ ,, भीमनाथ	,,	,,	
१३ ,, मेरुप्रभ	,,	,,	
१४ ,, भद्रगुप्त	,,	,,	
१५ ,, सुदृढ़सिंह	,,	,,	
१६ ,, सुव्रत	,,	,,	
१७ ,, हरिचंद्र	,,	,,	
१८ ,, प्रतिमाधर	,,	,,	
१९ श्री अतिश्रेय (श्री अजितनाथ)	सर्वज्ञाय ,,	नमः ,,	
२० श्री कनककेतु	,,	,,	
२१ ,, अजितवीर्य	,,	,,	
२२ ,, फल्गुमित्र	,,	,,	
२३ ,, ब्रह्मभूत(ति)	,,	,,	
२४ ,, हित(दिन)कर	,,	,,	
२५ ,, वरुणदत्त	,,	,,	
२६ ,, यश.कीर्ति	,,	,,	
२७ ,, नागेंद्र	,,	,,	
२८ ,, महीधर	,,	,,	
२९ ,, कृतब्रह्म (कृतवर्म)	,,	,,	
३० ,, महेंद्र	,,	,,	
३१ ,, वर्धमान	,,	,,	
३२ ,, सुरेंद्रदत्त	,,	,,	

१ जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे—श्री अजितनाथ सर्वज्ञाय नमः
२ घातकी खण्डे प्रथम भरत क्षेत्रे—श्री सिद्धान्त सर्वज्ञाय नमः
३ घातकी खण्डे द्वितीय भरत क्षेत्रे—श्री करणनाथ ,,
४ पुष्करार्धे प्रथम भरत क्षेत्रे—श्री प्रभासनाथ ,,
५ पुष्करार्धे द्वितीय भरत क्षेत्रे—श्री प्रभावकनाथ ,,
६ जम्बूद्वीपे ऐरवत क्षेत्रे—श्री चंद्रनाथ ,,
७ घातकी खण्डे प्रथम ऐरवत क्षेत्रे—श्री जयनाथ ,,
८ घातकी खण्डे द्वितीय ऐरवत क्षेत्रे—श्री पुष्पदंत ,,
९ पुष्करार्धे द्वितीय ऐरवत क्षेत्रे—वलि (ल) भद्र ,,

यह तप जैन प्रबोध आदि मे भी है।

४१. श्री नवकार तप

नवकार महामंत्र के स्वरूप का सम्पूर्ण वर्णन केवली भगवंत भी नही कर सकते, क्योकि जैसे तिल में तेल, कमल में मकरंद-सुगंध व्याप्त होती है वैसे सम्पूर्ण आगमों में नवकारमंत्र व्याप्त है। चौदह पूर्व का सार कहना हो तो 'नवकार मत्र' ही कहा जा सकता है।

नवकार मंत्र का ऐसा अचित्य प्रभाव है कि इसे कोई उपमा नही दी जा सकती, फिर भी व्यवहारिक रूप मे कहना हो तो उपा० श्री यशोविजयजी महाराज ने अपनी रचित **"पंच-परमेष्ठी गीता"** में वर्णन करते हैं जैसे....

पर्वत में मेरू पर्वत, वृक्ष में कल्पवृक्ष, सुगंध में चंदन, वन में नंदनवन, पक्षियो में गरुड़, तारा मे चंद्र, नदियों में गगा, स्वरूपवंत में कामदेव, देवों मे इंद्र, समुद्र में स्वयंभूरमण, पुष्प मे कमल, औषधि में अमृत, धर्म मे दयाधर्म, व्रत में ब्रह्मचर्य व्रत, दान मे अभयदान श्रेष्ठ है वैसे सर्व मंत्रो में **'नवकार महामंत्र शिरोमणि है'**।

नवकार महामंत्र के प्रभाव से अनेक जीवों को मुक्ति मिली है और अनेक मनुष्यो को इहलोक और परलोक की ऋद्धि प्राप्त हुई है, जिनमे भील भीलड़ी, राजसिह और रत्नवती, शिवकुमार, श्रीमती, जिनदास, चडपिगल चोर, हुडिक यक्ष, श्रीपाल राजा, कंबल-सबल, लोह खुरा चोर आदि अनेक दृष्टात हैं, उनमे से श्रीमती और शिवकुमार की कथा सक्षिप्त मे यहां प्रस्तुत की जाती है।

श्रीमती

पोतनपुर के सुव्रत श्रेष्ठि के श्रीमती नाम की गुणवान पुत्री थी। धर्म शास्त्र के अभ्यास से वह तत्त्व के मर्म को भी जानती थी तथा उसका आचार भी शुद्ध था। जैसे श्रीमती धर्म मे प्रवीण थी वैसे गृहकार्य मे भी चतुर थी। उसमे रूप तथा गुण दोनों का सुमेल था। उसी नगर मे एक मिथ्यादृष्टि श्रेष्ठीपुत्र था। उसने श्रीमती की मांग की। सुव्रत सेठ ने पहले तो मना किया; परन्तु उस सेठ के पुत्र ने अतिशय धर्मात्मा होने और जैनधर्म पर रागी होने का आडम्बर करना शुरू किया, और अंत में बहुत समझाने पर सुव्रत सेठ ने श्रीमती को उसके साथ धामधूम से शादी कर दी।

शादी के बाद सुसराल आने पर श्रीमती का गृह-व्यवहार कुछ दिन तक शांतिपूर्वक चलता रहा परन्तु उसके बाद श्रीमती के परम श्राविका धर्म के कारण उसकी नणंद आदि किसी न किसी कारण से उस पर प्रायः गुस्सा किया करती। श्रीमती इसका कारण समझ गई फिर भी निश्चल चित्त से धर्म का पालन करती। धीरे धीरे पति भी उससे विमुख होने लगा। उसके सास-ससुर भी उसका अनादर करने लगे, फिर भी श्रीमती तो निश्चल मन से धर्म की आराधन करती और गृह-कार्य मे जरा भी कमी नही बताती।

उसके सास-ससुर अपने पुत्र की दूसरी शादी करनें की योजना बनाने लगे, परन्तु श्रीमती के होते हुए ऐसा कैसे हो सकता था? एक दिन घर के सब मनुष्यो ने एकान्त मे मिलकर एक षड़यन्त्र रचा। घर की अंधेरी कोटड़ी मे एक घड़े मे बड़ा

भयंकर सर्प रखकर उसका मुंह ढक्कन से बंद कर दिया। पीछे मौका देखकर उसके पति ने श्रीमती को कहा कि कोटड़ी में रखे घड़े मे से पुष्पमाला ले आ। पूजा के लिये मुझे चाहिये।

श्रीमती को इस षड़यत्र का पता नही था। वह प्रतिदिन नवकार मंत्र का स्मरण करती। आज भी स्मरण करते करते वह अंधेरी कोटडी मे गई, ढक्कन उठाकर घडे मे हाथ डालकर पुष्पमाला लेकर पति के पास आई।

नवकारमत्र के प्रभाव से शासनदेवी ने घड़े मे से सर्प निकाल कर उस जगह पुष्पमाला रख दी थी।

यह दृश्य देख चकित होकर उसके पति ने घर के सब लोगो को इकट्ठा किया और हुई घटना कह सुनाई। इस प्रभाव से घर के समस्त लोग श्रीमती के चरण में गिरे और अपने दुष्ट आचरण की क्षमा मागी।

श्रीमती ने कहा कि आप सब तो मेरे पूज्य है, मेरा तो इतना ही कहना है कि आप सब सन्मार्ग पर चले, सद्धर्म का आचरण करे और प्रतिदिन नवकार मत्र का स्मरण करें। खुश हुए सास-ससुर ने श्रीमती के कहने से वड़ा महोत्सव किया और धन का उपयोग धर्म कार्यों मे व्यय करने लगे।

शिवकुमार

यशोभद्र नामक सेठ के शिव नाम का पुत्र था। बचपन से ही वह जुआ आदि व्यसनो मे फंस गया था। उसके पिता ने उसे कई बार समझाया फिर भी उस पर कोई असर नही

हुआ। उसके पिता नें उसे धर्म मार्ग पर लाने का भी प्रयत्न किया परन्तु उसमे भी सफलता नही मिली। अंत में उसके पिता ने उसे एकांत में बुलाकर कहा–पुत्र ! और तो कोई बात नही परन्तु जब तेरे पर भयंकर आपत्ति आवे तब तू 'नवकार' मत्र का स्मरण करना। तेरी विपत्ति उसके स्मरण मात्र से दूर हो जायगी। पिता के अतिशय आग्रह से उसने नवकार मंत्र सीख लिया।

लंपटी और जुआरी लोगों के संसर्ग से शिवकुमार की सम्पूर्ण सम्पत्ति समाप्त हो गई। धन चले जानें से अब कोई उसका आदर-सत्कार भी नही करता। मित्रो ने भी उसका साथ छोड़ दिया। अकेले घूमते एक बार शिव को एक त्रिदंडी योगी मिल गया। उसनें उसकी उदासी का कारण पूछा, इसलिए शिवकुमार ने अपनी दरिद्रता का हाल बताया। त्रिदंडी शिवकुमार जैसे सुलक्षण वाले का भोग देना चाहता था। उसने उसको अपनें जाल मे फंसाकर कहा,– "हे शिव ! यदि तू मेरा कहना माने तो घर की दासी के माफिक लक्ष्मी तेरे वश हो जावे।" शिव ने उसकी बात स्वीकार की इसलिए त्रिदडी ने कहा कि श्मशान में से कोई भी अक्षत शव (मुर्दा) ले आ।

काली चतुर्दशी की भयंकर रात्रि को संयासी ने शिव को उस शव तथा पुष्प आदि सामग्री लेकर भयानक श्मशान भूमि मे आने को कहा। श्मशान भूमि में त्रिदंडी ने एक भव्य मंडप बनाया। होम करने के लिए सुन्दर वाटिका बनाई और मुर्दे के हाथ मे तेज तलवार दी। पास के वृक्ष पर झूला बनाकर शिवकुमार को उसमे बिठाया, जिससे वह सीधा होम में ही

गिरे। बाद में दुष्ट त्रिदंडी निश्चल मन से मत्र स्मरण करने लगा।

यह सब देखकर शिवकुमार की समझ मे आया कि वह भयंकर विपत्ति मे फस गया है। त्रिदण्डी उसका भोग देना चाहता है। भयकर श्मशान, काली अधेरी रात्रि, क्रूर त्रिदण्डी, नंगी तलवार, खड़ा शव और त्रिदण्डी का मत्रोच्चार—यह सब देख शिवकुमार ने अपनी मृत्यु नजदीक ही समझी। इस समय पिता की दी शिक्षा उसे याद आई और वह एकाग्रता से नवकार मत्र का स्मरण करने लगा। त्रिदण्डी के मंत्र के प्रभाव से शव तलवार लेकर झूले के सूत के तार तोड़ने आगे बढता है परन्तु नवकार मत्र के प्रभाव से वह आगे नही बढ पाता है। ऐसा दो-चार बार होने से सशकित संयासी ने शिव से पूछा: क्या तू किसी तरह के मत्र को जानता है? शिव को पता नही कि उसके नवकार मत्र के स्मरण से सयासी का मंत्र निष्फल हो रहा है। उसने भोलेपन से कहा कि मैं तो कुछ भी नही जानता।

दोनो अपने २ मंत्र का स्मरण करने लगे। त्रिदडी के बल से मुर्दे मे अधिष्ठित हुआ वैताल शिवकुमार का कुछ भी अनिष्ट नही कर सका। शिवकुमार के स्थिर चित्त के मत्र जाप से उसका मनोबल बढा अर्थात् परेशान हुए वैताल ने त्रिदंडी को ही उठाकर होम मे फेक दिया, जिससे उसमे से स्वर्ण पुरुष उत्पन्न हुआ।

शिवकुमार इस घटना को देखकर अति आश्चर्य चकित हुआ। अपने नवकार मत्र के जाप का यह प्रत्यक्ष परिणाम

उसनें अपनी आंखों से देखा। उसने नीचे उतरकर स्वर्ण पुरुष को गुप्त रीति से जमीन मे गाड़ उसमे से थोड़ा स्वर्ण लेकर अल्प समय में ही वह महा श्रीमत वन गया।

उसे धर्म का प्रभाव वरावर समझ मे आगया इसलिए उसने अपना द्रव्य सन्मार्गो में खुले हाथ से खर्च किया और अन्त में नवकार मंत्र की प्रतिदिन भाव पूर्वक आराधनाकर सद्गति प्राप्त की।

नमस्कार महामत्र की महत्ता सम्वंधी प्राचीन महर्षियो नें अनेक ग्रंथ लिखे हैं तथा अनेक जगह तत्सम्वंधी वर्णन भी किये हैं, कहा है कि—

सङ्ग्राम-सागर-करीन्द्र-भुजङ्ग सिंह—
दुर्व्याधि-वह्नि-रिपु-बंधन-सम्भवानि।
चौर-ग्रह-भ्रम-निशाचर-शाकिनीनाम्,
नश्यन्ति पञ्चपरमेष्ठिपदैर्भयानि॥
(उपदेश तरङ्गिणी)

नवकार महामत्र के प्रभाव से युद्ध, समुद्र, हस्ति, सर्प, सिंह, दुष्ट व्याधि, अग्नि, शत्रु, वंधन चोर, ग्रह, भ्रम, राक्षस और शाकिनी के उपद्रव दूर भाग जाते हैं।

जो पुण सम्मं गुणिउम्, नरो नमुक्कार-लक्खमक्खंडम्।
पूएइ जिणं संघं, बंधइ तित्थयरनामं सो॥ (श्राद्ध कृत्य)

जो मनुष्य एक लाख नवकार अखण्ड रूप से गिनता है

तथा श्री जिनेश्वर देव तथा संघ की पूजा करता है वह तीर्थंकर नाम कर्म का बंधन करता है।

"नव लाख जपंता नरक निवारे" तथा "नव लाख जपंता थाये जिनवर" आदि सुभाषित बहुत ही प्रचलित है।

नमस्कारसमो मंत्रः, शत्रुंजयसमो गिरिः ।
वीतरागसमो देवो, न भूतो न भविष्यति ।।

यह सुभाषित भी नवकार महामंत्र की श्रेष्ठता सिद्ध करता है। कहा है कि—नवकार समान मंत्र, शत्रुंजय समान पर्वत, वीतराग समान देव भूतकाल में नही हुए और भविष्य में भी नही होगे।

जैन समाज के सर्व सम्प्रदायो को मान्य यह महामंत्र है। नमस्कार महामंत्र का वर्णन करने से बहुत ही विस्तार हो जाय इसलिए जिज्ञासुओं को इस सम्बंध में "नमस्कार महामंत्र" नामक पुस्तक को पढ़ना चाहिए।

श्री नवकार तप की विधि

नमस्कारतपश्चाष्टषष्टिसंख्यैकभक्तकैः ।
विधीयते च तत्पादसंख्यायास्तु प्रमाणतः ।।१।।

नवकार महामंत्र की आराधना के लिए जो तप किया जाता है वह नमस्कार तप कहलाता है। इसके पहले पद मे सात वर्ण है इसलिए उसके सात उपवास अथवा सात एकासना करना। दूसरे पद मे पांच अक्षर होने से पांच उपवास अथवा

पांच एकासना करना । तीसरे पद मे सात, चौथे पद के सात पाचवे पद के नव उपवास अथवा एकासना । इस प्रकार करने से अडसठ उपवास अथवा एकासने होते है। ये उपवास अथवा एकासना लगातार करना अथवा शक्ति न हो तो सपदा सपदा से पारणा करके करना (सपदा ऊपर अनुसार जानना, परन्तु आठवे व नवें पद की सपदा एक ही गिनना) उपवास करें तो एकान्तर से करें[1] । उसमे पारणा पर वियासणा करना ।

उद्यापन मे चांदी के पतरे पर स्वर्ण की स्याही से पच परमेष्ठि का मत्र[2] लिखकर ज्ञान पूजा करना । अड़सठ अडसठ फल, पुष्प, रूपानाणा, पकवान आदि रखना । गुरु पूजा, सघ पूजा, सघ वात्सल्य करना । अपनी २ सपदा का गुणना, स्वस्तिक, वगैरह निम्न प्रकार है ।

	स.	ख.	लो.	नो.
पहली संपदा-नमो अरिहंताण	७	७	७	२०
दूसरी सपदा-नमो सिद्धाण	५	५	५	२०
तीसरी सपदा-नमो आयरियाण	७	७	७	२०
चौथी सपदा-नमो उवज्झायाण	७	७	७	२०
पाचवी सपदा-नमो लोए सव्वसाहूण	९	९	९	२०
छठी सपदा-एसो पच नमुक्कारो	८	८	८	२०
सातवी सपदा-सव्वपावप्पणासणो	८	८	८	२०
आठवी सपदा-मगलाण च सव्वेसिं पढम हवई मगल	१७	१७	१७	२०

[1] आठवें व नवें पद में सात छठ्ठ तथा एक अठ्ठम करना ऐसी मान्यता है।
[2] दूसरी प्रतियो मे कस्तूरी से लिखने को कहा है ।

इस तप के फल से समस्त सुखों की प्राप्ति होती है। यति तथा श्रावक के करने का यह आगाढ तप है।

नवकार पद का तप सेन प्रश्न में इस प्रकार लिखा है :-

प्रथम पद के सात अक्षर के लिए लगातार सात उपवास करना। दूसरे के पांच अक्षर के लिए लगातार पाच उपवास करना। इस तरह सात पद तक हरएक सपदा के अक्षर के अनुसार लगातार उपवास करना और आठवे, नवें सपदा मे शक्ति हो तो १७ उपवास एक ही साथ करे और शक्ति न हो तो पहले आठ कर पारणा कर फिर नौ उपवास करे। हरएक पद का गुणना एक एक लाख गिने और यदि आठवा व नवा पद साथ करें (१७ उपवास लगातार करे) तो इन दो पदो का एक साथ दो लाख जाप करे।

प्रथम पद का तप करे तब सात दिन तक 'नमो अरिहंताणं' का एक लाख जाप करे, इस तरह जिस २ पद का तप करे उस पद का जाप एक लाख करे और यदि शक्ति न हो तो हर-एक को दो हजार बार गिनें। स्वस्तिक, खमासमणा आदि पूर्व की तरह जानना।

---

४२. श्री चौदह पूर्व तप

'चौदह पूर्व के जानकर' इतने मात्र से अपने को चौदह पूर्व के प्रमाण का वास्तविक स्वरूप समझ मे नही आयगा। श्री भद्रबाहु स्वामी (छठे पट्टधर) तक चौदह पूर्व का ज्ञान

बराबर कायम था । इसके बाद भी श्री स्थूलभद्र स्वामी दस पूर्व के ज्ञाता हुए और श्रीसंघ के आग्रह से मूल मात्र चार पूर्व श्री भद्रबाहु स्वामी ने उन्हें सिखाये । उसके वाद काल के प्रभाव से पूर्व सम्बंधी ज्ञान क्रमशः कम होता गया और अंत मे स्मरण शक्ति की अति मंदता आने से श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने उपलब्ध ज्ञान को ग्रंथारूढ़ किया, यह अपने पर परमोपकारी ऋण है ।

पूर्व का प्रमाण कितना उसे जानने के लिए भगवंतो नें बताया है कि :—

१ उत्पाद पूर्व–	एक हस्ती जितने प्रमाण की स्याही से लिखा जाय ।				
२ आग्रायणी पूर्व–	दो	,,	,,	,,	,,
३ वीर्य प्रवाद पूर्व–	चार	,,	,,	,,	,,
४ अस्ति प्रवाद पूर्व–	आठ	,,	,,	,,	,,
५ ज्ञान प्रवाद पूर्व–	सोलह	,,	,,	,,	,,
६ सत्य प्रवाद पूर्व–	बत्तीस	,,	,,	,,	,,
७ आत्म प्रवाद पूर्व–	चौंसठ	,,	,,	,,	,,
८ कर्म प्रवाद पूर्व–	एक सौ अट्ठाइस	,,	,,	,,	,,
९ प्रत्याख्यान प्रवाद पूर्व–	दो सौ छप्पन	,,	,,	,,	,,
१० विद्या प्रवाद पूर्व–	पांच सौ बारह		,,	,,	,,
११ कल्याण प्रवाद पूर्व–	एक हजार चौवीस	,,	,,	,,	,,

१२ प्राणावाय पूर्व– दो ,, ,, ,, ,,
हजार अड़तालीस

१३ क्रिया विशाल पूर्व– चार ,, ,, ,, ,,
हजार छिनवे

१४ लोक बिंदुसार पूर्व– आठ ,, ,, ,, ,,
हजार एक सौ बरानवे

कुल सोलह हजार, तीन सौ और तियासी हस्ती को तोलनें से जो प्रमाण हो उतने प्रमाण स्याही से जितना लिखा जाय उसे चौदह पूर्व प्रमाण कहते हैं।

ऐसे अपूर्व श्रुतधर महापुरुषों द्वारा कथित जैनागमों में शंकास्पद बात कैसे सभव हो सकती है ? ज्ञान ही अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करने मे सूर्य सदृश्य है इसलिए ज्ञान रूप चौदह पूर्व की आराधना करना स्वपरहितकारक है।

श्री चौदह पूर्व तप की विधि

शुक्लपक्षे तपः कार्य, चतुर्दश चतुर्दशीः ।
चतुर्दशानां पूर्वाणां, तपस्तेन समाप्यते ॥१॥

चौदह पूर्व की आराधना के लिए जो तप किया जाता है वह चौदह पूर्व का तप कहा जाता है। इसमे शुभ मुहुर्त में शुद चतुर्दशी के दिन प्रारम्भ कर चतुर्दशी चतुर्दशी को शक्ति अनुसार उपवास अथवा एकासना आदि तप करना अथवा दोनों चतुर्दशी मिलाकर सात माह मे पूरा करना। (यह चतुर्दशी तप भी कहलाता है) अथवा शुद चतुर्दशी के दिन प्रारम्भ कर लगातार

चौदह दिन तक एकासना करके पूरा करना। प्रथम आगम की स्थापना करना। वासक्षेप से उसकी पूजा करना। ज्ञान के पास नीचे बताये अनुसार नित्य स्वस्तिक करना। नित्य चैत्यवदन करना। ज्ञान की यथाशक्ति रूपानाणे से पूजा करना। ज्ञान की पूजा पढाना। स्तवन की जगह ज्ञान की पूजा करना। (अंतिम दिन वरघोडा निकालना)

उद्यापन ज्ञानपचमी की तरह करना (देखो तप स. ४७ अथवा ४६) विशेष मे यह कि १४ पुस्तके लिखवाकर रखना तथा चौदह चौदह पदार्थ-उपकरण लेना, गुरुपूजा, संघपूजा, सघवात्सल्य आदि करना। **इस तप के फल से सम्यक् श्रुतज्ञान की प्राप्ति होती है।** यह मुनिराज तथा श्रावक के करने का आगाढ तप है। गुणना आदि नीचे अनुसार। जिस पूर्व का तप चलता हो उस पूर्व का गुणना गिनना।

		सा.	ख	लो.	नो.
१	श्री उत्पाद पूर्वाय नम.	१४	१४	१४	२०
२	,, आग्रायणी पूर्वाय नमः	२६	२६	२६	२०
३	,, वीर्यप्रवाद पूर्वाय नमः	१६	१६	१६	२०
४	,, अस्तिप्रवाद पूर्वाय नमः	२८	२८	२८	२०
५	,, ज्ञानप्रवाद पूर्वाय नमः	१२	१२	१२	२०
६	,, सत्यप्रवाद पूर्वाय नम.	२	२	२	२०
७	,, आत्मप्रवाद पूर्वाय नमः	१६	१६	१६	२०
८	,, कर्मप्रवाद पूर्वाय नमः	३०	३०	३०	२०
९	,, प्रत्याख्यानप्रवाद पूर्वाय नम	२०	२०	२०	२०
१०	,, विद्याप्रवाद पूर्वाय नमः	१५	१५	१५	२०
११	,, कल्याणप्रवाद पूर्वाय नम.	१२	१२	१२	२०
१२	,, प्राणावाय पूर्वाय नमः	१३	१३	१३	२०
१३	,, क्रियाविशाल पूर्वाय नमः	३०	३०	३०	२०
१४	,, लोकबिंदुसार पूर्वाय नमः	२५	२५	२५	२०

४२-२ श्री चतुर्दशी तप

'चउदसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणित्ति'—अर्थात् दो चतुर्दशी, दो अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा ये छः पर्व तिथियाँ है, पर्व तिथियो मे भी चतुर्दशो श्रेष्ठ है। उस पर्व तिथि मे विशेप-प्रकार से धर्माराधन, तपश्चर्या करना चाहिए। यहा यह भी जान लेना जरूरी है कि—दूज, पचमी और ग्यारस ये ज्ञान तिथिया है और श्री जिनेश्वर भगवत की कल्याणक तिथिया तथा पर्युषण के दिन ये चारित्र तिथिया है।

४२-२ श्री चतुर्दशी तप की विधि

शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी के दिन जो तप किया जाता है वह चतुर्दशी तप कहा जाता है। इस तप मे चौदह शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को एकासना आदि यथाशक्ति किया जाता है।

उद्यापन मे चौदह तरह के धान्य तथा चौदह फल आदि ज्ञान के पास अथवा प्रभु के पास रखे जाते हैं।

शुक्ल पक्ष की ग्यारस ११ माह तक करना और शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी १४ मास उपवास से करना। इन दोनो तपो मे मौन रखना। इस तप को श्रुतदेवी तप भी कहते है, ऐसा एक प्राचीन प्रति मे लिखा है।

---

४३. श्री एकावलि तप

जिस तप मे एकावलि स्वर्ण आभूपण की तरह, पदक, पुष्प, दाडिम, सेर आदि की तरह तपश्चर्या की जावे वह एकावलि तप कहलाता है।

श्री एकावलि तप की विधि

एकाद्वित्र्युवासै. काहालिके द्वे तथा च दाडिमके ।
वसुसंख्यैश्चतुर्थैः श्रेणी कनकावलीवच्च ॥१॥

चतुस्त्रिंशच्चतुर्थैश्च पूर्यते तरलः पुनः ।
समाप्तिमेति साधूनामेवमेकावली तपः ॥२॥

एक आवली की तरह उपवास करने से एकावलि तप होता है। इसमे प्रथम एक उपवास पर पारणा, फिर दो उपवास पर पारणा, पीछे तीन उपवास पर पारणा, ऐसा करने से प्रथम काहलिका होती है। पीछे एकान्तर पारणे वाले आठ उपवास करना। ऐसा करने से काहलिका के नीचे दाडिम, पुष्प उत्पन्न होते हैं। इसके बाद एक उपवास पर पारणा, पीछे दो उपवास पर पारणा, पीछे तीन उपवास पर पारणा, इस तरह चढते चढते सोलह उपवास पर पारणा करने से हार की एक सेर पूरी होती है। इसके वाद चौतीस उपवास एकान्तर पारणे से करने से उस हार का पदक होता है। फिर विलोम के क्रम से, अर्थात् सोलह उपवास पर एक पारणा, पंद्रह उपवास पर एक पारणा, चौदह उपवास पर पारणा,

इस तरह उतरते उतरते एक उपवास पर पारणा करने से दूसरी सेर पूरी होती है। पीछे पारणे के आंतरे वाले आठ उपवास करने से दूसरी दाडिम के पुष्प उत्पन्न होते हैं। इसके बाद तीन उपवास और अंत मे एक उपवास पर पारणा। इस तरह करने से दूसरी काहलिका पूरी होती है। ऐसा करने से कुल ३३४ उपवास और ८८ पारणे होते हैं।

उद्यापन में वृहत्स्नात्र विधि से पूजा कर प्रतिमा को मुक्ताफल का एक सेर का बड़ा हार पहिनाना[1]। संघ वात्सल्य, संघपूजा, गुरुपूजा आदि करना। **यह तप करने से निर्मल गुण की प्राप्ति होती है।** यह मुनिराज तथा श्रावक का आगाढ़ तप है।

दूसरी विधि—एकासना १, नीवी १, आयंबिल १ तथा उपवास १, इस तरह एक ओली हुई। ऐसी पांच ओली करने से भी एकावलि तप होता है। (यह मतांतर विधिप्रपापा में है)

"नमो अरिहंताणं" पद की बीस माला गिनना, स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

४४. श्री दशविध यतिधर्म तप

मुख्यत: मुनियो को विशेष रूप से पालन करने योग्य होने से नीचे के दस गुण **'यतिधर्म'** से पहिचाने जाते हैं। इस

---

१ तथा स्वर्णाक्षर मय पुस्तक लिखवाकर सुविहित मुनिराज को वहोराना। ऐसा योग न हो तो श्रीसघ के भण्डार मे रखना, परन्तु अपने पास नही रखना।

यतिधर्म के पालने से 'आस्रव' का रोध होता है। और क्रोधादि विभाव दशा में जाता जीव स्व-स्वभाव मे स्थिर होता है। दस यतिधर्म का सक्षिप्त स्वरूप निम्न प्रकार है।

खंती मद्दव अज्जव, मुत्ती तवसंजमे अ बोद्धव्वो ।
सच्चं सोअं आकिंचणं च, बंभं च जइधम्मो ॥

(नव तत्त्व)

१. खंती–क्षमा-क्रोध उत्पन्न न होने देना अथवा उत्पन्न हो तो उसे निष्फल-दूर करना।

२. मद्दव–मार्दव-अभिमान द्वारा उत्पन्न हुए जाति आदि मद का त्याग करना।

३. अज्जव–आर्जव-माया का त्याग।

४. मुत्ती–निर्लोभत्ता-बाह्य परिग्रह की मूर्छा का त्याग।

५. तव–तपस्या-इच्छाओं का रोध।

६. संजमे–संयम-इद्रियो और कषायो पर विजय प्राप्त करना।

७. सच्च–सत्य-यथार्थ हितकारक और परिमित बोलना।

८. सोअं–शौच-अंतःकरण की पवित्रता तथा चोरी का त्याग।

९. आकिंचण–आकिंचन्य-सब प्रकार के परिग्रह का त्याग।

१०. बंभम्–ब्रह्मचर्य-विषयवासना का त्याग।

श्री दशविध यतिधर्म की विधि

संयमादौ दशविधे धर्मे एकान्तरा अपि ।
क्रियंत उपवासा यत्ततपः पूर्यते हि तैः ॥१॥

दस प्रकार के यतिधर्म की आराधना के लिए यह तप है। इसमे दस उपवास एकांतर करना । इस तरह यह तप २० दिन मे होता है (यह तप शुक्ल पक्ष मे शुरू होता है—जैन प्रबोध)

उद्यापन मे बड़ी स्नात्र विधि से देव पूजा कर दस दस फल, पकवान आदि वस्तुएं रखना । तथा मुनि को वस्त्र पात्र आदि वहोराना । सघपूजा, सघवात्सल्य करना । **इस तप के फल से शुद्ध धर्म की प्राप्ति होती है।** यह मुनिराज तथा श्रावक के करने का आगाढ तप है।

तप के दिनों में गुणना निम्न प्रकार करना—

१ क्षांतिगुणधराय नमः
२ मार्दवगुणधराय नमः
३ आर्जवगुणधराय नमः
४ मुक्तिगुणधराय नमः
५ तपोगुणधराय नमः
६ सयमगुणधराय नमः
७ सत्यगुणधराय नमः
८ शौचगुणधराय नमः
९ अकिंचनगुणधराय नमः
१० ब्रह्मचर्य गुणधराय नमः

स्वस्तिक १०, खमासमण १०, कायोत्सर्ग १० लोगस्स का और नवकारवाली २० गिनना ।

---

४५. श्री पंचपरमेष्ठी तप

अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु—ये पंच परमेष्ठि कहलाते है । तीनों काल और तीनो लोक में वे प्रतिष्ठित है ।

१. **अरिहंत**—मोक्ष मार्ग के प्रथम उपदेशक श्री अरिहंत भगवंत हैं । वे जन्म से ही तीन ज्ञान वाले होते हैं । दीक्षा प्राप्ति के बाद चौथा ज्ञान प्राप्त कर, केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष मार्ग बताते है । सिद्ध भगवंत देह रहित होने से तथा सामान्य केवलज्ञानी अतिशय रहित होने से, वे मोक्षमार्ग के आद्यदर्शक नही होते । अरिहत के **बारह गुण** हैं ।

२. **सिद्ध**—अरिहंतों के अरिहंतपन का उनके आयुष्य के अत में अंत आता है जब कि सिद्ध भगवतो का सिद्धपन तो अविनाशी है । सिद्ध भगवंतों के गुण तथा सुख अव्याबाध हैं । अव्याबाध सुख सिद्ध सिवाय अन्य किसी को प्राप्त नही होता । अरिहत भी आयुष्य कर्म के अंत तक देह के आधीन रहते हैं इसीलिए अरिहंत भी सिद्धत्व के लिए उद्यम करते हैं । सिद्ध भगवंत के **आठ गुण** हैं ।

३. **आचार्य**—अरिहंत देहधारी होते हुए भी सर्वकाल और सर्वक्षेत्रो मे उनकी हाजरी नही होती । सिद्ध भगवंत तो देह रहित ही हैं, इसलिए सर्वकाल और सर्वक्षेत्रो में मुक्ति के मार्ग को चलाने की जिम्मेवारी आचार्य पर होती है । आचार्य भगवंत के **छत्तीस गुण** हैं ।

४. **उपाध्याय**—आचार्य भगवंत राजा के स्थान पर है, तो

उपाध्याय भगवंत मंत्री के स्थान पर है। आचार्य भगवंत का स्वय विनय करना और दूसरो से विनय करवाना यह उनका मुख्य कर्तव्य है, क्योकि 'विनय के बिना विद्या नही वैसे विनय के बिना धर्म भी नही।' विनय से ज्ञान, ज्ञान से दर्शन (श्रद्धा), दर्शन से चारित्र और चारित्र से मोक्ष प्राप्त होता है। उपाध्याय भगवंत का मुख्य धर्म पढना और पढ़ाना। उपाध्याय के **पच्चीस गुण** हैं।

५. **साधु**—मोक्ष मार्ग के साधक वे साधु। आचार्यों के पास से आचार और उपाध्याय से विनय प्राप्त कर वे मुक्ति मार्ग की साधना करते है और मुक्ति के मार्ग यात्री को सहायक भी होते है। उनकी सहायता इस प्रकार की है कि—उसमें एक पैसा भी खर्च नही करना पड़ता। उनके पास से ज्ञान, दर्शन, तप, शील तथा स्वर्ग और अपवर्ग के सुख भी बिना मूल्य मिलते है। साधु के **सत्ताइस गुण** है।

सब मिलाकर पच परमेष्ठी के १०८ गुण होते है। नित्य गिनी जाने वाली माला के १०८ मणके होने का कारण श्री पच परमेष्ठी के सर्वगुणो की संख्या ही है।

श्री पचपरमेष्ठो जैसे जगत् पर उपकार करने वाले कोई नही है। इस सम्बंध मे विशेष जानने के लिए जिज्ञासुओ को **"नमस्कार महामंत्र"** नामक पुस्तक पढना।

श्री पंच परमेष्ठी तप की विधि

उपवासैकस्थाने आचाम्लैकाशने च निर्विकृतिः।
प्रतिपरमेष्ठि च षट्कं प्रत्याख्यानस्य भवतीदम् ॥१॥

श्री पंच परमेष्ठी की आराधना के लिए यह तप है। इसमें प्रथम दिन उपवास, दूसरे दिन एकलठाणा [मात्र एक ही हाथ हिले परन्तु दूसरा अग नही हिलना चाहिए तथा एक स्थान पर ही चउव्विहार करना चाहिए), तीसरे दिन आयविल, चौथे दिन एकासना, पाचवे दिन नीवी, छटे दिन पुरिमुड्ढ, और सातवे दिन आठ कवल (अथवा दूसरी प्रतियो के अनुसार बियासणा भी है)। इस प्रकार सात दिन की एक ओली हुई। ऐसी पाच ओली करने से ३५ दिन मे तप पूरा होता है)

उद्यापन मे पच तीर्थी विम्ब भरवाना। अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, और साधु की भक्ति करना, मोदक ३५ तथा दूसरी वस्तु पाच पांच प्रभु के पास रखना। संघपूजा, सघ वात्सल्य करना। **इस तप के फल से सर्व विघ्नों की शांति होती है।** वह मुनिराज तथा श्रावक को करने का आगाढ तप है।

	सा.	ख.	लो.	नो.
ॐ नमो अरिहताण	१२	१२	१२	२०
ॐ नमो सिद्धाण	८	८	८	२०
ॐ नमो आयरियाणं	३६	३६	३६	२०
ॐ नमो उवज्झायाणं	२५	२५	२५	२०
ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं	२७	२७	२७	२०

४६. श्री लघुपंचमी तप

इस पंचमी तप सम्बधी विशेष वर्णन और कथा इसके बाद की ४७वी बृहत्पंचमी-ज्ञान पंचमी तप के विवरण में दी है वहा पढ़ना ।

श्री लघुपंचमी तप विधि

लघुपंचम्यां द्वयशनादि पञ्चमासोत्तंर तपः कृत्वा ।
तत्पञ्चविधं समाप्तौ समाप्यते मासपंचविंशत्या ॥१॥

पचमी के दिन करने के तप को पंचमी तप कहते हैं। यह तप श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, पौष और चैत्र इतने मास को छोड़कर अन्य महीनो की सुद पचमी से शुरू करना। पुरुष अथवा स्त्री को जिन चैत्य मे उत्तम जाति के विविध पुष्पो द्वारा देवपूजा करना। पीछे ज्ञान की स्थापना कर उसकी भी पुष्पादि द्वारा पूजा करना इसके बाद उसके आगे अक्षत का सुन्दर स्वस्तिक करना। उस पर घृतपूर्ण पाच बत्ती वाला देदीप्यमान दीपक रखना। पास मे फल, मोदक आदि नैवेद्य रखना। स्वयं मस्तक पर गध, अक्षत और चदन लगा, गुरु के पास जा शुक्ल पंचमी तप शुरू करना। पाच माह की शुक्ल पचमी को बियासणा और फिर पाच माह की शुक्ल पचमी को एकासना करना। पीछे पाच माह की शुक्ल पचमी को नीवी, पीछे पाच माह की शुक्ल पंचमी को आयबिल करना और फिर पाच माह की शुक्ल पचमी को उपवास करना। इस तरह पच्चीस माह मे यह तप पूरा होता है। किसी

गच्छ में पचीस महीने तक शुक्ल पंचमी को जिस तप से आरम्भ किया हो वही तप करने की पद्धति है।

अथवा यह तप ऊपर लिखे अनुसार शुक्ल पंचमी को आरम्भ कर शुक्ल तथा कृष्ण दोनो पंचमो लेकर पचीस पंचमी अर्थात् एक वर्ष मे पूरा किया जाता है (न. अ.)

अथवा ऊपर बताए अनुसार शुक्ल पंचमी को शुरू कर शुक्ल तथा कृष्ण दोनों पंचमी लेकर पांच पचमी करके यह तप पूरा किया जाता है। इसके उद्यापन मे पकवान, फल आदि तथा ज्ञान के उपकरण पांच पांच रखना (न. ग.)

अथवा शुक्ल पंचमी को शुरू कर हरएक पचमी को उपवास करना। इस तरह पचीस पचमी अर्थात् एक वर्ष में तप पूरा करना (प. वृ)

उद्यापन मे जिन प्रतिमा की बड़ी स्नात्र विधि से पूजा करना। पाच पांच विविध प्रकार के पकवान, फल, रूपानाणा आदि रखना। तथा अंग, उपांग, अथवा पांच छोटी पुस्तकें लिखवाकर मुनिराज को वहोराना। उनके अभाव मे संघ के भण्डार मे रखना। पुस्तक (ज्ञान) के आगे ठवली, पाटी, रूमाल, डोरी, पीछी, नवकारवाली वासक्षेप का वटवा, कलम, दवात, मुखवस्त्रिका, दण्डा, रजोहरण, ठवणी, ओघा का पाटा, छवडी अंगलूहणा, चदन, वासक्षेप आदि ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र के उपकरण सब पाच पाच रखना। पाच तरह के धान रखना। संघ पूजा, सघ वात्सल्य, गुरु भक्ति, आदि करना। इस तप के फल से ज्ञान लाभ होता है। यह मुनिराज तथा श्रावक को करने का आगाढ़ तप है। यह तप मुख्यकर ज्ञान के लिए है।

इसमें ज्ञान लिखाना तथा उसके उपकरण कराना इसकी आवश्यकता है। ज्ञान लिखाने की महिमा आचारोपदेश में इस प्रकार वर्णन की है।

लिखाप्यागमशास्त्राणि यो गुणिभ्यः प्रयच्छति ।
तन्मात्राक्षरसंख्यानि वर्षाणि त्रिदशो भवेत् ।।१।।

जो मनुष्य आगम-शास्त्र लिखवाकर गुणवान मुनियो को देता है, वह पुस्तक के अक्षर जितने वर्ष देवलोक मे रहता है। (इत्यादि)

'ॐ नमो नाणस्स" पद की २० माला, स्वस्तिक वगैरह ५१ करना अथवा पांच पाच करना।

---

४७ श्री बृहत् पंचमी-ज्ञान पंचमी तप

ज्ञान सम्बधी वर्णन करना या उसकी विशिष्टता का वर्णन करना यह स्वर्ण को चमकाने जैसा है। प्रत्येक दर्शन तथा वर्ग ज्ञान के महत्व को जानता है और उसे विकसित करने का प्रयास करता है; परन्तु यह लक्ष रखना चाहिये कि **ज्ञान जो सम्यग् हो तब ही वह 'तारक' बन सकता है।** अन्यथा वह मिथ्यात्व-अज्ञान "मारक" बनता है।

श्री दशवैकालिक सूत्र के चौथे अध्याय में बताया है कि—**"पढमं नाणं तओ दया"** प्रथम ज्ञान और पीछे दया (अहिंसा), ज्ञान की महत्ता के लिए इतना ही कहना पर्याप्त है।

पूज्य श्री तीर्थंकर भगवंत द्वारा प्ररूपित भावों को श्री गणधर महाराजा द्वारा गूंथित द्वादशांगी को 'सम्यग्ज्ञान' कह सकते हैं।

ज्ञान आत्मा का अद्वितीय गुण है। समस्त कर्मो का नाशकर आत्मा जब सिद्धि स्थान मे विराजमान है तब भी ज्ञान गुण आत्मा के साथ ही रहता है। भयंकर संसार-सागर को पार करने के लिए ज्ञान अति उपयोगी नौका के समान है।

ज्ञानी पुरुषों ने ज्ञान की महत्ता जगह जगह गाई है। उसमें से किंचित उल्लेख यहां पर किया जाता है:

अन्नदानं परम् दानम्, विद्यादानं ततः परम्।
अन्नेन क्षणिका तृप्तिः, यावज्जीवं तु विद्यया॥

अन्नदान उत्तम दान है परन्तु विद्यादान उससे भी उत्तम है क्योंकि अन्न से क्षणिक तृप्ति होती है परन्तु विद्या से तो जीवन पर्यन्त सतोष मिलता है।

न चौरहार्यं न च राजहार्यं,
न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि।
व्यये कृते वर्धत एव नित्यम्,
विद्याधनम् सर्वधनप्रधानम्॥

विद्या को चोर चुरा नही सकता, राजा भी हरण नही कर सकता, भाई भी हिस्सा नही बटा सकता, इसका वजन भी उठाना नही पड़ता, काम में लेने से वृद्धि होती है इसीलिए कहा है कि—विद्या रूपी धन सब धनो मे श्रेष्ठ है।

ज्ञान-विराधना या ज्ञान-आशातना कभी भी नही करना। आजकल देखा देखी से या अज्ञान के कारण ऋतुवती बहिनें पुस्तके पढ़ती है यह ज्ञान की आशातना का ही एक रूप है। ज्ञानी पुरुषो ने ज्ञान आशातना के कड़वे फल बताये है:—

विराधयन्ति ये ज्ञानम्, वचसापि हि दुर्धियः ।
मूकत्वमुखरोगित्व-दोषास्तेषामसंशयम् ॥

जो दुष्ट बुद्धि वाले वचनो द्वारा ज्ञान की विराधना करते हैं वे निश्चय ही गूंगे, मुखरोग आदि व्याधियो से पीडित होते हैं।

ज्ञान की आराधना या विराधना करने से कैसे फल प्राप्त होते हैं वह प्रचलित **वरदत्त-गुणमंजरी** की कथा द्वारा जाने जा सकते हैं। यह कथा संक्षिप्त मे इस प्रकार है—

वरदत्त-गुणमंजरी की कथा

भरतक्षेत्र के पद्मपुर नगर मे **अजितसेन** राजा के **यशोमती** राणी की कूक्षी से **वरदत्त** नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। सात-आठ वर्ष का होने पर उसे अध्यापक के सुपुर्द किया परन्तु एक अक्षर भी नही पढ सका। अध्यापक ने कठिन परिश्रम किया परन्तु पूर्व के ज्ञानांतराय के कारण कुछ भी नही पढ सका। युवावस्था प्राप्त होने पर कुमार को कोढ रोग हुआ, राजा ने अनेक उपचार किये परन्तु सब निष्फल हुए।

उसी नगर मे **सिंहदास** सेठ के **कर्पूरतिलका** पत्नी से **गुणमंजरी** नामकी पुत्री हुई। वह जन्म से ही रोगी और गूंगी

थी। सेठ ने अच्छे अच्छे वैद्यों से इलाज कराया, परन्तु कुछ भी लाभ नही हुआ। युवावस्था होने पर गूंगी और रोगी होने से कोई उससे विवाह करने को तैयार नही हुआ।

एक बार उसी नगर में चार ज्ञान के धारक पू. **श्री विजयसेन सूरि** पधारे। सेठ अपनी पुत्री के साथ, राजा अपने पुत्र के साथ तथा असंख्य नगर निवासी वंदन करने गये। सूरिमहाराज ने गंभीर धर्मदेशना दी, ज्ञान का महत्व समझाया।

देशना के बाद सेठ ने अपनी पुत्री गुणमंजरी के गूंगी व रोगी होने का कारण पूछा। गुरु महाराज ने उसका पूर्वभव का वर्णन करते हुए कहा कि—खेटक नगर में जिनदेव सेठ के सुंदरी नामकी पत्नी थी। उसके पांच पुत्र और चार पुत्रियां थी। पुत्र और पुत्रियो के बड़े होने पर उन्हें पढ़ने के लिए भेजे। पुत्र जड़ और पढ़ने मे निरुत्साही थे। जब अध्यापक पढाते तो वे खेलते-कूदते रहते या इधर-उधर ध्यान रखते, जिससे वे कुछ भी नही पढ सके। एक बार अध्यापक ने उन्हे शिक्षा दी तो पुत्रों ने आकर मा से शिकायत की। सुंदरी ने इससे क्रोधित हो पुत्रों को कहा कि जब अध्यापक बुलाने आवे तब उन्हे पत्थर मारना इसलिए वे फिर बुलाने आना छोड़ देंगे और तुम्हारा पढ़ने जाना बद हो जायगा। पुत्रो ने ऐसा ही किया—अध्यापक को मारकर निकाल दिया।

सुंदरी इससे प्रसन्न हुई। मन मे विचार किया कि अब अध्यापक पुत्रो को कैसे मारेगा? और यह भी सोचा कि पढ़ने वाले को भी मरना है और अपढ को भी मरना है तो फिर पढने की झंझट क्यों करना? इसलिए घर में जितनी पढ़ने की पुस्तकें थी वे सब जला दी।

इतने में जिनदेव सेठ आगये। उसने सुंदरी का यह काम देख उसे उलाहना दिया। नहीं पढ़ने का कितना कड़वा परिणाम आता है, यह भी समझाया, परन्तु सुंदरी पर इसका कुछ भी असर नही हुआ।

पुत्र बडे हुए परन्तु मूर्ख और अज्ञानी होने से किसी ने उनको कन्या नहीं दी। जिनदेव ने उन्हें दुकान पर बैठाया परन्तु बिना ज्ञान के व्यापार भी कैसे करें? एक बार पति-पत्नी के बीच मूर्ख पुत्रो के बारे में बातचीत होने से सुंदरी क्रोधित हो गई। क्रोध में न बोलने योग्य बोल गई। सेठ को भी क्रोध आ गया और आवेश में आकर पास में रखा पत्थर उठाकर मारा। वह पत्थर मर्म स्थान पर लगा जिससे सुंदरी की मृत्यु हो गई और मरकर तुम्हारी पुत्री गुणमंजरी रूप में उत्पन्न हुई। पूर्वभव में ज्ञान के अंतराय के कारण यह गूंगी और रोगी हुई।

यह हकीकत सुनते ही गुणमजरी को जातिस्मरण ज्ञान हुआ। मूर्छित दशा मे अपना सर्व पूर्व भव देखा। सेठ ने पुत्री के लिए उपाय पूछा। गुरु महाराज ने ज्ञान पंचमी की आराधना और उसकी विधि बताई। गुणमंजरी ने जीवनपर्यंत ज्ञान पंचमी तप की उल्लास से आराधना की।

राजा अजितसेन ने भी अपने पुत्र वरदत्त के कुष्ठ रोग का कारण पूछा। गुरु महाराज ने बताया कि—

श्रीपुर नगर मे वसु सेठ के वसुसार और वसुदेव दो पुत्र थे। बचपन मे मित्रो के साथ खेलते २ वे वन मे जा पहुंचे।

वहा श्री मुनिसुंदर आचार्य महाराज को धर्मोपदेश देते देखा। वे दोनो वहां जाकर बैठ गये। वैराग्य वाहिनी देशना सुनकर दोनों ने दीक्षा ले ली। लघु बंधु वसुदेव की बुद्धि तीव्र थी। वह थोड़े समय में शास्त्रों का ज्ञाता हो गया। उसकी प्रतिभा देख गुरु महाराज ने उसे आचार्य पदवी प्रदान की।

शिष्य उनसे पाठ लेते और शास्त्राध्ययन करते। एक बार वसुदेव आचार्य रात्रि संथारा करके सो रहे थे इतने में शिष्य पाठ लेने आये। एक शिष्य, आवे, वह जावे और दूसरा आवे। इस तरह शिष्य बार बार आने लगे। सब को पाठ दे शास्त्र बोध समझा कर वे निद्राधीन हुए इतने में एक शिष्य को पाठ समझ में नहीं आने से पुनः पूछने आया और गुरु महाराज से निवेदन करने से वे जग गये और उसे समझाया। उस शिष्य के जाने के बाद वसुदेव आचार्य की विचारधारा ने पलटा खाया। अशुभ कर्म का उदय आया। उसने सोचा कि–मैं अति ज्ञानवान हुवा तो इन शिष्यो को पाठ देने की माथाकूट करनी पड़ती है, इससे तो नही पढता तो अच्छा होता। मेरे बड़े बंधु वसुसार ज्ञानी नहीं हुए तो वे सुखपूर्वक कैसी नींद ले रहे हैं?

इसके बाद उन्होने वाचना देना या लेना बद कर दिया। आगे अभ्यास करना भी बद कर दिया और पढ़ा हुआ भी भूलने लगे। इस तरह उन्होंने अमृत का घड़ा फोड़ कर पाप का घड़ा स्वीकार किया और तीव्र ज्ञानातराय कर्म का बंध किया। आर्त्त तथा रौद्रध्यान के वश होकर वे वसुदेव आचार्य काल कर तुम्हारे यहां वरदत्त के रूप में जन्म लिया है। पूर्व भव के ज्ञानांतराय के कारण इसे विद्या-प्राप्त नही हुई और रोग हुआ।

यह बात सुनते ही वरदत्त को जातिस्मरण ज्ञान हुआ और गुरु महाराज को ज्ञानांतराय का निवारण करने के लिए निवेदन किया। गुरु ने उसे ज्ञान पंचमी तप की आराधना करने को कहा।

ज्ञान पंचमी की आराधना से उसका शरीर स्वर्ण जैसी कांति वाला हो गया। राजा ने उसका कई कन्याओ के साथ विवाह किया।

गुणमंजरी भी ज्ञान पंचमी की आराधना से निरोग हो गई सेठ ने भी उसकी कुलवान सेठ के पुत्र के साथ शादी कर दी।

कालक्रम से दोनो ने दीक्षा ली। सुंदर चारित्र का पालन कर वे देवलोक मे उत्पन्न हुए, वहां से च्यय कर वरदत्त का जीव महाविदेह मे सूरसेन नामक राजा हुआ और चारित्र पर्याय पूरी कर मुक्त हुए। गुणमजरी का जीव भी सुग्रीव नामक राजकुमार हुआ और शुद्ध सयम का पालन कर मोक्ष गया।

इस प्रकार ज्ञान पंचमी की आराधना करने से वे सद्गति को प्राप्त हुए। ज्ञान पंचमी को **सौभाग्य पंचमी** भी कहते है।

ज्ञान पढ़ना-पढ़ाना, सुनना सुनाना, लिखना-लिखवाना तथा ज्ञान की भक्ति-बहुमान करना, जिससे ज्ञानातराय कर्म टूटते हैं। ज्ञानी की प्रशंसा करना। यथाशक्ति ज्ञानोपगरण वहोराना और सम्यग् ज्ञान का विकास हो ऐसा काम करना, यही स्वकल्याण की सच्ची कुञ्जी है।

ज्ञान और उसके भेद सम्बंधी पहले नवें, दसवें, और ग्यारहवें ज्ञान, दर्शन और चारित्र नाम के तप में विवेचन किया गया है, जिससे यहां पुनरावृत्ति नहीं की गई है।

श्री ज्ञान पंचमी तप की विधि

एवमेव तपो वर्षपञ्चकं कुर्वतां नृणाम् ।
बृहत्पञ्चमिकायास्तु तपः संपूर्यते किल ॥१॥

पांच वर्ष तक तप करने से यह बृहत् पचमी व्रत पूरा होता है। इस तप का आरम्भ लघु पचमी की तरह करना, विधि भी उसी प्रकार जानना। प्रथम वर्ष की शुक्ल पंचमी को बियासणा करना, दूसरे वर्ष की शुक्ल पचमी को एकासना, तीसरे वर्ष नीवी, चौथे वर्ष आयबिल और पांचवे वर्ष की शुक्ल पंचमी को उपवास करना। इस तरह पांच वर्ष मे यह तप पूरा होता है।

उद्यापन लघु पंचमी की तरह करना। (देखो तप न. ४६) इसमे सब वस्तु पच्चीस पच्चीस रखना। इस तप के फल से महाज्ञान की प्राप्ति होती है। यह मुनिराज तथा श्रावक के करने का आगाढ तप है।

अथवा यह तप पाच वर्ष और पांच माह की हरएक शुक्ल पचमी को उपवास या एकासना करने से भी होता है। गुणना आदि लघु पंचमी की तरह।

एक प्राचीन प्रति मे लिखा है कि रोगादि के कारण बाद मे भी तप पूरा किया जाता है और उद्यापन शुरू में, मध्य में

या अंत में जब अवसर मिले तब यथाशक्ति करना । इसमें पांच पुस्तकें लिखवाना आदि करना होता है ।

यह तप उत्कृष्ट से इस तरह भी किया जाता है—हरएक शुक्ल पंचमी को उपवास जीवन पर्यंत करना । पांच वर्ष बाद उद्यापन आदि करना । गुणना नं. ४६ तप के माफिक करना ।

---

४८ श्री चतुर्विध संघ तप

साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका ये चतुर्विध संघ कहलाता है । इसकी स्थापना सब से प्रथम इस अवसर्पिणी काल मे युगादीश श्री आदिनाथ भगंवत ने की थी । धर्म का आधार स्तम्भ यह चतुर्विध संघ ही है और पाचवें आरे के अंत तक 'दुप्पसहसूरि' तक रहेगा ।

स्वपरहितं मोक्षानुष्ठानं वा साधयतीति साधुः

जो स्वपरहित तथा मोक्ष के अनुष्ठान की साधना करे वह साधु ।

शृणोति जिनवचनम् इति श्रावकः—जो जिनवचन को सुने, आचरण करे अथवा शृणोति साधु समीपे साधु-समाचारी-मिति श्रावकः—जो साधु के पास जाकर साधु-समाचारी (साधु जीवन सम्बधी) सुने वह श्रावक ।

सघ की शक्ति अपूर्व है । इस युग मे सघ का बहुमान कायम रहे और उसकी महत्ता बनी रहे उस तरह बर्ताव करना चाहिये ।

श्री चतुर्विध संघ तप की विधि

उपवासद्वयं कृत्वा ततः खरससंख्यया ।
एकान्तरोपवासश्च पूर्णं संघतपो भवेत् ॥१॥

चतुर्विध सघ की आराधना के लिए यह तप किया जाता हैं। इसमे प्रथम एक छठ्ठ कर पारणा करना। पीछे एकान्तर आठ उपवास करना। इस तरह यह तप पूरा होता है।

उद्यापन मे संघवात्सलय और संघ पूजा करना। इस तप के फल से तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन होता है। यह मुनिराज तथा श्रावक को करने का आगाढ़ तप है।

'ॐ नमो तित्थस्स' पद की बीस माला, स्वस्तिक व खमासमण बांसठ बासठ अथवा पच्चीस पच्चीस करना।

---

४९ श्री धन तप और विधि

एकद्वयंकद्विद्वयेकयुग्मशशिसंख्ययोपवासैश्च ।
पारणकान्तरितैरपि निरन्तरैः पूर्यतेऽत्र धनम् ॥

यह तप विविध सख्या की युक्ति से होता है। इसमे—

प्रथम श्रेणी मे	१–२	उपवास एकान्तर पारणे से करना।
दूसरी श्रेणी में	१–२	,,
तीसरी श्रेणी मे	२–१	,,
चौथी श्रेणी मे	२–१	,,

इस तरह बारह उपवास तथा पारणे आठ मिलकर बीस दिन में यह तप पूरा होता है।

उद्यापन मे बड़ी स्नात्र विधि से पूजा कर उपवास की संख्या के अनुसार अर्थात् बारह बारह पुष्प, फल, मोदक वगैरह भगवंत के पास रखना। सघ वात्सल्य, संघ पूजा करना। मुनि को कुछ वहोराना। इस तप के फल से महा-लक्ष्मी (मोक्ष लक्ष्मी) की प्राप्ति होती है। यह मुनिराज तथा श्रावक को करने का आगाढ तप है।

'नमो अरिहंताणं' पद की बीस माला, स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

५० श्री महाधन तप और विधि

महाधनतपः श्रेष्ठं एकद्वित्रिभिरेव हि ।
उपवासैर्नवकृत्वः पृथकछ्रेणिमुपागतैः ।।

विविध सख्या की बाहुल्यता से यह महाघन कहलाता है।

पहली विधि—इसमें

प्रथम श्रेणी में १–२–३ उपवास एकान्तर पारणे से करना।
दूसरी श्रेणी में २–३–१ ,,
तीसरी श्रेणी मे ३–१–२ ,,
चौथी श्रेणी मे २–३–१ ,,
पांचवी श्रेणी मे ३–१–२ ,,
छठी श्रेणी में १–२–३ ,,
सातवी श्रेणी मे ३–१–२ ,,

आठवी श्रेणी में १-२-३ उपवास एकान्तर पारणे से करना।
नवी श्रेणी में २-३-१ ,,

५४ उपवास तथा २७ पारणे के दिन मिलकर ८१ दिन मे यह तप पूरा होता है।

उद्यापन में बड़ी स्नात्र विधि से पूजा करना। इक्यासी इक्यासी पुष्प, फल, मोदक आदि रखना। गुरु पूजा, संघ पूजा, संघ वात्सल्य आदि करना। इस तप के फल से चक्रवर्ती की ऋद्धि प्राप्त होती है। यह मुनि तथा श्रावक को करने का आगाढ तप है।

'नमो अरिहंताणं' पद की बीस माला, स्वस्तिक वगैरह बारह बारह करना।

दूसरी विधि (जैन प्रबोध) (चार पर्यंत घन)

पहली विधि से भी अधिक तप करना हो तो इस तरह करना।

प्रथम श्रेणी में १-२-३-४ उपवास एकान्तर पारणे से करना।
दूसरी ,, २-३-४-१ ,,
तीसरी ,, ३-४-१-२ ,,
चौथी ,, ४-१-२-३ ,,
पांचवी ,, २-३-४-१ ,,
छठी ,, ३-४-१-२ ,,
सातवी ,, ४-१-२-३ ,,

आठवीं श्रेणी मे १-२-३-४ उपवास एकान्तर पारणे से करना।

नवी	,,	३-४-१-२	,,
दसवी	,,	४-१-२-३	,,
ग्यारहवी	,,	१-२-३-४	,,
बारहवी	,,	२-३-४-१	,,
तेरहवी	,,	४-१-२-३	,,
चौदहवी	,,	१-२-३-४	,,
पंद्रहवी	,,	२-३-४-१	,,
सोलहवी	,,	३-४-१-२	,,

इस तरह कुल १६० उपवास तथा पारणे के ६४ दिन मिलकर यह तप २२४ दिन मे पूरा होता है।

तीसरी विधि (पांच पर्यंत धन)—इसमें

प्रथम श्रेणी में १-२-३-४-५ उपवास एकान्तर पारणे से करना।

दूसरी	,,	२-३-४-५-१	,,
तीसरी	,,	३-४-५-१-२	,,
चौथी	,,	४-५-१-२-३	,,
पाँचवी	,,	५-१-२-३-४	,,
छठी	,,	२-३-४-५-१	,,
सातवी	,,	३-४-५-१-२	,,
आठवी	,,	४-५-१-२-३	,,
नवी	,,	५-१-२-३-४	,,

दसवी श्रेणी मे १-२-३-४-५ उपवास एकान्तर पारणे से करना।

ग्यारहवी	,,	३-४-५-१-२	,,
बारहवी	,,	४-५-१-२-३	,,
तेरहवी	,,	५-१-२-३-४	,,
चौदहवी	,,	१-२-३-४-५	,,
पंद्रहवी	,,	२-३-४-५-१	,,
सोलहवी	,,	४-५-१-२-३	,,
सतरहवी	,,	५-१-२-३-४	,,
अठारहवी	,,	१-२-३-४-५	,,
उन्नीसवी	,,	२-३-४-५-१	,,
बीसवी	,,	३-४-५-१-२	,,
इक्कीसवी	,,	५-१-२-३-४	,,
बाइसवी	,,	१-२-३-४-५	,,
तेइसवी	,,	२-३-४-५-१	,,
चौवीसवी	,,	३-४-५-१-२	,,
पच्चीसवी	,,	४-५-१-२-३	,,

इस तरह कुल ३७५ उपवास तथा पारणे के १२५ दिन मिलाकर ५०० दिन में अर्थात् सोलह माह और बीस दिन मे यह तप पूरा होता है।

'नमो अरिहंताणं' पद की २० माला, स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

चौथी विधि (छैः पर्यंत धन)

प्रथम	श्रेणी में	१–२–३–४–५–६	उपवास एकांतर पारणे से
दूसरी	"	२–३–४–५–६–१	"
तीसरी	"	३–४–५–६–१–२	"
चौथी	"	४–५–६–१–२–३	"
पांचवी	"	५–६–१–२–३–४	"
छठी	"	६–१–२–३–४–५	"
सातवीं	"	२–३–४–५–६–१	"
आठवी	"	३–४–५–६–१–२	"
नवीं	"	४–५–६–१–२–३	"
दसवी	"	५–६–१–२–३–४	"
ग्यारहवी	"	६–१–२–३–४–५	"
बारहवीं	"	१–२–३–४–५–६	"
तेरहवी	"	३–४–५–६–१–२	"
चौदहवी	"	४–५–६–१–२–३	"
पंद्रहवी	"	५–६–१–२–३–४	"
सोलहवी	"	६–१–२–३–४–५	"
सतरहवी	"	१–२–३–४–५–६	"
अठारहवीं	"	२–३–४–५–६–१	"
उन्नीसवी	"	४–५–६–१–२–३	"

वीसवीं	"	५-६-१-२-३-४	उपवास एकांतर पारणे से
इक्कीसवी	"	६-१-२-३-४-५	"
बाइसवी	"	१-२-३-४-५-६	"
तेइसवी	"	२-३-४-५-६-१	"
चौवीसवीं	"	३-४-५-६-१-२	"
पच्चीसवी	"	५-६-१-२-३-४	"
छव्वीसवी	"	६-१-२-३-४-५	"
सत्ताइसवीं	"	१-२-३-४-५-६	"
अट्ठाइसवी	"	२-३-४-५-६-१	"
उनतीसवी	"	३-४-५-६-१-२	"
तीसवी	"	४-५-६-१-२-३	"
इकतीसवी	"	६-१-२-३-४-५	"
बत्तीसवी	"	१-२-३-४-५-६	"
तेंतीसवी	"	२-३-४-५-६-१	"
चौंतीसवीं	"	३-४-५-६-१-२	"
पैंतीसवी	"	४-५-६-१-२-३	"
छत्तीसवी	"	५-६-१-२-३-४	"

इस तरह करने से इस तप मे उपवास के ७५६ दिन और पारणे के २१६ दिन मिलाकर कुल ९७२ दिन अर्थात् दो वर्ष, आठ माह और बारह दिन मे पूरा होता है।

"नमो अरिहंताणं" पद की बीस माला, स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

५१ श्री वर्ग तप और विधि

एकद्वयेककयुग्मयुग्मवसुधायुग्मेन्दुभूयामल—
क्ष्मायुग्मद्वयभूमियुग्मशरणीयुग्मेन्दुयुग्मैककैः ।
एकद्वयेकभुजद्विभूमियुगलज्याज्याद्विभूमिद्वयै—
रेकद्वयकभुजद्विचन्द्रयमलैरेकैकयुग्मेन्दुभिः ॥१॥
द्विद्वयेकद्विमहीद्विभूमियुगलज्याज्याद्विभूमिद्वयैः,
द्वयेकद्वयेकमहीद्विचन्द्रयुगलैः श्रेण्यष्टकत्वं गतैः ।
वर्गाख्यं तप उच्यते वह्नानशनैर्मध्योल्लसत्पारणै
सर्वत्रापि निरन्तरैरपि दिनान्यस्मिन् खषट्भूमयः ॥२॥

वर्ग के आकड़े की तरह जो तप है वह वर्ग तप कहलाता है । इसमें निम्न प्रकार एकांतर पारणे से निरतर उपवास द्वारा आठ श्रेणी मे करना ।

पहली	श्रेणी	१-२-१-२-२-१-२-१	उपवास एकान्तर पारणे से
दूसरी	"	१-२-१-२-२-१-२-१	"
तीसरी	"	२-१-२-१-१-२-१-२	"
चौथी	"	२-१-२-१-१-२-१-२	"
पाचवी	"	१-२-१-२-२-१-२-१	"
छठी	"	१-२-१-२-२-१-२-१	"
सातवी	"	२-१-२-१-१-२-१-२	"
आठवी	"	२-१-२-१-१-२-१-२	"

इस प्रकार कुल ९६ उपवास और पारणे के ६४ दिन मिलकर कुल १६० दिन मे यह तप पूरा होता है।

उद्यापन मे वडी स्नात्र विधि से पूजा कर १६०, १६० मोदक, फल, पुष्प आदि रखना। संघ वात्सल्य, संघ पूजा करना। इस तप से महा ऋद्धि प्राप्त होती है। यह मुनिराज तथा श्रावक के करने का आगाढ़ तप है।

'नमो अरिहंताण' पद की वीस माला, स्वस्तिक आदि वारह वारह करना।

---

५२ श्रेणी तप और विधि

श्रेणी षट्श्रेण्यः प्रोक्ता, एको द्वौ प्रथमे क्षणे।
द्वितीयादिषु चैकैकक्रमवृद्धयाऽभिजायते ॥

श्रेणी के अंक द्वारा जो तप किया जाता है वह श्रेणी तप कहलाता है। इस श्रेणी तप मे छै। श्रेणियां है। जिसमे प्रथम श्रेणी मे प्रथम एक उपवास कर पारणा करना। पीछे दो उपवास कर पारणा करना। दूसरी श्रेणी में प्रथम एक उपवास कर पारणा, फिर दो उपवास कर पारणा और फिर तीन उपवास कर पारणा करना। तीसरी श्रेणो में, एक, दो, तीन और चार उपवास पारणे पर करना। चौथी श्रेणी में एक, दो, तीन, चार और पांच उपवास पर पारणा। पांचवीं श्रेणी मे एक, दो, तीन, चार, पाच और छैः उपवास पर पारणा। छठी श्रेणी में एक, दो, तीन, चार, पांच, छैः, और सात उपवास पर पारणा करना। इस तरह ८३ उपवास और

२७ दिन पारणे के मिलाकर कुल ११० दिन मे यह तप पूरा होता है।

उद्यापन मे बड़ी स्नात्र विधि से पूजा कर ११० पकवान, फल, पुष्प वगैरह चढाना। संघ वात्सल्य, संघ पूजा करना। **इस तप के फल से क्षपक श्रेणी-प्राप्त होती है।** यह साधु तथा श्रावक को करने का आगाढ़ तप है।

'नमो अरिहंताणं' पद की २० माला गुणना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

५३ श्री पंच मेरु तप (मेरु मंदिर तप)

महाविदेह क्षेत्र के मध्य मे मेरु पर्वत स्थित है। वह पर्वत एक लाख योजन ऊंचा पीले स्वर्ण के रंग वाला शाश्वत है। इस पर्वत का १००० योजन प्रमाण मूल जमीन मे गया हुवा है और ९९००० योजन जमीन के बाहर है अर्थात् यह पर्वत ज्योतिष्चक्र को लांघ कर आगे गया है और उसका मूल रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रथम कांड पर्वत तक पहुचा हुआ है। जमीन पर दीखने वाले तल को **'समभूतल'** कहते है और उस जगह उसका विस्तार १००० योजन है, ऊपर जाते क्रमशः कम होता हुआ शिखर पर पर्वत एक हजार योजन प्रमाण पहोला है। इसलिए यह पर्वत ऊचाई पर **'गोमुच्छ'** जैसा मालूम देता है।

यह पर्वत तीन हिस्सो में बटा हुआ है। जमीन मे रहा हुआ हजार योजन से कम तीन भाग प्रथम काड। यह काड

कंकड, पत्थर और रत्नों वाला है । इसके बाद ६३००० योजन प्रमाण स्फटिक रत्न, अंकरत्न तथा स्वर्णादि रत्नों वाला दूसरा कांड है । समभूतल से ५०० योजन पर 'नंदनवन' है, नीचे कंड भाग पर 'भद्रशालयन' है और ६३००० योजन पर 'सोमनस' वन है । इस सोमनस वन से शिखर तक का भाग तीसरा कांड कहलाता है । और यह जांबूनद स्वर्ण का बना हुआ है । इस तीसरे कांड पर 'पांडुकवन' है, जिसके मध्य मे एक चूलिका स्थित है । यह ४० योजन ऊंची, मूल मे १२ योजन पहोली और शिखर पर ४ योजन पहोली है । वैडुर्य रत्न की, श्री देवी के भवन के समान वृत्ताकार और ऊपर एक एक महान् शाश्वत चैत्यगृह वाली इस चूलिका से ५०० योजन दूर चारों दिशाओं मे चार जिनभवन हैं । इन चारों भवनो के वाहर भरत आदि क्षेत्रों की दिशा की तरफ २५० योजन पहोली, ५०० योजन दीर्घ, ४ योजन ऊंची, अष्टमी के चन्द्रमा जैसी श्वेत अर्जुन स्वर्ण की चार अभिषेक शिलाएं हैं । ये प्रत्येक शिला वेदिका सहित वन वाली है । इसकी पूर्व दिशा में 'पांडुकंवला', पश्चिम दिशा मे 'रक्त कंवला', उत्तर मे 'अति-रक्त कंवला' और दक्षिण दिशा मे 'अति पांडुकंवला' नामक शिलाएं हैं । इनमें पूर्व तथा पश्चिम की दोनों शिलाओं पर ५०० धनुष लवे, २५० धनुष पहोले और ४ धनुष ऊंचे दो सिंहासन हैं और उत्तर तथा दक्षिण दिशा की शिलाओं पर उपरोक्त प्रमाण वाला एक एक सिंहासन है ।

पूर्व तथा पश्चिम दिशा की शिलाओ पर पूर्व और पश्चिम महाविदेह के तीर्थंकर भगवंतो की स्नानाभिषेक क्रिया की ाती । जवकि उत्तर दिशा की शिला पर भरतक्षेत्र के

और दक्षिण दिशा की शिला पर ऐरवत क्षेत्र में उत्पन्न तीर्थंकर भगवंतों का स्नानाभिषेक होता है।

अढाई द्वीप मे पांच मेरु पर्वत होते हैं। उनको दृष्टि में रखकर यह तप किया जाता है जिससे 'पंच मेरु तप' कहा जाता है। जिस तरह परमात्मा के स्नात्रजल के अभिषेक से मेरु पर्वत कृतकृत्य होता है उसी तरह इस तप के करने से भविक जीव भी धन्य बनते हैं।

श्री पंच मेरु तप विधि

प्रत्येकं पञ्चमेरूणामुपोषणकपञ्चकम् ।
एकान्तरं मेरुतपस्तेन संजायते शुभम् ॥

मेरु पर्वत की सख्या के अनुसार जो तप किया जाता है वह मेरु तप कहलाता है। इसमें पांच मेरु को लक्ष में रखकर प्रत्येक के पाच पाच उपवास एकान्तर पारणे से करना। इस तरह पच्चीस उपवास और पच्चीस पारणे मिलकर कुल ५० दिन में यह तप पूरा होता है।

उद्यापन में बडी स्नात्र विधि से पूजाकर पांच स्वर्ण के मेरु बनवाकर रखना तथा पच्चीस पच्चीस पकवान, फल आदि रखना। इस तप के फल से उत्तम पद की प्राप्ति होती है। यह मुनिराज तथा श्रावक को करने का आगाढ़ तप है। गुणना आदि निम्न प्रकार करना। जिस मेरु पर्वत को दृष्टि में रखकर तप चलता हो उस नाम का गुणना करना।

		सा.	ख.	लो.	न.
१.	श्री सुदर्शनमेरु जिनाय नमः	५	५	५	२०
२.	श्री विजयमेरु जिनाय नमः	५	५	५	२०
३.	श्री अचलमेरु जिनाय नमः	५	५	५	२०
४.	श्री मंदरमेरु जिनाय नमः	५	५	५	२०
५.	श्री विद्युन्मालिमेरु जिनाय नमः	५	५	५	२०

दूसरी विधि

अथवा सिर्फ पांच उपवास एकान्तर बियासणे वाले करना अर्थात् यह तप दस दिन में पूरा किया जा सकता है। अन्य विधि सब ऊपर लिखे अनुसार।

---

५४. श्री बत्तीस कल्याणक तप और विधि

जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र के बत्तीस विजयों में उत्कृष्ट काल आने पर, बत्तीस तीर्थंकर भगवंतों के केवलज्ञान कल्याणक को लक्ष्य में रखकर यह तप किया जाता है।

कल्याणक अर्थात् परम श्रेष्ठ दिन। उस दिन नरक के जीवों को भी क्षणिक सुख का अनुभव होता है।

उपवासत्रयं कृत्वा, द्वात्रिंशदुपवासकाः ।
एकभक्तांतरास्तस्मादुपवासत्रयं वदेत् ॥

बत्तीस उपवास द्वारा जाने वाले कल्याणकों को बत्तीस कल्याणक कहते हैं। इसमें प्रथम अट्ठम कर पारणा करना।

पीछे एकातर पारणे वाले बत्तीस उपवास करना और अंत में अट्ठम करके पारणा करना। ऐसा करने से यह तप अड़तीस उपवास और चौतीस पारणा मिलाकर कुल ७२ दिन में पूरा होता है।

उद्यापन में बड़ी स्नात्र विधि से पूजा कर बत्तीस बत्तीस पकवान, फल आदि चढाना। संघ वात्सल्य, संघपूजा करना। **इस तप के फल से तीर्थंकर नाम कर्म की प्राप्ति होती है।** यह मुनिराज तथा श्रावक को करने का आगाढ तप है। (यह तप वसुदेव हिंडी मे है)

गुणना तप न. ४० में बताये जम्बूद्वीप के प्रथम विदेह के जिनेश्वरो के नाम बताये अनुसार करना। स्वस्तिक, खमासमण आदि भी उसी प्रकार करना। यह तप जम्बूद्वीप में स्थित महाविदेह मे उत्कृष्ट काल में हुए बत्तीस प्रभु के केवल-ज्ञान की प्राप्ति रूप कल्याणक की आराधना के सम्बन्ध में समझना।

---

५५. श्री च्यवन तप तथा जन्म तप

तीर्थंकर परमात्मा के च्यवन तथा जन्म कल्याणक को दृष्टि में रखकर जो तप किया जाता है उसे च्यवन तथा जन्म कल्याणक तप कहते है।

श्री तीर्थंकर परमात्मा का जीव, देवगति मे अपूर्व सुख भोगकर मनुष्य क्षेत्र की कर्मभूमि मे, उत्तम कुल मे धनाढ्य

या प्रतापी राजा की शील आदि गुण सम्पन्न रानी की कुक्षि में अवतरते हैं। देवगति से गर्भ में आने तक के समय को 'च्यवन' कहते हैं।

देवता का आयुष्य जब छैः माह शेष रहता है तब उनके कंठ मे रही पुष्पमाला मुरझा जाती है, कल्पवृक्ष कांपने लगता है, वस्त्र मैले मालूम होने लगते हैं, आलस्य आने लगता है, काम-राग की वृद्धि होती है, अंग टूटने लगता है, दृष्टि में भ्रम आने लगता है, शरीर घूजने लगता है और अरति उत्पन्न होती है परन्तु तीर्थंकर होने वाले देव का च्यवनकाल तक उलटा वृद्धि पाता है और ऊपर बताये गये दूषित चिह्न उन्हें मालूम नहीं होते।

जब तीर्थंकर होने वाले देव का जीव स्वर्ग से आता है तब पृथ्वी पर अशिव-उपद्रव आदि दूर हो जाते हैं और नारकीय जीवो को भी क्षणिक सुख की प्राप्ति होने से हर्षित होते हैं। जब तीर्थंकर परमात्मा का जीव माता के गर्भ मे आता है तब जिनमाता चौदह स्वप्न देखती है।

सम्पूर्ण जगत् हर्षित हो, निमित्त और शकुन आदि योग उत्तम हो उस समय मध्य रात्रि में, पृथ्वी जैसे निधान उगलती है, जिनमाता वैसे जिनेश्वर भगवंत को जन्म देती है। परमात्मा के जन्म समय सर्व दिशाएं प्रफुल्लित होती हैं, छप्पन दिक्कुमारियां आकर प्रसूति सम्बन्धी सब काम करती हैं। जन्म होते ही सौधर्मेंद्र का आसन कंपित होता है इसलिए जन्म स्थान पर आकर माता के पास में परमात्मा का प्रतिबिम्ब रख, पांच रूप कर परमात्मा को मेरु पर्वत पर ले जाते हैं। वहा बाकी के तिरेसठ इंद्र भी अपने परिवार सहित आते हैं

और परमात्मा का जन्म महोत्सव अत्यंत हर्षपूर्वक स्नानाभिषेक द्वारा करते हैं।

श्री च्यवन तप तथा जन्म तप विधि

चतुर्विशतितीर्थेशानुद्दिश्य च्यवनात्मकम्।
विना कल्याणकदिनैः, कार्यानशनपद्धतिः ।।

च्यवन को दृष्टिगत रखकर जो तप किया जाता है वह च्यवन तप कहलाता है। इसमें चौबीस तर्थंकरों को ध्यान में रखकर उनके कल्याणक के दिनों का ध्यान रखे बिना एकांतर चौबीस उपवास करना।

उद्यापन मे बड़ी स्नात्रविधि पूर्वक जिनेश्वर के पास चौबीस चौबीस पकवान, फल आदि रखना। संघ वात्सल्य, सघपूजा करना। इस तप के फल से सद्गति की प्राप्ति होती है। यह मुनिराज तथा श्रावक को करने का आगाढ तप है।

जन्म तप भी इसी प्रकार करना।

जिस दिन जिन भगवंत का तप हो उस दिन उनके नाम का गुणना करना। माला २० गिनना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना। च्यवन के तप मे 'ऋषभस्वामि परमेष्ठिने नमः' इस तरह परमेष्ठी पद २४ प्रभु के नाम के साथ जोडकर गुणना करना। तथा जन्म के तप में 'श्री ऋषभस्वामि अर्हतेनमः' इस तरह अर्हंते पद २४ प्रभु के नाम के साथ जोड़कर गिनना।

---

५६. श्री सूर्यायण तप

जिस तरह बारहवां चांद्रायणास तप है उसी तरह यह सूर्यायण तप है। समभूतला पृथ्वी से ८०० योजन ऊँचा सूर्य का स्थान है। वह ज्योतिषी देवो का इंद्र है। मनुष्य क्षेत्र में सूर्य चर अर्थात् घूमता है जबकि ढाई द्वीप के बाहर उसका विमान स्थिर है।

सूर्य के विमान को सोलह हजार देव उठाते हैं। उसकी गति चंद्र से तेज है। परन्तु ऋद्धि चंद्र से कम है। सूर्य सम्बन्धी विशेष वर्णन बृहत् सग्रहणी मे देखें।

श्री सूर्यायण तप विधि

सूर्य की तरह अयन अर्थात् गति अर्थात् कमी और वृद्धि से जो तप किया जाय वह सूर्यायण तप कहलाता है। यह तप वज्र मध्य तथा यवमध्य चांद्रायण की तरह करना।

उद्यापन में चंद्र की जगह सूर्य बोलना। बाकी सब चंद्रायण तप की तरह समझना। इस तप के फल से बड़े राज्य की प्राप्ति होती है। यह साधु तथा श्रावक को करने का आगाढ़ तप है। (देखो तप नं. १२)

---

५७. श्री लोकनालि तप

यह लोक चौदह राज प्रमाण है। उसके बाद अलोकाकाश है। सातवीं नरक के अंतिम तल से प्रथम नरक के ऊपर के

तल तक सात रज्जू (राज) प्रमाण होता है। इसके बाद तिर्यंक्लोक (जिसमें हम लोग रहते है) लांघकर सौधर्म तथा ईशान देवलोक के ऊपर के प्रतर पर आठ सनत्कुमार तथा महेंद्र के अन्तिम प्रतर पर नौ, ब्रह्मलोक लांघकर लातंक देवलोक के दस महाशुक्र लांघकर सहस्त्रार देवलोक के ग्यारह, आरण तथा अच्युतन्त के बारह, नौ ग्रैवेयकांत के तेरह और पांच अनुत्तर विमान लांघकर सिद्धशिलांत पर चौदह रज्जू (राज) पूरा होता है।

यह लोक 'वैशाख' सस्थान पर अर्थात् दो हाथों को दोनों कमर पर रख दोनो पैर पहोला रख टगर टगर खड़ा हो ऐसा पुरुष के आकार का है। इसके सिवाय वृद्ध पुरुष, त्रिशराव संपुट या बिलोणा करती युवा स्त्री के आकार को भी लोक के आकार को समझा जाता है।

यह लोक किसी ने नही बनाया है। स्वयसिद्ध निराधार सदा शाश्वत है। यह लोक धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय मय है। इन चौदह राजलोकों के मध्य मे त्रस जीवो वाली, चौदह राजप्रमाण लम्बी और एक राज पहोली 'त्रसनाड़ी' है, जिसमें एकेन्द्रिय से पंचेद्रिय तक जीव होते हैं। उसके बाहर लोकक्षेत्र मे केवल एकेद्रिय जीव ही होते हैं।

अधो, तिर्यंक् और ऊर्ध्व ये तीन स्थान 'लोक' शब्द जोड़कर बोले जाते हैं। अधोभाग में सात राज से अधिक पृथ्वी है, ऊर्ध्व भाग मे सात राज से कम पृथ्वी है। ऊर्ध्व लोक के सात राज्य के बीच मे तिर्यक्लोक तथा सिद्धशिला सम्मिलित हैं।

ऊर्ध्वलोक सात रज्जू से कम मृदंग आकार का, तिर्यक्-लोक १८०० योजन घंटा आकार का और अधोलोक सात रज्जू से अधिक अधोमुखी कुंभी के आकार का है।

अधोलोक में नारकियों, परमाधापियो, भुवनपति देव-देवियो का स्थान है। तिरछा लोक मे व्यंतर और मनुष्य, असख्य द्वीप-समुद्रों, ज्योतिषी देव हैं। ऊर्ध्व लोक मे सदानंद निमग्न उत्तम कोटि के वैमानिक देव तथा उनके विमान हैं। इसके वाद सिद्ध परमात्मा से सुवासित सिद्धशिलागत सिद्ध परमात्मा है।

श्री लोकनालि तप विधि

सप्तपृथ्व्यो मध्यलोकः, कल्पा ग्रैवेयका अपि ।
अनुत्तरा मोक्षशिला, लोकनालिरितीर्यते ॥१॥
एकभक्तान्युपवास एकभक्तानि नीरसाः ।
आचाम्लान्युपवासश्चक्रमात्तेषु तपः स्मृतम् ॥२॥

लोकनाल के क्रम से जो तप किया जाता है वह लोकनालि तप कहलाता है। इसमे सात नरक पृथ्वी, एक मध्य लोक, वारह कल्प, नौ ग्रैवेयक, पांच अनुत्तर विमान तथा मोक्ष (सिद्ध) शिला को लोकनाल कहते हैं। इसमे सात नरक पृथ्वी को लक्ष्य में रखकर सात एकासना करना। पीछे मध्य लोक को लक्ष्य मे रखकर एक उपवास करना। पीछे वारह कल्प (देवलोक) को लक्ष्य में रखकर वारह एकासना करना। फिर नौ ग्रैवेयक की नौ नीवी करना। फिर पांच अनुत्तर विमान के

पांच आयंबिल करना । फिर सिद्धशिला का एक उपवास करना । इस तरह पेंतीस दिन मे यह तप पूर्ण होता है । इसमें १६ एकासना, ६ नीवी, ५ आयंबिल और २ उपवास होते हैं ।

उद्यापन मे बड़ी स्नात्रविधि से जिन पूजा करना । चादी की सात पृथ्वी, स्वर्गवाला मध्यलोक, विविध मणी वाले बारह कल्प, नौ ग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमान तथा स्फटिक की सिद्धशिला । (चांदी के चंद्रमा वाली[1]) बनाकर उन पर स्वर्ण तथा रत्नों की स्थापना करना और ये सब देव के पास पुरुष प्रमाण अक्षत का ढेर कर उन पर रखना । नाना प्रकार के पकवान, फल आदि रखना । संघ वात्सल्य, संघपूजा करना । इस तप के फल से उत्तम ज्ञान की प्राप्ति होती है । यह मुनिराज तथा श्रावक को करने का आगाढ तप है ।

'नमो अरिहंताणं' पद की २० माला गिनना । स्वस्तिक आदि बारह बारह करना ।

---

५८. श्री कल्याणक अष्टाह्नि का तप

कल्याणक को लक्ष्य मे रखकर आठ-आठ दिन तक किया जाने वाला तप कल्याणक अष्टाह्निका तप कहलाता है ।

---

१. चादी का चाद करने का 'व' आदि नम्बर वाली प्रतियो मे कहा है ।

श्री कल्याणक अष्टाह्निका तप विधि

एकभक्ताष्टकं कार्यमर्हत्कल्याणपञ्चके ।

प्रत्येकं पूर्यते तच्च बृहदष्टाह्निकातपः ।।

च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण इन पांच कल्याणको से संयुक्त हुए आठ आठ दिन होने से कल्याणक अष्टाह्निका तप कहलाता है। इसमें ऋषभदेव आदि एक एक तीर्थंकर के एक एक कल्याणक को लक्ष्य में रखकर आठ आठ एकासना करने से चालीस एकासने से एक तीर्थंकर के कल्याणको का तप पूरा होता है। इस तरह दूसरे तेवीस तीर्थंकरों के कल्याणको को लक्ष्म में रखकर चालीस चालीस एकासना करने से कल्याणक अष्टाह्निका तप पूरा होता है। सब मिलकर ६६० एकासने होते हैं। कदाचित् एक तीर्थंकर से दूसरे तीर्थंकर के कल्याणक तप के बीच में अड़चन पड़े तो कोई हर्ज नही, परन्तु चालीस एकासने तो एक ही साथ करना चाहिये।

उद्यापन मे एक सौ वीस-एक सौ बीस (अथवा सिर्फ चौवीस चौवीस)[1] पकवान, फल आदि बड़ी स्नात्रविधि पूर्वक रखना। मुनिराज को वस्त्र, अन्न, पात्र आदि वहोराना। संघ वात्सल्य, संघपूजा करना। इस तप के फल से तीर्थंकर नाम-कर्म का बंध होता है। यह मुनिराज तथा श्रावक को करने का आगाढ़ तप है। जिस तीर्थंकर का जिस कल्याणक का तप

१. ऐसा पाठ अ. व. आदि प्रतियो मे है।

चलता हो उन उन तीर्थंकर के नाम का गुणना करना। (नं० ८ वाला तप देखो)

---

५९. श्री आयंबिल वर्धमान तप

छैः विगय के त्याग से किया जाने वाला एकासना आयबिल कहलाता है। दूध, दही, घी, तेल, गुड़ और पकवान ये छैः विगई है। विगय अर्थात् विकृति, जिस रस के सेवन से मन, वचन और काया में विकृति आवे वह विगय।

आजकल प्रतिदिन आयबिल तप की महत्ता बढती जाती है और उस तप को करने वाले भव्यात्माओं की संख्या भी बढ़ती जाती है। आयंबिल उत्तम तप है, रसनेंद्रियों को जीतने के लिए यह अमोघ उपाय है।

चैत्र और आश्विन माह मे एक साथ नौ आयबिल किये जाने को 'श्री नवपद ओली' कहते हैं। श्री सिद्धचक्र भगवंत की आराधना से श्रीपाल और मयणासुन्दरी को इस लोक और परलोक मे अति ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त हुई थी, यह बात अपनी समाज मे सुविदित है।

चढते क्रम से ओली करना 'वर्धमान तप' कहलाता है। इस काल मे भी कई भव्यात्माओ ने विकट गिनी जाने वाली इस वर्धमान तप की सौ ओली पूरी की है। श्रीचंद केवली ने पूर्व भव में किये इस आयबिल वर्धमान तप की आराधना से अत्यत ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त की और अत मे मोक्ष प्राप्त किया।

श्री आयंबिल वर्धमान तप विधि

उपवासान्तरितानि च शतपर्यंतं तथैकमारभ्य ।
वृद्धया निरन्तरतया भवति तदाचाम्लवर्धमानं च ॥

आयंबिल द्वारा वृद्धि पाता जो तप है वह आयबिल वर्धमान तप कहलाता है। इसमे उपवास के आतरेवाला आयबिल एक से प्रारम्भ कर सौ तक करना अर्थात् प्रथम एक आयबिल कर उपवास करना, फिर दो आयबिल कर उपवास करना, फिर तीन आयबिल कर उपवास करना फिर चार आयबिल कर उपवास करना, फिर पांच आयबिल कर उपवास करना—इस तरह पाच ओली एक साथ करना। इस प्रकार बढ़ते बढ़ते सौ आयबिल कर उपवास करना। इस तरह करते चौदह वर्ष, तीन माह और बोस दिन मे यह तप पूरा होता है।

उद्यापन मे बड़ो स्नात्रविधि से चौबोस जिन को पूजा करना। मुनि को कुछ वहोराना। सत्रपूजा, सघवात्सल्य करना। 'इस तप के फल से तोर्यंकर नाम कर्म का बंध होता है।' यह साधु तथा श्रावक को करने का आगाढ़ तप है।

'नमो अरिहंताणं' पद को बोस माला गिनना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

यह महान् तप है और पुण्यशालो जोव हो इसे साद्यंत पूरा कर सकते हैं। यह तप पूर्व भव में श्रोचंद केवला ने किया था।

६०. श्री माघमाला तप और विधि

आरभ्य पोषदशमों पर्यन्ते माघशुक्लपूर्णायाः ।
स्नात्वाऽर्हन्तं संपूज्य चैकभक्तं विदध्याच्च ॥

माघ माह मे माला रूप मे करने का तप माघमाला तप कहलाता है । यह तप माघ बद दसम से आरम्भ कर माघ सुद पूर्णिमा को पूरा करना । इसमें हमेशा स्नान कर अरिहंत की पूजा कर निरंतर एकासना करना । यह तप इक्कीस दिन में पूर्ण होता है । इस तरह चार वर्ष तक करना ।

उद्यापन मे बड़ी स्नात्र विधि से जिनेश्वर की पूजा कर स्वर्ण मणि गर्भित ऐसे घृत का मेरू बनाकर देव के पास रखना । पक्वान, फल आदि यथाशक्ति रखना । मुनि को दान देना । संघपूजा, सघवात्सल्य करना । इस तप के फल से उत्तम सुख की प्राप्ति होती है । यह सिर्फ श्रावक को करने का आगाढ़ तप है ।

'नमो अरिहंताणं' पद की बीस माला गिनना । स्वस्तिक आदि बारह बारह करना ।

६०--१ श्री महावीर तप

निकाचित कर्म खपाने के लिए उग्र तपश्चर्या जैसा एक भी अन्य प्रबल साधन नही है । भगवंत श्री महावीर देव के जीव ने त्रिपृष्ठ वासुदेव आदि भवो में बांधे निबिड़ कर्मग्रंथी को भेदने के लिए घोर तपश्चर्या की और इसीलिए तपपद की पूजा को ढाल मे गाते हैं कि—

साढा बार वरस जिन उत्तम, वीरजी भूमि न ठाया हो;
घोर तपे केवल लह्यु तेहना, पद्मविजयजी नमे पाया.

तपस्या करतां करतां ... .

मृगसर वद दसमी को महावीर परमात्मा ने दीक्षा ली थी और ज्येष्ठ वद १० को उन्हें केवलज्ञान हुआ था। छद्मस्थावस्था मे १२ वर्ष और साढे छः मास में परमात्मा ने सिर्फ ३४९ दिन ही पारणा किया था। यह घोर तपश्चर्या किस प्रकार परमात्मा ने की उसकी सूची निम्न प्रकार है।

तप सख्या	मास दिन	तप सख्या	मास दिन
१ छमासी	६–००	२ अढी मासी	५–००
१ छ मास मे पाच दिन काम	५–२५	६ दो मासी	१२–००
		२ ढोढ मासी	३–००
६ चऊमासी	३६–००	१२ मासक्षमण	१२–००
२ तीन मासी	६–००	७२ पक्ष क्षमण	३६–००
१ भद्र, महाभद्र और सर्वतोभद्र प्रतिमा एक साथ की उनके दिन २-४-१०	०–१६	२२२ छट्ठ (दो उपवास)	१५–०५
		१ दीक्षा का दिन	०–०१
		३५०	१३८–२६
		पारणे के दिन ३४९	११–१९
१२ अट्ठम (तीन उपवास)	१–०६		१५०–१५

कुल वर्ष १२ और साढे छ. मास

गिनती मे गिने जा सकें उतने उपसर्ग परमात्मा को छद्मस्थावस्था मे निम्न प्रकार आये, जिन्हे उन्होने अपूर्व समभाव से सहन किये थे ।

१. ग्वाले का (बैल छोडकर जाने वाला)
२. आस्थिक गाव मे शूलपाणी यक्ष का
३. चण्डकौशिक सांप का
४. गंगा नदी पार करने सुद्दंष्ट देव का
५. कटपूतना व्यंतरी का असह्य शीत उपसर्ग
६. संगमदेव द्वारा किये गये २० घोर उपसर्ग
७. ग्वाले ने कान में डाले कील का

केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद गोशाला ने तेजोलेश्या फेकने का महान् उपसर्ग किया था । तीर्थंकर भगवंतो को केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद उपसर्ग होते ही नही, इससे भगवत श्री महावीर देव को गोशाला द्वारा किए उपसर्ग को अपवाद रूप समझना । समभावी, सहिष्णु और घोर तपस्वी महावीर देव ने ये सब उपसर्ग कर्म निर्जरा के लिए सहन किए और अन्त में अपूर्व शिव लक्ष्मी प्राप्त की ।

विशेष जानकारी के लिए श्री त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र का दसवा पर्व पढना ।

श्री महावीर तप विधि

महावीर तपो ज्ञेयं, वर्षाणि द्वादशैव च ।

त्रयोदशैव पक्षांश्च, पञ्चकल्याणपारणे ॥

श्री महावीर स्वामी ने छद्मस्थ अवस्था मे जो तप किया वह महावीर तप कहलाता है। इसमे बारह वर्ष और तेरह पक्ष अर्थात् साढे छै: मास तक दस-दस उपवास पर पारणा कर तप पूरा करना।

उद्यापन मे बडी स्नात्रविधि से श्री महावीर स्वामी की प्रतिमा के आगे स्वर्णमय वटवृक्ष रखना। सघ वात्सल्य, आदि करना। इस तप के फल से कर्मों का क्षय होता है। यह मुनिराज तथा श्रावक को करने का आगाढ़ तप है। "श्री महावीरस्वामिने नमः" पद की २० माला गिनना, स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

६१. श्री लक्ष प्रतिपद तप (लक्ष पड़वा) और विधि

शुक्लप्रतिपदः सूर्यसख्या एकाशनादिभिः।
समर्थनीयास्तपसि लक्षप्रतिपदाख्यके ॥

शुक्ल पक्ष की एकम के दिन एकासनादि (अथवा उपवासादि) तप करना। इस तरह बारह एकम अर्थात् एक वर्ष मे यह तप पूरा होता है।

उद्यापन मे देवपूजा कर देव के पास एक लाख धान्य रखना। धान्य का प्रमाण इस प्रकार है—

चावल माणा ५, मूंग पाली २, मोठ पाली १, ऊड़द पाली १, चणा माणा २, चंवला माणा २, तूग्रर पाली ८, वाल माणा २, तिल पाली ७, जुम्रार माणा ५, गोधूम माणा ७, जो माणा २, कांग माणा ३, कोद्रवा माणा ३। इस तप के फल से अक्षय लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। यह श्रावक को करने का आगाढ़ तप है।

इति गीतार्थोक्तानि तपांसि:

आचार्योक्त फल तपस्या—

६२. श्री सर्वांगसुंदर तप और विधि

शुक्लपक्षेऽष्टोपवासा आचाम्लान्ततरिताः क्रमात्।
विधीयन्ते तेन तपो भवेत्सर्वांगसुन्दरम् ॥

जिस तप को करने से सम्पूर्ण अंग सुन्दर हो वह सर्वांगसुंदर तप कहलाता है। इसमे प्रथम शुक्लपक्ष की एकम के दिन उपवास कर पारणे पर आयबिल करना। फिर उपवास कर आयबिल करना। इस प्रकार आठ उपवास और सात आयबिल[1] कर पंद्रह दिन (पूर्णिमा को) मे यह तप पूरा करना। शक्ति अनुसार संयमादि दस प्रकार के धर्म का पालन करना, कषाय का त्याग करना।

---

१. श्री प्रवचन सारोद्धार के वालावबोध आदि मे पारणे के आठ आयबिल कहे हैं।

पूर्णिमा के दिन उद्यापन करना। बड़ी स्नात्र विधि से देव के पास रत्नजडित स्वर्णमय पुरुष बनवाकर रखना। यथाशक्ति फल, पकवान रखना। मुनिदान, संघ वात्सल्य, संघ पूजा करना। इस तप के फल से सम्पूर्ण अंग की सुंदरता की प्राप्ति होती है। यह श्रावक को करने का आगाढ़ तप है।

'नमो अरिहंताणं' पद की बीस माला गिनना, स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

६३. श्री नीरूजशिख (निरूकसिह) तप और विधि

तपोनीरुर्जशिखाख्यं विधेयं तद्वदेव हिं।
नवरं कृष्णपक्षे तु, करणं तस्य शस्यते॥

नीरूज अर्थात् रोग रहित जिसकी शिखा अर्थात् चूड़ा है, वह नीरूजशिख तप कहलाता है। यह तप सर्वांगसुंदर तप की तरह ही करना अर्थात् आठ उपवास तथा सात आयबिल मिलकर पद्रह दिन मे पूरा करना। विशेष में इतना ही कि यह तप कृष्ण पक्ष की एकम के दिन आरम्भ कर अमावस्या को पूरा करना।

उद्यापन सर्वांगसुंदर तप की तरह करना। (तप नं. ६२ देखो)। इस तप के करने से आरोग्यता प्राप्त होती है। यह श्रावक को करने का आगाढ़ तप है। इस तप मे ग्लान साधु

साध्वो को औषधि आदि द्वारा सुश्रूषा करना चाहिए। (निजिगोष्ठ मे और इसमें फर्क है—देखो तप न १२४)

गुणना वगैरह तप न ६२ के अनुसार करना।

---

६४. श्री सौभाग्य कल्पवृक्ष तप

बिना परिश्रम, सिर्फ उस जगह जाकर चिंतन करने मात्र से मनोवाछित पदार्थ मिले वह कल्पवृक्ष कहलाता है। यह तप सौभाग्य प्राप्त करने के लिए कल्पवृक्ष के समान होने से यह **सौभाग्य-कल्पवृक्ष तप** कहलाता है।

सौभाग्य सब को इष्ट होता है। लग्नादि व्यवहारिक अवसरो में भी **सौभाग्य** की वाछा की जाती है।

युगलिक मनुष्यो को ऋषभदेव भगवत ने सब कलाए सिखाईं। इससे पहले कल्पवृक्षो के पास जिस वस्तु की जरूरत होती उसकी इच्छा करते ही वह तुरन्त पूर्ण हो जाती। बाद मे कालदोष से कल्पवृक्ष का प्रभाव कम होने लगा और भरत-क्षेत्र मे तो वह नष्ट ही हो गया कहा जा सकता है। कल्पवृक्ष दस प्रकार के होते है, जिनका सक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—

१ **मद्यांग**—शहद देवे।
२ **भृगांग**—विविध पात्र-बरतन दे।
३ तुर्यांग—विविध प्रकार के वाजित्र दे।
४-५-**दीपशिखांग व ज्योतिष्कांग** } अद्भुत प्रकाश दे।

६ चित्रांग— विविध पुष्पो की माला दे ।
७ चित्ररस—अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजन दे ।
८ मण्यंग—अलग अलग तरह के आभूषण-अलकार दे ।
९ गेहाकार—रहने के लिए आवास-घर दे ।
१० अनग्न—दिव्य वस्त्र दे ।

श्री सौभाग्य कल्पवृक्ष तप विधि

सौभाग्यकल्पवृक्षस्तु चैत्रेऽनशनसंचयैः ।
एकान्तरैः परकार्यस्तिथिचन्द्रादिके शुभे ॥

सौभाग्य देने मे कल्पवृक्ष के समान यह तप है वास्ते इसे सौभाग्य कल्पवृक्ष तप कहते हैं। यह चैत्र मास की सुद एकम से और चद्रादि शुभ योग होने पर एकान्तर पारणावाला १५ उपवास करने से तीस दिन मे पूरा होता है।

उद्यापन मे वड़ी स्नात्रविधि पूर्वक स्वर्ण अथवा चादी का कल्पवृक्ष वनवाकर देव के पास रखना (स्वर्ण का वृक्ष वनावें तो विद्रुम तथा मोती के फूलवाला और शाखावाला वनवाना अथवा तदुल का करवाना ।) सघवात्सल्य, सघपूजा करना । इस तप के फल से सौभाग्य की प्राप्ति होती है। यह श्रावक के करने का आगाढ़ तप है ।

'ॐ नमो अरिहंताणं' पद की वीस माला गुणना, स्वस्तिक आदि वारह वारह करना ।

६५. श्री दमयंती तप

जब नल राजा ने दमयंती को घोर जंगल में रख गुप्त रीति से उसका त्याग किया, उसके बाद सती दमयंती ने अपनी विकट वियोगावस्था निर्विघ्न रूप से दूर करने के लिए तप किया था जिससे इस तप को दमयंती तप कहते हैं। सती दमयंती का सक्षिप्त वृत्तांत निम्न प्रकार है—

विदर्भ देश (वर्त्तमान मध्य भारत) के भीम राजा के दमयंती नामक सुशील पुत्री थी। वह स्त्रियो की चौंसठ कला मे अति निपुण थी। अठारह वर्ष की उम्र मे भीम राजा ने उसके विवाहोत्सव के लिए कुंडिनपुर मे स्वयवर का आयोजन किया।

कौशल देश के राजा निषध अपने पुत्र नल और कूबर के साथ स्वयवर मे उपस्थित हुए। दमयती ने नल के गले मे वरमाला डाली। भीम राजा ने विवाह मे अपार धन-सपत्ति और अन्य सामग्री दी।

कुछ दिन कुंडिनपुर मे रहने के बाद निषध राजा ने अपने पुत्र और पुत्रवधु के साथ कौशल नगरी की ओर प्रयाण किया। मार्ग मे रात्रि हो गई और घोर जगल आ गया। मार्ग भी दिखाई नही दे ऐसे अधकार के समय दमयती ने अपना भालस्थल साफ किया इसलिए सूर्य के प्रकाश की तरह प्रकाश हो गया और उस प्रकाश मे उन्होने कायोत्सर्ग मे खडे ध्यान मे मग्न, मदोन्मत्त हाथी की सूढ से रगडाते और मदजल की सुवास से आकर्षित भ्रमरो के गुंजारव से शोभित एक मुनिवर को देखा।

सव ने रथ से उतर कर मुनिवर को प्रणाम किया। मुनिवर ने योग्य समझकर देशना दी। फिर निषध राजा ने दमयंती के भालस्थल मे प्रकाशित तेजपुंज का कारण पूछा। तब मुनिश्री ने उसके पूर्व भव का वर्णन करते हुए वताया कि-पूर्वभव मे इसने पाँच सौ आयबिल कर, भावी तीर्थंकर श्री शांतिनाथ भगवान् की एकाग्र मन से सेवा-अर्चना की, उद्यापन मे चौवीस तीर्थंकर भगवंतो के भालस्थल पर रत्न जड़ित स्वर्णतिलक लगाये थे, उसके प्रभाव से इस भव मे उसके भालस्थल मे प्रकाशतिलक प्राप्त हुवा है। निषध राजा ने अपनी नगरी मे आकर, नल को राज सौंपकर दीक्षा अगीकार की।

नल का भाई कुवर महाप्रपची था। नल का अभ्युदय देख वह ईर्षा करने लगा। किसी भी तरह नल को स्थानभृष्ट करने की युक्ति सोचने लगा। एक बार जुआ खेलते नल अपना समस्त राज्य तथा स्त्री दमयंती को हार गये। नगरजनो के समझाने से कुबर ने दमयंती को नल के साथ जाने की आज्ञा दे दी।

घोर वन मे जाने के वाद दोनो पति-पत्नी सो गये। नल को विचार आया कि वन-जंगलो मे या देश-देशातरो मे स्त्री बंधन रूप है, इसलिए मुझे दमयंती का त्याग कर देना चाहिए। ऐसा निर्णय कर नल ने उसके वस्त्र के किनारे पर कुंडिनपुर तथा कौशलनगर दोनो तरफ जाने के मार्ग का चित्र बना दिया, उसे नीद मे सोती हुई अकेली छोड़ गुप्त रीति से वे चले गये।

मार्ग मे आगे वढते, दावानल मे घिरे एक सर्प ने नल को उसकी रक्षा करने के लिए निवेदन किया। नल ने उसे बचाकर

वाहर निकाला तो सर्प ने उसे डंक मारा जिससे उसके जहर से नल कुब्रड़ा हो गया।

नल ने उपकार के वदले अपकार करने का कारण सर्प से पूछा तो सर्प ने वताया कि—मैं तेरा पिता निषध हूँ, आने-वाली आपत्ति से रक्षा करने के लिए मैंने ऐसा किया है। मैं दीक्षा के प्रभाव से मर कर पांचवे देवलोक मे देव हुआ हूँ। यह श्रीफल तथा करडिया मैं तुझे देता हूं वह ले। श्रीफल में दिव्य वस्त्र है और करडिये मे आभूषण हैं। जब तुझे इन्हें पहनने की इच्छा हो तब तू पहन लेना जिससे तेरा असली रूप प्रगट हो जायगा। पीछे नल की इच्छा से पिता-देव ने उसे सुसुमारपुर नगर मे पहुंचा दिया।

देवयोग से उस नगर में राजहस्ती पागल हो गया। नल ने उसे वश मे किया। दधिपर्ण राजा ने नल को अपने पास वुलाया। राजा से कूबड़े ने कहा कि—मैं नल राजा का रसोइया हू सूर्यपाक रसवंती बनाना जानता हूं। नलराजा दमयती को वन मे छोडकर कही चला गया है।

एक बार किसी ने रसोइये (नल) के पास दमयंती सम्बंधी श्लोक बोले इसलिए कूबडे ने उससे दमयती का वृत्तांत पूछा। उसने बताया कि—दमयती ने प्रात काल होते ही नल को नहीं देख विलाप करने लगी। इतने मे वस्त्र के किनारे पर लिखा मानचित्र दिखाई दिया तब उसने जाना कि राजा उसे छोड कर चले गये हैं जिससे वह बहुत दुखी हुई। फिर किसी सार्थवाह से भेट हो गई। इसलिए वह उसके साथ आगे बढ़ी। वर्षा ऋतु में सार्थवाह ने पड़ाव डाला तब उसने गुफा मे रहकर धर्म आराधना की। फिर आगे बढते मार्ग मे उसे कोई राक्षस

मिला। राक्षस से भयभीत न होने के कारण वह राक्षस प्रसन्न हुआ और उसे बताया कि बारह वर्ष में तुझे तेरे पति मिलेंगे। बाद मे एकात गुफा में रहकर, श्री शातिनाथ भगवत का प्रतिबिम्ब स्थापित कर तपश्चर्या और धर्माराधना करने लगी। इसके प्रभाव से उस जगह श्री **यशोभद्रसूरि** मुनिवर आ पहुँचे। उसने उनसे पति वियोग का कारण पूछा तब ज्ञानी गुरु ने बताया कि—पूर्व भव मे **मम्मण** राजा की तू **वीरमती** नामक पटरानी थी। कार्यवशात् ग्रामातर जाते रास्ते में मुनिवर मिले उसे अपशकुन समझ तूने उन मुनि को बारह घड़ी तक रोका परन्तु बाद मे पश्चाताप होने से मुनिवर से क्षमा माग उन्हे विदा किये। इस कारण तुझे बारह वर्ष का पति वियोग हुआ है।

बाद में चलते चलते वह अचलपुर मे आई। वहा की रानी चद्रयशा उसकी मौसी होती थी। परन्तु उसने दमयंती को पहिचाना नही। उसके सद्‌गुणों से आकर्षित हो उसे दानशाला सुपुर्द कर दी। एक बार कुंडिनपुर से आए हरिभद्र ब्राह्मण ने दानशाला में दमयती को पहिचान लिया। चद्रयशा को मालूम होने पर वह उसे राजमहल मे ले गई। उसके बाद दमयती अपने पिता के पास कुंडिनपुर गई।

एक बार प्रसगवश भीम राजा ने अपना दूत दधिपर्ण राजा के पास भेजा। वहां उसने सूर्यपाक रसवंती खाई। उसने आकर वह वृत्तात भीम राजा को बताया तो दमयंती ने कहा कि—आपके जमाई के सिवाय कोई सूर्यपाक नही बना सकता इसलिए वे तुम्हारे जमाई ही होने चाहिए। विशेष जानकारी के लिए उसने पिता को युक्ति बताई कि—दमयती ने पुनः

स्वयवर की योजना बनाई है। ऐसे समाचार दधिपर्ण राजा को कहलावें इसलिए नल राजा अपना यह पराभव सहन नही कर सकेंगे और वे दधिपर्ण राजा को लेकर अति शीघ्र यहा आ पहुँचेंगे।

दमयंती की युक्ति सफल हुई। पशु भी अपनी स्त्री का पराभव सहन नही कर सकता तो नल जैसे क्षत्रिय और प्रतापी पुरुष कैसे सहन कर सकते हैं? मात्र एक दिन का ही समय शेष होने पर भी विद्या के प्रभाव से वह दधिपर्ण को लेकर स्वयंवर मडप मे उपस्थित हुए। दमयती ने उन्हें पहिचान लिया और कहा कि—वन मे सती को छोड़कर चले गये परन्तु अब जगती हुई को छोड़कर आप कही नही जा सकते। नल ने अपना असली रूप प्रगट किया और सर्वत्र आनन्द छा गया। भोम राजा ने अपना राज्य नल को सौंप दिया।

बाद मे नल राजा अपनी पत्नी के साथ कौशल नगर मे आये। पुनः जुआ मे कुबर को जीत कर अपना राज्य प्राप्त किया।

विविध प्रकार के भोग-विलास करने के बाद अपने पुत्र पुष्कर को राज्य दे दोनो ने दीक्षा ली।

दीक्षा समय मे भी दमयंती के प्रति आकर्षण बना रहने से अन्त मे अनशन किया और काल कर लोकपाल हुए। दमयती भी चारित्र पाल देवलोक मे गई व वसुदेव को कनकवती पत्नी हुई।

बाद मे द्वारिका का नाश और द्वैपायन के उपद्रव को जानकर श्री नेमिनाथ भगवत से दीक्षा ग्रहण की, केवलज्ञान

प्राप्त कर मोक्ष गई । दमयती सम्बंधी विस्तृत वृत्तांत जानने के लिए श्री दमयती चरित्र पढना ।

श्री दमयंती तप विधि

दमयन्त्या प्रतिजिनमाचाम्लान्येकविंशतिः ।
कृतानि संततान्येव, दमयन्तीतपो हि तत् ॥

दमयती ने नल राजा की वियोगावस्था मे यह तप किया था इसलिए इसे दमयती तप कहते हैं । इसमे हरएक जिनेश्वर को लक्ष्य में रखकर बीस वीस तथा शासन देवता को लक्ष्य मे रखकर एक एक इस तरह इक्कीस इक्कीस आंतरा रहित आयबिल करना । इस तरह पांच सौ चार दिन मे यह तप पूरा होता है । शक्ति न हो तो एक तीर्थंकर के इक्कीस आयबिल कर पारणा करना । इस तरह करते चौबीस दिन पारणे के बढेगे ।

उद्यापन मे चौबीस तिलक बनवाकर प्रभु को चढ़ाना तथा पांच सौ चार रूपानाणा, पकवान, फल आदि रखना । बड़ी स्नात्र विधि से जिन पूजा करना । सघपूजा, सघवात्सल्य करना । इस तप के करने से आपत्ति दूर होती है । श्रावक को करने का यह आगाढ़ तप है । जिन तीर्थंकर का तप चलता हो उन तीर्थंकर के नाम के साथ सर्वज्ञायनमः पद जोड़कर २० माला गिनना । स्वस्तिक आदि बारह बारह करना । शासनदेवता के दिन उस शासन देवी के नाम का गुणना करना ।

शासन देवी के नाम :—

चक्रेश्वरी, अजितबाला, दुरितारी, काली, महाकाली, श्यामा, शाता, भृकुटी, सुतारका, अशोका, मानवी, चण्डा, विदिता, अकुशा, कन्दर्पा, निर्वाणी, बला, धारिणी, वरणिप्रिया, नरदत्ता गांधारी, अम्बिका, पद्मावती, सिद्धायिका।

---

६६. श्री आयतिजनक तप और विधि

कार्यं द्वात्रिंशदाचाम्लैः, स्वसत्त्वेन निरंतरैः ।
एवं स्यादायतिशुभं, तप उद्यापनान्वितम् ॥

आयति अर्थात् उत्तरकाल, जिन्हे शुभपने जो उत्पन्न करे वह आयति (शुभ) जनक तप कहलाता है। यह तप निरतर बत्तीस आयबिल करने से पूर्ण होता है। शक्ति न हो तो एकान्तर पारणे वाला आयबिल करना।

उद्यापन मे बड़ी स्नात्रविधि से बत्तीस पकवान फल आदि रखना। सघ वात्सल्य, संघपूजा करना। यह तप **करने से उत्तर काल में शुभ होता है।** यह श्रावक को करने का **आगाढ़** तप है।

"नमो अरिहंताणं" पद की बीस माला गिनना, **स्वस्तिक** आदि बारह बारह करना।

६७—१. श्री अक्षयनिधि तप

जिसका कभी क्षय न हो ऐसा निधि-भण्डार वह अक्षय निधि। जिस तप के प्रभाव से विशाल निधि प्राप्त हो उसे अक्षयनिधि तप कहते हैं। इस तप सम्बन्धी सब विधि नीचे बताई जाती है वास्ते उसका विशेष विवेचन नही किया जा रहा है।

इस तप के प्रभाव से सुन्दरी को किस तरह अक्षयनिधि की प्राप्ति हुई उसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में राजगृही नगरी मे संवर सेठ रहते थे। उनके गुणवंती नामक पत्नी थी। वह वास्तव मे ही गुणवान थी। परन्तु पूर्व कर्म की विपरीतता से उसके घर मे दरिद्रता ने निवास कर लिया था। स्त्री-पुरुष बड़ी कठिनाई से आजीविका चलाने लगे। सुख के इच्छुक प्राणियों को धर्माराधन करना जरूरी है। इसके सिवाय सुख सम्पत्ति की प्राप्ति नही हो सकती।

समय आने पर गुणवंती ने गर्भ धारण किया। गर्भ के प्रभाव से सेठ की आजीविका के साधन बढने लगे। दूसरे व्यापारी उसके साथ व्यापार करने लगे और इस तरह उसके व्यापार मे वृद्धि होने लगी इसलिए धन की प्राप्ति भी अधिक होने लगी। गर्भ-स्थिति पूर्ण होने पर गुणवंती ने पुत्री को जन्म दिया। उसकी नाल को गाडने के लिए खड्डा खोदते समय उसमें से निधान निकला। पुत्री भाग्यशाली मानी जाने लगी। राजमंदिर तक यह बात पहुँची और राजा ने भी

उसको सम्मानित किया अर्थात् सेठ के घर बधाई भेजी। संवर सेठ ने भी भाग्यशाली पुत्री का जन्म महोत्सव पुत्र की तरह किया और बारहवे दिन सगे-सम्बधियो को आमंत्रित कर भोजन करा कर उनके सामने पुत्री का नाम सुन्दरी रखा। अनुक्रम से वह दूज के चंद्रमा की तरह प्रतिदिन बढने लगी।

सुन्दरी खेलते खेलते जहाँ जहाँ जमीन खोदती वहां वहां सहज ही मणि माणक युक्त निधान निकलता। इस तरह पुष्कल निधान प्राप्त होने से सेठ बहुत धनवान हो गया और सर्वत्र उसकी इज्जत होने लगी। इस ससार में धन ऐसी महत्त्वपूर्ण वस्तु मानी जाती है कि जिसके द्वारा मनुष्य को हर तरह की महत्ता प्राप्त होती है। धनवान मनुष्य विचक्षण न हो तब भी विचक्षण गिना जाता है, सब जगह उसकी पूछ होती है और जहां जहां वह जाता है वहा वहां उसका आदर होता है; इतना ही नही परन्तु उसकी बात का भी कोई उल्लंघन नही करता। यहा इतना स्मरण रखना चाहिये कि धन प्राप्ति के साथ यदि अभिमान या दुराचरण की प्राप्ति हो तो उसे पूर्वोक्त लाभ नही मिल सकता, इसलिए धनवान मनुष्य को इन दोनों बातो से दूर रहने का ध्यान रखना चाहिए।

धीरे धीरे सुंदरी यौवनावस्था मे आई इसलिए वह रंभा और उर्वशी की तरह लगने लगी। सेठ के मन में उसे देखकर उसके लिए वर की चिंता उत्पन्न हुई। योग्य कन्या को यदि योग्य वर को दी जाय तब ही वह दम्पत्ति सम्पूर्ण सुख को प्राप्त कर सकते हैं, इसलिए सेठ को चिंता हो यह स्वाभाविक है और ऐसी अनुपम कन्या को योग्य वर मिलना भी कठिन

होता है यह बात भी सत्य है, परन्तु ऐसा संयोग पूर्व कर्म के अनुसार मिल जाता है। सुंदरी का सम्बध उसी नगर मे समुद्रप्रिय सेठ के पुत्र श्रीदत्त के साथ हुआ, बड़ी धूमधाम से उसका पाणिग्रहण सस्कार किया गया और विपुल धन के साथ सुसराल भेजी गई।

पवित्र पैर वाली सुंदरी के सुसराल आते ही उसी समय वहां पैर के अंगूठे के द्वारा एक ककड़ निकलने पर निधान हाथ लगा। सोना मोहरो से भरा पूर्ण कलश निकला, इसलिये सुसराल के सब लोग अत्यत आनदित हुए और आने के साथ ही उसका मान-सम्मान बढ़नें लगा। उसके ननिहाल पक्षवालो ने सुंदरी को भोजन करने बुलाया, और वहां भी निधान निकला। इस तरह जहां जहां वह जाती वहां वहा निधान निकलता। इसलिए सब जगह उसको मान-सम्मान मिलने लगा। राजा भी उसका आदर करने लगा।

एक बार धर्मघोष आचार्य वहां पधारे। राजा आदि प्रमुख लोग वंदन करने गये। सुंदरी भी अपने कुटुम्ब के साथ भक्ति पूर्वक वंदन करने आई। गुरु भगवत को वदन कर सब लोग अपने अपने स्थान पर बैठ गये, इसलिए गुरु महाराज ने समयोचित देशना दी। देशना मे दान, शील, तप और भाव रूप चार प्रकार के धर्म का उपदेश देते हुए तप धर्म की विशेष व्याख्या की। तप की आराधना से कर्मों की निर्जरा होती है इतना ही नही परन्तु ऐसे अपूर्व पुण्य का बध होता है कि जिससे आवे वाले भव मे अनेक प्रकार की सुख सम्पत्ति प्राप्त होती है। निरोगी और बलवान शरीर की प्राप्ति के लिए तो तप ही मुख्य साधन है। पूर्व भव में तप करने वालो को इस भव मे वह अपरिमित

बल वाला और निरोगी होता है। इस तरह की देशना सुनने के बाद सुंदरी ने खड़े होकर विनय पूर्वक आचार्य भगवंत को पूछा कि—स्वामिन् ! मैंने पूर्व भव में किस तरह की धर्म आराधना की थी कि जिससे इस भव में मेरे पैर जहां जहां पड़ते हैं वहां वहां निधान निकलता है ? गुरु भगवत ने कहा कि—पूर्व भव में तेने अक्षयनिधि तप शुभ भाव से किया था, उसके फलस्वरूप इस भव में जगह जगह तुझे निधान की प्राप्ति होती है। सुंदरी ने निवेदन किया कि—हे भगवंत ! मेरे पूर्व भव का पूरा वृत्तांत कहे जिससे मैंने किस तरह तप की आराधना की इसका मुझे पता चले, और इस भव मे भी मैं उसकी विशेष रूप से आराधना करूं। गुरु महाराज ने कहा कि—

खेटकपुर नगर में संयम सेठ रहते थे। उनके ऋतुमती स्त्री थी। यह निरंतर अनेक प्रकार के तप करती थी और ज्ञान की भी सम्यक् प्रकार से भक्ति करती थी। उसने रत्नावली, कनकावली, एकावली आदि तप किये और दूसरे भी कई प्रकार के तप गुरु महाराज से पूछ पूछकर करने लगी, उसका चित्त तपधर्म मे ही रत रहने लगा। लोग भी रात दिन उसकी प्रशसा करते और उसके तप धर्म की अनुमोदना करते थे।

उसी के पडोस में वसु सेठ भी रहते थे, उनके सोमसुन्दरी नामक स्त्री थी। वह धर्म से अज्ञात थी, मूर्ख थी और अभिमानी और ईर्षालु थी। ऋतुमती की प्रशसा उसे सहन नही होती। नीतिकार कहते हैं कि ऐसी बेकार स्त्री बहुत हानि करती है। कहा है कि—

सूख्यो ब्राह्मण बगायु ढोर, चांप्यो नाग नासंतो चोर,
रांड भांड ने मातो सांढ, ये सातथी उगरीये मांड।

एक वार सयम सेठ के घर के समीप अग्नि का उपद्रव हुआ। सयम सेठ का घर उस लपेट में आने ही वाला था। परन्तु ऋजुमती के तप के प्रभाव से कुछ भी हानि नही हुई। यह आग लगने पर सोमसुन्दरी मन मे वडी खुश हूई कि अब सयम सेठ का घर जरूर नष्ट हो जायगा, परन्तु उसके घर को किसी तरह का नुकसान न हुआ इसलिए वह निराश हुई। एक बार उस गांव मे डकैती हुई, उस समय भी सोमसुन्दरी मन मे खुश हुई कि जरूर अब संयम सेठ का घर लूट लिया जावेगा परन्तु इस बार भी कुछ नही हुवा। डाकू उसके घर में गये ही नहीं। यह देखकर सोमसुन्दरी फिर निराश हुई। अनुक्रम से सयम सेठ और ऋतुमती धर्माराधन कर स्वग गये।

ऋतुमती की अत्यत ईर्षा करने से सोमसुन्दरी ने अनेक प्रकार के कर्म बाधे। उसके परिणाम स्वरूप उसी भव में उसके घर के धन का नाश हो गया और दरिद्री हो गई। ऐसी दुखी स्थिति में वह मरणासन्न हो गई, उस समय देवयोग से किसी श्रावक के मुंह से उसने श्री नवकार मत्र सुना, उसके प्रभाव से मरने पर मथुरा नगरी के राजा जितशत्रु के घर चार पुत्रों पर पुत्री हुई। उसका नाम सर्वऋद्धि रखा गया। पांच धाय माताओ द्वारा पालित वह बडी हुई। इतने मे जितशत्रु राजा पर शत्रु ने आक्रमण कर दिया। उसके साथ युद्ध करते हुए उसकी मृत्यु हो गई। शत्रु की सेना ने नगर मे प्रवेश किया इसलिए राजमहल के लोग जैसे तैसे भागने लगे। राजमहल

को शत्रु राजा ने लूट लिया। सर्वऋद्धि वहां से अकेली भागकर वन में जाते भटक गई। सारी रात घूमते घूमते प्रातः रास्ता मिला। फिर जंगली फल खाकर उसी वन में वनचर की तरह रहने लगी; क्योंकि अन्य कोई स्थान रहने को नहीं था जहां जाकर आश्रय ले सके। उसकी यौवनावस्था व्यतीत होने लगी और सांसारिक सुख निष्फल होने लगे।

एक बार वहां कोई विद्याधर आया। उसने उसके साथ पाणिग्रहण कर वहां से अपने घर ले गया; परन्तु उस दुर्भागिणी के पैर पड़ते ही उस विद्याधर के घर में अग्नि का प्रकोप हुआ जिसमें उसकी सर्व सम्पत्ति भस्मसात हो गई। विद्याधर ने उसे वापिस वन में छोड़ दी। वहां एक पल्लीपति की दृष्टि उस पर पड़ी इसलिए वह भील उसे अपनी पल्ली मे ले गया। तीसरे दिन उसका भी घर अग्नि मे जल गया, इसलिए सब चोर इसकी निंदा करने लगे। और अग्नि से घर जलने का कारण उसका आगमन ही मानने लगे। फिर पल्लीपति ने उसे एक सार्थवाह को बेच दी। सार्थवाह उसे लेकर आगे बढ़ा और मार्ग मे लूटा गया, और उसका सब माल चोर ले गये। इसलिए उसने भी उसको छोड़ दी इसलिए वह अकेली एक सरोवर के किनारे निराश होकर खडी खडी अपने पापो के लिए पश्चाताप करने लगी।

इतने में दैवयोग से एक मुनि महाराज वहा पहुचे। सर्वऋद्धि ने उनको प्रणाम किया, इसलिए मुनि ने उसे मीठे वचनो से बुलाकर कहा—हे वत्से ! तू राजपुत्री है फिर भी सरोवर के किनारे खडी खड़ी क्या विचार करती है ? पूर्वभव मे धर्मात्मा जीव के प्रति जो ईर्षा की उस पाप के कारण इस

भव मे राजपुत्री होने पर भी तेरे पिता की मृत्यु हुई, राजमहल लूटा गया, तेरे को भागना पडा और वनचर होकर दुखी हुई। विद्याधर तुझे ले गया परन्तु क्षणिक सुख के वाद पुनः वनचर हुई। यह सब पूर्वभव के पाप का फल है। पूर्वभव में बांधे पाप वृक्ष की शाखाओ का यह फल है।

इस प्रकार ज्ञानी गुरु के वचन सुनकर राजपुत्री ने उनको वंदन कर पूछा कि—हे भगवन्! इस दुःख से मेरा छुटकारा किस तरह हो यह कृपाकर वतावें। मैं दुःख सहते सहते परेशान हो गई हूं। गुरु महाराज ने कहा कि—वत्से! यदि तुझे इस दुःख से छूटना हो और सुख सम्पत्ति प्राप्त करनी हो तो तू अक्षयनिधि तप कर और ज्ञान की भक्ति कर। भाद्रवा-वद ४ से यह तप शुरू करना और भाद्रवा सुद ४ (सम्वत्सरी को) पूरा करना। इसमें यथाशक्ति एकान्तर उपवास और एकासना करना अथवा १५ एकासना कर आखरी दिन (सोहलवे दिन) उपवास करना, दोनों वक्त प्रतिक्रमण करना, शील का पालन करना, जिन पूजा करना, एक कुंभ की स्थापना कर उसे अक्षत से भरना, प्रतिदिन दो हजार गुणना गिनना। यह तप करते हुए किसी भी तरह अपनी शक्ति को छिपाना नही। यह तप उपरोक्त रीति से उत्कृष्ट तीन वर्ष तक करना। चौथे वर्ष शासनदेवी की आराधना निमित्त यह तप करना। इस तप की शुभ मन से आराधना करने से इस भव मे भी सुख-सम्पत्ति प्राप्त होती है इतना ही नही परभव में तो अपार ऋद्धि-सिद्धि सुख, सौभाग्य आदि प्राप्त होते है।

इस प्रकार गुरु महाराज के वचन सुनकर राजपुत्री ने इस तप को करना स्वीकार किया। फिर गुरु को वंदन कर वहा से

किसी गांव में जाकर सेवा चाकरी—कामकाज करके अपना निर्वाह करने लगी। जब गुरु का बताया दिन आया उस दिन विधि पूर्वक उस तप को आरम्भ किया। परन्तु अर्थाभाव के कारण यथाशक्ति किया, दूसरे वर्ष उससे ज्यादा अच्छी तरह किया, तीसरे वर्ष और भी ज्यादा अच्छी तरह किया। चौथे वर्ष में अर्थाभाव की कमी न होने से विशेष अच्छी तरह किया। इतने में कई विद्याधर क्रीड़ा करते हुए उस गांव में आये। इनमें उस राजपुत्री का स्वामी विद्याधर भी था। उसनें अपनी स्त्री को पहिचान लिया इसलिए उसनें उसे वहां से ले जाकर अपनें अतःपुर में रखी। राजपुत्री ने वहां अपना तप पूरा किया। शील का पालन किया और अंत समय में अनशन कर आयु पूर्ण की। हे सुंदरी! तू ही वह यहां संवर सेठ की पुत्री है। पूर्वभव मे तूने अक्षयनिधि किया था उसके प्रभाव से इस भव मे तुझे जगह जगह निधान प्राप्त होता है। तप का प्रभाव अचित्य और अपूर्व होता है।

इस प्रकार गुरु महाराज के मुंह से अपना पूर्वभव सुनकर सोचते सोचते सुंदरी को जातिस्मरण ज्ञान हुआ, उसने अपना पूर्वभव देखा। गुरु महाराज से उसनें कहा कि—हे स्वामिन्! आपने जो उपरोक्त मेरा पूर्वभव कहा वह बिलकुल सत्य है। मैंने जैसी आपकी प्रशसा सुनी थी वैसे ही आप ज्ञानी और चारित्रवान हैं। इस प्रकार गुरु भगवत की स्तुति कर, वंदन कर अपने घर लौटो। पीछे भाद्रवा वदी ४ आने पर बड़े आडम्बर से अक्षयनिधि तप को प्रारम्भ किया। उस समय राजा, रानी, सेठ, सामंत आदि सब इस तप करने मे सम्मिलित हुए। तप की शुरूआत करने के बाद तो विशेष विधान प्रकट

होने लगे। इसलिए उस धन का उसने प्रभावना आदि कार्यों मे मुक्त हस्त से व्यय किया। उसका सुंदरी नाम तो सब भूल गये और वह अक्षयनिधि के नाम से पहिचानी जाने लगी। उदारता पूर्वक तप कर उसका पूर्ण फल प्राप्त किया। भाद्रवा सुद पंचमी के दिन उसने ज्ञान भक्ति और महोत्सव पूवक सब के साथ पारणा किया, देवी देवता भी उसकी प्रशंसा करने लगे और उसके तप की अनुमोदना करने लगे।

अनुक्रम से सांसारिक सुखभोग भोगते हुए उसके चार पुत्र और चार पुत्रियां हुईं। अंत मे संसार छोडकर दीक्षा ले ली, निरतिचार पूर्वक चारित्र पाल, चार घनघाती कर्मों का क्षयकर केवलज्ञान प्राप्त किया, अनेक जीवों को उपदेश दिया, अक्षयनिधि तप की विशेष पुष्टि की, आयुष्य पूर्ण होने पर सिद्धि पद प्राप्त किया, वहा अनतज्ञान, अनतदर्शन, अनन्तचारित्र, अनतवीर्य—इन अनतचतुष्टयो युक्त होकर अगुरुलघुत्व प्राप्त किया। जहां एक अवगाहन मे अनत सिद्ध हैं और उसके देश-विदेश के अवगाही मे उससे भी असंख्य गुणे सिद्ध हैं। वहा उसने भी मनुष्य भव के शरीर से $\frac{2}{3}$ अवगाहना से सिद्ध होकर यावत् अक्षयस्थिती प्राप्त की।

श्री अक्षयनिधि तप विधि

घटं संस्थाप्य देवाग्रे, गन्धपुष्पादिपूजितम्।
तपो विधीयते पक्षं, तदक्षयनिधिः स्फुजम्॥

यह तप अक्षयनिधि अखूट भंडार की तरह होने से इसका नाम अक्षयनिधि तप है। इसे भाद्रवा वद ४ को शुरू करना।

उस दिन श्री जिनेश्वर की प्रतिमा के आगे गाय के गोबर से भूमि को शुद्ध कर उस पर गहुंली कर उस पर कुंभ की स्थापना करना। वह कुंभ स्वर्ण या चांदी या अन्य धातु का या मिट्टी का लेना। उस कुंभ की विविध प्रकार के गंध, पुष्पों से पूजा करना तथा उसमे स्वर्ण, मणि, मुक्ताफल, सुपारी आदि डालना। पीछे पंद्रह दिन तक उसकी नित्य पूजा करना। श्री जिनेश्वर देव को तीन प्रदक्षिणा देकर कुंभ में अंजलीभर अक्षत रोज डालना। (इस अजली में सोने का नाणा सुपारी आदि लेना) कुंभ के पास नैवेद्य रखना, प्रतिदिन शक्ति अनुसार एकासना अथवा बियासना करना। हमेशा कुंभ के पास नृत्य, गीत आदि उत्सव करना। इस तरह पर्युषण पर्यंत यह तप करना। सम्वत्सरी के दिन अर्थात् अतिम दिन उपवास करना। इस तरह चार वर्ष तक करना।

उद्यापन में बड़ी स्नात्र विधि से नाना प्रकार के पकवान फल आदि रखना। संघवात्सल्य, संघपूजा करना। यह तप करने से सब प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त होती है।

दूसरी विधि—अक्षत की मुट्ठी हमेशा कुंभ में डालना। जितने दिन मे कुंभ भरे उतने दिन प्रतिदिन एकासना आदि तप करना। दूसरी सब विधि तथा उद्यापन ऊपर अनुसार जानना। यह श्रावक को करने का आगाढ़ तप है।

नमो नाणस्स पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि इक्कावन इक्कावन करना।

६७-२. श्री अक्षयनिधि तप (दूसरा)

यह तप भाद्रवा वद ४ को प्रारम्भ कर सोलह दिन में पूरा करना। इसमे स्वर्ण का रत्नजड़ित कुंभ अथवा शक्ति अनुसार चादी या अन्य धातु या मिट्टी का लेना। पीछे वह कुंभ घर मे, देहरासर अथवा उपाश्रय के पवित्र स्थान पर जिनविम्ब के पास गहुंली कर उस पर स्थापित करना। उसके पास स्वस्ति कर उस पर कल्पवृक्ष रखना और उसके पास दोनों वक्त प्रतिक्रमण करना। हमेशा देवपूजा करना। पुस्तक के ऊपर चद्रवा बांधना, ज्ञान को धूपदीप कर हमेशा रूपानाणे से पूजना अथवा शक्ति न हो तो प्रथम और अतिम दिन रूपानाणे से पूजा करना और बीच के दिनो मे यथाशक्ति द्रव्य द्वारा पूजा करना। पीछे अक्षत को दोनो हाथ की अंजली भर कर ऊपर सुपारी तथा रूपानाणा रख खडे होकर ज्ञान की 'वोधागाधं' की स्तुति वोलकर स्तुति करना अथवा यह दोहा वोलना—

ज्ञान समो को धन नहीं, समता समो न सुख।
जीवित सम आशा नहीं, लोभ समो नहीं दुःख॥

पीछे वह अक्षत की अजली सुपारी सहित कुभ मे डालना। ऊपर एक श्रीफल रखना। इस तरह सोलह दिन तक अक्षत की अंजली, सुपारी तथा रूपानाणा कुभ मे डालना। अतिम दिन कुंभ को अक्षत से पूर्ण करना। पीछे खमासमणा देकर इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! श्री श्रुतदेवता आराधनार्थं कायोत्सर्ग करूं? इच्छं। श्रीश्रुतदेवताआराधनार्थं करेमि काऊसग्गं करूं? अन्नत्थ कह एक नवकार का कायोत्सर्ग कर एक आदमी पार कर 'नमोऽर्हत्' कह ':सुदेवयाभगवई,

नानावरणीयकम्मसंघायं, तेसिं खवेऊ सययं, जेसिं सुअसायरे भत्ती ॥१॥ यह स्तुति कहे। नमो नाणस्स पद की २० माला हर रोज गिनना। इस प्रकार प्रतिदिन करना। अंतिम दिन रात्रि जागरण, पूजा, प्रभावना करना। पारणे के दिन हाथी, घोड़ा आदि से वरघोड़ा बाजे, गाजते कुंभ को देहरासर ले जाना। उस समय कुंभ के ऊपर लीला, पीला, रेशमी वस्त्र लपेटना, ऊपर फूल माला पहना कर सौभाग्यवती स्त्री के मस्तक पर रखना। तथा नैवेद्य में सब तरह के पकवान, आदि यथाशक्ति तैयार कर उसके थाल भी सौभाग्यवती स्त्रियों के मस्तक पर रखना। इस तरह वरघोड़ा सहित देहरासर आना। कुंभ वाली स्त्रियों को तीन प्रदक्षिणा देकर प्रभु के पास कुंभ रखना। फिर नैवेद्य भी प्रभु के पास रखना। ज्ञान की पुस्तक को गुरु के स्थान पर पधराकर गुरु पूजा तथा पुस्तक पूजा रूपानाणा से करना। भाद्रवा सुद ४ के दिन तप की समाप्ति करना। तप के दिनों मे निरंतर एकासना अथवा बियासणा करना। अंतिम संवत्सरी के दिन उपवास करना। सुद ५ के दिन पारणा करना। स्वामी वात्सल्य, प्रभावना आदि करना। इस तरह चार वर्ष तक यह तप करने का नियम है। जितने भी तप करने वाले हो वे हरएक अलग अलग कुंभ स्थापित करें। यह श्रावक को करने का आगाढ़ तप है।

श्री अक्षय विधि तप विधि

प्रथम इरियावही करना, पीछे इच्छाकोरण० अक्षयनिधि तप आराधना निमित्त चैत्यवंदन करूं ? इच्छं। कह नीचे लिखे अनुसार चैत्यवदन करना।

शासन नायक सुखकरण, वर्धमान जिनभाण ।
अहनिश एहनी शिर वहुं, आण गुणमणिखाण ॥१॥
ते जिनवरथी पामीया, त्रिपदी श्री गणधार ।
आगम रचना बहुविध, अर्थ विचार अपार ॥२॥
ते श्री श्रुतमां भाषियाए, तप बहुविध सुखकार ।
श्री जिनआगम पामीने, साधे मुनि शिव सार ॥३॥
सिद्धांतवाणी सुणवा रसिक, श्रावक समकित धार ।
इष्ट सिद्धि अर्थे करे, अक्षयनिधि तप सार ॥४॥
तप तो सूत्रमां अति घणां, साधे मुनिवर जेह ।
अक्षय निधानने कारणे, श्रावकने गुणगेह ॥५॥
ते माटे भवि तप करो ए, सर्व ऋद्धि मले सार ।
विधिशुं एह आराधतां, पामीजे भव पार ॥६॥
श्री जिनवर पूजा करो, त्रिक शुद्धे त्रिकाल ।
तेम वली श्रुतज्ञानन्नी, भक्ति थई उजमाल ॥७॥
पडिक्कमणां बे टंकना, ब्रह्मचर्य ने धरीये ।
ज्ञानन्नी सेवा करी, सहेजे भवजल तरीये ॥८॥
चैत्यवंदन शुभ भावथीए, स्तवन थोई नवकार ।
श्रुतदेवी उपासना, धीरविजय हितकार ॥९॥

पीछे जंकिंचि कहकर नमुथ्थुणं कहना ।
फिर दो जावंति कह नमोऽर्हत् कह, नीचे का स्तवन कहना ।

(लावो लावोने, राज मोंघामूलां मोती—ए देशी)

तप कीजे रे, अक्षयनिधि अभिधाने;
सुखभर लीजे रे, दिन दिन चड़ते वाने। (ए आंकणी)
पर्व पजूषण पर्व शिरोमणि, जे श्री पर्व कहाय।
मास पाख छठ्ठ दशम दुवालस, तप पण ए दिन थाय।१।
पण अक्षयनिधि पर्व पजूषण-केरो कहे जिनभाण
श्रावण वद चोथे प्रारभी, संवच्छरी परिमाण।२।
ए तप करतां सर्व रिद्धि वरे, पग पग प्रगटे निधान।
अनुक्रमे पामे तेह परमपद, सान्वयी नाम प्रधान।३।
परमत्सरथी कर्म बंधाणुं, तेणे पामी दुःखजाल।
ए तप करतां ते पूरवनुं, कर्म थयुं विसराल।४।
ज्ञानपूजा श्रुतदेवी काउसग्ग, स्वस्तिक अति सोहावे।
सोवनजडित कुंभ निजशक्ति, संपूरण क्रमे थावे।५।
जघन्य मध्यम उत्कृष्टथी, करीये, इग दोय तीन वरीस।
वरस चोथे श्रुतदेवी निमित्ते, ए तप वीशवा वीश।६।
ऐणे अनुसारे ज्ञानतणुं वर, गरणुं गणीए उदार।
आवश्यकादि करणी संयुत, करता लहे भवपार।७।
इह भव परभव दोष आशंसा, रहित करो भविप्राणी।
जे परपुद्गल ग्रहण न करवुं, ते तप कहे वरनाणी।८।
रातिजगा पूजा परभावना, हय गय शणगारीजे।
पारणा दिन पंच शब्दे वाजे, वाजंते पधरावीजे।९।

चैत्य विशाल होय तिहां आवी,
प्रदक्षिणा वली दीजे ।
कुंभ विविध नैवेद्य संघाते, प्रभु आगल ढोइजे ।१०।
राधनपुरे ए तप सुणी वहु जण, थया उजमाल तप काजे।
ए मुख्य मंडाण ओछवसां, मसालीया देवराजे ।११।
संवत अढार तेंतालो वरसे, ए तप वहु भवी कीधो ।
श्रीजिन उत्तम पाद पसाये, पद्मविजय फल लीधो ।१२।

इसके बाद जय वीयराय० कह "सुयदेवयाए करेमि काऊसग्ग" अन्नथ्थ० कह एक नवकार का कायोत्सर्ग कर, नमोऽर्हत कह "सुथदेवयाभगवई, नाणावरीयकम्मसरणीयं । तेसिं खवेऊ सयय, जेसिं सुयसायरे भत्ति ।।१।।" यह स्तुति कहना । पीछे पच्चक्खाण करना, पीछे पूजा की ढाल कहना वह नीचे है ।

दोहा

सप्तम पद श्री ज्ञाननो, सिद्ध चक्र पदमांही ।
आराधीजे शुभ मने दिन दिन अधिक उंछाहि ।।१।।

छंद

अन्नाणसंमोहतमोहरस्स, नमो नमो नाण दिवायरस्स ।
पंचप्पयासु उपगारगस्स, सत्ताण तत्तत्थ पयासगस्स ।।१।।
हुवे जेहथी सर्व अज्ञान रोधो,
जिनाधीश्वर प्रोक्त अर्थावबोधो ।
मति आदि पंच प्रकार प्रसिद्धो,
जगद्भासते सर्व देवाविरुद्धो ।

यदीय प्रभावे सुभक्षं अभक्षं,
सुपेयं अपेयं सुकृत्यं अकृत्यं ।
जेणे जाणीए लोकमध्ये सुनाणं,
सदा मे विशुद्धं तदेव प्रमाणं ।।२।।

ढाल–पहली

भव्य नमो गुणज्ञानने, स्वपर प्रकाशक भावे जी ।
परजाय धर्म अनंतता, भेदाभेद स्वभावेजी ।।१।। (चाल)
जे मुख्य परिणति सकल ज्ञायक, बोध भाव विलच्छना ।
मति आदि पंच प्रकार निर्मल, सिद्ध साधन लच्छना ।।
स्याद्वादसंगी तत्त्वरंगी, प्रथम भेदाभेदता ।
सविकल्प ने अविकल्प वस्तु, सकल संशय छेदता ।।२।।

ढाल–दूसरी

भक्ष्याभक्ष्य न जे विण लहिये,
पेय अपेय विचार ।
कृत्य अकृत्य न जे विण लहिये,
ज्ञान ते सकल आधार रे ।।भ०।।
प्रथम ज्ञान ने पछे अहिंसा,
श्री सिद्धांते भाख्यु ।

ज्ञानने वंदो ज्ञान म निंदो,

ज्ञानीए शिवसुख चाख्यु रे ।।भ०।।

सकल क्रियानु मूल जे श्रद्धा,

तेहनुं मूल जे कहिये ।

ते ज्ञान नित्य नित्य वंदीजे,

ते विण कहो केम रहीये रे ।।भ०।।

पंच ज्ञान मांही जेह सदागम,

स्वपरप्रकाशक जेह ।

दीपक परे त्रिभुवन उपकारी,

वली जेम रवि शशी मेह रे ।।भ०।।

लोक ऊर्ध्व अधो तिर्यग्-

ज्योतिष, वैमानिक ने सिद्ध ।

लोकालोक प्रगट सवि जेहथी,

तेह ज्ञाने मुज शुद्धि रे ।।भ०।।

ढाल—तीसरी

ज्ञानावरणी जे कर्म छे, क्षय उपशम तस थाय रे ।
तो हुए एहिज आतमा, ज्ञान अबोधता जाय रे ।।वी।।

फिर "ॐ ह्रीं परमात्मने नमः ज्ञानपदेभ्यः कलशं यजामहे स्वाहा" यह मंत्र बोलकर ज्ञान की वासक्षेप से पूजा करना, और फिर द्रव्य से पूजा करना अर्थात् सोना मोहर तथा रूपा-मोहर से ज्ञान की यथाशक्ति पूजा करना ।

फिर नीचे लिखे अनुसार दोहा बोलकर श्रुतज्ञान के २० भेद के २० खमासमण देना।

पीठिका के दोहे

सुखकर संखेसर नमो, थुणश्युं श्रीश्रुत नाण।
चउ मुंगा श्रुत एक छे, स्वपरप्रकाशक भाण ॥१॥

अभिलाप्य अनंतमे, भागे रचियो जेह।
गणधर देवे प्रणमीयो, आगम रयण अछेह ॥२॥
इम बहुली वक्तव्यता, छ ठाण वडीया भाव।
क्षमाश्रमण[1] भाष्ये[2] कह्यां, गोपय सर्पि जमाव ॥३॥
लेश थकी श्रुत वरणवुं, भेद भला तस वीश।
अक्षयनिधि तपने दिने, खमासमण ते वीश ॥४॥
सूत्र अनंत अर्थ मइ, अक्षर अंश लहाय।
श्रुतकेवली केवली परे, भाखे श्रुत परजाय ॥५॥

(प्रथम भेद) -१

श्री श्रुतज्ञानने नित नमो, भाव मंगलने काज।
पूजन अर्चन द्रव्य थी, पामो अविचल राज ॥६॥

(खमासमण देना)

---

१. श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण। २. विशेषावश्यकभाष्य मे।

(यह छठा दोहा प्रत्येक खमासमणे पर कहना)

इग सय अडवीस स्वरतणा, तिहां अकार अढार ।
श्रुत पर्याय समासमें, अंश असंख्य विचार ॥७॥
श्री श्रु० २

बत्रीस वर्ण समाय छे, एक सिलोक[3] मझार ।
ते मांहे एक अक्षर ग्रहे, ते अक्षर श्रुत सार ॥८॥
श्री श्रु० ३

क्षयोपशम भावे करी, बहु अक्षरनो जेह ।
जाणे ठाणांग आगले, ते श्रुतनिधि गुणगेह ॥९॥
श्री श्रु० ४

कोडि एकावन अडलखा, अडसय एकाशी हजार ।
चालीश अक्षर पदतणा, कहे अनुयोगदुवार ॥१०॥
श्री श्रु० ४

अर्थांते इहां पद कह्युं, जिहां अधिकार ठराय ।
ते पद श्रुतने प्रणमता, ज्ञानावरणी हठाय ॥११॥
श्री श्रु० ५

अढार हजार पदे करी, अंग प्रथम सुविलास ।
दुगुणा श्रुत बहु पद ग्रहे, ते पद श्रुत समास ॥१२॥
श्री श्रु० ६

---

३. श्लोक

पिंडप्रकृतिमां एक पदे, जाणे बहु अवदात।
क्षयोपशमनी विचित्रता, तेहज श्रुत संघात ॥१३॥
श्री श्रु० ७

पंचोतेर भेदे करी, स्थिति बंधादि विलास।
कम्मपयडी पयडी ग्रहे, श्रुत संघात समास ॥१४॥
श्री श्रु० ८

गत्यादिक जे मार्गणा, जाणे तेह्मां एक।
विवरण गुणठाणादिके, तस प्रतिपत्ति विवेक ॥१५॥
श्री श्रु० ९

जे बासट्ठि मार्गण पदे, लेश्या आदि निवास।
संग्रह तरतम योगथी, ते प्रतिपत्ति समास ॥१६॥
श्री श्रु० १०

संतपदादिक द्वारमां, जे जाणे शिव लोग।
एक दोय द्वारे करी, श्रद्धा श्रुत अनुयोग ॥१७॥
श्री श्रु० ११

वली संतादिक नव पदे, तिहां मार्गणा भास।
सिद्धतणी स्तवना करे, श्रुतअनुयोग समास ॥१८॥
श्री श्रु० १२

प्राभृत प्राभृत श्रुत नमुं, पुरवना अधिकार।
बुद्धि प्रबल प्रभाव थी, जाणे एक अधिकार ॥१९॥
श्री श्रु० १३

प्राभृत प्राभृत श्रुत समा, साभिध लब्धि विशेष ।
बहु अधिकार इश्या ग्रहे, क्षीराश्रव उपदेश ॥२०॥
श्री श्रु० १४

पूरवगत वस्तु जीके, प्राभृत श्रुत ते नाम ।
एक प्राभृत जाणे मुनि, तास करूं परणाम ॥२१॥
श्री श्रु० १५

पूरव लब्धि प्रभावथी, प्राभृत श्रुत समास ।
अधिकार बहुला ग्रहे, पद अनुसार विलास ॥२२॥
श्री श्रु० १६

आचारादिक नामनी, वस्तु नाम श्रुत सार ।
अर्थ अनेकविधे ग्रहे, ते पण एक अधिकार ॥२३॥
श्री श्रु० १७

दुग सय पण वीसवस्तु छे, चौद पूरवनो सार ।
जाणे तेहने वंदना, एकश्वासे सो वार ॥२४॥
श्री श्रु० १८

उत्पादादि पूरव जे, सूत्र अर्थ एक सार ।
विद्या मंत्रतणो कह्यो, पूरव श्रुत भंडार ॥२५॥
श्री श्रु० १९

बिंदुसार लगे भणे, तेहिज पूरव समास ।
श्री शुभवीर शासने, होजो ज्ञान-प्रकाश ॥२६॥
श्री श्रु० २०

(प्रथम चार पीठिका के दोहे, छट्टा हरएक भेद से कहने का दोहा और नवां दोहा इतने खमासमणे में नहीं गिनना)

पीछे अंजली भर "बोधागाधं सुपदपदवी," यह स्तुति बोलकर वह अजली कुंभ में डालना। कुंभ के पास कल्पसूत्र की स्थापना करना। ऊपर चंद्रवा पुठिया बांधना। डांगर के ढेर पर कुंभ की स्थापना करना। पंद्रहवें दिन उस कुंभ को पूरा भरना। पीछे उस पर श्रीफल रख उसे नीले अथवा पीले रेशमी वस्त्र से बांधना। भाद्रवा वद चौथ से प्रारम्भ कर भाद्रवा सुद चौथ के दिन तप पूरा करना। हररोज एकासना करना। ब्रह्मचर्य का पालन करना, कुंभ के पास अखण्ड दीपक लालटेन मे रखना।

'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमो नाणस्स [1]' की बीस माला गिनना। दस लोगस्स का कायोत्सर्ग करना। प्रथम व अंतिम दिन रात्रि जागरण करना तथा वरघोड़ा निकालना।

---

६८. श्री मुकुट सप्तमी तप और विधि

आषाढादि च पोषान्तं सप्त मासान् शितोष्वपि।
सप्तमीषूपवासाश्च, विधेयाः सप्तसंख्यका ॥

मुकुट के उद्यापन द्वारा जानी जाती जो सप्तमी सम्बन्धी

---

1. इतने कठिन अक्षर गिनना मुश्किल लगे तो सिर्फ नमो नाणस्स ही गिनना।

तप किया जाए वह मुकुट सप्तमी तप कहलाता है। इस तप में श्रावण, भाद्रवा, आश्विन, मार्गशीर्ष, पौष और माघ की सात माह की कृष्णपक्ष की सप्तमी के दिन उपवास करना। इसमें अनुक्रम से श्री विमलनाथ स्वामी, २ श्री अनन्तनाथ स्वामी, ३ श्री चंद्रप्रभस्वामी अथवा श्री शांतिनाथ स्वामी, ४ श्री नेमिनाथ स्वामी, ५ श्री ऋषभदेव स्वामी, ६ श्री महावीर स्वामी और ७ श्री पार्श्वनाथ स्वामी। इन सात तीर्थंकरो को दृष्टि में रखकर एक एक सप्तमी को तप करना तथा उस दिन उन २ तीर्थंकरो की बड़ी स्नात्र विधि से पूजा करना।

उद्यापन में बड़ी स्नात्र विधि पूर्वक जिनपूजा करना। चांदी की लोक नालिका बनवाकर उस पर स्वर्णमय रत्न जडित मुकुट बनवाकर देव के पास रखना। सात सात पकवान, फल आदि रखना। संघवात्सल्य, संघपूजा करना। इस तप के करने से मनवांछित फल प्राप्त होता है। यह श्रावक को करने का आगाढ़ तप है। जिन जिन तीर्थंकरो का तप हो उन उन तीर्थंकरो के नाम की (जैसे श्री विमलनाथाय नमः) बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

६९. श्री अम्बा तप

अम्बिका देवी श्री नेमिनाथ भगवत की शासनदेवी है। इसे लक्ष्य में रखकर किया जाने वाला तप अम्बा तप कहलाता है। अम्बा देवी का वृत्तात निम्न प्रकार है।

सौराष्ट्र का कोड़ीनार (कुबेर नगर) यक्षा नदी के किनारे सुहावना शहर है। वहां सोमभट द्विज के अम्बिका नाम की पत्नी थी। सोमभट के पिता जैनत्व के संस्कार वाले थे परन्तु उनकी मृत्यु के बाद वे सस्कार लुप्त हो गये। सोमभट मे वे सस्कार नही आये। अम्बिका सुशील, सद्गुणी और श्रद्धालु स्त्री थी।

एक बार मासोपवासी दो मुनिराज उनके घर आये। अम्बिका ने उल्लास पूर्वक भावसहित दोनो मुनिराज को गोचरी वहोराई। शातमुद्रा वाले दोनो मुनिराज 'धर्मलाभ' देकर चले गये। अम्बिका को सुपात्रदान देने से बड़ा संतोष मिला।

पास में रहने वाली द्विज पड़ोसन ने यह सब देखा और ईर्षा भड़क उठी। मुनि के प्रति द्वेप हुआ और जो मन में आया बोलने लगी, परन्तु अम्बिका पर कुछ असर नही हुआ इसलिए उसके सास ससुर को इसकी शिकायत की। इससे सास भी उबल पड़ी और कहने लगी मेरे होते तेरा शासन कैसे चल सकता है? इस मिथ्या घमड के कारण अनाप-सनाप बकने लगी। इतने मे सोमभट आ पहुँचा और उसने भी यह लडाई-झगडा देखा। मां ने नमक मिर्च लगाकर बात कही जिससे उसे भी गुस्सा आगया और आवेश मे उसका तिरस्कार किया। सोमभट ने उसे घर से चले जाने को कहा। इस घटना से अम्बिका घबराकर अपने दोनो पुत्र अंबर और शंबर को लेकर आत्म विश्वास से चली गई।

लम्बी दूर चले जाने के बाद वह सोचने लगी कि मैने सास का कभी अनादर नही किया, मैंने स्वामी भक्ति मे भी कोई

कमी नहीं रखी। फिर भी ऐसी घटना घटी तो जो भावी होना होगा वही होगा। अब सुशील गुरु की शरण ले, रैवताचल पर जाकर श्री नेमिनाथ भगवंत का ध्यान कर स्वकल्याण करूंगी। ऐसा विचार कर एक पुत्र को कंधे पर बैठाया और दूसरे की अंगुली पकड़कर आगे चलने लगी।

चलते चलते मार्ग में भयानक जंगल आया। फिर भी हिम्मत कर आगे बढी। नगे पैर तेज धूप में चलने से उसे बहुत वेदना होने लगी, फिर भी श्री नेमिनाथ प्रभु का ध्यान करते हुए चलती रही। कभी तेज काटे चुभते, कभी २ भयकर गर्जना सुनाई देती फिर भी साहस नही छोडा।

कुछ देर वाद एक वालक ने पानी मांगा, दूसरे को भूख लगी, भोजन मांगा, इस विरान जंगल मे अन्न-पानी कहां से आवे? यह सोचकर उसके नेत्रों से आसू वहने लगे। बच्चो की आर्तवाणी से अम्बिका रोने लगी। वालक ना समझ होने से अपनी मांग जारी ही रखी। अंत मे थककर वह एक आम वृक्ष के नीचे विश्राम करने बैठी।

इतने में थोड़ी दूर एक सुंदर सरोवर दिखाई दिया। वालको को पानी पिलाया और आम के पेड़ से फल तोड़कर उन्हे ि ये। वाद मे वे आगे रैवतगिरि की दिशा में चलने लगे।

इधर सोमभट के घर मासोपवासी मुनि को गोचरी वहोराने से जिन वरतनो मे अन्न था वे सब वरतन सोने के हो गये। धान्य के भण्डार भरपूर हो गये। ऐसी प्रभावना देख अंबिका

की सास ने सोमभट को सारा वृत्तांत बताकर पश्चाताप कर कहा कि—अभी फौरन जाकर जहा अबिका हो ढूंढकर शीघ्र ला।

सोमभट भी खूब पछताया। आवेश में की गई भूल उसकी समझ में आई। जल्दी जल्दी अम्बिका के पीछे गया और जंगल मे जाती हुई अम्बिका को दूर से देखा इसलिए उसे आवाज देकर ठहरने को कहा।

अपना नाम सुनकर अम्बिका ने पीछे देखा तो अपने पति को जल्दी जल्दी आते देखा इसलिए भयभीत हो गई। उसने सोचा कि जरूर मेरी सासु ने उसे मुझे मारने के लिए भेजा है। इसके हाथ से मरने के बजाय मैं ही क्यो नही मर जाऊं? ऐसा विचारकर, पास के कुए पर गई। देव, गुरु और धर्म का शरण स्वीकार कर, श्री नेमिनाथ भगवंत का ध्यान करती हुई दोनो बच्चो के साथ उस कुए मे गिर गई।

इतने मे सोमभट भी उसी जगह आ पहुँचा। अपनी पत्नी के इस कार्य और अपनी भूल पर पश्चाताप करने लगा। अब मैं अपना मुह कैसे दूसरे को बताऊंगा, ऐसा सोच वह भी उसी कुए मे गिर गया।

मरते समय के शुभ ध्यान से अम्बिका मरकर **अंबिका** नामक देवी रूप मे उत्पन्न हुई। सेवक देवियो के पूछने पर उसने अपना पूर्वभव देखा और भगवत श्री नेमिनाथ को अत्यंत उपकारी जाना, उनके केवलज्ञान महोत्सव पर रैवताचल पर आई, पर्षदा मे बैठी और देशना सुनी। इंद्र के पूछने पर भगवंत श्री नेमिनाथ ने **अंबिका** देवी के बारे में

सारी बात बतलाई इसलिए इंद्र ने अंबिका देवी को भगवंत श्री नेमिनाथ की शासनदेवी के रूप मे मान्यता दी। सोमभट भी मरकर अंबिका देवी का वाहन सिह हुआ।

अंबिका देवी स्वर्ण के रंग वाली है और सिंह के वाहन वाली है। उसके सीधे दो हाथो मे मातुलिग और पाश होता है जबकि बाये दोनो हाथो में पुत्र और अकुश होता है। गोद मे दूसरा पुत्र बैठा होता है।

श्री अंबा तप विधि

शुक्लासु पञ्चमीष्वेव पञ्चमासेषु वै तपः।
एकभक्तादिना कार्यमंबापूजनपूर्वकम्॥

अंबादेवी की आराधना के लिए यह तप है। इसमे पांच महीने की शुक्ल पंचमी के दिन एकासना आदि तप करना। और उस दिन श्री नेमिनाथ तथा अंबादेवी की पूजन करना।

उद्यापन में उत्तम धातु की अंबादेवी की मूर्ति बनवाकर उसकी स्थापना करनी। शास्त्रोक्त विधि से उसकी हमेशा पूजा करना। संघवात्सल्य और सघपूजा करना। इस तप को करने से अंबादेवी से वरदान प्राप्त होता है। यह श्रावक को करने का आगाढ़ तप है। (जैन प्रबोध मे कृष्णपक्ष की पंचमी को करने को कहा है। तथा उद्यापन में मुनिराज को नये वस्त्र, अन्न आदि वहोराना और अबा की मूर्ति दो पुत्रो तथा आम की लुम्ब सहित बनवाने और फिर उसकी पूजन करने को कहा है)।

श्री अंबिकादेव्यै नमः पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

७०. श्री श्रुत देवता तप

श्रुत ज्ञान की-प्रवचन की अधिष्ठात्री देवी को श्रुत देवता कहते हैं। श्रुतदेवता, वागीश्वरी, शारदा या सरस्वती ये सब पर्यायवाचक शब्द है।

धर्म दो प्रकार का बताया है एक चारित्रधर्म और दूसरा श्रुतधर्म। संयम के पालन रूप चारित्रधर्म और सम्यग्ज्ञान की आराधना स्वरूप श्रुत धर्म। सम्यग्ज्ञान गणधर गुंफित और तीर्थंकर भाषित सूत्र-सिद्धातो के आलंबन से ही प्राप्त किया जा सकता है। इसकी आराधना अच्छी तरह हो सके इसके लिए श्रुतधर्म की अधिष्ठात्री श्रुतदेवता की स्तुति 'सुखदेवया भगवइ ····:' भी की गई है। श्री पुक्खरवरदी सूत्र भी श्रुतस्तव ही है। इसमें श्रुत की ही महिमा का वर्णन किया है। कल्याणकद की चौथी गाथा श्रुतदेवी की स्तुति रूप में है।

निर्वाणकलिका मे श्री श्रुतदेवी के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि—श्रुतदेवी श्वेत वर्णवाली तथा हस वाहन वाली है। उसके सीधे दो हाथ मे वरदान तथा कमल हैं और बाये दो हाथ में पुस्तक और माला है; जबकि आचार दिनकर मे वीणा और पुस्तक बताया है।

श्रुतदेवी का श्वेत वर्ण सात्विकता का चिह्न है, कमल पवित्रता और पुस्तक ज्ञान का प्रतीक है।

जबकि पुनः सेनप्रश्न के ४३७वें प्रश्न के उत्तर में बताया है कि—सरस्वती और श्रुतदेवी एक ही पर्याय वाले दो नाम है, परन्तु किसी भी स्थान पर वह किस निकाय की है और उसका आयुष्य कितना है इस सम्बन्धी वर्णन नही है।

श्रुतदेवी की प्रसन्नता से श्री बप्पभट्टीसूरिजी, कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्यजी महाराज तथा महामहोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज ने अगाध श्रुत ज्ञान प्राप्त किया था।

श्री श्रुत देवता तप विधि

एकादशसु शुक्लेषु पक्षेष्वेकादशीषु च।
यथाशक्ति तपः कार्यं वाग्देव्यर्चनपूर्वकम् ॥

श्रुतदेवी की आराधना के लिये यह तप है। इसमें ग्यारह शुक्लपक्ष की एकादशी के दिन श्रुतदेवी की पूजा तथा यथाशक्ति एकासनादि तप करना।

उद्यापन मे श्रुतदेवता की मूर्ति उत्तम धातु की बनवाकर उसकी प्रतिष्ठा करना तथा विधि पूर्वक पूजा करना। इस तप से श्रुतज्ञान की प्राप्ति होती है।

ऊपर लिखे अनुसार ग्यारह शुक्ल पक्ष की एकादशी को उपवास कर मौन रखना ऐसा पंचाशक तथा प्रत्यतर मे कहा है।

श्री श्रुतदेवतायै नमः इस पद की बीस माला गिनना।

---

७१. श्री रोहिणी तप

रोहिणी तप महिला समाज में बहुत प्रचलित है। रोहिणी नक्षत्र को लक्ष्य में रखकर यह तप किया जाता है। इस तप के प्रभाव से वैधव्य प्राप्त नही होता। इस तप की आराधना से रोहिणी को कैसी सुख-सम्पति प्राप्त हुई उसका वृत्तांत इस प्रकार है—

चंपापुरी में वासुपूज्य स्वामी के पुत्र मघवा राजा के लक्ष्मी नामक रानी थी। उसके आठ पुत्रो के बाद एक पुत्री हुई। पुत्री का नाम रोहिणी रखा गया। मघवा राजा ने उसके लग्नोत्सव के लिये स्वयवर का आयोजन किया और देश विदेश से आए अनेक राजकुमारो मे से नागपुर के राजकुमार अशोक-कुमार के गले मे वरमाला डाली।

नागपुर आने के बाद अशोक के पिता ने अशोक को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण की। भोग विलास करते रोहणी के आठ पुत्र और चार पुत्रियां हुई। एक दिन रोहिणी झरोखे मे बैठी थी तब किसी स्त्री के पुत्र की मृत्यु के कारण रोने की आवाज सुनी।

वह स्त्री सिर कूटती, छाती पीटती और बारंबार विलाप करती थी। यह दृश्य देखकर रोहिणी ने राजा से पूछा कि— यह स्त्री क्या नाटक कर रही है? राजा ने कहा कि—यह नाटक नही है। वह स्त्री रो रही है। तू अपने सुख का अभिमान मत कर। रोहिणी ने कहा कि—मैं गर्व नही करती हू। ऐसा दृश्य मैंने कही देखा नही इसलिए पूछा कि यह स्त्री क्या कर रही है? राजा ने कहा कि—वह रोती है। रोहिणी

ने पुनः पूछा कि—उस स्त्री ने यह कहा से सीखा है ? इस प्रकार के प्रश्न से राजा को गुस्सा आगया और आवेश में आकर कहा कि—ले तुझे भी सिखाऊं। ऐसा कह कर रानी की गोद मे खेलते सब से छोटे बालक लोकपाल को उठाकर झरोखे से नीचे फेंक दिया परन्तु रोहिणी के पुण्य बल से पुरदेवी ने पुत्र को बीच में ही उठा लिया और सिंहासन पर बैठाया। ऐसा चमत्कार देखकर राजा को बहुत आश्चर्य हुआ।

कुछ दिनों के बाद उस नगर में रुप्यकुंभ और सुवर्णकुंभ नामक दो मुनिराज पधारे। राजा ने सपरिवार जाकर वंदन किया, उपदेशपूर्ण देशना सुनी; अंत मे निवेदन किया कि—दुःख क्या है यह रोहिणी क्यो नही जानती ? मुनिराज ने उसका पूर्व भव बताते हुए कहा कि—

पहले इसी नगर में धनमित्र नामका सेठ था, उसके दुर्भागी दुर्गंधा नामकी पुत्री थी। उसके युवा हो जाने पर भी उसके साथ किसी ने शादी करना पसंद नही किया। धनमित्र उसके साथ शादी करने वाले को करोड़ रुपया देने को भी तैयार हुआ फिर भी दुर्गंधा की खराब बास और उष्ण स्पर्श के कारण कोई तैयार नही हुआ। इतने में राजा के अपराधी किसी एक चोर को वध स्थान पर जाते हुए बचाकर, उसके साथ पुत्री की शादी करदी परन्तु पुत्री के समागम से तथा उसके उष्ण स्पर्श से दारुण वेदना होने से रात्रि को ही वह चोर भाग गया। धनमित्र इससे बहुत दुखी हुआ। इतने में उस नगर मे ज्ञानी गुरु भगवंत पधारे। उन्हे वंदन कर दुर्गंधा के दुर्भाग्य का कारण पूछा इसलिए गुरु भगवंत ने कहा कि—

उज्जयंत पर्वत के पास गिरिवर (जूनागढ) में पृथ्वीपाल राजा राज्य करता था। उसके सिद्धमति नाम की रानी थी। एक बार राजा-रानी उपवन में क्रीडा करने गये। उपवन में जाते ही राजा ने गुणसागर नामक मासोपवासी मुनिवर को देखा इसलिए उन्हे वंदना कर राणी को कहा कि—मुनिवर को राजमहल मे लेजाकर गोचरी वहोराओ। रानी की इच्छा न होने पर भी राजा के कहने से उदास मन से महल मे गई और मुनि को कड़वे तुम्बे की सब्जी वहोरादी। सब्जी को कड़वी जानकर मुनिराज ने उसे परठवने की तैयारी की, परन्तु असंख्य जीवों के नाश हो जाने के कारण स्वयं ही ने काम में ली और शुभ ध्यान से केवलज्ञान प्राप्त कर, मोक्ष गये।

राजा को जब इस बात का पता चला तो रानी को महल से निकाल दी। सातवें दिन रानी को कुष्ट रोग हो गया। मरकर छटे नरक मे गई। उसके बाद भव भ्रमण करती हुई भाग्य योग से नवकार मत्र का श्रवण करने से यह आपकी पुत्री हुई। दुर्गंधा को तुरंत जातिस्मरण ज्ञान हुआ। अपना पूर्वभव देखा। अपने अशुभ कर्म को दूर करने का उपाय पूछा। इसलिए गुरु भगवंत ने सात वर्ष और सात माह तक रोहिणी तप करने को कहा।

गुरु महाराज के मुख से यह वृत्तांत सुनकर शुभ ध्यान से उसने रोहिणी तप की एकाग्रता से आराधना की और मरकर स्वर्ग मे जाकर फिर यह तुम्हारी पत्नी हुई। इस तप के कारण दुःख क्या है वह यह नही जानती।

हे राजन्! तुमने भी पूर्वभव मे रोहिणी तप की आराधना की थी इसलिए अशोक नाम के राजा हुए और तुम दोनो का सुयोग हुवा।

गुरुवर से यह वृत्तांत सुनकर राजा रानी अपने स्थान पर गये और अंत में दीक्षा ले केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गये।

श्री रोहिणी तप विधि

रोहिण्यां च तपः काय वासुपूज्यार्चनायुतम्।
सप्तवर्षी सप्तमासीं उपवासादिभिः परम्॥

यह तप रोहिणी नक्षत्र में होता है, इससे यह रोहिणी तप कहलाता है। यह तप अक्षय तृतिया के दिन अथवा उसके आगे पीछे जब रोहिणी नक्षत्र हो तब शुरू होता है। यह तप श्री वासुपूज्यस्वामी की पूजा पूर्वक सात वर्ष और सात माह तक करना। प्रत्येक मास में जब रोहिणी नक्षत्र हो उस दिन उपवास, आयंबिल, नीवी आदि से करना। कदाचित् एक भी रोहिणी नक्षत्र भूल में रह जाय तो फिर से आरम्भ करना।

उद्यापन मे श्री वासुपूज्यस्वामी की प्रतिमा की बड़ी स्नात्रविधि से पूजा कर स्वर्णमय अशोक वृक्ष रखना। (प्रत्यांतर के अनुसार स्वर्णमय सोमराजा तथा अशोक युक्त रोहिणी रानी तथा वासुपूज्यस्वामी की प्रतिमा बनवाकर देव के पास रखना)। एक सौ एक मोदक, फल, दीप आदि रखना। संघ वात्सल्य, संघपूजा करना। **इस तप से अविधवापन तथा सौभाग्य सुख की प्राप्ति होती है।** यह श्रावक को करने का आगाढ़ तप है (यह तप पौषध पूर्वक उपवास करके करने की प्रथा है। यदि पौषध न हो तो आरंभादि कार्य न करे)।

श्री वासुपूज्य सर्वज्ञाय नमः पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

७२. श्री तीर्थंकर मातृ तप

श्री जिनेश्वर भगवंत की माता, जब परमात्मा गर्भ में अवतरते हैं तब श्रेष्ठ चौदह महास्वप्न देखती है। चौदह महास्वप्नो के नाम ये हैं—१ हस्ती, २ वृषभ, ३ सिंह, ४ लक्ष्मी देवी, ५ पुष्प की माला, ६ चंद्र, ७ सूर्य, ८ ध्वज, ९ कलश, १० सरोवर, ११ समुद्र, १२ देव विमान, १३ रत्न समूह और १४ निर्धूम अग्नि। चक्रवर्ती की माता भी ये ही महास्वप्न देखती हैं। परन्तु वह तीर्थंकर की माता की अपेक्षा कुछ कम कांतीवाले देखती है।

जब जिनेश्वर भगवत माता के गर्भ मे अवतरते हैं तब उनके प्रभाव से माता का शरीर स्वच्छ सुगंधित हो जाता है। अन्य माताओ की तरह उसका गर्भस्थान विभत्स नही मालूम देता। परमात्मा के उत्पन्न होने के बाद प्रायः जिनेश्वर की माता फिर गर्भवती नही होती, क्योंकि वे अनुपम शीलवती होती हैं। इस सम्बध मे श्री नेमिनाथ भगवत की माता शिवादेवी अपवाद रूप हैं क्योंकि उनके बाद मे रथनेमि का जन्म हुआ था।

श्री सप्ततिशतस्थान के प्रकरण में वर्तमान अवसर्पिणी काल मे, जिनेश्वर भगवंत की माता को लक्ष्य मे रखकर

बताया है कि—श्री ऋषभदेव आदि आठ जिनेश्वरों की माताएं मोक्ष गईं, श्री सुविधीनाथ आदि आठ जिनेश्वरों की माता सनत्कुमार देवलोक मे गईं, और श्री कुंथुनाथ स्वामी आदि आठ तीर्थंकरों की माता महेद्र देवलोक में गईं। किसी जगह त्रिशलादेवी का बारहवें देवलोक में जाने का उल्लेख है।

श्री तीर्थङ्कर मातृ तप विधि

भाद्रपदशुक्लपक्षे प्रारभ्य सप्तमीं तिथिम् ।
त्रयोदश्यन्तमाधेयं तपो मातरिसंज्ञकम् ॥

श्री तीर्थंकर भगवंतों की माता की आराधना के लिए यह तप है। इसे भाद्रवा सुद सप्तमी के दिन प्रारम्भ कर सुद तेरस तक दूध, दही, घी, दही-भात, क्षीर, लपसी और घेवर द्वारा श्री जिन माता की पूजा कर (आगे रखकर) हमेशा एकासना आदि तप करना। यह तप सात वर्ष तक करना।

हर दो वर्ष मे इस प्रकार उद्यापन करना। भाद्रवा सुद चतुर्दशी के दिन चौबीस चौबीस पुड़ा पूड़ी, पकवान, फल आदि के जिनमाता के पास रखना। पुत्र वाली चौबीस श्राविका को वस्त्र, अंगराग, ताम्बूल आदि देना। पीछे सातवें वर्ष के उद्यापन में श्री जिनमाता के आगे सप्तमी के दिन तेल, अष्टमी को घी, नवमी को पकवान, दसमी को गाय का दूध, ग्यारस को दही, बारस को गुड़, तेरस को खिचड़ी, वड़ो, कणिक (लोट), हरड़े, धाणा, मेथी, गोंद, नैत्रांजन, सलाई सात सात पान सुपारी आदि रखना। पुत्रवती श्राविका को

श्रीफल देना । सघ वात्सल्य, संघपूजा करना । इस तप के फल से पुत्र प्राप्ति होती है । यह श्रावक को करने का आगाढ़ तप है ।

श्री जिनमात्रे नमः इस पद की बीस माला गिनना ।

---

७३. श्री सर्वसुखसंपत्ति तप और विधि

एकादिवृद्धया तिथिषु, तप एकाशनादिकम् ।
विधेयं सर्वसंपत्तिसुखे, तपसि निश्चितम् ।।

सर्व सुख सम्पत्ति का कारण होने से इस तप को सर्व सुखसम्पत्ति तप कहते हैं । इसमे शुक्लपक्ष या कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को एक एकासना करना । दूसरे पक्ष मे दूज से दो एकासना, तीसरे पक्ष मे तीज से तीन एकासना, चौथे पक्ष में चौथ से चार एकासना करना । इस प्रकार बढते बढते पद्रहवें पक्ष मे पूर्णिमा से या अमावस्या से पद्रह एकासना करना (प्रवचन सारोद्धार मे एकासवे के बजाय उपवास करने को कहा है) । यदि कारणवश कोई तिथि भूल जायें तो तप का आरम्भ पुन. करना । इस तरह यह तप १२० दिन में पूरा होता है ।

उद्यापन मे स्नात्रपूजा पूर्वक १२० मोदक रखना । सघवात्सल्य, सघपूजा करना । इस तप से सुख की प्राप्ति होती है । यह श्रावक को करने का आगाढ़ तप है । इसमें गुणना तप स ७६ के अनुसार करना । स्वस्तिक आदि बारह बारह करना ।

दूसरी विधि—एक पक्ष की एक एकम का उपवास करना। दूसरे पक्ष की बीज के दो उपवास करना, तीसरे पक्ष में तीज के तीन उपवास—इस तरह चढते चढ़ते पद्रहवे पक्ष की पूनम तथा अमावस का उपवास करने से भी यह तप होता है। यह तप बड़ा पखवासा कहलाता है। इस तप मे कोई तिथि भूल जावें तो आगे की दूसरी तिथि ली जा सकती है परन्तु किया हुआ तप निष्फल नही होता है।

---

७४ श्री अष्टापदपावड़ी तप
(अष्टापद ओल)

अष्टापद पर्वत वर्तमान अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर श्रीऋषभदेव भगवत का निर्वाण स्थल है। छे: उपवास की तपश्चर्या से पादपोगमन अनशन कर दस हजार साधुओं के साथ भगवत यहां मोक्ष गये थे। बाद में भरत चक्रवर्ती ने यहा सिंह निषधा नामक भव्य जिन प्रासाद वनवाया। और उसमे वर्तमान चौवोसी के तीर्थंकरो के देह प्रमाण, सस्थान, वर्ण और लांछन युक्त प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित की।

दक्षिण दिशा मे चार भगवंत की मूर्तियां—श्रीऋषभदेव स्वामी से श्री अभिनंदन स्वामी तक।

पश्चिम दिशा मे आठ भगवत की मूर्तिया सुमतिनाथ स्वामी से श्री वासुपूज्य स्वामी तक।

उत्तर दिशा में दस भगवत की मूर्तिया—श्री विमलानाथ स्वामी से श्री नेमिनाथ स्वामी तक।

पूर्व दिशा मे दो—श्री पार्श्वनाथ स्वामी और श्री महावीर स्वामी की मूर्तियां।

इस क्रम को लक्ष्य मे रखकर ही हम **'सिद्धाणं बुद्धाणं'** में **चत्तारि अट्ठ-दस-दोय** वाली गाथा बोलते हैं।

भरत चक्रवर्ती ने तीर्थ रक्षा के लिए पर्वत के चारो ओर आठ आठ सीड़िया बनवाईं इसलिए **अष्टापद** नाम से प्रसिद्धी हुई। जैन शास्त्रों मे ऐसा उल्लेख मिलता है कि—जो चरम-शरीरी होते हैं अर्थात् उसी भव मे मोक्षगामी होते हैं वे ही श्री अष्टापद की यात्रा कर सकते हैं। श्री उत्तराध्ययन की श्री शांत्याचार्यकृत बृहद्वृत्ति में कहा है कि—**चरम सरीरो साहू आरुहइ नगवरं, न अन्नोत्ति**। अर्थात् जो साधु चरमशरीरी हो वही नगवर-पर्वत श्रेष्ठ श्री अष्टापद पर्वत पर चढ सकता है-अन्य नही।

कलिकालसर्वज्ञ श्रीमद् हेमचद्राचार्य महाराज ने श्री त्रिषष्ठिशलाकापुरुष चरित्र के दसवे पर्व के सर्ग में बताया है कि—**योऽष्टापदे जिनान् नत्वा वसेद् रात्रिम् स सिध्यति**। जो अष्टापद पर्वत पर स्थित जिन प्रतिमाओ को वदन कर एक रात्रि वहा व्यतीत करता है वह सिद्ध होता है।

अनतलब्धिनिधान प्रातःस्मरणीय पूज्य श्री गौतमस्वामी महाराज अपनी इसी भव मे मोक्ष प्राप्ति की खात्री के लिए, सूर्य किरण का अवलबन लेकर, अष्टापद पर्वत पर चढ़, जिन प्रतिमाओ को वदनकर, लौटते समय १५०३ तापसो को प्रतिबोधित कर दीक्षा दी थी, यह बात हम सब को विदित ही है।

श्री अभिधान चितामणि के चौथे भूमिकांड मे श्रीमद् हेमचंद्राचार्य ने अष्टापद पर्वत को कैलाश होना बताया है।

श्री जिनप्रभसूरिजी ने भी स्वरचित विविध-तीर्थकल्प में अष्टापद गिरिकल्प मे इसी बात का समर्थन किया है। तीसे अ उत्तरदिसाभाए बारसजोउणेसु अट्ठावओ नाम केलासापराभिहाणो रम्मो नगवरो अट्ठजोयणुचो। अयोध्या नगरी की उत्तर दिशा में बारह योजन दूर, अष्टापद नाम का रम्य पर्वत है, जिसकी ऊंचाई आठ योजन है, जिसका दूसरा नाम कैलाश है।

आधुनिक भूगोल के अनुसार कैलाश पर्वत हिमालय के तिब्बत देश मे मानसरोवर के उत्तर में २५ मील दूर है। इस पर्वत का शिखर बारहों महीने बर्फ से ढका रहता है। हवा बहुत ही ठंडी और तूफानी होने से उस पर चढ़ा नहीं जा सकता।

श्री अष्टापदपावड़ी तप (अष्टापद ओली) की विधि

आश्विनेऽष्टाह्निकास्वेव यथाशक्ति तपःक्रमैः।
विधेयमष्ट वर्षाणि तप अष्टापदं परम्॥

अष्टापद पर्वत पर चढने का तप, अष्टापद पावड़ी तप कहलाता है। इसमें आसोज सुद आठम से पूर्णिमा तक के आठ दिन को एक अष्टाह्निका। (ओली) कहते हैं। इन दिनो में यथाशक्ति उपवासादि तप करना। पहली ओली में तीर्थंकर के पास स्वर्णमय एक सीढ़ी बनवाकर रखना। तथा उसकी अष्टप्रकारी पूजा करना। इस तरह आठ वर्ष तक आठ सीढ़िया स्थापित कर तप करना।

उद्यापन मे बड़ी स्नात्र विधि से चौबीस चौबीस पकवान, फल आदि रखना । इस तप को करने से दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति होती है । यह श्रावक को करने का आगाढ़ तप है ।

श्री अष्टापदतीर्थाय नमः पद की बीस माला गिनना । स्वस्तिक आदि आठ आठ करना ।

दूसरी विधि—कार्तिक वद अमावस्या से शुरू कर एकांतरे आठ उपवास करना । पारणे के दिन एकासना करना । इस प्रकार आठ वर्ष करना ।

उद्यापन मे अष्टापद पूजा, घृतमय गिरि की रचना, स्वर्णमय आठ आठ सीढी वाली आठ निसरणी बनवाना । पकवान, तथा सर्व जाति के फल चौबीस चौबीस रखना । दूसरी सब वस्तुएं आठ आठ रखना । (जैन प्रबोध मे इस तप को अष्टापद ओली भी कहा है)

---

७५. श्री मोक्ष दंड तप (मोक्ष करंडक तप) और विधि

यावन्मुष्टिप्रमाणः स्याद्गुरुदंडश्च तावतः ।
विदधीतैकान्तरांश्चोपवासान्सु समाहिताः ।।

मोक्षदण्ड सम्बंधी तप को मोक्षदण्ड तप कहते हैं । इसमें गुरु का दण्ड (डंडा) जितनी मुट्ठी प्रमाण हो उतने उपवास

एकान्तर पारणे वाला करना। अंतिम दिन गुरु के दण्ड की चंदन से पूजा करना और गुरु को वस्त्र वहोराना। श्रीफल और अक्षत दण्ड के पास रखना। उपवास की संख्या जितने फल, रूपानाणा, पकवान आदि भी रखना। संघपूजा, संघवात्सल्य करना। इस तप को करने से विपत्ति दूर होती है। यह श्रावक को करने का आगाढ़ तप है।

नमो लोए सव्वसाहूणं पद की बीस माला गिनना, स्वस्तिक आदि सत्ताईस करना।

दूसरी विधि—गुरु के दण्ड को अंगूठे के (पेरवा) द्वारा नापना। जितनी संख्या हो उतने एकासने करना। उद्यापन में उतनी संख्या में मोदक आदि दण्ड के पास रखना। बाकी सब ऊपर बताये अनुसार (नं० ब०)

तीसरी विधि—उपवास एक, आयंबिल एक, नीवी एक, एकासना एक, पुरिमड्ढ एक-यह एक ओली। ऐसी पांच ओली करने से पच्चीस दिन मे तप पूरा होता है। उद्यापन ऊपर बताये अनुसार करना। गुणना आदि तप सं. १ के अनुसार करना।

(इस तप को मोक्षकरंडक तथा पांच पच्चक्खाण की ओली भी कहते हैं)

---

७६. श्री अदुःखदर्शी तप और उसकी विधि

शुक्लपक्षेषु कर्तव्याः क्रमात्पञ्चदशस्वपि।
उपवासास्तिथिष्वेवं पूर्यते विधिनैव तत्॥

जिसे दु:ख देखने की आदत नही वह अदु:खदर्शी तप कहलाता है। इसमे प्रथम शुक्लपक्ष की एकम को उपावास करना, फिर दूसरे माह की सुद बीज को उपवास करना। फिर तीसरे माह की सुद तीज को उपवास करना। इस प्रकार चढते चढते पद्रहवे माह की पूर्णिमा को उपवास करना। इस तरह पद्रह माह मे कुल पद्रह उपवास से यह तप पूरा होता है। यदि कोई तिथी भूल जावें तो तप को फिर से आरम्भ करना।

उद्यापन में श्री ऋषभदेवस्वामी की पूजा करना। चांदी का वृक्ष बनवाना, उसकी शाखा मे स्वर्ण की रेशमी पाटीवाला झूला टांगना। इसमे रेशमी गद्दी रखना। उस पर स्वर्ण की पुतली सुलाना। पंद्रह पंद्रह पकवान, फल, रूपानाणा आदि रखना। तथा पद्रह माह की तप की तीथियो पर नये २ नैवेद्य, पकवान, फल आदि रखना। सघपूजा, सघवात्सल्य करना। **इस तप के फल से समस्त दुःखों का नाश होता है।** यह श्रावक को करने का आगाढ़ तप है।

दूसरी विधि—पक्ष की तिथियो को ऊपर बताये अनुसार चढ़ते चढ़ते उपवास करना। इस तरह पद्रह पक्षो में यह तप पूरा होता है।

(इस तप को छोटा पखवासा भी कहते हैं। इस तप में भूल से कोई तिथी भूल भी जावे तो आगे की तिथी ले सकते हैं पुनः शुरू नही करना पडता है)

"श्री ऋषभस्वामी अर्हते नमः" पद की बीस माला गिनना, स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

७७. श्री अदु:खदर्शी तप (दूसरा) और उसकी विधि

तीसरी विधि यह है कि एकान्तर पंद्रह उपवास तिथि के नियम बिना ही करना। उद्यापन आदि ऊपर अनुसार करना।

गुणना आदि निम्न प्रकार से—

		सा. ख. लो. न.
१	श्री कुंथुनाथ पारगताय नमः	१७-१७-१७-२०
२	श्री शीतलनाथ पारगताय नमः	१०-१०-१०-२०
३	श्री आदिनाथ परमेष्ठिने नमः	१- १- १-२०
४	श्री श्रेयांसनाथ पारगताय नमः	११-११-११-२०
५	श्री धर्मनाथ पारंगताय नमः	१५-१५-१५-२०
६	श्री नेमिनाथ सर्वज्ञाय नमः	२२-२२-२२-२०
७	श्री चंद्रप्रभ सर्वज्ञाय नमः	८- ८- ८-२०
८	श्री अभिनंदन पारगताय नमः	४- ४- ४-२०
९	श्री मुनिसुव्रत पारंगताय नमः	२०-२०-२०-२०
१०	श्री अरनाथ पारंगताय नमः	१८-१८-१८-२०
११	श्री मल्लिनाथ पारंगताय नमः	१९-१९-१९-२०
१२	श्री अरनाथ सर्वज्ञाय नसः	१८-१८-१८-२०
१३	श्री ऋषभदेव पारंगताय नमः	१- १- १-२०
१४	श्री वासुपूज्य पारंगताय नमः	१२-१२-१२-२०
१५	श्री संभवनाथ नाथाय नमः	३- ३- ३-२०
१६	श्री महावीर पारगताय नमः	२४-२४-२४-२०

—

७८. श्री गौतमपडधा तप

श्री गौतमस्वामी का सक्षिप्त जीवन वर्णन तप सं. ३८ (वीर गणधर तप) मे आ गया है।

श्री गौतमस्वामी ने अष्टापद पर्वत से लौटते वक्त अनुक्रम से पहली, दूसरी और तीसरी सीढी पर के ५०१-५०१ तापसों को प्रतिबोधित किया। पात्र मे अल्पक्षीर वहोराई, अपनी लब्धि के प्रभाव से उन सब १५०३ तापसो को पूरी तरह पारणा कराया। यह प्रसंग सब को विदित ही है। उसी निमित्त यह "**गौतमपडधा**" तप किया जाता है।

श्री गौतमस्वामी द्वारा दीक्षित शिष्यो को केवलज्ञान हो जाता परन्तु श्री गौतमस्वामी स्वयं केवलज्ञान से वंचित रहे, इसका मुख्य कारण भगवंत श्री महावीर देव के प्रति उनका प्रीति बंधन था। जिस रात्रि को श्री महावीर देव का निर्वाण हुआ (दीपमालिका) उसी रात्रि को यह प्रीतिबंधन टूट जाने से उन्हे केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। भगवंत श्री महावीर देव पूर्व भव मे जब वे त्रिपृष्ठ वासुदेव थे और शालि के खेत की रक्षा करते समय उन्होने सिंह का वध किया था तब श्री गौतमस्वामी जीव उनके सारथी थे। इस प्रकार इन दोनों का सम्बन्ध पिछले कई भवो से चला आ रहा था।

विद्यमान आगमो को देखते उनमें से कितने ही आगमो का निर्माण भगवत श्री महावीर देव को श्री गौतमस्वामी के किए प्रश्नो के आधार पर ही है। श्री उववाई, रायपसेणी, जंबूद्वीप-प्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति और श्री भगवतीजी ये इसकी पुष्टि करते हैं। विशेष जानकारी के लिए **गणधरवाद** पढ़ना।

श्री गौतमपडधा तप विधि

राकासु पंचदशसु, स्वशक्तेरनुसारतः।
तपः कार्यं गौतमस्य, पूजाकरणपूर्वकम् ॥

श्री गौतमस्वामी के पात्र को लक्ष्य में रख यह तप किया जाता है, इसलिए इसको गौतम पतद्ग्रह (पड़घा) कहते हैं। इस तप में हरएक पूर्णिमा को यथाशक्ति उपवास, एकासना आदि करना। तथा श्री गौतमस्वामी की मूर्ति की पूजा करना। इस तरह पन्द्रह पूर्णिमा तक यह तप करना।

उद्यापन मे श्री गौतमस्वामी तथा श्री महावीरस्वामी की बड़ी स्नात्र विधि से पूजा करना। चादी का पात्र बनवाकर उसमे क्षीर भरकर झोली सहित श्री महावीरस्वामी की मूर्ति के पास रखना। तथा काष्ट पात्र, क्षीर और झोली सहित गुरु को वहोराना। इस तप से विविध लब्धि की प्राप्ती होती है। यह श्रावक को करने का आगाढ़ तप है।

दूसरी विधि—कार्तिक सुद एकम को उपवासादि तप करके गौतमस्वामी की पूजा वगैरह ऊपर लिखे अनुसार करें। इस तरह एक वर्ष तक हर एकम के दिन करना। उद्यापन आदि ऊपर अनुसार करना।

श्री गौतमस्वामिने नमः पद की वीस माला गिनना, स्वस्तिक आदि सत्ताईस करना।

---

७९. श्री निर्वाण दीपक तप
(दीवाली का छट्ठ)

दीवाली पर्व मे सब लोग पचेन्द्रिय के सुख की विशेष अभिलाषा करते हैं, महा आरम्भ कर कर्मबधन करते है। ऐसे दिनों में यह तपश्चर्या की जाय तो वह महा लाभकारी होती है। दीवाली पर्व की उत्पत्ति सम्बन्धी सक्षिप्त वृत्तांत इस प्रकार है—

अपना आयुष्य समीप जानकर परमात्मा श्री वीरभगवंत ने **अपापानगरी** मे हस्तिपाल राजा की सभा मे अतिम चतुर्मास किया। पर्यंकासन से बैठकर कार्तिक वद अमावस्या का छट्ठ किया, अतिम पहर मे स्वाति नक्षत्र का योग आने पर, इन्द्र महाराज ने परमात्मा को निवेदन किया कि—आपके जन्म नक्षत्र पर भस्मराशि ग्रह बैठने वाला है। यदि आप अपना आयुष्य क्षण मात्र के लिए बढा ले तो उस क्रूर ग्रह की असर समाप्त हो और आपके निर्वाण के बाद भी जैन धर्म की प्रभावना विशेष होगी। परमात्मा श्री वीरभगवत ने इन्द्र को कहा कि—आयुष्यकर्म के पुद्गल न्यूनाधिक नही होते। श्री जिनेश्वर भी यह करने मे समर्थ नही हैं। अभावी होने का नही और होने वाला मिथ्या होने वाला नही।

अत समय मे परमात्मा ने सोलह पहर तक मधुर ध्वनि से देशना दी। उसमे पचपन अध्ययन शुभ कर्मविपाक के और पचपन अध्ययन अशुभ कर्मविपाक के कहे। इसके बाद छत्तीस अध्ययन भी कहे। अत मे योगनिरोध कर, शैलेशीकरण साधकर परमात्मा निर्वाण को प्राप्त हुए।

उस समय वहां उपस्थित नौ मल्लकी और नौ लच्छवी कुल अठारह राजाओं ने परमात्मारूपी भाव उद्योत का विरह होने से द्रव्य उद्योत किया अर्थात् असंख्य दीपक प्रगटाये। और उस रात्रि को देव देवियों का निर्वाण महोत्सव प्रसंग पर आना जाना होने से वह रात्रि ज्योतिमय रही इसलिए तब से कार्तिक वद अमावस्या दीपमालिक के नाम से प्रसिद्ध हुई।

श्री दिवाली छठ्ठ तप विधि

वर्षत्रयं दीपमाला, पूर्वे मुख्ये दिनद्वये।
उपवासद्वयं कार्यं, दीपप्रस्तारपूर्वकम् ॥

निर्वाण (मोक्ष) के मार्ग के लिए दीपक समान यह तप होने से निर्वाण दीपक कहा जाता है। इसमें दीवाली की चतुर्दशी और अमावस्या इन दो दिन मे छठ्ठ करना, इन दोनो दिन और रात्रि में श्री महावीरस्वामी की प्रतिमा के पास अखंड चांवल तथा अखंड घी का दीपक रखना।

उद्यापन मे श्री महावीर स्वामी की बड़ी स्नात्र विधि से पूजा कर एक हजार घी के दीपक रखना[1]। संघवात्सल्य, संघपूजा करना। इस तरह तीन वर्ष करने से यह तप पूरा होता है। इस तप के करने से मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होती है। यह श्रावक को करने का आगाढ़ तप है। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना। गुणना निम्न प्रकार करना—

---

१ क्षीर भरकर पात्र वहराने की भी प्रथा है

श्री महावीर स्वामी सर्वज्ञाय नमः पद की बीस माला चतुर्दशी को।

श्री महावीरस्वामी पारंगताय नमः पद की बीस माला अमावस्या की प्रथम रात्रि में।

श्री गौतमस्वामी सर्वज्ञाय नमः पद की बीस माला अमावस्या की पिछली रात्रि मे।

---

८०. श्री अमृताष्टमी तप और विधि

शुक्लाष्टमीषु चाष्टासु, आचाम्लादितपांसि च।
विदधीत स्वशक्त्या च, ततस्तत्पूरणं भवेत्॥

अमृत के अभिषेक द्वारा जानी जाती अष्टमी को अमृताष्टमी कहते हैं। यह तप शुक्ल पक्ष की आठ अष्टमी के दिन आयंबिल (अथवा उपवास) आदि शक्ति अनुसार करके पूरा होता है।

उद्यापन में बड़ी स्नात्र विधि से घी तथा दूध से भरे दो कलश (ऊपर नया वस्त्र ढककर) तथा एक मन मोदक देव के पास रखना। संघवात्सल्य, संघपूजा करना। यह श्रावक को करने का आगाढ़ तप है। **इस तप को करने से आरोग्यता प्राप्त होती है।** (कलश पर नया नीला वस्त्र ढककर उस पर लोंग तथा बड़ा लड्डू रखने का भी नं. ब. आदि प्रत्यंतर मे कहा है)

दूसरी विधि—एकासना तेरह, नीवी चौबीस, आयंबिल पंद्रह लगातार करने से यह तप पूरा होता है। बाकी सब विधि ऊपर अनुसार जानना।

ॐ नमो सिद्धाणं पद की बीस माला गिनना, स्वस्तिक आदि आठ आठ करना।

---

८१. श्री अखंड दसमी तप और विधि

शुक्लासु दशसंख्यासु, निजशक्त्या तपोविधिम् ।
विदधीत ततः पूर्त्तिस्तस्य संपद्यते क्रमात् ।।

अखंडित दसमी के दिन जो तप किया जाता है उसे अखंड दसमी तप कहते हैं। इसमे दस शुक्ल दसमी के दिन अपनी शक्ति के अनुसार एकासना आदि तप करना। तप के दिन अखंड अन्न का भोजन करना अर्थात् मूसल से खंडित नही किए हुए चावल का भोजन करना।[1]

उद्यापन मे दस दस पकवान, फल, रूपानाणा आदि देव के पास रखना। अखण्ड अक्षत का नैवेद्य रखना। अखण्ड वस्त्र गुरु को वहोराना। चैत्य की फिरती घी की तीन धारा अखण्ड करना। (प्रभु की प्रतिमा एक थाल मे बिराजमान कर सवा पाच सेर घी ले उसकी अखण्ड धारावाली जरामात्र भी धार टूटे नही उस तरह प्रतिमाजी को फिरती करना) संघवात्सल्य,

१ न. व आदि प्रतियो मे अखण्ड अन्न खाने को लिखा है

संघपूजा करना। इस तप को करने से अखण्ड सुख की प्राप्ति होती है। यह श्रावक को करने का आगाढ़ तप है।

नमो अरिहंताणं पद की बीस माला गिनना, स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

८२. श्री परत्र पाली तप और विधि

पञ्च वर्षाणि वीरस्य, कल्याणक समाप्तितः।
उपवासत्रयं कृत्वाः, द्वात्रिंशदरसांश्चरन् ॥

परलोक के लिये पालने जैसे तप को परत्र पाली तप कहते हैं। इसमे श्री महावीर स्वामी के कल्याणको की समाप्ति अर्थात् दीवाली के दिन से आरम्भ कर प्रथम तीन उपवास (अठ्ठम) करना। पीछे बिना आतरेवाली बत्तीस नीवो करना। किसी २ की राय मे दस उपवास एकान्तरे करने को भी कहा है (जैन धर्म सिंधु तथा जन प्रबोध मे अन्त मे अठ्ठम करने को कहा है)। इस प्रकार पाच वर्ष तक तप करना।

उद्यापन मे हर वर्ष थाल मे एक सेर लपसी की पाल कर बीच मे घी से पूर्ण कर देव के पास रखना। पाचवे वर्ष के अन्त मे अंतिम उद्यापन मे बडी स्नात्र विधि पूर्वक जिन पूजा कर ऊपर प्रमाणे नवेद्य तथा विविध प्रकार के पकवान फल, रूपानाणा आदि देव क पास रखना। सघवात्सल्य सघपूजा, करना। इस तप को करने से परलोक में सद्गति प्राप्त होती है। यह श्रावक को करने का आगाढ़ तप है।

श्री महावीर स्वामी पारंगताय नमः इस पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

८३. श्री सोपान (पावड़ी) तप और उसकी विधि

सप्ताष्टनवदशभिस्तदगुणैस्तिथिसंक्रमैः।

दत्तिभिः पूर्यते चैव, सोपानतप उत्तमम्॥

मोक्ष मार्ग पर आरोहण करने के लिए सोपान (सिढ़िया) जैसा होने से यह सोपान तप कहलाता है। इस तप मे चार प्रतिमाएं करने को कहा है। सात सप्तमिका, आठ अष्टमिका, नव नवमिका और दस दसमिका। ये चार प्रतिमाएं इस तरह करना—यहां सात सप्तमिका अर्थात् सात दिवस की एक ओली, ऐसी सात ओली करना। अर्थात् इन ओलियो के ४६ दिन हुए। इसमें पहले सात दिन की ओली में हमेशा एक एक दत्ति करना, दूसरी ओली मे रोज दो दो दत्ति करना, तीसरी ओली मे रोज तीन तीन दत्ति करना। इस तरह बढ़ते बढते सातवी ओली मे सात दिन हमेशा सात सात दत्ति करना। (कुल दत्ति १६६)

दूसरी आठ अष्टमिका—यह आठ दिन की एक ओली गिनना। ऐसी आठ ओली करने से ६४ दिन मे दूसरी प्रतिमा पूरी होती है। इसमे दत्ति ऊपर लिखे अनुसार ही जानना। (कुल दत्ति २८८)

तीसरी नव नवमिका—यह नो दिन की एक ओली होती है और यह ८१ दिन में पूरी होती है। इसमें भी ऊपर प्रमाणे ही दत्ति करना (कुल ४१० दत्ति)

चौथी दस दसमिका—यह दस दिन की एक ओली होती है और १०० दिन मे पूरी होती है। इसमें भी दत्ति उपरोक्त लिखे अनुसार समझना (कुल दत्ति ५५०)

ये चारों प्रतिमाए नो माह और चौबीस दिन मे पूरी होती है। तथा दत्ति की सख्या १५४४ होती हैं।

इस सम्बन्ध मे प्रवचन सारोद्धार मे इस प्रकार कहा है—

चउवीस दिवस अहिया नव मासा सव्व इत्थ दिवसाणि।
चउद सया गुणयाला दत्तीणं हवइ इय संखा॥

यह तप चौबीस दिन और नो मास मे पूरा होता है। पंद्रह सौ चंवालीस दत्तियो की सख्या है।

उद्यापन मे बडी स्नात्र विधि पूर्वक जिनेश्वर की पूजा पढाना। विविध प्रकार के पकवान, फल, रूपानाणा आदि देव के पास रखना। संघवात्सल्य, सघपूजा करना। इस तप को करने से मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होती है। यह श्रावक को करनें का आगाढ़ तप है।

ॐ नमो अरिहंताणं पद की बीस माला गिनना, स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

८४. श्री कर्म चतुर्थ तप और विधि

उपवासत्रयं कुर्यादादावन्ते निरन्तरम् ।
मध्ये षष्टिमिताः कुर्यादुपवासांश्च सान्तरान् ।।

कर्म क्षय के लिए उपवास कर जो तप किया जाता है उसे कर्म चतुर्थ तप कहते हैं। इसमें प्रथम तीन उपवास (अट्ठम) कर पारणा करना, पीछे एकान्तर साठ उपवास करना, फिर तीन उपवास (अट्ठम) करना। इस प्रकार ६६ उपवास और पारणे के ६२ दिन, कुल १२८ दिन मे यह पूरा होता है।

उद्यापन मे बड़ी स्नात्रविधि से चांदी का वृक्ष तथा स्वर्ण को कुल्हाड़ी बनवाकर देव के पास रखना। नाना प्रकार के पकवान, फल आदि रखना। सघवात्सल्य, सघपूजा करना। इस तप से कर्मों का क्षय होता है।

ॐ नमो अरिहंताणं पद की बीस माला गिनना, स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

८५. श्री नवकार तप (छोटा) और उसकी विधि

कृत्वा नवैकभक्तानि तदुद्यापनमेव च ।
शक्तिहीनैर्निधेयं च, पूर्ववत्तत्समापनम् ।।

नवकार का फल देने वाला होने से इसे नवकार तप कहते हैं। इसमें शक्तिहीन मनुष्य तप स. ४१ वाले तप के अनुसार

६८ एकासना अथवा ६८ उपवास नहीं कर सकते उन्हे नवकार के पद जितने अर्थात् नो एकासना लगातार करना ।

उद्यापन आदि सब विधि तप सं. ४१ के अनुसार करना । इसका फल भी उसके जितना ही है । यह मुनि तथा श्रावक को करने का आगाढ़ तप है । गुणना वगैरह तप सं. ४१ के माफिक ही करना ।

---

८६. श्री अविधवा दसमी तप और उसकी विधि

भाद्रपदशुक्लदशमीदिन एकाशनमथो निशायां च ।
अंबापूजनजागरणकर्माणि सुविधिना कुर्यात् ॥

वैधव्य रहित होने के लिये महिलाओ को करने का यह तप है । इसमे भाद्रवा सुद १० के दिन ब्रह्मचर्य का पालन करना और एकासना (अथवा उपवास आदि) करना । रात्रि मे अम्बादेवी के पास सगीत आदि से जागरण करना तथा अम्बादेवी की पूजन करना । श्रीफल दस, पकवान दस आदि सर्व फल आदि वस्तु दस दस रखना । इस प्रकार दस वर्ष तक करना ।

हरएक भाद्रवा सुद ११ के दिन सार्धमिक को भोजन करा, साधु को आहारादि वहोराकर पारणा करना । अम्बादेवी को कंकु की पील करना, अंजन करना, और स्वयं

श्री अंजन लगाना और रेशमी लहंगा, कांचली, चंद्रवा तथा चक्षु देवी के चढ़ाना। पीछे दस दीपक करना। यह जै. प्र में कहा है।

उद्यापन में इंद्राणी की पूजा करना। संघवात्सल्य, संघपूजा करना। इस तप के करने से वैधव्य प्राप्त नहीं होता। यह श्रावक को करने का आगाढ़ तप है (हर वर्ष उद्यापन में दुगना दुगना नैवेद्य रखना अर्थात् पहले वर्ष में श्रीफल आदि दस दस रखना, दूसरे वर्ष बीस बीस रखना। इस प्रकार जानना—न. व.)

विधि प्रपा में दूसरी विधि यह बताई है कि उपवास एक, एकासना एक, छट्ठ एक, एकासना एक, अट्ठम एक, एकासना एक। पारणे पर क्षीर मुनिराज को वहोराना। ज्ञान की पूजा पढ़ाना।

---

८७. श्री बृहन्नंद्यावर्त तप

नंद्यावर्त यह एक तरह का स्वस्तिक है। अष्ट मांगलिक मे इसका समावेश किया गया है। सब प्राणियो के हित के लिए जो कार्य हो वह मंगल कहलाता है। लौकिक मंगल में नंद्यावर्त की गिनती की गई है। यद्यपि लोकोत्तर मांगलिक के लिए तो अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म इन चारो को गिना जाता है।

इस तप में इद्र महाराज, श्रुतदेवी, विद्यादेवी, शासन यक्ष यक्षिणी, दिकपाल, क्षेत्रपाल आदि को लक्ष्य में रख तप करने की विधि बताई गई है—जिसका मतलब मंगल प्राप्ति का है।

श्री बृहन्नंद्यावर्त तप की विधि

बृहन्नंद्यावर्तविधिसंख्ययैकाशनादिभिः ।
पूरणीयं तपश्चोद्यापने तत्पूजनं महत् ।।

नंद्यावर्त की आराधना के लिए यह तप है। इसमें प्रथम नंद्यावर्त की आराधना के लिए एक उपवास करना, पीछे सौधमेंद्र, ईशानद्र[1] और श्रुतदेवता की आराधना के लिए तीन आयबिल करना। इसके बाद अरिहंतादि आठ की[2] आराधना के लिए आठ आयबिल करना। पीछे चौबीस जिन माताओं की आराधना के लिए चौवीस एकासना करना। फिर सोलह विद्यादेवियों को लक्ष्य में रख सोलह एकासना करना। फिर चौसठ इंद्रो के चौसठ एकासना करना। फिर चौसठ इद्राणियो के चौसठ एकासना करना। फिर चौबीस शासन यक्षो के चौबीस एकासना और चौबीस शासन यक्षिणियो के चौबीस एकासना करना। फिर दस दिक्पालो के दस एकासन करना। पीछे नो ग्रह और एक क्षेत्रपाल के दस एकासना करना। फिर चार निकाय के देवताओ के चार एकासना करना। इसके बाद सव की आराधना के लिए एक उपवास करना। इस तरह उपवास २, आयबिल ११, एकासना २६४, इन सव को मिलाकर २७७ दिन में यह तप पूरा होता है।

उद्यापन में देहरासर मे बड़ी स्नात्रविधि से पूजा पढ़ाना। उपाश्रय में नद्यावर्त की पूजा प्रतिष्ठा विधि से करना।

---

१. ये दो इद्र चवरधारी हैं। २ पाच परमेष्ठी तथा रत्नत्रय

संघ पूजा, संघ वात्सल्य करना। इस तप को करने से तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन होता है, और इस भव में सब ऋद्धि तथा सब देवों का सानिध्य प्राप्त होता है। यह श्रावक को करने का आगाढ़ तप है।

६४ इंद्रों के नाम

१. सौधर्मेन्द्र	२. ईशानेन्द्र	३. सनत्कुमारेन्द्र
४ माहेन्द्र	५ ब्रलेन्द्र	६. लान्तकेंद्र
७. शुक्रेन्द्र	८ सहस्रारेन्द्र	९. ग्रानतेन्द्र
१०. प्राणतेन्द्र	११. ग्रारणेन्द्र	१२. ग्रच्युतेन्द्र
१३. चंद्राये	१४. सूर्येन्द्र	१५. चमरेन्द्र
१६. बलीन्द्र	१७. धारणेन्द्र	१८. भूतेन्द्र
१९. वेणुदेवेन्द्र	२०. वेणुदालीन्द्र	२१. कान्तेद्र
२२. हरिस्सहेन्द्र	२३. ग्रग्निशिखेंद्र	२४ ग्रग्निमाणवेंद्र
२५. पूर्णेंद्र	२६. विशिष्टेंद्र	२७ जलकातेद्र
२८. जलप्रभेन्द्र	२९. ग्रमितगतीन्द्र	३०. मितवाहेन्द्र
३१. वेलवेंद्र	३२. प्रभंजनेन्द्र	३३. घोषेन्द्र
३४. महाघोषेन्द्र	३५ कालेन्द्र	३६. महाकालेन्द्र
३७. सरूपेन्द्र	३८. प्रतिरूपेंद्र	३९. पूर्णभद्रेन्द्र
४०. माणवेंद्र	४१. भीमेन्द्र	४२. महाभीमेद्र
४३. किन्नरेन्द्र	४४. किंपुरुषेद्र	४५. सत्पुरुषेंद्र

४६. महापुरुषेंद्र   ४७ अमितकायेंद्र   ४८. महाकायेन्द्र
४९. गीतरतीन्द्र   ५०. गीतमशेन्द्र   ५१. सन्निहितेन्द्र
५२. सासानिकेंद्र   ५३ धाचेन्द्र   ५४. विधात्रेंद्र
५५. ऋषोन्द्र   ५६ ऋखपालेंद्र   ५७. ईश्वरेन्द्र
५८. महेश्वरेंद्र   ५९. वत्सेंद्र   ६०. विशालेंद्र
६१. हास्येन्द्र   ६२. हास्यरतेन्द्र   ६३. श्रेयेन्द्र
६४. महाश्रेयेन्द्र

२४ शासन यक्ष

१ गोमुख   २. महा   ३. त्रिमुख
४. यक्षनायक   ५. तुम्वरु   ६. कुसुम
७ मातङ्ग   ८. विजय   ९. अजित
१०. ब्रह्मा   ११. यक्षराज   १२. कुमार
१३. षण्मुख   १४. पाताल   १५. किन्नर
१६. गरुड़   १७ गंधर्व   १८. यक्षराज
१९. कुवेर   २० वरुण   २१. भृकुटी
२२. गोमेध   २३. पार्श्व   २४. ब्रह्म शाति

२४ शासन यक्षणी

१. चक्रेश्वरी   २ अजितबला   ३. दुरितारी
४. काली   ५. महाकाली   ६. श्यामा

७ शांता	८ भृकुटी	९. सुतारका
१०. अशोका	११. मानवी	१२. चण्डा
१३ विदिता	१४ अकुशा	१५. कन्दर्पा
१६ निर्वाणी	१७. वला	१८. धारिणी
१९. धारणिप्रिया	२०. नरदत्ता	२१. गाधारी
२२. अम्बिका	२३ पद्मावती	२४ सिद्धायिका

१० दिकपाल

१. इंद्र २. अग्नेय ३ यम ४. नैऋ त्य ५. वरुण
६. वायव्य ७ कुवेर ८. ईशान ९. नाग १०. व्रह्म

९ ग्रह

१. सूर्य २. चंद्र ३. भौम ४. बुध ५ वृहस्पत
६ शुक्र ७. शनैश्वर ८. राहु ९. केतव

२४ जिनमाता

१. मरुदेवी	२. विजया	३. सेना
४ सिद्धार्था	५. सुमङ्गला	६. सुसीमा
७. पृथ्वी	८. लक्ष्मणा	९ रामा
१०. नंदा	११. विष्णु	१२. जया
१३. श्यामा	१४. सुयशा	१५. सुव्रता
१६. अचिरा	१७. श्री	१८. देवी
१९ प्रभावती	२०. पद्मावती	२१. वप्रा
२२. शिवा	२३. वामा	२४. त्रिशला

१६ विद्यादेवी

१ रोहिणी	५. चक्रेश्वरी	९. गौर्य्या	१३. वैराट्या
२. प्रज्ञप्ती	६. पुरुषदत्त	१०. गांधार्या	१४. अच्छुप्ता
३. वज्रश्रृंखला	७ काल्या	११. महाज्वाला	१५. मानस्या
४. वज्रांकुशा	८. महाकाल्या	१२. मानव्या	१६ महामानस्या

चार निकाय के देवता

१. श्रुत देवता २. भुवन देवता ३. क्षेत्र देवता ४. शासन देवता

---

८८. श्री लघुनंद्यावर्त तप और विधि

लघोश्च नंद्यावर्तस्य, तपः कार्य विशेषतः ।
तदाराधनसंख्याभिरुद्यापनमिहादिवत् ॥

नद्यावर्त की आराधना के लिए जो तप हो उसे नंद्यावर्त तप कहते हैं । इसमें प्रथम नंद्यावर्त की आराधना के लिए उपवास करना । पीछे धरणेंद्र, अंबिका, श्रुतदेवी और गौतम स्वामी को लक्ष्य मे रखकर चार आयंबिल करना । पीछे पांच परमेष्ठी तथा रत्नत्रय के आठ आयबिल, सोलह विद्या देवियों के सोलह एकासना, चौवीस शासन यक्षिणियो के चौवीस एकासना, दस दिक्पालो के दस एकासना, नवग्रह तथा क्षेत्रपाल के दस एकासना, चार निकाय के देवो के चार एकासना

करना । इसके बाद सब की आराधना के लिए एक उपवास करना । इस तरह उपवास २, आयबिल १२, एकासना ६४ सब मिलाकर ७८ दिनो में यह तप पूरा होता है ।

उद्यापन में मंदिर मे बड़ी स्नात्र विधि से पूजा कराना । उपाश्रय मे लघु नंद्यावर्त की पूजा आदि पूजा की तरह करना । संघ वात्सल्य, संघ पूजा करना । इस तप को करने से तीर्थंकर नाम गोत्र का बंध होता है तथा सब देवो का सानिध्य प्राप्त होता है । यह मुनिराज तथा श्रावक को करने का आगाढ़ तप है ।

॥ इति फलतपांसि सप्तविंशतिः ॥
इति आचारदिनकरगततपांसि पूर्णानि

---

८९. श्री बीस स्थानक तप

भव चक्र मे अव्याबाध सुख प्राप्त करना यही अन्तिम लक्ष होना चाहिए । जिस सुख के पीछे दुःख आवे या जन्म-मरण करना पड़े उसे अक्षय सुख नही कह सकते ।

अनुत्तर विमानवासी देव तेंतीस सागरोपम प्रमाण समय पर्यंत दिव्य सुख का अनुभव करते हैं । उनके सुख की बराबरी नही की जा सकती, ऐसा सुख संसार की किसी भी योनि में नही है, किन्तु ऐसा सुख भोगने के बाद भी जन्म, जरा और मृत्यु का दु:ख सहना पड़ता है । अब प्रश्न यह होता है कि— अविचल सुख कौनसा ? ऐसा अविचल, शाश्वत और अनुपम सुख मुक्ति मे ही हो सकता है ।

बीस स्थानक तप की आराधना से ऐसा मुक्ति सुख प्राप्त किया जा सकता है। वर्तमान अवसर्पिणी काल के चौवीस तीर्थंकर भगवतो ने अपने पूर्व भवों मे इस वीस स्थानक तप को कर जिननामकर्म उपार्जन किया था। श्री तीर्थंकर भगवत होने वाले प्रत्येक जीव कम या अधिक अश मे बीस स्थानक तप की अवश्य आराधना करते हैं। वर्तमान चौबीसी के प्रथम श्री ऋषभदेव भगवंत तथा चौबीसवें श्री महावीर भगवंत ने बीस ही पदो की आराधना की थी और बाकी के बाईस तीर्थंकर परमात्माओं ने एक-एक पद की आराधना की थी।

यदि कोई प्राणी सम्यग् रीति से बीस स्थानक तप की आराधना करे तो अवश्य श्री जिनेश्वर भगवत की अद्भुत लक्ष्मी प्राप्त करता है।

बीस पद आराधना सम्बन्धी वर्णन नीचे किया जाता है जिससे प्रत्येक पद का थोड़ा सक्षिप्त स्वरूप समझ में आजावे।

१. अरिहंत पद—सवि जीव करूं शासन रसी ऐसी उत्कृष्ट भावनारूप भाव दया के परिणाम से श्री तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन कर, श्रेष्ठ कुल मे उत्पन्न हो, संयम स्वीकार कर, घनघाती कर्मो का नाश कर, केवलज्ञानादि अनन्त आत्म-सपदा प्राप्त कर, समस्त देवेंद्रो से पूजित समवसरण में विराजकर अग्लानता से भव्य जीवो को प्रतिबोधित करे वह **श्री अरिहंत पदवी** श्रेष्ठ उपकारक होने से आराधना करने लायक है। अरिहत पंच परमेष्ठी मे प्रधान-मुख्य हैं और नाम, स्थापनादि चार निक्षेप हमेशा ध्यान करने योग्य हैं।

२. सिद्धपद—सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्ररूप रत्नत्रयी की यथार्थ आराधना कर, समस्त कर्मों का क्षय कर, जन्म, जरा, मरणादि दुःखो से रहित अक्षय शिव-सपदा को प्राप्त करने वाले सिद्ध परमात्मा की आराधना इस पद से होती है। यह पद परम निर्मल है।

३. प्रवचन—श्री तीर्थंकर परमात्मा भी देशना के आरम्भ मे **नमो तित्थस्स** कह, परमात्मा के वचन के अनुसार चलने वाले साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध सघ को वंदन करते हैं। श्री संघ अनेक सद्गुणी आत्माओ का समुदाय होने से अत्यन्त गुणरत्न निधान है।

४. आचार्यपद—पांच इन्द्रियो का दमन, नो प्रकार से ब्रह्मचर्य का पालन, चार कषायो को जीतना, पंच महाव्रत का पालन, पंचाचार का सेवन, पांच समिति और तीन गुप्ति का पालन—ये छत्तीस गुण जिनमें होते हैं वे आचार्य भगवंत उपकारी होने से सदा सेवा योग्य हैं।

५. स्थविरपद—उत्तम प्रकार की क्षमा, मृदुता, सरलता आदि गुणो द्वारा जो अन्य मुनिवरों को यथावसर सहयोग देकर सयम मार्ग मे स्थिर कराते है वे स्थविर जैन शासन को चलाने वाले है।

६. उपाध्यायपद—स्वय निर्मल चारित्र पालने मे उद्यत रह, साधु समुदाय को शिक्षित करते है वे उपाध्याय आचार्य, गच्छ और श्री संघ के सहायक हैं।

७. साधुपद—शाश्वत सुख की सिद्धि करने, संसार सुख का त्याग कर रत्नत्रयी का प्रमाद रहित होकर पालन करते हैं उन साधुओ की उपासना करना।

८. ज्ञानपद—स्व-पर को, जड़-चेतन को, हित-अहित को तथा कर्तव्य-अकर्तव्य को जिससे जाना जावे वह ज्ञान। ज्ञान रूपी विवेक दीपक प्रगट होते ही आत्मप्रकाश होता है, अध्यात्म स्वरूप की प्राप्ति होती है।

९. दर्शनपद—सर्वज्ञ भगवत कथित तप, तत्त्व, षड्द्रव्य, सप्तनय, निक्षेप आदि को सत्य और प्रामाणिक मानना सम्यक्त्व दर्शन है। यह चिन्तामणि रत्न की तरह इच्छित मुक्ति सुख की प्राप्ति कराता है।

१०. विनयपद—गुणीजनो के प्रति मृदुता रखना, सज्जनों का यथाशक्ति बहुमान करना, सद्गुणी बनने का प्रयत्न करना, राग-द्वेषादि शत्रुओ को दूर करना। विनय से विद्या, विज्ञान और अन्त मे शिवसुख की प्राप्ति होती है।

११. चारित्रपद—अनादि संचित कर्ममल को नष्ट करने वाला और शुद्ध स्फटिक रत्नसमान निर्मल चारित्र की आराधना से स्वाभाविक स्वरूप को प्राप्त किया जा सकता है।

१२. ब्रह्मचर्यपद—अनेक प्रकार की विषयाशक्ति को दूर कराने वाला तथा स्वरूप-रमणता प्राप्त कराने वाला ब्रह्मचर्य विश्व वदित है। अन्य अनेक प्रकार के सुकृत करने वाला प्राणी यथाविधि ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले की बराबरी नही कर सकता।

१३. क्रियापद—क्रिया-आचरण बिना का अकेला ज्ञान लूला गिना जाता है और ज्ञान बिना की अकेली क्रिया भी अधी ही गिनी जाती है। भोजन का मात्र नाम लेने से ही भूख दूर नही होती उसी तरह क्रिया करने से ही साध्य स्थान पर नही पहुचा जा सकता।

१४. तपपद—जैसे स्वर्ण को शुद्धि अग्नि से होती है वैसे बाह्य-अभ्यंतर तपश्चर्या से आत्मा का कर्म रूपी मैल दूर हो जाता है। निकाचित कर्मों को भी नष्ट करने की सामर्थ्य तप में है।

१५. गौतम पद—वीर प्रभु के प्रति श्री गौतम स्वामी को अकृत्रिम और अप्रतिम स्नेह था वैसे ही सज्जनो को भी स्व-गुरु के प्रति स्नेह रखना चाहिए। छट्ठ-छट्ठ तप पर पारणा करने वाले और अट्ठाइस लब्धियो के धारक श्री गौतम स्वामी परम विनयवान होने से इस पद की प्रेम पूर्वक आराधना करने लायक है।

१६. जिनपद—क्रोधादि अठारह दूषणो का क्षय कर वीतरागपद को प्राप्त करने वाले जिन कहलाते है। प्रथम अरिहत पद मे तो सिर्फ तीर्थंकर भगवत का ही समावेश होता है जब कि इस पद में घाती कर्मो का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त करने वाले सर्वज्ञो का समावेश होता है।

१७. संयमपद—विषय का त्याग कर, हिंसादि आश्रव द्वार का त्याग कर आत्म निग्रह करने वाला सयमी कहलाता है। सर्व-संयमी मुनिराज हैं, जब कि श्रावक देश-सयमी कहलाता है।

१८. अभिनव ज्ञानपद—वुद्धि के आठ गुण प्राप्त कर अपनी अपनी योग्यता के अनुसार गुरुगम से नये नये आगम-शास्त्र पढ़ना—मनन करना।

१९. श्रुतपद—सूत्र, आगम, ग्रंथ के प्रकरण तथा भाष्य चूर्णि, निर्युक्ति, टोका ये सब सर्वज्ञ पुरुषो द्वारा बने होने से प्रमाणभूत हैं। विनय, बहुमान, योग उपधान प्रमुख उचित आचार्य से श्रुतपद की अवश्य आराधना करना।

२०. **तीर्थपद**—जिससे भवसागर पार किया जा सके वह तीर्थ कहलाता है। ये दो प्रकार के है। जंगम और स्थावर। वर्तमान काल मे विचरते बीस विहरमान जिन, गणधर, केवली तथा आत्मार्थी चतुर्विध संघ जंगम तीर्थ माने जाते है। पवित्र श्री शत्रुंजय, गिरनार, सम्मेत शिखर आदि स्थावर तीर्थ हैं।

यह बीस स्थानक तप बहुत प्रसिद्ध है। इसे करने का प्रचार भी सर्वत्र अच्छी तरह देखने मे आता है। इस तप की विधि विस्तार से बताई गई है परन्तु इस सम्बन्धी सामान्य विधि मात्र यहा दी है। विस्तार के लिए **बीस स्थानक पद संग्रह** तथा **विधि प्रपा** आदि ग्रंथ देखें। इस तप को करने का उत्तम मार्ग तो यह है कि—सुविहित गुरु के समक्ष उनकी आज्ञानुसार करना। हर जगह गुरु का योग होता नही, फिर भी तप आरम्भ करने से पहले नजदीक में जहां गुरु का योग हो वहा जाकर सम्पूर्ण विधि समझ कर आरम्भ करना ठीक है, अथवा जिसने यह तप किया हो और उसके विधि विधान आदि को अच्छी तरह जानता हो उस सुश्रावक से जानकारी प्राप्त करना।

श्री बीस स्थानक तप की सामान्य विधि

प्रथम शुभ निर्दोष मुहुर्त मे नदी की स्थापना सुविहित गुरु के समीप विंशतिस्थानक तप विधि पूर्वक उच्चरना (लेना) एक ओली दो मास से छे: मास तक मे पूरी करना। कदाचित छे: माह में एक ओली पूरी न हो तो की हुई (चलती ओली)

को फिर से आरम्भ करना। एक ओली के बीस पद हैं, उसमें बीस दिनो मे बीस पद अलग अलग गिनना अथवा एक ओली के बीस तप के दिनो मे एक ही पद गिनना, दूसरे बीस दिनो में दूसरा पद गिनना। इस तरह बीस ओलियो (४०० दिन) मे बीस पद पूरे करना। हरएक पद की आराधना करने वाले अच्छी शक्ति वाले को अठ्ठम कर प्रत्येक पद की आराधना करना। इस तरह करने से बीस अठ्ठम मे एक ओली पूरी होती है और बीस ओली चार सौ अठ्ठम से पूरी होती है। इससे कम शक्ति वाले को छट्ठ करना, इससे भी कम शक्ति वाले को उपवास करना, यदि यह भी न हो तो आयबिल या नीवी करे और यह भी न हो सके तो तिविहार एकासना कर आराधना करना। एकासने से कम तप नही किया जा सकता। शक्तिवान मनुष्य को बीस पद की आराधना के दिन आठ पहोरी पौषध करना, कम शक्ति वाले को चार पहोरी (दिन का) पौषध करना। इस तरह बीस ही पद को पौषध से आराधना करना। यदि सब पदो में पौषध करने की शक्ति न हो तो १ आचार्यपद, २ उपाध्यायपद, ३ स्थविरपद, ४ साधुपद, ५ चारित्रपद, ६ गौतम पद और ७ तीर्थपद–इन सात मे तो अवश्य पौषध करना।[1] इस पर भी शक्ति न हो तो उस दिन देशावकासिक करे और सावद्य व्यापार का त्याग करे। इतनी भी शक्ति न हो तो यथाशक्ति तप कर आराधना करे तथा अपनी लघुता पर विचार करे। मृत्यु और जन्म के सूतक मे उपवास आदि करे और उन्हे गिनती मे न ले। स्त्री भी ऋतु समय मे उपवास आदि करे परन्तु गिनती में न ले।

---

१ सात पदो में भी पौषध न बन सके तो सतरहवी ओली मे अवश्य पौषध करना।

तप के दिन यदि पौषध किया जाय तो बहुत ही श्रेयस्कर है। परन्तु पौषध न करे तो उस दिन दो वक्त प्रतिक्रमण तथा तीन बार देववंदन और पडिलेहण[1] अवश्य करना तथा ब्रह्मचर्य का पालन व भूमि शयन करना, अति सावद्य व्यापार का आरम्भ नही करना, असत्य नही बोलना, सारे दिन तप के पद का गुण वर्णन करना। तप के दिन पौषध करे तो पारणे के दिन जिन भक्ति कर पारणा करना। यदि तप के दिन पौषध न किया हो तो उस दिन जिनभक्ति पूजा करे, करावे, भावना भावे, तप के दिन आराध्य पद के जितने गुण हों उतने लोगस्स का कायोत्सर्ग करे, उन गुणो का स्मरण करते हुए खमासमण देकर वदना करे। उस पद की महिमा और गुण का स्मरण कर सारे दिन प्रसन्न रहे। इस विधि से बीस ओली करना। तथा हरएक ओली मे उस पद का उत्सव, महोत्सव, प्रभावना, उद्यापन सहित करे। जिनशासन की उन्नति करे, शक्ति न हो तो सिर्फ एक ही ओली उत्सव आदि सहित करे अर्थात् साराश यह है कि इस महान् तप का यथाशक्ति उद्यापन करे।

बीस पद का गुणना निम्न प्रकार है—

		सा. ख. लो. नो.
१	ॐ नमो अरिहंताण	१२—१२—१२—२०
२	ॐ नमो सिद्धाण	३१—३१—३१—२०
३	ॐ नमो पवयणस्स	२७—२७—२७—२०

---

१. देववदन, पडिलेहण हमेशा न करे तो तेरहवी ओली मे तो अवश्य करना।

		सा.	ख.	लो.	नो.
४	ॐ नमो आयरियाणं	३६	३६	३६	२०
५	" नमो थेराणं	१०	१०	१०	२०
६	" नमो उवज्झायाणं	२५	२५	२५	२०
७	" नमो लोए सव्वसाहूणं	२७	२७	२७	२०
८	" नमो नाणस्स	५१	५१	५१	२०
९	" नमो दंसणस्स	६७	६७	६७	२०
१०	" नमो विणयसंपन्नस्स	५२	५२	५२	२०
११	" नमो चारित्तस्स	७०	७०	७०	२०
१२	" नमो वंभव्वयधारिण	१८	१८	१८	२०
१३	" नमो किरियाणं	२५	२५	२५	२०
१४	" नमो तवस्स	१२	१२	१२	२०
१५	" नमो गोयमस्स	११	११	११	२०
१६	" नमो जिणाणं	२०	२०	२०	२०
१७	" नमो संयमस्स	१७	१७	१७	२०
१८	" नमो अभिनवनाणस्स	५१	५१	५१	२०
१९	" नमो सुयस्स	२०	२०	२०	२०
२०	" नमो तित्थस्स	३८	३८	३८	२०

नीचे के दोहे वोलकर खमासण देना (हर ओली मे एक एक दोहा वोलना)

परम पंच परमेष्ठीमां, परमेश्वर भगवान् ।
चार निक्षेपे ध्याइये, नमो नमो जिणभाण ॥१॥
गुण अनत निर्मल भया, सहज स्वरूप उजास ।
अष्ट कर्म क्षय करी, भये सिद्ध नमो तास ॥२॥

भावामय औषधी-समी, प्रवचन अमृत वृष्टि ।
त्रिभुवन जीवने सुखकरी, जय जय प्रवचन दृष्टि ॥३॥
छत्तीस छत्तीस गुणे, युगप्रधान मुणींद ।
जिनमत परमत जाणता, नमो नमो ते सुरींद ॥४॥
तजी परपरिणति रमणता, लहे निजभाव स्वरूप ।
स्थिर करता भवि लोक ने, जय जय थिविर अनूप ॥५॥
बोध सूक्ष्म विणु जीवने, न होय तत्त्व प्रतीत ।
भणे भणावे सूत्रने, जय जय पाठक गीत ॥ ६ ॥
स्याद्‌वाद गुण परिणम्यो, रमता समता संग ।
साधे शुद्धानंदता, नमो साधु शुभरंग ॥ ७ ॥
अध्यातम ज्ञाने करे, विघटे भवभ्रम भीति ।
सत्य धर्म ते ज्ञान छे, नमो नमो ज्ञाननी रीति ॥ ८ ॥
लोकालोकना भाव जे, केवलि भाषित जेह ।
सत्य करी अवधारतो, नमो नमो दर्शन तेह ॥ ९ ॥
शौच मूलथी महागुणी, सर्व धर्मनो सार ।
गुण अनंतनो कंद ए, नमो विनय आचार ॥१०॥
रत्नत्रयी विणु साधना, निष्फल कही सदैव ।
भावरयणनुं निधान छे, जय जय संयम जीव ॥११॥
जिन प्रतिमा जिनमंदिरा, कंचनना करे जेह ।
ब्रह्मव्रतथी बहु बल लहे, नमो नमो शियल सुदेह ॥१२॥
आतमबोध विण जे क्रिया, ते तो बालक चाल ।
तत्त्वारथथी धारीए, नमो क्रिया सुविशाल ॥१३॥
कर्म खपावे चीकणां, भाव मंगल तप जाण ।
पचास लब्धि उपजे, जय जय तप गुणखाण ॥१४॥
छठ्ठ छठ्ठ तप करे पारणुं, चउनाणी गुणधाम ।
ए सम शुभ पात्र को नहीं, नमो नमो गोयमस्वाम ॥१५॥

दोष अढारे क्षय गया, उपन्या गुण जस अग ।
वैयावच्च करीए मुदा, नमो नमो जिने पद संग ।।१६।।
शुद्धातम गुणमे रमे, तजी इद्रिय आशंस ।
थिर समाधि सतोप में, जय जय संयम वंश ।।१७।।
ज्ञानवृक्ष सेवो भविक, चारित्र समकित मूल ।
अजर अमर पद फल लहो, जिनवर पदवी फूल ।।१८।।
वक्ता श्रोता योगथी, श्रुत अनुभव रस पीन ।
ध्याता ध्येयनी एकता, जय जय श्रुत सुख लीन ।।१९।।
तीर्थयात्रा प्रभाव छे, शासन उन्नति काज ।
परमानंद विलासता, जय जय तीर्थ जहाज ।।२०।।

बीस पदो की बीस कथाएं शास्त्रो मे वर्णित हैं । यहां सिर्फ ब्रह्मचर्यव्रत पद आराधना पर चंद्रवर्मा राजा की कथा नीचे दे रहे हैं :

बारहवें ब्रह्मचर्यव्रत पद आराधन पर चन्द्रवर्मा राजा की कथा

भरतक्षेत्र में अनेक जिनालयो से भरपूर मनोहर माकंदीपुर नगर था । वहा पराक्रमी चन्द्रवर्मा राजा न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करता था । उसके रूपवती और गुणवान चद्रावली रानी थी ।

एक बार उस नगर के उद्यान मे बहुत मुनियो के साथ चार ज्ञान को धारण करने वाले श्री चक्रेश्वर आचार्य पधारे । देवताओं ने मेरू शिखर जैसा मनोहर ऊंचा स्वर्ण का सिंहासन

बनाया व उस पर गुरू महाराज बैठे। उद्यानपति ने गुरु महाराज के पधारने की सूचना राजा को दी। गुरु का आगमन सुन राजा बड़े ठाठ बाठ से परिवार सहित वंदना करने चला। जाते समय मार्ग मे राजा ने समतारस के सिंधु समान, नेत्रों को आनन्द देनेवाले स्वर्ण की कांतिवाले दो मुनियो को कायोत्सर्ग मे खड़े देखा। उनको यौवनावस्था मे ऐसा दुष्कर व्रत का पालन करते देख राजा को विस्मय हुवा। पीछे गुरु के पास आ विनयपूर्वक वंदना कर योग्य आसन पर बैठ गुरु को पूछने लगा, हे करुणानिधि ! मैंने मार्ग मे दो मुनियो को देखे। सुकुमार देह और यौवन वय होने पर भी उन्होने चारित्र क्यों लिया ? आप कृपा कर बताइये ?

गुरु ने कहा हे राजन् ! उनके वैराग्य का कारण ध्यान से सुन। कुशस्थलपुर नगर मे लोकप्रिय और धनाढ्य मदन सेठ रहता था। उसके कलह करने वाली और दुर्गुणो की भंडार चंडा और प्रचंडा दो स्त्रियां थी। उन स्त्रियो के कलह से सेठ की लक्ष्मी भी पलायन कर गई। कहा है कि कलह से लोक में अपयश, अप्रीति और उद्वेग वगैरह अनेक प्रकार के कष्ट उत्पन्न होते हैं। दोनो स्त्रियो के कलह से सेठ कुछ दिन तक प्रचण्डा के घर सुख पूर्वक रहा।

फिर मदन सेठ प्रचण्डा के घर से चंडा के घर आया। सेठ को आता देख चंडा ने क्रोधित हो मूसल ले मंत्र पढ़कर सेठ पर फेंका। इतने में मूसल सर्प रूप हो सेठ को डसने के लिये दौड़ा। ऐसा भयंकर दृश्य देख सेठ भय से भागा। सर्प भी फुंकार करता उसके पीछे दौड़ा। सेठ हांफता २ व्याकुल हो दौड़कर प्रचंडा के घर पर आकर खड़ा रहा। तब प्रचंडा

कहने लगी–हे नाथ ! आप आकुल व्याकुल और भय से क्यों कांप रहे हो ? सेठ दीन होकर कहने लगा—प्रिया ! मैं आज चंडा के घर वैसे ही चला गया। इतने में उस दुष्टा ने निष्ठुर हो मुझे मारने के लिये इस भयंकर सांप को भेजा है, देख वह आया। इतना कहते ही तो वह सांप नजदीक आ पहुँचा : सर्प को देख प्रचंडा ने अपने शरीर का मैल उतार सर्प पर फेंका। वह मैल मंत्र के प्रभाव से नोलिया बन गया और सर्प का नाश किया।

पीछे भय रहित होने पर सेठ विचारने लगा कि अरे ! ये दोनों स्त्रियां पाप की खान है। ये दोनों मंत्र औषधि को जानने वाली हैं इसलिये कभी भी मेरे पर क्रोधित हो मेरे को मार सकती हैं जिससे आर्तध्यान से मर दुर्गति मे जाऊँगा। इसलिये इन दोनो राक्षसनियो को छोड़ अन्य किसी जगह चला जाना चाहिये। ऐसा निश्चय कर रात्रि में दोनों स्त्रियों व घर को छोड़ देशान्तर जाने को रवाना हो गया। कुछ दिनो मे वह काशीपुर पहुँचा और सोचने लगा कि अब मैं यहा निर्भय होकर रहूँगा। क्योकि इतनी दूर मैं रहता हूँ इसका पता उन दोनों को कहा से लगेगा ? यह सोच मदन सेठ नगर में आया। उस नगर में धनाढ्य भानुसेठ रहता था। उसके भानुमति स्त्री के चार पुत्र और एक विद्या और कला को जानने वाली विद्युत समान कांतिवाली विद्युत्लता पुत्री थी। वह पिता की प्यारी थी। व्याह करने योग्य होने पर सेठ उसके समान गुणवाले पति की खोज मे था। मदन सेठ घूमता घूमता उसी सेठ की दुकान पर जा पहुँचा। भानुसेठ ने उसे देखा। उसे देख वह विचारने लगा कि यह कोई कुलीन मनुष्य मालूम होता है। ऐसा सोच आदर पूर्वक अपने घर ले गया

और सम्मान पूर्वक रखा। रात्रि में भानुसेठ की कुलदेवी ने आकर स्वप्न मे कहा कि तेरी पुत्री के योग्य यह वर है, इसके साथ तेरी पुत्री का व्याह कर देना। देवी के कहने से सेठ ने दूसरे दिन स्वप्न की बात सब कुटुम्बियो को कही। सब की सम्मति से उत्साह पूर्वक मदन सेठ के साथ विद्युत्लता का लग्न कर दिया।

कुछ दिन तक मदन सेठ श्वसुर के घर सुखपूर्वक रहा। पीछे एक दिन अपने घर जाने की इच्छा हुई। यह बात उसने अपनी प्रिया को बताई। उसने जाने के लिये स्वीकृति दी और मार्ग में भोजन के लिये एक बर्तन मे सत्तू रख कर दे दिया। वह लेकर मदन सेठ अपने घर की ओर रवाना हुआ। मार्ग में एक सरोवर आया वहां सत्तू खाने बैठा और विचार करने लगा कि कोई अतिथि मिल जाय तो इसमें से थोड़ा उसे देकर पीछे खाऊँ। ऐसा विचार करता है इतने में एक तापस वहाँ आ पहुँचा। उसे थोड़ा सत्तू दे स्वयं पानी लेने सरोवर पर गया। इतने मे वह तापस सत्तू खाने से बकरा हो गया। यह आश्चर्यजनक बनाव देख सेठ दिग्मूढ हो विचारने लगा कि इस दुर्गति के द्वार रूप स्त्री का ही यह काम है। स्त्रियो का स्नेह केवल अस्थिर और प्रपचरूप है। इसीलिये कहा है

ग्रहचरियं रविचरियं, ताराचरियं चराचर चरियं।
जाणानि बुद्धिमंता, महिलाचरियं न जाणन्ति ॥१॥
मच्छपयं जलपंथे, आकाशे पंछियाण पयपन्ति।
महिलाण हियमग्गो, तिन्नुवि लोए न दोसन्ति ॥२॥

अर्थ—ग्रहों की चाल, सूर्य की चाल, ताराओ की चाल

श्रौर चराचर पुरुषो का चरित्र ये सब बुद्धिमान् जान सकता है परन्तु स्त्री के चरित्र को कोई नहीं जान सकता। पानी में मच्छ के पैर, आकाश में पक्षियो को पद पक्ति और स्त्री के हृदय का मार्ग ये तीनों इस लोक में नही देखे जा सकते।

मदन सेठ इस प्रकार विचार करता है इतने में वह बकरा काशीपुर की तरफ भागने लगा। कौतुक देखने को सेठ भी जल्दी २ उसके पीछे चला। बकरा दौड़ता २ विद्युत्लता के घर पहुंचा। मदन सेठ भी चुपचाप घर के आसपास कोई नहीं देख सके और खुद सब कुछ देख सके इस तरह छिप कर खड़ा रहा। बकरे को आया देख विद्युत्लता ने क्रोधित हो उसे खम्भे से बांधा और पीछे लकड़ी से मारने लगी। बकरा बिचारा बे बे कर चिल्लाने लगा। वह दुष्टा ज्यादा २ प्रहार कर कहने लगी कि जो कोई दूसरा भी सत्तू खायगा उसे भी ऐसा ही दुःख भोगना पड़ेगा। बहुत देर पीछे उसे दुखी जान मूल स्वरूप में लाई और आश्चर्य में हो पूछने लगी कि तू यहां कैसे आया! तापस ने सब हकीकत बताई। इसलिये विद्युत्लता मन में दुखी हो विचारने लगी कि यह तो किसी के बदले किसी को दुःख मिल गया। पीछे तापस को जाने की आज्ञा दी।

यह घटना देखकर मदन सेठ मन में सोचने लगा कि यह तो पहले की दोनो स्त्रियो से भी आगे बढी हुई है। मेरे दुर्भाग्य का अन्त ही नही है। घर से चल वन मे गया तो जगल में आग लगी, वहा से निकल यहां आया तो यह तीसरी उन दोनों से बढ़कर निकली। अब यदि घर जाऊं तो पहलेवाली मार डाले और यहां रहू तो यह मार डाले।

इसलिए राक्षसो समान इन स्त्रियो की मुझे जरूरत नहीं। अब तो और कही जाना चाहिए। ऐसा सोच वहां से निकल थोड़े दिनों मे हसतीनगर में पहुंचा। वहां चन्द्रमा की किरणो के समान सफेद रङ्गवाला मनोहर श्री ऋषभदेव का मन्दिर था। वहा जाकर उसने भगवान् के दर्शन किये। मन्दिर से वाहर आ एक तरफ बैठ विचार करने लगा। इतने में वहा भगवान् की पूजा करने के लिए धनदेव सेठ आया। उसने मदन सेठ को उदासीन और विचार मग्न देख उसके पास जाकर पूछा हे भाई! तुम कहाँ से आये हो? यहा क्यों बैठो हो? ऐसा मालूम होता है कि तुम बड़े दुखी हो। यदि ठीक समझो तो सारी वात मुझे कहो।

मदन सेठ ने उसकी विवेक पूर्ण बात सुन उसे गुणवान और कुलीन समझ अपना सम्पूर्ण हाल सुनाया। तब धनदेव बोला हे भाई! स्त्री जाति प्रायः कपटी होती है। जो पूर्ण भाग्यशाली होता है वही स्त्री के मोह से दूर रह परमार्थ साधकर अपना कल्याण करता है। हे मित्र! अब मैं अपने दु.ख की वात कहता हूं उसे तू एकाग्र चित्त से सुन। ऐसा कह धनदेव ने अपनी कथा शुरू की।

इसी नगर में महान धनाढ्य और दानी धनपति सेठ रहता था। उसके धनसार और धनदेव दो पुत्र थे। कालान्तर मे धनपति सेठ मर कर देवलोक मे गया। पीछे दोनो भाइयो में कलह होने से अलग २ रहने लगे। लक्ष्मी भी धीरे २ लुप्त होने लगी और धीरे २ गरीबी आने लगी। इतने मे धनदेव के एक स्त्री होते हुए भी उसने दूसरी शादी की। परन्तु उसे इस बात का आश्चर्य होने लगा कि ये दोनों

सौत होने पर भी द्वेष रहित सगी बहिनों की तरह स्नेह से रहती हैं। वह सोचने लगा कि धनवान के घर मे दो सौत कभी स्नेह से नहीं रहती तो मुझ जैसे निधन के घर मे बड़े प्रेम पूर्वक रहती है इसलिए इसमे जरूर कोई भेद है और इसे छिपकर देखना चाहिये।

यह विचार कर एक दिन उसने झूठा ढोंग किया कि आज मेरा स्वास्थ्य ठीक नही है इस वास्ते जल्दी सोना है। ऐसा कह उस रात्रि को जल्दी कपट निद्रा मे सो गया। थोड़ी देर पीछे धनदेव को सोता जान पहलेवाली स्त्री नई से कहने लगी कि बहन अब जल्दी तैयार हो जा। यह सुनते ही नई अपना शृङ्गार कर हर्ष पूर्वक अपनी सौत के साथ जाने को तैयार हुई। दोनों स्त्रियां जल्दी २ नगर के बाहर जाकर एक आम के पेड़ पर चढने लगी। उनके पीछे २ धनदेव भी छिपता २ वहा आ पहुँचा। वे दोनो स्त्रिया वृक्ष के ऊपर जाकर बैठ गई। धनदेव भी पेड़ के तने मे एक खोखला था उसमे बैठ गया। फिर वह पेड हवा की तरह आकाश में उड़ने लगा। थोड़ी देर मे वह पेड़ दक्षिण समुद्र को पार कर रत्नद्वीप के अन्दर रत्नपुर नगर के किले के पास आकर नीचे उतरा। तब वे दोनो स्त्रिया नीचे उतरने लगी। उनको उतरती देख धनदेव शीघ्र पास मे छिप गया। दोनो स्त्रियां वृक्ष से उतर नगर मे गईं। उनके पीछे २ धनदेव भी चला। उस समय उस नगर मे वसुदेव सेठ के श्रीदत्तकुमार और श्रीपुंज सेठ की पुत्री श्रीपति का लग्न होने वाला था। इसलिये दोनों घरो मे आनन्द और धाम धूम हो रही थी। उसे देखने के लिए अनेक स्त्री पुरुष इकट्ठे हुए थे। बरात भी ठाठ बाट से नगर मे घूमती २ श्रीपुंज सेठ के घर आई। वर राजा

तोरण पर पहुँचा । इतने में क्रूर कर्मों एवम् पूर्व पाप कर्मोदय के कारण वर राजा की वही मृत्यु हो गई । अचानक पुत्र की मृत्यु से वसुदेव बडा दुखी हुवा । दुल्हन का परिवार भी दुखी हुवा । सब लोग शोकातुर हो अपने २ घर गये । इतने में श्रीपुंज सेठ ने देववाणी सुनी की हे सेठ ! तू तेरी पुत्री का विवाह तेरे घर के सामने छिपे हुए धनदेव के साथ आज ही कर देना क्योंकि यह कन्या उसी के योग्य है । यह सुनते ही श्रीपुंज सेठ ने धनदेव को ढूंढ निकाला और उसके साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया । उस समय नगर मे गई हुई धनदेव की दोनो स्त्रिया लग्न समय वहा आ पहुँची और विवाह मण्डप मे अपने पति को देखा । उसे देखते ही आश्चर्य मे हो दोनो कहने लगी कि अपना पति यहा कैसे आया ? क्या वह अपने को धोखा देकर अपने पछे २ आया है ? परन्तु ऐसा नही हो सकता । बहुत से मनुष्यों की आकृति समान होती है इसलिए अपने को ऐसा लगता है । हजारों कोस दूर अपने नगर से वह यहां किस तरह आ सकता है ? इस तरह दोनो ने अपना समाधान कर, लग्नोत्सव देख कर लौटने लगी ।

लग्न पूर्ण होने पर धनदेव ने कन्या के वस्त्र पर कुंकुम से एक श्लोक लिखा ।

कुत्र वसती रत्नपुर, कःक्वासौ गगन मंडनश्चूतः ।।
धनपति सुत धनदेवे, विधेर्वशात्सुखकृतेश्चूतः ।।१।।

अर्थः—रहने का स्थान रत्नपुर कहा ? और आकाश का भूषण रूपी यह आम्र कहा ? परन्तु यह सब धनपति के पुत्र धनदेव के लिये दैवयोग से यह आम्र सुख देनेवाला हुवा ।

यह लिख और किसी बहाने से बाहर निकल गुप्त रीति से शीघ्र नगर के बाहर आया। वहां उसने स्त्रियों को जल्दी २ जाती हुई देखी। थोड़ी देर मे सब आम्र के पास पहुँचे। दोनो स्त्रिया जल्दी से पेड़ पर चढ गई। बनदेव भी पहले की तरह अपनी जगह बैठ गया। इतने मे आम्र वृक्ष वायु वेग से गगन मार्ग से होता हुवा अपनी जगह आकर रुक गया। तब धनदेव स्त्रियों के पहुँचने से पहले घर पहुँच सो गया।

दूसरे दिन सवेरे जल्दी दूसरी स्त्री पति को जगाने गई। वहा जाकर उसने देखा कि उसके हाथ मे लच्छा और मेहदी और ललाट पर कुंकुम का टीका है। इसलिये वह तुरन्त पहली स्त्री के पास जाकर कहने लगी कि बहन पति के हाथ मे लच्छा, मेहंदो और ललाट पर कुंकुम का टीका है। इसलिये अवश्य रात्रि को रत्नपुर में श्रीमति के साथ व्याह करने वाले अपने पति हैं। इसमे जरा भी शंका नहीं। उन्होंने गुप्त रीति से अपनी बात जान ली है। अब क्या होगा ?

पहली स्त्री ने कहा इसमे क्या है ? ऐसा कह एक डोरा मंत्रकर सोते हुए धनदेव के सीधे पैर पर बांध दिया। डोरा बाधते ही वह तोता बन गया। उसे पकड़ पीजरे में रख दिया।

अब रत्नपुर नगर का हाल सुनिये कि वहा क्या हुवा। जब धनदेव प्रातःकाल तक वापिस नही आया तब श्रीमति ने अपने पिता को कहा। यह सुन श्रीपुंज सेठ दुखी हुवा। इतने मे सेठ की नजर श्रीमति के वस्त्र पर लिखे हुए श्लोक पर पड़ी। श्लोक पढ़कर सेठ खुश होकर बोला हे पुत्री ! देख तेरे वस्त्र पर तेरे पति ने श्लोक लिखा है उससे उसका नाम और

नगर का पता चलता है। वह हसंतीपुर नगर के धनपति सेठ का पुत्र धनदेव है। वह किसी कारण वश रात्रि को ही वापिस चला गया है। अब अपने को पता लगाना चाहिये। तू जरा भी चिंता मत कर। उसी दिन सागरदत्त व्यापारी अपने जहाज लेकर हसंतीपुर जाने वाला था। उसके साथ श्रीपुंज सेठ ने एक पत्र और बहुमूल्य हार धनदेव को देने के लिए सागरदत्त को दिया। सागरदत्त का जहाज अनुकूल पवन होने के कारण शीघ्र ही हसंतीपुर पहुँच गया। वहां आकर धनदेव का पता लगा, उसके घर जाकर पूछा कि धनदेव सेठ है क्या ?

घर में से स्त्रियो ने जवाब दिया कि नही है, वे तो राज्य कार्य से ताम्रलिप्त नगर गये हैं। आप कहा रहते है और क्या काम है ?

सागरदत्त ने कहा कि मैं रत्नद्वीप के रत्नपुर नगर का व्यापारी हूँ। वहाँ से श्रीपुंज सेठ ने धनदेव सेठ को यह पत्र और हार भेजा है।

स्त्री ने कहा बहुत अच्छा लाओ। सेठ जाते समय कह गये थे कि यदि कोई रत्नपुर जावेवाला हो तो उसके साथ यह तोता श्रीमति के पास भेज देना। इसलिये तुम यह तोता श्रीमति को दे देना। यह कह पत्र व हार लेकर तोते का पीजरा सागरदत्त को दे दिया।

सागरदत्त पीजरा ले थोड़े दिनो बाद अपने नगर में आया और पीजरा सेठ को दे जो कुछ हुआ वह सब कह सुनाया। सेठ ने वह तोता श्रीमति को दे दिया। श्रीमति निरन्तर उसे अपने पास रखती और विनोद करती। एक दिन तोते के पंर मे डोरा बधा देख उसे तोड़ डाला। डोरा टूटते ही धनदेव

अपने असली रूप मे प्रगट हो गया। यह देख सब आश्चर्य में हो पूछने लगी कि ऐसा होने का क्या कारण है? धनदेव ने कहा कि यह सब कर्मवश हुवा है। ऐसा कह अपनी स्त्रियों की बात नही कही। कुछ दिन सुख पूर्वक श्रीपुंज सेठ के यहां रह पीछे श्रीमति को ले अपने नगर में आया। परन्तु पहले की बात याद न कर सुखपूर्वक तीनो स्त्रियां साथ में रहने लगी।

एक दिन श्रीमति सुवर्ण थाल मे पति के पैर धो रही थी। पैर धोने के बाद थाल का पानी पहले की स्त्री ने जमीन पर फेक दिया। फेंकते ही पानी चारों तरफ धीरे २ समुद्र की तरह बढ़ने लगा। क्षण २ मे पानी को बढ़ता देख धनदेव हृदय मे घबराने लगा।

श्रीमति ने यह देख अपनी शक्ति से पानी की माया को समेट ली। यह देख धनदेव विस्मित हो सोचने लगा कि यह तीसरी स्त्री तो इन दोनों से भी शक्तिशाली है। मेरे दुष्ट कर्मों के उदय से ही ऐसी स्त्रियां मिली हैं। श्रीमति की ताकत को देख पहले की दोनो स्त्रियाँ उसकी आज्ञा में प्रीतिपूर्वक रहने लगी और धनदेव हमेशा उससे डरता हुआ रहने लगा।

इस प्रकार कह वह मदन सेठ से बोला हे मित्र! मैं ही धनदेव हूं कि उन जीवित बलाओं के पास हमेशा रह डरता हूं और उनको छोड़ भी नहीं सकता।

धनदेव का सारा दृष्टान्त सुनकर मदन सेठ कहने लगा कि अरे! वे पुरुष धन्य है जो स्त्रियों के मोह में नही फंसकर सब ममत्व को छोड़ शीलव्रत को ग्रहण कर शान्ति प्राप्त करते हैं। इतने में वहां हमारे आने की सूचना मिलने पर वे दोनों हमारी धर्म देशना सुनने आये। देशना सुन हमारे पास चारित्र ग्रहण किया। धीरे २ ग्यारह अङ्ग का अध्ययन कर समिति

गुप्तियुक्त निरतिचार से सयम का पालन करने लगे। हे राजन्! रास्ते में जिन दो मुनियो को तुमने ध्यान मे खडे देखा वे वही भाग्यशाली हैं।

राजा ने कहा हे प्रभु! आपने यौवनावस्था मे दीक्षा क्यों ली? गुरु ने कहा हे राजन्! गृहस्थाश्रम मे सर्वथा षट्काय जीवो की रक्षा नही हो सकती क्योकि घर मे रहने से घर, घटी आदि अनेक अधिकारो से महा पापारम्भ होता है और उनसे षट्काय जीवो की हिंसा होती है। एक बार स्त्री सभोग से नौ लाख प्राणियो की हिंसा होती है। जगत् मे जीवो की रक्षा करने वाले तो अनेक पुरुष मिल जाते हैं परन्तु मैथुन सेवन से मरनेवाले जीवो को अभयदान दे मैथुन को त्याग करने वाले पुरुष विरले ही होते हैं।

गुरु से उपदेश सुन राजा चद्रवर्मा को प्रतिबोध हुवा। गुरु को वदन कर राजमहल मे जा अपने पुत्र चद्रसेन कुमार को राजगद्दी दे जिनमदिर मे बडा उत्सव कर गुरु से चारित्र ग्रहण किया। फिर ग्यारह अग का अध्ययन कर समिति-गुप्ति पूर्वक शुद्ध चारित्र का पालन करने लगा। एक दिन गुरु से वीसस्थानक की महिमा सुनी कि यदि कोई वीसस्थानक पद की आराधना करता है वह ससार भ्रमण को दूर करने वाले त्रैलोक्यवद्य जिननाम कर्म का उपार्जन कर मोक्ष प्राप्त करता है। इसमे भी जो बारहवे स्थानक की आराधना कर ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करता है वह शीघ्र जिननाम कर्म का उपार्जन करता है। क्योकि सब व्रतो मे शीलव्रत सब मे ज्यादा श्रेष्ठ बतलाया है।

इस प्रकार गुरु से शीलव्रत की महिमा सुन राजर्षि मुनि नववाडयुक्त शीलव्रत का पालन करने लगे। किसी भी

स्त्री के सामने सराग दृष्टि नही डालते । स्त्री संबंधी वर्णन व उस संबधी कथा वार्ता का भी त्याग कर स्थिर चित्त से शीलव्रत का पालन करने लगे ।

एक दिन देवसभा में इन्द्र महाराज ने राजर्षि मुनि की प्रशंसा कर कहा कि मुनियो मे शिरोमणी राजर्षि चद्रवर्मा मुनि को धन्य है। वह देवेन्द्र के चलायमान करने पर भी अपने व्रत से चलायमान नही होता है। सुरेन्द्र के मुंह से मुनि की स्तुति सुन मुनि की परीक्षा करने के लिये विजयदेव देवता जहां राजर्षि मुनि कायोत्सर्ग करके खड़े थे वहा आया। वहां आकर अनेक अप्सराओं को इकट्ठी की। अप्सराओ ने अनेक प्रकार के हाव भाव और कटाक्ष कर मुनि के पास आकर प्रार्थना करने लगी कि हे स्वामी! पुण्य से प्राप्त हुए इस यौवनवस्था मे योग को छोड़ भोग विलास करो। आप सब जीवो पर करुणा करने वाले हो, हम आपके पास आशा लेकर आई हैं, इसलिये हमें निराश व दुखी न कर हमको स्वीकार करो। इस प्रकार अनेक प्रकार के कामोद्दीपक वचन कहने लगी। फिर भी मुनि का मन जरा भी विचलित नही हुआ। अन्त में देव ने प्रकट हो मुनि की स्तुति कर, गुरु महाराज के पास जाकर पूछा कि हे प्रभु! राजर्षि मुनि को दृढ़ शीलव्रत पालने का क्या फल मिलेगा। गुरु महाराज ने कहा इस महाभाग्य को शील के प्रभाव से त्रैलोक्य पूज्य जिन पद प्राप्त होगा। शील की महिमा सुन देव अपने स्थान पर गया। चन्द्रवर्मा मुनि काल धर्म पा ब्रह्मदेवलोक मे देवता हुए। वहां से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में पुण्डरिकिणी विजय में पुष्कलावती नगरी मे तीर्थङ्कर पद प्राप्त कर मोक्ष मे जावेंगे।

---

९० श्री अंगविशुद्धि तप और विधि

प्रथम आयंबिल ३, पीछे नीवी ३, पीछे एकासना ३, उपरान्त एक उपवास करना। उद्यापन मे १३ मोदक ज्ञान के पास रखना। ॐ **नमो नाणस्स** पद की २० माला गिनना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

९१. श्री अठ्ठावीस लब्धि तप

लब्धि अर्थात् शक्ति विशेष। शासन पर संकट आया हो अथवा शासन प्रभावना करने की आवश्यकता हो ऐसे समय लब्धिधारी व्यक्ति अपनी लब्धि का प्रयोग करते हैं। लब्धियाँ अनेक तरह की हैं, फिर भी अठ्ठाइस लब्धियाँ अति प्रसिद्ध हैं, जिनका सक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है—

१. **आमर्षौषधि लब्धि**—हाथ, पैर आदि अवयवो के स्पर्श मात्र से सब प्रकार की व्याधियां नष्ट हो।

२. **विप्रुडौषधि लब्धि**—मल-मूत्र द्वारा अर्थात् उनके स्पर्श मात्र से (व्याधि के स्थान पर लगाने से) सब प्रकार के रोग नष्ट हो।

३. **खेलौषधि लब्धि**—श्लेष्म अर्थात् थूक, नाक की अशुचि के स्पर्श से सब व्याधियां दूर हों।

४. **जल्लौषधि लब्धि**—शरीर का जल्ल अर्थात् मैल शरीर की सब तरह की व्याधियो का नाश करे।

५. **सर्वौषधि लब्धि**—केश, रोम, नख आदि समस्त शारीरिक पदार्थ सब रोग का नाश करने मे समर्थ हो। इस

लब्धि वाले मुनिवर के केश, रोम, रुधिर आदि पदार्थ अत्यंत सुगंध वाले होते है।

६. संभिन्नश्रोतो लब्धि—त्वचा आदि पांचो इन्द्रियों द्वारा सुनने की शक्ति हो अथवा किसी भी एक इंद्रिय द्वारा सब इंद्रियो के विषयो को जानने की शक्ति हो।

७. अवधिज्ञान लब्धि—आत्मा रूपी द्रव्यों को, इन्द्रियो को मन की मदद बिना आत्म साक्षात से जाने अथवा देखे।

८. ऋजुमति मनःपर्यवज्ञान लब्धि—आत्मा ढाई द्वीप मे रहे संज्ञी पचेन्द्रिय जीव के मनोगत भावो को, इंद्रियों व मन की मदद लिए बिना आत्मसाक्षात से जाने उसे मनःलपर्याय ज्ञान लब्धि कहते हैं, इसमे भी जो सामान्य से अल्प पर्याय जाने वह।

९. विपुलमति मनपर्यवज्ञान लब्धि—ढाई द्वीप में रहे संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवो के मनोगत भावों को विशेष रूप से जाने।

१०. चारण लब्धि—मुनिवर को आकाशगमन करने की शक्ति प्राप्त हो वह दो प्रकार की है (१) जंघाचारण—बीच मे विश्राम लिए बिना तेरहवे रूचक द्वीप तक जा, वहां शाश्वत चैत्य को वदन कर लौटते समय एक विश्राम लेकर आठवें नंदीश्वर द्वीप मे आ, वहा शाश्वत चैत्यों की वंदना कर, दूसरी उडान कर अपने स्थान पर आवे। (२) विद्याचारण—प्रथम उड़ान मे मानुषोत्तर पर्वत तक जा, वहां शाश्वत चैत्यो की वंदना कर, दूसरी उडान में नंदीश्वर द्वीप में आ, वहा शाश्वत चैत्यों की वंदना कर वहां से एक ही उड़ान मे अपने स्थान पर आवे, यह तीर्च्छागति है।

उर्ध्वगति में जंघाचरण मुनि एक ही उड़ान मे मेरु पर्वत

के शिखर पर स्थित पांडुकवन तक जा, वहां शाश्वत चैत्यो की वदना कर, पीछे उतरते एक उड़ान मे नंदनवन मे आ, वहा के शाश्वत चैत्यो की वंदना कर, दूसरी उडान मे अपने स्थान पर आवे। विद्याचारण मुनिवर प्रथम उड़ान मे भूमि से ५०० योजन पर स्थित मेरू पर्वत के नंदनवन मे जा, वहां शाश्वत चैत्यो को वंदन कर, दूसरी उड़ान मे मेरू शिखर पर अर्थात् नंदनवन से ९८५०० योजन पर स्थित पाडुक वन मे आ, वहां शाश्वत चैत्यो को वंदन कर, पीछे लौटते एक ही उड़ान मे अपने स्थान पर आवे।

जंघाचारण मुनिवर की प्रथम जाते समय गति तेज होती है और पीछे लौटते गति धीमी होती है क्योकि पहले जघाबल ज्यादा होता है और पीछे थक जाने से कम होता जाता है। विद्याचारण मुनिवर को पहले विद्यापीठ कम होता है, परन्तु जैसे जैसे ज्यादा गिनता जाता है वैसे वैसे विद्या का विशेष अभ्यस्त होता है। इस कारण उसकी प्रथम गति धीमी और स्वस्थान तरफ की गति तेज होती है।

इसके अलावा दूसरे भी अनेक प्रकार के चारण लब्धि वाले मुनि होते है-जसे—

व्योमचारण लब्धि—पद्मासन या कायोत्सर्गासन से शरीर हिलाये बिना स्थिरता पूर्वक आकाश मे उडने की शक्ति।

जलाचारण लब्धि—कुआ, नदी, सरोवर या समुद्र आदि जलाशयो मे अप्काय जीवो की विराधना किये बिना, जैसे भूमि पर पैर रखकर चलते हैं वैसे जल मे पैर रखकर चले।

जंघाचारण लब्धि—भूमि पर चार अंगुल ऊचे रह कर चलने की शक्ति।

फलचारण लब्धि—अनेक प्रकार के वृक्षों पर रहे फलो के, अवलम्बन मे चलते हुए भी फलों के जीवों को किंचित् भी बाधा न हो।

पुष्पचारण लब्धि—अनेक वृक्षों के फूलों पर पैर रखकर चलने पर भी फूलों के जीवों को किसी तरह की पीड़ा न हो।

पत्रचारण लब्धि—अनेक वृक्षो के पत्तों पर पैर रखकर चलने पर भी पत्तो के जीवों को पीड़ा न हो।

श्रेणिचारण लब्धि—चार सौ योजन ऊंचे निषध और नीलवंत पर्वत की टंकछिन्न श्रेणियों का अवलम्बन लेकर ऊपर चढने तथा नीचे उतरने की शक्ति।

अग्निशिखाचारण लब्धि—अग्नि की ज्वालाओं पर चलने पर भी अग्नि के जीवों को पीड़ा न हो।

धूम्रचारण लब्धि—धुंआ ऊपर जावे या तिर्च्छा-आड़ा जाय फिर भी उस धुंए के अवलम्बन से आकाश में अस्खलित-गति से जाना।

ज्योतिरश्मिचारण लब्धि—चंद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र या तारा आदि किसी भी तेजस्वी पदार्थ की तेज किरणो के अवलम्बन से आकाश मे गमन करना।

प्रात.स्मरणीय श्री गौतम स्वामी अष्टापद पर्वत पर सूर्य की किरणो के अवलम्बन से ही चढे थे।

इसी तरह निहारचारण, अवश्यायचारण, मेघचारण, वारिधाराचारण, मर्कटतन्तुचारण, वायुचारण आदि लब्धिय

.आशीविष लब्धि—मुनिवर के दांतों-दाढों में जहर जैसी शक्ति उत्पन्न होती है, जिससे दूसरों को शिक्षा देने के लिए दांत लगाने मात्र से प्राणी की तत्काल मृत्यु हो जाती ।

१२. केवल लब्धि—जिस ज्ञान के द्वारा लोक और अलोक के समस्त पदार्थों के सब भाव-पर्याय जानना। इस लब्धि के प्रभाव से इंद्रियो और मन को मदद बिना आत्मा साक्षात्-प्रत्यक्ष जानें-देखे।

१३. गणधर लब्धि—जिससे गणधर पद प्राप्त हो।

१४. पूर्वधर लब्धि—चौदह पूर्व का श्रुतज्ञान प्राप्त हो।

१५. तीर्थंकर लब्धि—तीर्थंकर पद की प्राप्ति हो।

१६. चक्रवर्ती लब्धि—चक्रवर्ती पद प्राप्त हो। छः खण्ड का राज्य, चौदह रत्न, नव निधि आदि चक्रवर्ती को प्राप्त होते हैं।

१७. बलदेव लब्धि—बलदेव पद प्राप्त हो। ये वासुदेव के बडे भ्राता होते है।

१८. वासुदेव लब्धि—वासुदेव पद प्राप्त हो। वासुदेव के तीन खण्ड का राज्य होता है। उन्हे चक्र आदि सात रत्नों की प्राप्ति होती है।

१९. अमृताश्रव लब्धि—अमृत जैसे वचन हो। यह लब्धि क्षीराश्रव, मध्वाश्रव, घृताश्रव, इक्ष्वाश्रव आदि प्रकार की होती है।

२०. कोष्ठकबुद्धि लब्धि—'कोठार मे रखा धान जैसे वर्षों तक नष्ट नहीं होता वैसे मुनि के हृदय मे उतरे हुए सूत्रार्थ दीर्घकाल तक स्थिर रहते हैं।

२१. पदानुसारि लब्धि—किसी भी ग्रन्थ का पहला मध्यम या अन्तिम पद सुनकर उसके समान सब श्रुत का ज्ञान हो। यह तीन तरह का है (१) अनुश्रोतपदानुसारिणी—ग्रन्थ के शुरू का पद सुनने से सारे ग्रन्थ का बोध हो। प्रतिश्रोतपदानुसारिणी—अन्तिम पद को सुनकर सम्पूर्ण ग्रन्थ का बोध हो।

उभयपदानुसारिणी—ग्रन्थ के बीच का कोई भी पद सुनकर सम्पूर्ण ग्रन्थ का बोध हो।

२२. बीज लब्धि—बीजभूत एक अर्थपद को सुनकर दूसरा सवश्रुत जान जाय। यह लब्धि गणधर भगवतों को अवश्य होती है क्योंकि तीर्थंकर भगवत के मुंह से त्रिपदी सुनकर द्वादशागी की रचना करते है।

२३. तेजोलेश्या लब्धि—क्रोध मे आकर मुनि अनेक योजन प्रमाण क्षेत्र मे रहे शत्रु आदि पदार्थों को भस्म कर दे।

२४. आहारक लब्धि—आहारक शरीर बनाने की शक्ति। इस लब्धि द्वारा पूर्वधर मुनि एक हस्त प्रमाण शरीर बनाकर सूक्ष्म श्रुत शका टालने के लिए अथवा श्री जिनेश्वर भगवंतो की समवसरण आदि की ऋद्धि देखने के लिए विचरते तीर्थंकर परमात्मा के पास भेज सके और कार्य समाप्ति पर देह का विसर्जन कर सके।

२५. शीतलेश्या लब्धि—यह तेजोलेश्या लब्धि से विपरीत लब्धि है। इस लब्धि द्वारा जलते जीवादि पदार्थो पर जल छिटकने से शात हो जाते है।

२६. वैक्रिय लब्धि—भव्य जीव विविध प्रकार की क्रियाए करने की शक्ति वाला वैक्रिय शरीर बना सके। यह कई तरह की होती है—जैसे (१) अणुत्व (२) महत्व (३) लघुत्व (४) गुरुत्व (५) प्राप्ति (६) प्राकाम्य (७) इशित्व (८) वशित्व (९) अप्रतिघातित्व (१०) अन्तर्धानित्व (११) कामरूपित्व आदि।

(१) अणु जैसा बारीक शरीर बनाया जा सके। ऐसे सूक्ष्म शरीर से कमल की नाल के छेद मे भी प्रवेश किया जा सके

और वहां रहकर चक्रवर्ती के जैसे भोग विलास कर सके। (२) महत्व—मेरुपर्वत एक लाख योजन ऊचा है और दस हजार नव्वे योजन जाड़ा है उससे भी बड़ा शरीर बना सके। (३) लघुत्व—वायु से भी लघु हलका शरीर बना सके। (४) गुरुत्व—वज्र से भी अतिशय भारी शरीर बना सके। (५) प्राप्ति—भूमि पर खड़े रहकर हाथ इतना लम्बा करे कि जिससे मेरु पर्वत के शिखर के अग्र भाग का स्पर्श कर सके। (६) प्राकाम्य—जैसे जल मे प्रवेश करे वैसे भूमि मे प्रवेश कर चलने की शक्ति तथा पानी मे डुबकी लगाकर ऊपर आ जावे वैसे भूमि मे डुबकी लगाकर ऊपर आ जावे। (७) इशित्व—तीर्थंकर, चक्रवर्ती या इद्र के समान ऋद्धि विकुर्ववाने की शक्ति (८) वशित्व—सब जीवो को वश मे करने की शक्ति। (९) अप्रतिघातित्व—जैसे सीधे सपाट मार्ग मे अस्खिलता से गमन किया जासके उसी तरह बीच मे पर्वत आदि आने पर भी अस्खिलता से गमन करने की शक्ति। (१०) अन्तर्धानत्व—अन्तर्धान होने की शक्ति। (११) कामरूपित्व—एक साथ अनेक प्रकार के विविध रूप बनाने की शक्ति।

२७. अक्षीणमहानस लब्धि—अनेक वस्तुऐ देने पर भी समाप्त न हो। यह दो प्रकार की है। (१) अक्षीण महानस लब्धि—जिसके प्रभाव से पात्र मे अल्प आहार आदि हो फिर भी वह आहार बहुतों को देने पर भी समाप्त न हो। श्री गौतम स्वामी ने अल्प क्षीर से अष्टापद पर्वत पर रहे १५०३ तापसो को एक पात्र से पारणा कराया। (२) अक्षीण महालय लब्धि—परिमित भूमि मे असख्य देव, तिर्यंच और मनुष्य अपने अपने परिवार सहित रह सके और परस्पर एक दूसरे को कष्ट न हो।

२८. पुलाक लब्धि—चक्रवर्ती की सेना भी नष्ट कर सके ।

ये अठ्ठाइस लब्धियां भव्य पुरुषो को होती है । भव्य स्त्रियो को अठारह लब्धियां होती है । अर्थात् इन्हे ये दस लब्धिया नही होती है—१. अरिहंत लब्धि, २. चक्रवर्ती लब्धि, ३. वासुदेव लब्धि, ४. बलदेव लब्धि, ५. संभिन्नश्रोतो लब्धि, ६ चारण लब्धि, ७. पूर्वधर लब्धि, ८. गणधर लब्धि, ९. पुलाक लब्धि, १०. आहारक लब्धि । अनंत काल मे अच्छेरा रूप स्त्री तीर्थंकर होती है । जैसे कि वर्तमान चौबीसी में श्री मल्लिनाथ तीर्थंकर हुए, परन्तु यह अच्छेरा गिना जायगा न कि परंपरा ।

अभव्य पुरुषो को १५ और अभव्य स्त्रियो को १४ लब्धिया होती हैं । उपरोक्त दस लब्धियो के अतिरिक्त ११. केवली लब्धि १२. ऋतुमती मनःपर्यवज्ञान लब्धि १३. विपुलमति मनःपर्यवज्ञान लब्धि अभव्य पुरुषों को नही होती और १४. क्षीराश्रव लब्धि अभव्य स्त्री को नहीं होती ।

श्री अठ्ठाइस लब्धि तप विधि

एक एक लब्धि का एक एक एकासना (अथवा एकान्तर उपवास) निरंतर करना । अर्थात् अठ्ठाइस एकासना ।

दोहा

लब्धि अठ्ठावीस धरी, गुरु गोयम गणेश ।
ध्यावो भवी शुभ करू, त्यागी राग ने रोस ॥

श्री अमोसहोलब्धये नमः[1] ऐसा बोलकर हर दिन पचास खमासमण, पचास लोगस्स का कायोत्सर्ग, पचास स्वस्तिक तथा उस दिन की लब्धि के नाम की बीस माला गिनना।

१. श्री आमर्षौषधि लब्धये नमः।
२. श्री विप्रुडौषधिलब्धये नमः।
३. श्री खेलौषधिलब्धये नमः।
४. श्री जल्लौषधिलब्धये नमः।
५. श्री सर्वौषधिलब्धये नमः।
६. श्री सभिन्नश्रोतोलब्धये नमः।
७ श्री अवधिलब्धये नमः।
८ श्री मनःपर्यवलब्धये नमः।
९ श्री विपुलमतिलब्धये नमः।
१० श्री चारणलब्धये नमः।
११. श्री आशिविषलब्धये नमः।
१२. श्री केवललब्धये नमः।
१३. श्री गणधरलब्धये नमः।
१४. श्री पूर्वधरलब्धये नमः।
१५ श्री अरिहृतलब्धये नमः।
१६ श्री चक्रवर्तिलब्धये नमः।
१७ श्री बलदेवलब्धये नमः।
१८ श्री वासुदेवलब्धये नमः।
१९. श्री अमृताश्रवलब्धये नमः।
२० श्री कोष्ठकबुद्धिलब्धये नमः।
२१ श्री पदानुसारिलब्धये नमः।
२२. श्री बीजबुद्धिलब्धये नमः।

---

१ लब्धि का नाम हर दिन बोलना। दोहा नही बोलना

२३. श्री तेजोलेश्यालब्धये नमः।
२४. श्री आहारकलब्धये नमः।
२५. श्री शीतलेश्यालब्धये नमः।
२६. श्री वैक्रियलब्धये नमः।
२७ श्री अक्षीणमहानसलब्धये नमः।
२८ श्री पुलाकलब्धये नमः।

---

१२. श्री अशुभनिवारण तप और विधि

प्रथम एक उपवास, पीछे दो नीवी व तीन आयविल, छो एकासना, एक लूखा चौपड्या[1] पाच एकसिकथ, चार एकलठाणा, एक एकलधरा[2], एक अलवाड़ा (ढोकला आदि अलेप पदार्थ), एक-एक कवल, इस तरह २५ दिन से तप पूरा करना।

ॐ नमो अरिहंताणं पद की बीस माला गिनना, स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

१ लूखा चौपड्या की रीति—एक कटोरी मे घी तथा एक कटोरी मे पानी ढककर रखना। पीछे अनजान से एक कटोरी उघडवाना। यदि घी की कटोरी खुले तो एकासना करना और पानी की खुले तो आयविल करना।

२. एकलघरा की रीति—पानी का लोटा लेकर किसी सम्बन्धी के घर जाना। उस समय जो घर मे से 'आओ पधारो' कहे तो एकासना करना अथवा और किसी तरह सम्बोधित करे तो वहीं पानी पीकर चौउविहार पच्चक्खाण कर के लौट आना।

१३. श्री अष्टकर्मोत्तर प्रकृति तप

छटे कर्म सूदन तप मे आठ कर्मों सम्बन्धी संक्षिप्त विवेचन कर दिया है। इस सम्बन्ध में विशेष जानना जैसे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटाकोटि सागरोपम की, मोहनीय कर्म की सित्तर कोटाकोटि सागरोपम की, गोत्र कर्म की बीस कोटाकोटि सागरोपम की, और आयुष्य कर्म की तैंतीस सागरोपम की है जब कि जघन्य स्थितिबन्ध इस प्रकार जानना—वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति बारह मुहुर्त, नाम तथा गोत्र की आठ मुहुर्त और शेष कर्मों की अन्तर्मुहुर्त जानना। कर्म सम्बन्धी विशेष जानकारी के लिए कम्मपयडो, पंचसंग्रह, नवतत्त्व आदि ग्रन्थो का अध्ययन करना।

श्री अष्टकर्मोत्तर प्रकृति तप विधि

आठ कर्मों मे ज्ञानावरणीय की उत्तर प्रकृति पाच, दर्शनावरणीय की नो, वेदनीय की दो, मोहनीय की अट्ठाइस आयुष्य कर्म की चार, नाम कर्म की एक सो तीन, गोत्र कर्म को दो व अन्तराय कर्म को पांच, सब मिलकर १५८ प्रकृति होने से १५८ उपवास एकान्तर एकासने से करना। इस तरह १५८ उपवास और १५८ एकासना द्वारा एक ओली[3] होती है ऐसी आठ ओली करना।

उद्यापन मे १५८-१५८ वस्तु तथा मोदक रखना, ज्ञान की पूजा करना, गुरु को कुछ न कुछ वहोराना, सघवात्सल्य

---

३. वर्तमान में सिर्फ १५८ उपवास छूटक करने का रिवाज है।

आदि करना। गुणना निम्न प्रकार बीस माला का करना। जिस दिन जिस प्रकृति का तप चलता हो उस दिन उसके नाम का गुणना करना।

ज्ञानावरणीय कर्म की प्रकृति—५

१. मतिज्ञानावरणीयरहिताय श्री अनंत ज्ञान संयुताय सिद्धाय-नमः।

२. श्रुतज्ञानावरणीयरहिताय ,, ,, ,, ,,
३. अवधिज्ञानावरणीयरहिताय ,, ,, ,, ,,
४. मनः पर्यवज्ञानावरणीयरहिताय ,, ,, ,,
५. केवलज्ञानावरणीयरहिताय ,, ,, ,, ,,

अथवा श्री अनंतज्ञानसंयुताय सिद्धाय नमः इतना ही गिनना। स्वस्तिक आदि पाच-पांच करना।

दर्शनावरणीय कर्म की प्रकृति—९

१. चक्षुदर्शनावरणीयरहिताय श्रीअनंत दर्शनसंयुताय सिद्धाय-नमः

२. अचक्षुर्दर्शनावरणीयरहिताय ,, ,, ,,
३. अवधिदर्शनावरणीयरहिताय ,, ,, ,,
४. केवलदर्शनावरणीयरहिताय ,, ,, ,,
५. निद्रारहिताय ,, ,, ,,
६. निद्रनिद्रारहिताय ,, ,, ,,
७. प्रचलारहिताय ,, ,, ,,
८. प्रचलाप्रचलारहिताय ,, ,, ,,
९. स्त्यानर्द्धिरहिताय ,, ,, ,,

अथवा श्री अनन्तदर्शनसंयुताय सिद्धाय नमः पद गिनना। स्वस्तिक आदि नो-नो करना।

वेदनीयकर्म की प्रकृति—२

१. सातावेदनीयरहिताय श्री अव्याबाधगुणसंयुताय सिद्धाय नमः
२. असातावेदनीयरहिताय „ „ „

अथवा श्री अव्याबाधगुणसंयुताय सिद्धाय नमः यह पद गिनना। स्वस्तिक आदि दो-दो करना।

मोहनीय कर्म की प्रकृति—२८

१. सम्यक्त्व मोहनीय रहिताय श्री अनंतचारित्रगुण सयुताय सिद्धाय नमः
२. मिश्र मोहनीय रहिताय „ „ „
३. मिथ्यात्व मोहनीय रहिताय „ „ „
४. अनतानुबधि क्रोध रहिताय „ „ „
५. अनतानुबधि मान रहिताय „ „ „
६. अनंतानुबंधि माया रहिताय „ „ „
७. अनंतानुबंधि लोभ रहिताय „ „ „
८. अप्रत्याख्यानि क्रोध रहिताय „ „ „
९. अप्रत्याख्यानि मान रहिताय „ „ „
१०. अप्रत्याख्यानि माया रहिताय „ „ „
११. अप्रत्याख्यानि लोभ रहिताय „ „ „
१२. प्रत्याख्यानि क्रोध रहिताय „ „ „

१३. प्रत्याख्यानि मान रहिताय श्री अनतचारित्रगुण सयुताय सिद्धाय नमः

१४. प्रत्याख्यानि माया रहिताय	"	"	"
१५. प्रत्याख्यानि लोभ रहिताय	"	"	"
१६. सज्वलन क्रोध रहिताय	"	"	"
१७. सज्वलन मान रहिताय	"	"	"
१८. सज्वलन माया रहिताय	"	"	"
१९. सज्वलन लोभ रहिताय	"	"	"
२०. हास्य मोहनीय रहिताय	"	"	"
२१. रति मोहनीय रहिताय	"	"	"
२२. अरति मोहनीय रहिताय	"	"	"
२३. भय मोहनीय रहिताय	"	"	"
२४. शोकमोहनीय रहिताय	"	"	"
२५. दुर्गच्छामोहनीय रहिताय	"	"	"
२६. पुरुषवेद रहिताय	"	"	"
२७. स्त्रीवेद रहिताय	"	"	"
२८. नपुंसकवेद रहिताय	"	"	"

अथवा अनंतचारित्रगुणसंयुताय सिद्धाय नमः पद ही गिनना। स्वस्तिक आदि २८-२८ करना।

आयुष्य कर्म की प्रकृति—४

१. देवायूरहिताय श्री अक्षय स्थिति गुणसंयुताय सिद्धाय नमः

२. नरायू रहिताय	"	"	"

३. तिर्यंचायू रहिताय श्री अक्षय स्तिथि गुणसंयुताय सिद्धाय नमः

४ नरकायू रहिताय " " "

अथवा श्री अक्षयस्थितीगुणसंयुताय सिद्धाय नमः ही गिनना। स्वस्तिक आदि चार-चार करना।

नाम कर्म की प्रकृति—१०३

१. देवगति रहिताय श्रीअरुपि निरंजन गुणसंयुताय सिद्धाय नमः

२ नरकगति रहिताय " " "

३. तिर्यंचगति रहिताय " " "

४. नरगति रहिताय " " "

५. एकेंद्रियजाति रहिताय " " "

६. द्वीन्द्रियजाति रहिताय " " "

७. त्रीन्द्रियजाति रहिताय " " "

८. चतुरीन्द्रियजाति रहिताय " " "

९. पचेन्द्रियजाति रहिताय " " "

१०. औदारिकशरीर रहिताय " " "

११. वैक्रियशरीर रहिताय " " "

१२. आहारकशरीर रहिताय " " "

१३. तेजसशरीर रहिताय " " "

१४. कार्मणशरीर रहिताय " " "

१५. औदारिकागोपाग रहिताय " " "

१६. वैक्रियांगोपांग रहिताय श्री अरुपि निरंजन गुणसंयुताय सिद्धाय नमः

१७. आहारकांगोपांग रहिताय „ „ „

१८. औदारिकौदारिक बंधन रहिताय „ „

१९. औदारिकतेजस बंधन रहिताय „ „

२०. औदारिककार्मण बंधन रहिताय „ „

२१. वक्रियवैक्रिय बंधन रहिताय „ „

२२. वैक्रिय तेजस बंधन रहिताय „ „

२३. वैक्रियकार्मण बंधन रहिताय „ „

२४. आहारकाहारक बंधन रहिताय „ „

२५. आहारक तजस बधन रहिताय „ „

२६. आहारक कार्मण बंधन रहिताय „ „

२७. औदारिक तैज सकार्मण बंधन रहिताय „ „

२८. वैक्रिय तैजस कार्मण बंधन रहिताय „ „

२९. आहारक तैजसकार्मण बंधन रहिताय „ „

३०. तैजस तैजस बंधन रहिताय „ „

३१. कार्मणकार्मण बंधन रहिताय „ „

३२. तेजस कार्मण बंधन रहिताय „ „

३३. औदारिक संघातन रहिताय „ „

३४. वैक्रिय संघातन रहिताय „ „

३५. आहारक संघातन रहिताय „ „

३६. तैजस संघातन रहिताय „ „

३७ कर्मण संघातन रहिताय श्री अरुपि निरजन गुणसंयुताय सिद्धाय नमः

३८. वज्रर्षभनाराच सहनन रहिताय ,, ,,

३९. ऋषभनाराच संहनन रहिताय ,, ,,

४०. नाराच सहमन रहिताय ,, ,,

४१. ऊर्धनाराचसहनन रहिताय ,, ,,

४२. कीलिका संहनन रहिताय ,, ,,

४३. सेवार्त संहनन रहिताय ,, ,,

४४. समचतुरस्त्रसंस्थान रहिताय ,, ,,

४५. न्यग्रोध सस्थान रहिताय ,, ,,

४६. सादिसंस्थान रहिताय ,, ,,

४७ वामन संस्थान रहिताय ,, ,,

४८. कुब्ज सस्थान रहिताय ,, ,,

४९. हुडक सस्थान रहिताय ,, ,,

५०. कृष्णवर्ण रहिताय ,, ,,

५१. नीलवर्ण रहिताय ,, ,,

५२. लोहितवर्ण रहिताय ,, ,,

५३ पीतवर्ण रहिताय ,, ,,

५४ श्वेतवर्ण रहिताय ,, ,,

५५. सुरभीगंध रहित्ताय ,, ,,

५६. दुरभीगध रहिताय ,, ,,

५७. तिक्तरस रहिताय ,, ,,

५८. कटुकरस रहिताय श्री अरुपि निरंजन गुणसंयुताय सिद्धाय नमः

५९. आम्लरस रहिताय	"	"
६०. कषायरस रहिताय	"	"
६१. मधुररस रहिताय	"	"
६२. शीतस्पर्श रहिताय	"	"
६३. उष्णस्पर्श रहिताय	"	"
६४. गुरुस्पर्श रहिताय	"	"
६५. लघुस्पर्श रहिताय	"	"
६६. खरस्पर्श रहिताय	"	"
६७. स्निग्धस्पर्श रहिताय	"	"
६८. रुक्षस्पर्श रहिताय	"	"
६९. मृदुस्पर्श रहिताय	"	"
७०. नरकानुपूर्वी रहिताय	"	"
७१. तिर्यांचनुपूर्वी रहिताय	"	"
७२. नरानुपूर्वी रहिताय	"	"
७३. देवानुपूर्वी रहिताय	"	"
७४. शुभ विहायोगति रहिताय	"	"
७५. अशुभ विहायोगति रहिताय	"	"
७६. पराघातकर्म रहिताय	"	"
७७. उच्छ्वासनामकर्म रहिताय	"	"
७८. आतपनाम कर्म रहिताय		"

७९. उद्योतनामकर्म रहिताय श्री अरुपि निरंजन गुणसंयुताय सिद्धाय नमः

८० अगुरुलघुनाम कर्म रहिताय	,,	,,
८१. तीर्थंकर नामकर्म रहिताय	,,	,,
८२. निर्माणनाम कर्म रहिताय	,,	,,
८३. उपघातनामकर्म रहिताय	,,	,,
८४. त्रसनामकर्म रहिताय	,,	,,
८५. बादरनामकर्म रहिताय	,,	,,
८६. पर्याप्तनामकर्म रहिताय	,,	,,
८७. प्रत्येक नामकर्म रहिताय	,,	,,
८८. स्थिरनामकर्म रहिताय	,,	,,
८९. शुभनामकर्म रहिताय	,,	,,
९०. सौभाग्यनामकर्म रहिताय	,,	,,
९१. सुस्वरनामकर्म रहिताय	,,	,,
९२. आदेयनामकर्म रहिताय	,,	,,
९३. यशोनामकर्म रहिताय	,,	,,
९४. स्थावर नामकर्म रहिताय	,,	,,
९५. सूक्ष्म नामकर्म रहिताय	,,	,,
९६. अपर्याप्तनामकर्म रहिताय	,,	,,
९७. साधारण नामकर्म रहिताय	,,	,,
९८. अस्थिरनामकर्म रहिताय	,,	,,
९९. अशुभनामकर्म रहिताय	,,	,,

१००. दौर्भाग्यनामकर्म रहिताय श्री अरुपि निरंजन गुणसंयुताय सिद्धाय नमः

१०१. दुःस्वरनामकर्म रहिताय " "

१०२. अनादेयनामकर्म रहिताय " "

१०३. अयशोनामकर्म रहिताय " "

अथवा श्री अरुपो निरंजन गुणसंयुताय सिद्धाय नमः पद गिनना । स्वस्तिक आदि १०३-१०३ करना ।

गोत्र कर्म की प्रकृति—२

१. उच्चैर्गोत्र रहिताय श्री अगुरुलघुगुण संयुताय सिद्धाय नमः

१. नीच्चैर्गोत्र रहिताय " " " "

अथवा सिर्फ अगुरुलघुगुणसंयुताय सिद्धाय नमः गिनना । स्वस्तिक आदि दो-दो करना ।

अन्तराय कर्म की प्रकृति—५

१- दानान्तरायकर्म रहिताय श्री अनन्तवीर्यगुण सयुताय सिद्धाय नमः

२. लाभान्तरायकर्म रहिताय " " "

३. भोगान्तराय कर्म रहिताय " " "

४. उपभोगान्तराय कर्म रहिताय " " "

५ वीर्यातरायकर्म रहिताय " " "

अथवा श्री अनन्तवीर्यगुण संयुताय सिद्धाय नमः गिनना । स्वस्तिक आदि पांच-पांच करना ।

दूसरी विधि (प्रति न० ब०) :—

ज्ञानावरणीय कर्म के आश्रयी दसम पर चार उपवास लगातार कर पारणा करना । इस तरह पांच दसम करना । दर्शनावरणीय की नो दसम, वेदनीय कर्म की दो दसम, मोहनीय कर्म के अट्ठाइस अट्ठम, आयुकर्म की चार दसम, नाम कर्म के एक सौ तीन उपवास, गोत्र कर्म की दो दसम तथा अतरायकर्म के पाच दुवालस (लगातार पांच उपवास) करना। अथवा—ज्ञानावरण के पांच दुवालस, दर्शनावरण की दसम नो, वेदनीय के अट्ठम दो, मोहनीय के अट्ठम अट्ठाइस, आयु की दसम चार, नाम के छट्ठ अथवा उपवास एक सौ तीन, गोत्र की दसम दो, तथा अतराय की दसम पांच करना । इस प्रकार क्रमशः विधिपूर्वक करना अथवा छूटक छूटक करना । दूसरी विधि उद्यापन आदि ऊपर अनुसार ।

---

९४. श्री अष्ट प्रवचन मातृ तप (प्र.न.क.)

जैसे माता पुत्रादि की रक्षा करती है वैसे पाच समिति और तीन गुप्ति सयम-चारित्र का माता की तरह रक्षण करती है इसलिए इन्हें प्रवचन माता कहा जाता है। समिति पाच और गुप्ति तीन हैं।

समेकीभावेनेति समिति :—अच्छी तरह एक भाव-एकाग्रता जिस क्रिया मे हो वह **समिति** अथवा **शोभनैकाग्रपरिणामा चेष्टा समिति :**- एकाग्र परिणाम वाली सुन्दर चेष्टा-क्रिया वह **समिति** । यह पाच प्रकार की है ।

१. ईर्या समिति—किसी जीव को आघात, पीड़ा या त्रास या तकलीफ न हो इस बात का ध्यान रखकर की जाने वाली चलने की क्रिया।

२. भाषा समिति—किसी को अहितकर न हो इस तरह निरवद्य वचन-प्रवृत्ति।

३. एषणा समिति—श्री दशवैकालिक प्रमुख सूत्रो मे बताये अनुसार बियालीस दोष रहित गोचरी लेना।

४. आदान-निक्षेप समिति—पात्र, वस्त्र तथा उपकरण आदि यतनापूर्वक-सावधानी पूर्वक लेने-रखने की प्रवृत्ति

५. पारिष्ठापनिका समिति—मल, मूत्र, श्लेष्म आदि जयणापूर्वक परठवने की प्रवृत्ति।

गोपनम् गुप्ति : गुप-अर्थात् रक्षा करना, रोकना, निग्रह करना। जिस क्रिया द्वारा रक्षा हो, अनिष्ट सम्पर्क या अनिष्ट परिणाम रुके या किसी भी वस्तु का निग्रह हो व गुप्ति कहलाती है। गुप्ति का अर्थ यह है कि-संयम पालन के लिए मन, वचन और काया से होती असत् प्रवृत्ति को रोकना। गुप्ति तीन तरह की है।

१. मनोगुप्ति—मन को बुरे विचारो या खराब संकल्पो से रोकना।

२. वचन गुप्ति—बिना जरूरत नही बोलना।

३. काय गुप्ति—काया से जहां तक हो सके कम प्रवृत्ति करना।

ध्यान मनोगुप्ति मे सहायक है। मौन वचन-गुप्ति मे सहायक है और कायोत्सर्ग काय-गुप्ति मे अवलम्बनभूत है।

इन तीन गुप्तियो को समिति भी कह सकते है। इस तरह समिति की सख्या आठ होती है। श्री उत्तराध्ययन सूत्र मे समिति आठ बताई है।

जहा समिति हो वहा गुप्ति अवश्य होती है, परन्तु जहा गुप्ति हो वहा समिति की भजना समझना अर्थात् हाती भी है और नही भी।

समिति मुख्यतया प्रवृत्ति प्रधान है और गुप्ति मुख्यतया निवृत्ति प्रधान है।

श्री अष्ट प्रवचन मातृ तप विधि

प्रत्येक आठ समितियो की आराधना तोन तीन दिन इस प्रकार करना —

		प्रथम दिन	दूसरे दिन	तीसरे दिन
१.	ईर्या समिति–कवल	१	१	१
२.	भाषा समिति–कवल	२	१	२
३.	एषणा समिति–कवल	३	१	३
४.	आदान–निक्षेप समिति–कवल	४	१	४
५.	पारिष्ठापनिका समिति–कवल	५	१	५
६.	मनो गुप्ति–कवल	६	१	६
७.	वचन गुप्ति–कवल	७	१	७
८.	काय गुप्ति–कवल	८	१	८

इस तरह कुल कवल सख्या ८० होती है और तप के दिन २४ और पारणे के दिन ८ होते हैं। अर्थात् प्रत्येक समिति

की तीन दिन की आराधना के बाद पारणा करना। गुणना आदि निम्न प्रकार है

		सा.	ख.	लो.	नो.
१.	ईर्या समितिधराय नमः	३	३	३	२०
२.	भाषा समितिधराय नमः	५	५	५	२०
३.	एषणा समितिधराय नमः	७	७	७	२०
४.	आदानभंडनिक्षेपणा समिति धराय नमः	९	९	९	२०
५.	उच्चार प्रस्रवण खेल पारिष्ठापनिका समिति धराय नमः	११	११	११	२०
६.	मनो गुप्ति धराय नमः	१३	१३	१३	२०
७.	वचन गुप्ति धराय नमः	१५	१५	१५	२०
८.	काय गुप्ति धराय नमः	१७	१७	१७	२०

---

९५. श्री अष्टमासी तप और विधि
(जै. प्र. ज. सि. आदि)

इस तप मे एकान्तर एकासने से २४० उपवास करना। अर्थात् एक उपवास और एक एकासना। इस तरह २४० उपवास और २४० एकासना करना।

उद्यापन मे २४० मोदक रखना। यह तप बीच के बाईस तीर्थंकरो को लक्ष्य मे रखकर करने का है, इसलिए जिन २ तीर्थंकर का तप चलता हो उन उन तीर्थंकरो के नाम के साथ

नाथाय नमः पद जोड़कर बीस माला गिनना। इस तरह हर-एक तीर्थंकर के २४० उपवास और २४० एकासना करना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

९६. श्री कर्मचक्रवाल तप और विधि
(जै. प्र. न. अ. आदि)

प्रथम एक अट्ठम कर पारणा करना। पीछे चौसठ उपवास एकान्तर पारणे वाले करना। (किसी ग्रन्थ में साठ तथा किसी मे इकसठ उपवास करने को लिखा है)। अंत में एक अट्ठम करना। इसमे कुल ७० उपवास और ६६ पारणा होते हैं।

उद्यापन मे १२८ मोदक व स्वर्णचक्र देव के पास रखना।

नमो अरिहंताणं पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

९७. श्री आगमोक्त केवलि तप
(जै. प्र. आदि)

केवलं येषाम् विद्यते इति केवलिनः। जिनमे ज्ञान, दर्शन और चारित्र—इन तीनों की पूर्णता हो उन्हें केवली भगवंत समझना।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय कर्म का सर्वथा क्षय होने पर यह पद प्राप्त होता है। उन्हें पूर्ण पुरुष या केवली कहते हैं। केवली होने के बाद लोक के सम्पूर्ण स्वरुप को जान सकते हैं। और इसके बाद ही प्रवचन द्वारा जनता के सामने समस्त विश्व की तमाम घटनायें और व्यवस्था का निरूपण करते हैं। केवली भगवंत हस्तामलकवत् लोकालोक का स्वरूप जान-समझ सकते है और इसीलिए उन्हे सर्वज्ञ कहते हैं।

श्री आगमोक्त केवलि तप की विधि

आयंबिल निरतर दस करना, ऊपर एक उपवास करना।

उद्यापन में ग्यारह मोदक व नारियल तथा एक रूमाल पुस्तक के आगे रखना। श्री जिन की अष्टप्रकारी पूजा करना, गुरुभक्ति करना।

नमो नाणस्स पद की २० माला गिनना। स्वस्तिक आदि ५१ करना।

---

१८. श्री चत्तारि अठ्ठ दस दो तप
(जै. प्र० आदि)

चार, आठ, दस, और दो कुल चोवीस तीर्थंकरों को लक्ष्य मे रखकर यह तप किया जाता है। सिद्धाणं बुद्धाणं की पांचवी गाथा में इस बारे मे उल्लेख आता है।

भरत चक्रवर्ती ने अष्टापद पर्वत पर यात्रा की, जिस सिह निषद्या प्रासाद का निर्माण किया उसमे पूर्वादि दिशाओ में वर्तमान चौबीसी के तीर्थंकर भगवतों की देह प्रमाण जो मूर्तिया स्थापित की उनका क्रम इस प्रकार है—

दक्षिण मे श्री ऋषभदेव स्वामी से अभिनदन स्वामी तक चार,
पश्चिम मे श्री सुमतिनाथ स्वामी से वासुपूज्य स्वामी तक आठ,
उत्तर मे श्री विमलनाथ स्वामी से श्री नेमिनाथस्वामी तक दस,
पूर्व मे श्री पार्श्वनाथ स्वामी और श्री महावीर स्वामी की दो।

समस्त जैन तीर्थो मे अष्टापद तीर्थ की महत्ता सब से अधिक है क्योकि युगादीश श्री ऋषभदेव भगवंत का वह निर्वाण स्थल है तथा प्रथम चक्रवर्ती भरत महाराज ने भी एक मास का अनशन कर अष्टापद पर्वत पर ही सिद्धि गति प्राप्त की।

श्री चत्तारि अट्ठ दस दो तप विधि

यह तप अष्टापद मे स्थित चौबीस तीर्थंकरो की आराधना के लिए है। इसमे प्रथम चार उपवास, फिर आठ उपवास, फिर दस उपवास और फिर दो उपवास इस तरह कुल चौबीस उपवास करना। दस उपवास के तुरंत ही बाद दो उपवास करना, इसमे सिर्फ पारणे के दिन का ही अंतर रहना चाहिए ऐसी प्रवृत्ति है।

श्री अष्टापदतीर्थाय नमः पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि चौबीस-चौबीस करना।

———

११. श्री कलंक निवारण तप यानि सीता तप

इस तप का दूसरा नाम सीता तप है। अपने पर लगे कलक को दूर करने के लिए महा सती सीता ने तपश्चर्या की इसलिए इस तप का नाम कलंक निवारण और दूसरा नाम सीता तप है। महासती सीता का वृत्तात वड़ा लम्वा है, परन्तु यहा सक्षेप मे वताया जाता है।

मिथिला नगरी मे जनक राजा के विदिहा नाम की पटरानी थी। समय आने पर विदिहा के पुत्र-पुत्री युगल का जन्म हुआ। उस समय पूर्वभव के द्वेषी सौधर्म देवलोक वासी पिंगल देव ने पुत्र का अपहरण कर लिया। वैताढ्य पर्वत के पास जाते पिंगल के मन मे दया आई इसलिए वस्त्राभूषण पहनाकर उसी स्थान पर एकात जगह मे रखकर चला गया। इतने म रथनूपुर नगर के चद्रगति विद्याधर ने उस बालक को उठा, अपनी सतान रहित पत्नी को सौंप दिया और उसका नाम भामण्डल रखा।

पुत्र के अपहरण से राजा रानी को अत्यत दुःख हुआ। क्रमश: सीता स्त्रियो की चौसठ कला मे निपुण हुई। उसके यौवनावस्था मे आने पर राजा जनक को उसके वर सम्वधी चिता हुई। इतने मे म्लेच्छो ने राजा जनक के राज्य पर हमला किया इसलिए उन्होने अपने मित्र राजा दशरथ से सहायता मांगी। राम तथा लक्ष्मण ने आकर म्लेच्छों को पराजित किया। राजा जनक ने उनका महोत्सव-पूर्वक नगर

प्रवेश कराया और अपनी पुत्री सीता का विवाह राम के साथ करने का विचार कर लिया। बाद मे राम व लक्ष्मण अपनी राजधानी अयोध्या लौट गये।

एक बार नारद मुनि मिथिला के अतःपुर मे जा पहुंचे। उनकी भयानक आकृति देखकर सीता डर गई और शोर मचाने लगी इसलिए उसकी सखियो ने आकर नारदजी का तिरस्कार कर उन्हे बाहर निकाल दिया। नारदजी ने इस अपमान का बदला लेने का निर्णय किया। उन्होने सीता का कलात्मक सुंदर चित्र बनाकर भामण्डल को बताया। भामण्डल चित्र देखकर कामासक्त हो गया और अपने पालक पिता चंद्रगति से बात की। चंद्रगति विद्याधर ने सीता की मांग अपने दूत द्वारा राजा जनक के पास भेजी। जनक बड़ी विकट स्थिति मे हो गये। अपनी इच्छा राम के साथ शादी करने की थी और दूसरी तरफ विद्याधर की मांग थी। उन्होने स्वयंवर की योजना बनाई और घोषणा कर दी कि जो देवाधिष्ठित 'वज्रवर्त' धनुष को झुकायेगा उसके साथ सीता का विवाह होगा।

स्वयंवर पर अनेक देशो के राजा, राजपुत्र आये परन्तु राम के सिवाय कोई धनुष को नही चढ़ा सका। राम की विजय हुई और सीता ने राम के गले में वरमाला पहनाई। इससे भामण्डल अत्यंत दुखी हुआ और अपने नगर को लौटते समय उसे यह आकाशवाणी सुनाई दी कि सीता तेरी बहन है। तुम दोनो भाई बहिन हो। जन्मते ही तेरा अपहरण किया गया था। यह अदृश्य वाणी सुनकर भामण्डल को अपने वर्ताव पर पश्चाताप हुआ। इसलिए वापिस लौटकर पिता जनक और बहिन सीता से क्षमा मांगी।

राजा दशरथ से केकई ने वरदान द्वारा राम का वनवास मांगा। दण्डकारण्य मे रावण ने सीता का अपहरण किया। राम रावण के साथ युद्ध कर सीता को लौटा लाये। सीता सगर्भा हुई। उसके दोहद राम ने पूरे किए, इतने में सीता का दक्षिण नेत्र फड़का। उसे अमंगल की आशंका होने लगी, उसकी शांति के लिए अनेक प्रकार के शुभ कार्य किए गये। इतने मे एक विचित्र वात बनी।

नगर चर्चा देखने जाते हुए राम को सुनाई दिया कि सीता रावण के यहां छै माह रही फिर भी राम ने शुद्धि किए विना उसे वापिस ग्रहण कर ठीक नही किया। यह लोकापवाद राम को वुरा लगा। उन्होने लक्ष्मण को यह वात बताई। लक्ष्मण ने ऐसी वात पर ध्यान नही देने को कहा। फिर भी लोक विरुद्ध का त्याग करना चाहिए इस बात पर राम दृढ़ रहे और अपने सेनापति को बुलाकर सूचना दी कि किसी को मालूम न हो वैसे सीता को एकान्त प्रदेश में छोड़ आओ। सेनापति ने आदेशानुसार तीर्थ यात्रा के बहाने सीता को निर्जन वन में ले जाकर राम का आदेश सीता को बताया। यह सुनते ही सीता मूर्छित हो गई। फिर थोड़ी देर में स्वस्थ होने पर सीता ने सेनापति को कहा कि—राजा से जाकर कहना कि सगर्भा अवस्था में मात्र लोकापवाद के भय से किसी प्रकार की परीक्षा किए विना सीता का त्याग करना ठीक नही। सेनापति सीता को प्रणाम कर वापिस लौट गया।

इतने में, निर्जन वन में पुंडरीकपुर के वज्रगंध राजा उधर से निकले। सीता को अपनी बहिन मानकर अपने नगर मे ले गये। सीता के वहां दो जुड़वां पुत्र हुए जिनका नाम लव और

कुश रखा गया। सेनापति ने राम को सीता का सदेश सुनाया। राम को फिर पश्चाताप हुआ, उस स्थान पर खोज की गई परन्तु सीता का पता नही चला इसलिए यह मान लिया गया कि भयानक जगल में कोई हिंसक पशु उसको खा गया होगा।

लव और कुश महा पराक्रमी हुए। अचानक नारदजी वहां जा पहुँचे। उन्होने लव और कुश को समस्त वृत्तांत बताया इसलिए लव और कुश सेना लेकर अयोध्या पर हमला करने रवाना हुए। लक्ष्मण तथा लव व कुश की सेना में भीषण युद्ध हुआ। वासुदेव लक्ष्मण ने अपने-चक्र को काम मे लिया, परन्तु चक्र भी लव और कुश की प्रदक्षिणा देकर वापिस आ गया। इतने में नारदजी वहां आ पहुँचे और राम-लक्ष्मण को सब वृत्तात बताया। राम ने आदरपूर्वक सीता को नगर में आने का निमत्रण भेजा। सीता नें कहला भेजा कि—मेरी शुद्धि की परीक्षा कराए बिना मैं नगर प्रवेश नही करूंगी।

सीता नें पंच दिव्य किए और अपने शील की शुद्धि जनता के समक्ष सिद्ध कर अपने पर लगे कलंक को दूर किया। खाई मे अग्नि जलाई गई और नमस्कार महामंत्र का स्मरण करती हुई उस पर से निकली। अग्नि बिलकुल शांत हो गई और महासती सीता का सतित्व सिद्ध हुआ। फिर महोत्सव-पूर्वक राम ने सीता का नगर प्रवेश कराया।

एक बार अयोध्या नगरी मे ज्ञानी शीलचंद्र मुनि पधारे। उन्हे वदन कर सीता ने अपने पर कलक लगने का कारण पूछा तब मुनि ने पूर्व भव बताते हुए कहा कि—

श्रीभूति नामक पुरोहित के सरस्वती नामकी पत्नी से वेगवती नामक पुत्री उत्पन्न हुई। वेगवती ईर्षालु थी। एक

बार उसके गांव में तपस्वी मुनि आये । लोग उनकी अच्छी तरह पर्युपासना करने लगे । तब वेगवती कहने लगी कि— लोग अनजान हैं, यह मुनि तो प्रपंची है । मैंने इन्हें एकांत में स्त्री के साथ क्रीड़ा करते देखा है । क्या ऐसे मुनि की पूजा की जाती है ? इस प्रकार वेगवती मुनि की निंदा करने लगी ।

यह बात मालूम होने पर तपस्वी मुनि ने निश्चय किया कि जब तक मेरा यह कलंक दूर नही होगा वहां तक अन्न जल का त्याग । शासनदेवी ने वेगवती के शरीर में तीव्र वेदना उत्पन्न की । वेगवती से वह दु:ख सहन नहीं हो सका । उसे अपने अधर्माचरण पर पश्चाताप हुआ और मुनिवर से क्षमा मागी, फिर उसने दीक्षा ले उग्र तपश्चर्या की । उसके प्रभाव से तू सीता के रूप में उत्पन्न हुई परन्तु मुनि-कलंक के कारण तेरे को भी कलंक लगा ।

श्री कलंक निवारण तप विधि

इस तप मे एक उपवास एक बियासना, एक आयंबिल, बियासना एक, आयंबिल एक, उपवास एक, इस तरह छः दिन सीता तप करने से कलंक नही लगता ।

उद्यापन में ज्ञान पूजा कराना । प्रभु के पास नो मोदक रखना । गुरु के नो अंग की पूजा करना ।

नमो अरिहंताणं पद को बीस माला गिनना । स्वस्तिक बारह बारह करना ।

---

१ कोई इस तप मे ९ दिन भी कहते हैं । परन्तु प. श्री गभीरविजयजी की भाषा की प्रति मे ६ हैं । कदाचित ओलियां भी हो तो ज्ञानी जाने ।

१००. श्री ऋषभनाथजी कांतुला (हार) तप और विधि

श्री ऋषभनाथजी के हार जैसा यह तप होने से ऋषभ-कांतुला तप कहते है। इस तप में प्रथम दो उपवास, पीछे एकासना, पीछे सात उपवास एकासने से करना। पीछे एक अट्ठम और एकासना, पीछे एकान्तर सात उपवास एकासने वाला करना, फिर एक छट्ठ करना, पीछे एकासना करना। इस तरह कुल ३८ दिन होते हैं।

उद्यापन में श्री ऋषभदेवजी को मोती का हार चढ़ाना।

श्री ऋषभनाथाय नमः पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

१०१. श्री मौन एकादशी तप

बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमीनाथ भगवत को श्रीकृष्ण वासुदेव ने निवेदन किया कि—हे भगवंत! वर्ष में कौनसा दिन उत्तम है? मैं संयम तो ले नही सकता और अन्य व्रत आदि भी नही कर सकता इसलिए आप कोई एक ऐसा दिन बतावें जिसकी अराधना से मैं कृतकृत्य हो सकूं।

भगवंत श्री नेमिनाथ ने श्रीकृष्ण को बताया कि मृगसर सुद ११ मौन एकादशी का दिन सर्वोत्तम है। उस दिन मौन

रखना और उपवास सहित पौषध व्रत ग्रहण कर धर्माचरण करना। उस दिन जिनेश्वरों के १५० कल्याणम हुए है, इससे वह दिन अन्य दिनों की तुलना मे श्रेष्ठ है।

वर्तमान चौवीसी के अठारवे श्री अरनाथ भगवंत की दीक्षा, उन्नीसवें श्री मल्लिनाथ भगवान् का जन्म, दीक्षा व केवल तथा इक्कीसवे श्री नमिनाथ भगवंत को केवल—इस प्रकार पाँच कल्याणक उस दिन हुए हैं। इसी तरह पांच भरत और पाच एरवत दस क्षेत्र मे पांच पांच कल्याणक होते हैं इसलिए ५० कल्याणक हुए। इस तरह भूतकाल, वर्तमान और भविष्यकाल की गिनती से १५० कल्याणक हुए। नव्वे तीर्थंकरो के १५० कल्याणक इसी पुनीत दिन को होने से इस दिन का महत्व अपूर्व है।

भगवंत के मुह से इस दिन का माहात्म्य सुनकर श्री कृष्ण ने पुनः प्रश्न किया कि—हे भगवंत ! इस मौन एकादशी की आराधना से किस किस को ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त हुई वह कृपा कर बतावे। श्री नेमिनाथ भगवंत ने इस सम्बंधी सुव्रत सेठ की कथा सुनाते हुए कहा कि—

धातकी खण्ड से इक्षुकार पर्वत की दक्षिण दिशा में विजय नामक नगर मे पृथ्वीपाल राजा के चंद्रावती नाम की राणी थी। उस नगर में सुर सेठ रहता था, जिसे जैन धर्म के प्रति विशेष अनुराग था। वह जिन भक्ति मे अनुरक्त था। अपार संपत्ति का स्वामी था और संसार में जितने भी सुख होते हैं वे सब उसे उपलब्ध थे।

एक वार रात्रि को सूर सेठ को विचार आया कि मेरे पास

अपार धन-सम्पत्ति है, इसलिए गुरु महाराज को पूछकर उसका सदुपयोग करूँ। गुरुदेव ने उसे मौन एकादशी की आराधना करने को कहा। गुरु की बताई विधि के अनुसार उसने ग्यारह वर्ष और ग्यारह माह तक मौन एकादशी की सुन्दर रीति से आराधना की। बाद में उद्यापन भी खूब ठाठ से किया और अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग किया। अंत मे शुभ भाव से मरकर ग्यारहवे आरण देवलोक मे इक्कीस सागरोपम की आयुष्य वाला देव हुआ।

शौर्यपुर नगर मे ऋद्धिदत्त नामक कुलीन सेठ के प्रीतिमति नामक पत्नी थी। उसकी कुक्षी मे सूर सेठ का जीव देवलोक से आकर उत्पन्न हुआ। गर्भ के प्रभाव से प्रीतिमति को अच्छे अच्छे व्रत करने के दोहद होने लगे। जन्म के समय नाल गाड़ने की जगह अपार धन प्राप्त हुआ। नामकरण संस्कार के समय उसका नाम सुव्रत नाम रखा गया।

उसने बचपन मे अच्छा विद्याभ्यास किया। यौवनावस्था मे माता पिता ने ग्यारह गुणवान कन्याओ के साथ विवाह किया। सुव्रत ने घर का सारा काम काज सम्हाल लिया इसलिए ऋद्धिदत्त सेठ ने दीक्षा ले स्व-कल्याण कर देवगति प्राप्त की।

पूर्व भव मे मौन एकादशी की उत्तम आराधना से सुव्रत सेठ को ग्यारह पत्नियो के साथ साथ ग्यारह करोड़ सौन्नेया तथा ग्यारह पुत्र प्राप्त हुए। धीरे धीरे उसकी कीर्ति सर्वत्र फैलने लगी। सुव्रत सेठ भी मिली लक्ष्मी का सदुपयोग मुक्त हाथ से करने लगे। व्यवहार में भी सत्य का पालन करने से सत्यवादी के रूप मे नाम प्रसिद्ध हो गया। राजा ने उसका बहुमान कर नगरसेठ की पदवी से अलंकृत किया।

एक वार उस नगर में श्री धर्मघोष नाम के सूरिपुंगव पधारे। उनसे मौन एकदाशी का माहात्म्य सुनते ही सुव्रत सेठ मूर्छित हो गये। मूर्छा दूर होनें पर जातिस्मरण ज्ञान हूआ और पूर्वभव में स्वयं की करी हुई मौन एकादशी की आराधना आँखो के सामने स्पष्ट दिखाई देनें लगी।

अमूल्य रत्न की कीमत जान लेनें के वाद, उसको कितनी हिफाजत से रखा जाता है? मौन एकादशी की आराधना से ही यह सब-सुखसमृद्धि और कीर्ति-प्रशंसा मिली है यह जान लेनें के वाद सुव्रत सेठ ने परिवार सहित मौन एकादशी की उत्तम रीति से आराधना प्रारम्भ की। रात्रि-दिन का पौषध ग्रहण कर, मौन पालन कर धर्माचरण करनें लगे।

सुव्रत सेठ की एकादशी की आराधना का लोगों पर भी अच्छा प्रभाव पड़ा। लोग भी मौन एकादशी की अच्छी तरह आराधना करने लगे। कहा भी है कि—**गतानुगतिको लोकः।**

एक दिन चोरों ने रात्रि के समय सुव्रत सेठ की हवेली में प्रवेश किया। चोरो ने सोचा कि—घर के सब मनुष्य पोषध में हैं और मौन लिए हुए हैं इसलिए अपनें पकड़े जानें की सम्भावना नही है। उन्होने हवेली की अच्छी अच्छी वस्तुओं की गठरियां वांधी, सेठ चोरों को देखता है, आभूषणों के गठरी वाधते भी देखता है, फिर भी मन में अंश मात्र भी दुविधा न लाकर धर्म-क्रिया में मग्न रहते हैं।

चोर सम्पत्ति लेकर हवेली से वाहर निकलते ही अचानक चबूतरे पर चिपक गये, हिलना-चलना वन्द हो गया। न मालूम किसी नें स्तंभित कर दिया हो वैसे चित्र में दिखाये

पुतले की तरह, सिर पर पोटली लेते हुए स्थिति में स्थिर हो गये। प्रातःकाल होते ही सेठ ने पोषध पारा। सब जिनमन्दिर दर्शन करते चले गये। इधर चारों को विचित्र स्थिति में देखकर नगरजनो ने शोर मचाया। कोतवाल, चौकीदार आ-पहुँचे। सेठ की हवेली के पास यह दृश्य देखकर सब स्तंभित हो गये।

सेठ परिवार सहित जिनमन्दिर दर्शनादि कार्यों से निवृत्त हो हवेली आये। इधर राजा भी यह घटना सुनकर सेठ की हवेली पर आये। सेठ ने राजा का सम्मान किया। और बाद में राजा ने सेठ को वरदान मांगनें को कहा। सुव्रत सेठ ने चोरों को जीवित छोड़ देने के लिए कहा।

शासनदेवी ने चोरों को मुक्त किये। चोर भी इस बनाव से बहुत शर्मिदा हुए। हजारों उपदेश जो काम नहीं कर सकते वह काम एक ही प्रसग से हो जाता है। चोरों ने तब से जीवन भर चोरी नहीं करने की प्रतिज्ञा ली।

एक बार मौन एकादशी के दिन सुव्रत सेठ, पत्नियां और पुत्र आदि सब पौषध ग्रहण कर धर्माचरण करते हैं इतने मे रात्रि के समय नगर में भयंकर आग लगी। आग धीरे धीरे सारे नगर मे फैल गई। देखते देखते सेठ की हवेली के पास आ पहुँची। लोग घबरा गये। वस्तुएं लेकर लोग घरों से बाहर निकल गये। सेठ को सूचना देनें के लिए लोगों नें हवेली में प्रवेश कर भयंकर आग लग जाने की सूचना दी। किसी नें ऐसे समय आगार-छूट की भी बात बताई, फिर भी सेठ पर कुछ असर नही हुआ। उन्होने अपने व्रत मे निश्चल रहने का निर्णय कर लिया।

देवयोग से हुआ भी यह कि सेठ की हवेली के आसपास का स्थान आग मे भस्म हो गया, परन्तु सेठ की हवेली सुरक्षित रही। ग्यारह वर्ष और ग्यारह मास मे आराधना पूर्ण होने पर सुव्रत सेठ ने मौन एकादशी का भव्य उद्यापन किया।

श्री गुणसुन्दरसूरिजी का योग मिलते ही उनसे पत्नियों सहित दीक्षा ग्रहण की। उनकी स्त्रियो ने संयम का पालन कर, कर्म निर्जरा कर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गई।

एक वार व्यतरदेव को सुव्रत मुनि के सत्य की परीक्षा लेने की इच्छा हुई। एकादशी के दिन उसने एक मुनि की देह मे प्रवेश किया और कान की पीड़ा उत्पन्न की। कान की पीड़ा से दुखित हो वे मुनि घवरा कर सुव्रत मुनि के पास पहुँचे और किसी भी तरह दवा माग लानें के लिए निवेदन किया। सुव्रत मुनि को एकादशी के कारण मौन था इसलिए उन्होंने कुछ भी उत्तर नही दिया। इसलिए आवेश में आकर उन मुनि ने सुव्रत मुनि के सिर पर रजोहरण का प्रहार किया फिर भी सुव्रत मुनि अपने नियम मे अडिग रहे। इस तरह दूसरे कई उपसर्ग किये फिर भी सत्वशाली सुव्रत मुनि पर किसी प्रकार का असर नही हुआ तब मिथ्यात्वी देव उनसे क्षमा माँग कर लौट गया।

इसके वाद सुव्रत मुनि घाती कर्मो का क्षय कर, केवलज्ञान प्राप्त कर अत मे मोक्ष गये।

श्री नेमिनाथ भगवंत के मुंह से मौन एकादशी का माहात्म्य और सुव्रत सेठ का वृत्तांत सुनकर श्रीकृष्ण वासुदेव ने भी मौन एकादशी की आराधना करने का नियम लिया।

लौकिक व्यवहार में भी मौन का माहात्म्य बहुत है। **सब से बड़ी चुप, गाज्या मेह बरसे नहीं, भस्या कुतरा करडे नहीं, बहु बोले वह बांठो, मौनं सर्वार्थ साधनम्**-ये सब लोकोक्तियां **मौन** का महत्व बताती हैं।

मौन में अचित्य शक्ति है। आज का आधुनिक युग बोलने का युग माना जाता है परन्तु जो सूक्ष्म दृष्टि से जैसे जैसे बोलने के लाभालाभ का विचार करेंगे उन्हे मौन का महात्म्य समझ मे आये विना नही रहेगा।

अपने यहा बहुत ही प्रचलित सुभाषित है कि—**गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः**—शिष्य को शका हो, गुरु के पास जावे और गुरु के पास जाते ही उसका सशय दूर हो जाता है। यह प्रताप गुरु के **मौन** मे था।

श्री मौन एकादशी तप विधि

यह तप मृगसर सुद ग्यारस को शुरू करना। उस दिन उपवास करना। इस तरह ग्यारह वर्ष की मृगसर सुद ग्यारस करना, अथवा ग्यारह माह की ग्यारह शुक्ल एकादशी करना अथवा ग्यारह वर्ष तक हर माह सुद ग्यारस करना अथवा हर वर्ष मौन ग्यारस जीवन पर्यंत करना (ये चार प्रकार है)

श्री मल्लिनाथ सर्वज्ञाय नमः पद की बीस माला गिनना तथा मौन एकादशी के दिन १५० कल्याणको की एक एक माला गिननी। स्वस्तिक आदि ग्यारह ग्यारह करना।

---

१०२ श्री कंठाभरण तप और विधि (सिद्धि वधू कंठाभरण) (ज.प्र.)

इस तप मे प्रथम एक छठ्ठ कर पारणा, पीछे एक उपवास कर पारणा, पीछे अठ्ठम कर पारणा, पीछे उपवास कर पारणा, फिर छठ्ठ करना। इस तरह यह तप नौ दिन उपवास के और पांच दिन पारणे के मिलाकर १४ दिन में पूरा होता है।

नमो सिद्धाणं पद की वीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि आठ आठ करना।

उद्यापन मे नो मुक्ताफल रख ज्ञान भक्ति करना।

दूसरी विधि (प्रत. न. ङ)

प्रथम एक छठ्ठ कर पारणा, पीछे एकान्तर पारणा वाला सात उपवास, पीछे एक अठ्ठम कर पारणा कर सात उपवास एकान्तर पारणावाला, फिर अंत में एक छठ्ठ करना। इस तरह इकीस उपवास और सोलह पारणा मिला कर ३७ दिन मे यह तप पूर्ण होता है। बाकी सब ऊपर बताये अनुसार करना।

---

१०३ श्री क्षीर समुद्र तप

मनुष्यक्षेत्र का प्रमाण ढाई द्वीप का गिना जाता है उसके बाहर यह क्षीर समुद्र स्थित है। तीर्च्छालोक मे असंख्य द्वीप

समूह हैं उनमें क्षीर समुद्र पांचवाँ है। जंबूद्वीप के फिरता (१) लवण समुद्र, धातकी खण्ड के फिरता (२) कालोदधि, पुष्कर द्वीप के फिरता (३) पुष्कर वर समुद्र, वारुणीवर द्वीप के फिरता (४) वारुणीवर समुद्र और क्षीरवर द्वीप के फिरता (५) क्षीर समुद्र है।

इस समुद्र का पानी क्षीर–दूध वर्ण का होने से उसे क्षीर-सागर कहते हैं। यह पानी क्षीर जैसा वर्ण वाला है परन्तु दूध के समान नही। चार सेर दूध उबालने पर एक सेर दूध शेष रह जाय तब शक्कर डालकर जैसा स्वाद आता है वैसा मीठा यह पानी है। साधारणतया कहा जाय तो ऐसा कहा जा सकता है कि—चक्रवर्ती की गाय के दूध से भी अधिक मीठा यह पानी है और इसी से देवाधिदेव तीर्थंकर भगवंत के जन्माभिषेक के समय यह पवित्र पानी काम मे लाया जाता है।

द्वीप-समुद्र वज्रमय जगती से रक्षित है। वह जगती मूल मे बारह योजन, मध्य मे आठ योजन, और शिखर पर चार योजन पहोली होती है। यह आठ योजन ऊँची होती है। इस जगती पर विविध जाति के रत्नों से सुशोभित पद्मवर वेदिका दो गाउ ऊंची और ५०० धनुष विस्तार वाली होती है, उस वेदिका के दोनो तरफ मनोहर और रम्य वन प्रदेश हैं, उस वनखंडो मे व्यंतर देव-देविया विविध प्रकार की क्रीड़ा करते हैं।

इस जगती के मध्य भाग मे चारों तरफ फिरती वेदिका के प्रमाण वाले झरोखे होते हैं। उन झरोखो में व्यंतर देव-देवियां समुद्र की लहरो और विविध दृश्यों को देखकर आनंदित होते हैं।

इस क्षीर समुद्र के पानी जैसी मीठास अपने में आवे इसके लिए यह क्षीर समुद्र तप किया जाता है। महिलाओ में यह तप विशेष प्रचलित है और प्रायः पर्युषणों के दिनों में यह तप विशेष रूप मे किया जाता है।

श्री क्षीर समुद्र तप विधि

इस तप में सात उपवास निरंतर कर पारणे के दिन क्षीर वहोराना। सिर्फ क्षीर द्वारा एकासना कर, उसी जगह चोउविहार करना।

उद्यापन में क्षीर, शक्कर और घृत से भरा थाल देव के पास रखना। गुरु को यथाशक्ति वहोराना। संघवात्सल्य, ज्ञानपूजा करना।

दूसरी विधि (जै. प्र. जै. सि. आदि में)

यह तप श्रावण मास में करना। पर्युषण से पहले इसे आरम्भ करना। इसमें आठ एकासने पर एक उपवास करना। उद्यापन ऊपर अनुसार करना।

क्षीरवरसमसम्यग्दर्शनधराय नमः पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि सात सात करना।

---

१०४. श्री कोटि शिला तप और विधि

कोटि शिला पर छैः तीर्थंकरों के गणधर आदि मुनिवर मोक्ष गये हैं। उन्हें लक्ष्य में रखकर यह तप किया जाता है।

इसमें श्री शातिनाथजी के शासन मे चक्रायुध आदि असंख्य साधु मोक्ष गये, इसलिए उन्हे लक्ष्य मे रख एक उपवास करना। पीछे आठ एकासना कर, एक उपवास कर पारणे पर एकासना करना। इस तरह ११ दिन में यह तप पूरा होता है। फिर श्री कुथुनाथ स्वामी के शासन मे भी असख्य मुनि सिद्ध हुए इसलिए उनको दृष्टि में रखकर ऊपर लिखे अनुसार ११ दिन तप करना। पीछे श्री अरनाथस्वामी के शासन में बारह करोड़ मुनि सिद्ध हुए, इसलिए उन्हे लक्ष्य मे रखकर प्रथम एक उपवास कर दस एकासना करना, फिर एक अन्तिम उपवास कर पारणे पर एकासना करना। इस तरह पारणे सहित तेरह दिन में यह तप पूरा होता है। श्री मल्लिनाथजी के शासन में छै करोड़ मुनि मोक्ष गये इसलिए उनके आश्रयी पहले उपवास पीछे चार एकासना, फिर एक उपवास कर पारणे पर एकासना करना। इस तरह सात दिन मे यह तप पूरा होता है। श्री मुनिसुव्रतस्वामी के शासन मे तीन करोड़ मुनि सिद्ध हुए, इसलिए उनके आश्रयी प्रथम उपवास, पीछे एकासना और पीछे उपवास कर पारणे पर एकासना करना। इस तरह चार दिन मे यह तप पूरा होता है। श्री नेमिनाथ जी के शासन में एक करोड़ मुनियों को सिद्धिपद प्राप्त हुआ, इसलिए उन्हे लक्ष्य मे रखकर एक उपवास कर पारणे पर एकासना करना।

उद्यापन में देव के पास दस स्वस्तिक करना, दस घी के दीपक रखना, दस पुष्प माला प्रभु को पहिनाना, अष्टप्रकारी पूजा करना। चावल सवा सेर प्रभु के पास रखना।

ॐ ह्रीं नमो सिद्धाणं पद की बीस माला गिनना। दस लोगस्स का कायोत्सर्ग करना, दस प्रदक्षिणा व दस खमासमण

देना, जय वीयराय पर्यंत चैत्यवंदन करना। खमासमण निम्न प्रकार देना—

श्री शांतिनाथ जिनतणा, चक्रायुध गणधार।
कोटिशिलाए शिव लह्या, प्रणमुं प्रातः उदार ॥१॥
चोवोस जिनना सहु मली, साधु संख्याती क्रोड़।
ऐणी तीरथे मुक्ते गया, वंदु बे कर जोड़ ॥२॥
महातीरथ सिद्धांतमां, भाखे श्री जगभाण।
तन मन वचने सेवतां, लहीए शिवपुर ठाम ॥३॥
दशार्ण देशे केइ कहे, केइक सिंधु मभार।
कोटिशिला तीरथ तिहां, प्रणमुं वारंवार ॥४॥
एक जीव जिहां शिव लहे, तीरथ कहीये तेह।
असंख्य मुनि जिहां शिव लहे, किम नवि कहीये एह ? ॥५॥
पुष्प दीप नैवेद्यथी, जे पूजे जिनराज।
अक्षत फल आगल धरे, सीझे वंछित काज ॥६॥

---

१०५ श्री पांच पच्चक्खाण तप (ओली) और विधि (टी.)

इस तप में पहले दिन उपवास, दूसरे दिन बियासणा, तीसरे दिन एकासना, चौथे दिन नीवी, पांचवे दिन आयंबिल, इस तरह पाच की एक ओली हुई। ऐसी पांच ओली करना।

नमो सिद्धाणं पद की बीस माला गिनना, स्वस्तिक आदि आठ आठ करना।

---

१०६ श्री गौतम कमल तप और विधि

अनंत लब्धिनिधान गौतमस्वामी का संक्षिप्त वृत्तांत वीर गणधर तप न. ३८ तथा तप न. ७८ में दे दिया गया है।

इस तप में एकान्तर उपवास नो करना।

उद्यापन में गौतमस्वामी की पूजा कर स्वर्ण का कमल रखना। दूसरी सब वस्तु पकवान, फल आदि शक्ति अनुसार रखना।

श्री गौतमस्वामिसर्वज्ञाय नमः पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि सत्ताइस करना।

---

१०७ श्री घड़ीयां दो घड़ीयां तप और विधि [ला.]

इस तप मे प्रथम चार दिन तक 01 घड़ीयां करना अर्थात् ¼ घड़ी में (छैः मिनिट में) भोजन कर लेना। पीछे आठ दिन तक आधी घड़ीयां करना अर्थात् आधी घड़ी मे (१२ मिनिट में) भोजन करना। फिर सोलह दिन तक एक घड़ीयां करना-अर्थात् २४ मिनिट में भोजन करना। पीछे बत्तीस दिन तक दो घड़ियां करना अर्थात् ४८ मिनिट मे भोजन करना। इस तरह दो माह में तप पूरा होता है। हमेशा एकासने का पच्चक्खाण करना। ठाम (उसी स्थान पर) चउविहार करना।

नमो अरिहंताणं पद की २० माला गिनना। स्वस्तिक वगैरह बारह बारह करना।

१०८ श्री पैंतालीस आगम तप
[पन्यास क. जी. की तपावली]

सूर्य अस्त होने पर प्रकाश के लिए दीपक किया जाता है वैसे केवलज्ञान रूपी सूर्य के अस्त होने पर पांचवें आरे में दीपक का उद्योत स्व-पर उपकारक है।

श्री वीर परमात्मा के ग्यारह गणधरों के पांचवे श्री सुधर्मास्वामी ने द्वादशांगी की रचना की थी, जो आजकल प्रचलित है। प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव स्वामी ने जिनको अर्थ रूप में वर्णन किया था ऐसे आगम अनेक हैं, परन्तु अवसर्पिणी काल के प्रभाव से अभी सिर्फ पैंतालीस आगम रूढ हैं। पैंतालीस आगम की संख्या का प्रकार निम्न है।

ग्यारह अंग, बारह उपांग, दस पयन्ना, छै छेदसूत्र, चार मूल सूत्र तथा नंदीसूत्र और अनुयोग द्वार सूत्र।

पैंतालीस आगम का विस्तृत वर्णन लम्बा हो जाने से सामान्य समझ के लिए उसका संक्षिप्त स्वरूप बताया जाता है।

ग्यारह अंग

१. आचारांग—श्रावक तथा मुनियो के आचार का वर्णन है। मुख्यतः पांच प्रकार के ज्ञानाचारादि का वर्णन है। इस सूत्र मे दो श्रुतस्कंध (मुख्य विभाग) हैं और पचीस अध्याय हैं। पद संख्या १८००० है। पद के प्रमाण से मतमतांतर है। सेन प्रश्न के तीसरे उल्लास के ८२ वें प्रश्नोत्तर से श्री विजय-

सेनसूरि महाराज ने बताया है कि ५१०८८४६२१।। श्लोक का एक पद होता है। श्री कर्मग्रंथवृत्ति तथा अनुयोग द्वार सूत्र में ५१०८८६८४० श्लोक तथा २८ अक्षर प्रमाण का एक पद होना बताया है।

२. सूत्रकृतांग—जीवादि अनेक विचारों का वर्णन है। अध्ययन तेवीस हैं। पद पहले सूत्र से दुगने अर्थात् ३६००० है।

सूत्रकृतांग के बारहवें अध्ययन में ३६३ पंखुडियो का वर्णन है। उनके प्रकारों के प्रमाण इस तरह है। १८० क्रियावादी, ८४ अक्रियावादी, ६७ अज्ञानवादी, ३२ विनयवादो।

क्रियावादी के १८० भेद—जीवादि नो पदार्थों के स्वतः परतः दो भेद गिनते १८, उन्हे नित्य और अनित्य दो भेदों से गुणा करने पर ३६, उन्हे काल, स्वभाव, नियति, ईश्वर और आत्मा इन ५ भेदो से गुणा करते १८० भेद हुए।

अक्रियावादी के ८४ भेद—जीवादि सात पदार्थों को स्वतः और परतः दो भेदो से गुणाते १४ भेद, उन्हे काल, यदृच्छा, नियति, स्वभाव, ईश्वर और आत्मा इन छैः से गुणा करते ८४ भेद हुए।

अज्ञानवादी के ६७ भेद—जीवादि पदार्थो को सत्, असत्, सदसत्, अवकतव्य, सदवकतव्य असदवकतव्य और सदसद-वकतव्य, इस तरह सप्तभगी से गुणा करते ६३ भेद हुए। इनमे चार भेद (१) छती भावोत्पत्ति कौन जानते है? (२) अछती भावोत्पत्ति कौन जानते हैं? (३) छती अछती भावोत्पत्ति कौन जानते हैं? और (४) अवकतव्य भावोत्पत्ति कौन जानते है मिलाने से ६७ भेद हुए।

विनयवादी के ३२ भेद—सुर, राजा, यति, ज्ञानी, स्थविर, अधम, माता और पिता–इन आठो का मन, वचन काया और दान-चार प्रकार से विनय करते से बत्तीस भेद हुए।

३. स्थानांग—श्रुतस्कंध एक ही है, अध्ययन दस हैं। प्रत्येक अध्ययन में, एक, दो, तीन चढ़ती संख्यावाली वस्तुओं का विचार बताया गया है।

४. समवायांग—श्रुतस्कंध छः और समवाय सौ हैं। एक से चढ़ते सौ तक संख्यावालो वस्तुओं का विचार है।

५. भगवती—इकतालीस शतक हैं और दस हजार उद्देशा हैं। श्री वीर परमात्मा को श्री गौतमस्वामी द्वारा पूछे ३६००० प्रश्नों के उत्तर हैं। हरएक प्रश्नोत्तर पर एक सोना मोहर रखकर सग्राम सोनी ने यह सूत्र सुना था।

६. ज्ञाताधर्म कथा—इस सूत्र में उन्नीस अध्याय हैं और दो श्रुतस्कंध हैं। इसमें कथाओं का संग्रह है। कहा जाता है कि सूत्र में साढ़े तीन करोड़ कथाओ का वर्णन है। इस समय इतनी संख्या में कथाएं उपलब्ध नहीं हैं।

७. उपासकदशांग—भगवंत महावीर के आणंद, कामदेव आदि दस श्रावको का अधिकार है।

८. अंतगडदशांग—इस सूत्र मे आठ वर्ग हैं। जो अंतकृत केवली होकर मोक्ष गये उनका अधिकार है।

९. अनुत्तरोववाई—इस सूत्र मे तीन वर्ग हैं और जो मुनि कालधर्म होकर अनुत्तर विमान में देवता हुए है उनका अधिकार है।

१०. प्रश्न व्याकरण—दस अध्ययन हैं। पांच आश्रवद्वार और पांच संवर द्वार का वर्णन है।

११. विपाक सूत्र—दो श्रुतस्कंध और वीस अध्ययन है। पहले मे दुःख के विपाकों और दूसरे में सुख के विपाकों का वर्णन है।

बारह उपांग

१. ऊववाई—कोणिक राजा ने वीर भगवंत के स्वागत समारोह के वर्णन के अलावा अखडना शिष्य का वर्णन और सिद्ध भगवत के स्वरूप का वर्णन है।

२. रायपसेणी—सूर्याभ देव तथा उनके पूर्वभव प्रदेशी राजा का अधिकार है।

३. जीवाभिगम—दस अध्ययन हैं और जीव तथा अजीव का अधिकार है।

४. पन्नवणा—३६ पद (विभाग) हैं।

५. जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति—जंबूद्वीप संबधी विस्तृत अधिकार है।

६. सूर्य प्रज्ञप्ति—सूर्य मण्डल और ग्रहो के चार परिभ्रमण का वर्णन है।

७. चंद्र प्रज्ञप्ति—चंद्र तथा ज्योतिषचक्र संबंधी वर्णन है।

८. निरयावली—देव आदि का अधिकार है। इसके पांच अध्ययन हैं। एक अध्ययन मे नरक मे जाने वाले जोवों का वर्णन है। इस उपांग का दूसरा नाम कप्पिया है।

९. कप्पवंडसिया
१०. पुप्फिया
११. पुष्पचुलिका
१२. वह्निप्रादसा

} इन प्रत्येक में दस दस अध्याय हैं

दस पयन्ना

श्री वीर भगवंत के चौदह हजार मुनियो ने चौदह हजार पयन्नों की रचना की थी। इसके सिवाय अन्य मुनिवरों ने भी पयन्नों की रचना की थी। वर्तमान मे भी लगभग तीस पयन्ना उपलब्ध हैं, उनमे से अधिकतर अंत समय सम्बन्धी दस पयन्ना को पैतालीस आगमों में गिना गया है।

१. चउसरण—परमात्मा के शरण का अधिकार है। गाथा—६३

२. आऊर पच्चक्काख—गाथा–७०

३. भक्त परिज्ञा—आहार, भय, मैथुन और परिग्रह–इन चार संज्ञाओ के त्याग रूप गाथा–१७२

४. संथारक—इसमे बताये अनुसार सथारा सुकौशल मुनि ने किया। गाथा—१२३

५. तंदु..वेयालिय—गर्भ में आने वाले जीव के स्वरूप का वर्णन है। गाथा–१३९

६. चंदा विज्झय—विनयवान धन्य मुनि का अधिकार है। गाथा—११४

७. देवेन्द्रस्तुति—सथारे मे स्थित रहे मुनियों की देवता स्तुति करते है। गाथा—३०७

८. मरणसमाधि—परमात्मा के साथ लवलीन होना। गाथा—६६३

९. महापच्चक्खाण—समस्त पापों को वोसराना। गाथा—१४२

१०. गणि विज्ज—अनेक प्रकार के भावो का व र्णन गाथा—८२

छैः छेद सूत्र

१. निशीथ—मुनिराज की आलोयणा सबंधी अधिकार।

२. जिनकल्प—चरणसित्तरी और करणसित्तरी का स्वरूप।

३. पंचकल्प—आगम व्यवहार, श्रुत व्यवहार, आज्ञा व्यवहार, धारणा व्यवहार और जितव्यवहार-इन पांच व्यवहारों का स्वरूप।

४. व्यवहार—उत्सर्ग और अपवाद मार्ग।

५. दशाश्रुतस्कंध—मुनिराज को दस दशा बताकर अप्रमादी रहवे का उपदेश।

६. महानिशीथ—उपधान आदि आचारों की विधि।

चार मूल सूत्र

१. दशवैकालिक—दस अध्ययन हैं। श्री शय्यभवसूरि ने अपने पुत्र तथा अल्पायु वाले मनक मुनि के लिए पूर्व मे से उद्धृत कर इस सूत्र की रचना की थी।

२. उत्तराध्ययन—श्री वीर भगवंत ने अपने निर्वाण के समय से पूर्व सोलह पहर तक अखण्ड देशना दी थी वे छत्तीस अध्ययन रूप।

३. ओघनिर्युक्ति—मुनियों के आचार का वर्णन।

४. आवश्यक—छः आवश्यक सम्बन्धी वर्णन।

दो सूत्र

१. अनुयोगद्वार—सात नय, सप्तभंगी और निक्षेप का वर्णन।

२. नंदी—मति आदि पांच ज्ञान का विस्तृत वर्णन।

इस प्रकार संक्षिप्त में पैंतालीस आगम का सक्षिप्त स्वरूप है। ज्ञान और आगम की कभी आशातना नही करना। ज्ञान की विराधना महादुखदायक है। उसके फलस्वरूप दरिद्रता, बुद्धिहीनता, हीन अगोपांग, संताप, मूर्खता आदि अनेक प्रकार के दुःख प्राप्त होते हैं।

श्री पैंतालीस आगम तप विधि

इस तप मे लगातार ४५ एकासना करना। प्रतिदिन अलग अलग गुणना गिनना, स्वस्तिक करना व खमासमण देना। हमेशा उस उस आगम की ढाल स्नात्र पढ़ाकर बोलना।

उद्यापन में तप पूर्ण होने पर वरघोडा तथा पूजा प्रभावना आदि करना। नंदी सूत्र तथा भगवती सूत्र की सोना मोहर से पूजा करना। प्रथम व अंतिम दिन रूपा नाणा से तथा दूसरे

आगमो की पैंसों से तथा वासक्षेप से पूजा करना। पैंतालीस पैंतालीस वस्तुएं ज्ञान के पास रखना। गुरुपूजन करना। पैंतालीस आगम की बडी पूजा पढाना। शेष विधि गुरु से जानना। गुणना आदि निम्न प्रकार है—

		सा. ख. लो. नो.
१.	श्री नंदी सूत्राय नमः	५१-५१-५१-२०
२.	श्री अनुयोगद्वारसूत्राय नमः	६२-६२-६२-२०
३.	श्री दशवैकालिकसूत्राय नमः	१४-१४-१४-२०
४.	श्री उत्तराध्ययनसूत्राय नमः	३६-३६-३६-२०
५.	श्री ओघनिर्युक्तिसूत्राय नमः	१०-१०-१०-२०
६.	श्री आवश्यकसूत्राय नमः	३२-३२-३२-२०
७.	श्री निशीथच्छेदसूत्राय नमः	१६-१६-१६-२०
८.	श्री व्यवहारकल्पसूत्राय नमः	२०-२०-२०-२०
९.	श्री दशाश्रुतस्कंधसूत्राय नमः	१९-१९-१९-२०
१०.	श्री पचंकल्पच्छेदसूत्राय नमः	१९-१९-१९-२०
११.	श्री जितकल्पच्छेदसूत्राय नमः	३५-३५-३५-२०
१२.	श्री महानिशीथच्छेद सूत्राय नमः	४२-४२-४२-२०
१३.	श्री चतुःशरणप्रकीर्णकसूत्राय नमः	१०-१०-१०-२०
१४.	श्री आतुर प्रत्याख्यानसूत्राय नमः	१०-१०-१०-२०
१५.	श्री भक्तपरिज्ञासूत्राय नमः	१०-१०-१०-२०
१६.	श्री सस्तारक प्रकीर्णकसूत्राय नमः	१०-१०-१०-२०
१७.	श्री तंदूल वैतालिकसूत्राय नमः	१०-१०-१०-२०
१८.	श्री चद्रवेध्यक प्रकीर्णकसूत्राय नमः	१०-१०-१०-२०
१९.	श्री देवेंद्रस्तव प्रकीर्णक सूत्राय नमः	१०-१०-१०-२०
२०.	श्री मरणसमाधिसूत्राय नमः	१०-१०-१०-२०
२१.	श्री महाप्रत्याख्यानसूत्राय नमः	१०-१०-१०-२०

२२. श्री गणिविद्याप्रकीर्णक सूत्राय नमः १०-१०-१०-२०
२३. श्री आचारांगसूत्राय नमः २५-२५-२५-२०
२४. श्री सूत्र कृतांगसूत्राय नमः २३-२३-२३-२०
२५. श्री स्थानांगसूत्राय नमः १०-१०-१०-२०
२६. श्री समवायांगसूत्राय नमः १०४-१०४-१०४-२०
२७. श्री भगवतीसूत्राय नमः ४२-४२-४२-२०
२८. श्री ज्ञातांगसूत्राय नमः १९-१९-१९-२०
२९. श्री उपासकदशांगसूत्राय नमः १०-१०-१०-२०
३०. श्री अंतकृद्दशांगसूत्राय नमः १९-१९-१९-२०
३१. श्री अनुत्तरोपपातिकसूत्राय नमः २३-२३-२३-२०
३२. श्री प्रश्नव्याकरणसूत्राय नमः १०-१०-१०-१०
३३. श्री विपाकांगसूत्राय नमः २०-२०-२०-२०
३४. श्री उपपातिकसूत्राय नमः २३-२३-२३-२०
३५. श्री राजप्रश्नीयसूत्राय नमः ४२-४२-४२-२०
३६. श्री जीवाभिगमसूत्राय नमः १०-१०-१०-२०
३७. श्री प्रज्ञापनोपांगसूत्राय नमः ३६-३६-३६-२०
३८. श्री सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्राय नमः ५७-५७-५७-२०
३९. श्री जंबूद्वीप प्रज्ञप्तिसूत्राय नमः ५०-५०-५०-२०
४०. श्री चंद्रप्रज्ञप्तिसूत्राय नमः ५०-५०-५०-२०
४१. श्री कल्पावतंसकसूत्राय नमः १०-१०-१०-२०
४२. श्री निरयावलिसूत्राय नमः १०-१०-१०-२०
४३. श्री पुष्पचूलिकासूत्राय नमः १०-१०-१०-२०
४४. श्री वह्निदशोपांगसूत्राय नमः १०-१०-१०-२०
४५. श्री पुष्पिकोपांगसूत्राय नमः १०-१०-१०-२०

---

१०९ श्री चतुर्गति निवारण तप (न.फ.)

नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव ये चार प्रकार की गतियां हैं। भवसागर मे भटकता प्राणी चार गतियों में किसी भी गति मे परिभ्रमण करता है। जब सब कर्म नष्ट हो जाते हैं तब चारों गतियो का अंत, शाश्वत स्थान मोक्ष को प्राप्त अंत किया जा सकता है। चारो गति और उनके भेद-उपभेद सम्बन्धी विस्तृत विवेचन जानने के लिए जीव विचार, नवतत्त्व, कर्मग्र थ आदि पुस्तकें देखें। यहां तो मात्र सक्षिप्त में सामान्य जानकारी दी जा रही है।

१. नरक—रत्नप्रभा आदि सात नरक भूमियो में रहने वाले जीव नारक कहे जाते है। ये जीव आपस मे एक दूसरे को अतिकष्ट देते है। तथा तीव्र कषाय वाले मिथ्यादृष्टि परमाधार्मिक देव भी स्वभाव से इन नारक जीवों को अनेक प्रकार के अतिदारुण दु:ख देते हैं।

२. तिर्यंच— (१) जल मे रहने वाले मगर, मछली आदि (२) स्थल पर विचरने वाले चतुष्पद गाय, बैल आदि (३) पेट से चलने वाले सांप आदि (४) भुजा से चलने वाले नोलिया आदि (५) तथा आकाश में चलने वाले तोता, मोर आदि और चमड़े की पांख वाले चिमगादड़ आदि।

३. मनुष्य— कर्मभूमि, अकर्मभूमि, और अतर्द्वीप में रहने वाले। कर्मभूमि : ५ भरत, ५ एरवत, और ५ महाविदेह कुल पंद्रह हैं। अकर्मभूमि—५ हिमवत, ५ हिरण्यवंत, ५ हरिवर्ष, ५ रम्यक, ५ देवकुरु, और ५ उत्तर कुरु—कुल तीस हैं। जिस भूमि में कृषि आदि काम न हो उसे अकर्मभूमि कहते हैं। इन अकर्मभूमियों मे युगलिक मनुष्य ही रहते हैं।

४. देव— देव मुख्य चार प्रकार के हैं— (१) भवन पति, (२) व्यंतर (३) ज्योतिषी और (४) वैमानिक।

(१) भवनपति— दस तरह के हैं और वे अधोलोक में रहते है।

(२) व्यंतर— दो तरह के हैं। व्यंतर और वानव्यंतर और इन हरएक के आठ आठ भेद हैं। भवनपति देवों के ऊपर के भाग में ये रहते है।

(३) ज्योतिषी— चंद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा पाच प्रकार के हैं। ढाई द्वीप में चर ज्योतिषी होते हैं जब कि ढाई द्वीप के बाहर स्थिर ज्योतिषी होते हैं।

(४) वैमानिक— बारह देव लोक तक के देव कल्पोपपन्न कहलाते हैं। वे स्वामी-सेवक भाव वाले होते हैं। नो ग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमान के देव कल्पातीत हैं, वे अहमिंद्र हैं।

इस तप में चार ओली करना होती है। पहली ओली मे प्रथम दिन एकासना, दूसरे दिन एक कवल, तीसरे दिन एकासना चौथे दिन दो कवल, पाचवें दिन एकासना, छठे दिन तीन कवल इस तरह बढ़ते बढ़ते पन्द्रहवे दिन एकासना और सोलहवें दिन आठ कवल। इस प्रकार ८ एकासना और आठ पारणे के दिन मिलाकर १६ दिन और ३६ कवल कुल होते है। दूसरी ओली मे पहले दिन नीवी दूसरे दिन नो कवल, इस तरह चढ़ते चढते पन्द्रहवे दिन नीवी, और सोलहवें दिन सोलह कवल। तीसरी ओली मे पहले दिन आयबिल, दूसरे दिन सतरह कवल, इस तरह बढ़ते बढ़ते पन्द्रहवे दिन आयबिल

और सोलहवें दिन चौबीस कवल। चौथी ओली में पहले दिन उपवास, दूसरे दिन पच्चीस कवल, इस तरह बढ़ते बढ़ते पंद्रहवें दिन उपवास और सोलहवें दिन बत्तीस कवल। इस प्रकार कुल ६४ दिन में यह तप पूरा होता है। इसमें ३२ दिन तप के, ३२ दिन कवल के—कुल कवल ५२८ होते हैं।

नमो अरिहंताणं पद की २० माला गिनना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

११० श्री चउसट्ठी तपऔर विधि

(नं. क. आदि)

इस तप मे एकातर ३२ आयंबिल करना, पारणे पर एकासना करना, एकासने में त्रिविध आहार का पच्चक्खाण करना।

नमो अरिहंताणं पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

१११ श्री चंदनबाला तप

भगवंत श्री महावीर के घोर अभिग्रह को पूरा करने वाली परम भाग्यशाली श्री चदनबाला थी। आज भी चंदनबाला का अट्ठम, इस प्रकार पवित्र सती साध्वी का स्मरण कर अट्ठम

की तपस्या सिर्फ उड़द के बाकले से की जाती है। महिला वर्ग में यह तप बहुत ही प्रचलित है। चंदनबाला की कथा संक्षिप्त में निम्न प्रकार है।

चंपानगरी के दधिवाहन राजा के धारिणी रानी से वसुमती नामक पुत्री हुई। योग्य आयु होने पर उसे व्यवहारिक और धार्मिक अभ्यास कराया। शुरू से ही वसुमति को धार्मिक संस्कारो के प्रति विशेष अनुराग था। वह धार्मिक जीवन व्यतीत करती और राजकुमारी होने पर भी हमेशा सादगी से रहती थी। धीरे धीरे वसुमति यौवनावस्था में पहुँची।

अचानक कौशाम्बी के राजा शतानिक ने चंपानगरी पर हमला कर दिया। दधिवाहन राजा ने मुकाबला किया परन्तु शतानिक की विपुल सेना के सामने वह पराजित हो गया। मौका पाकर वे भाग निकले। शतानिक ने सेना को आदेश दिया कि नगर मे से जिसको जिस वस्तु की जरूरत हो लूट ले। सारी चंपानगरी में हाहाकार मच गया और लोग सेना के जुल्म से घबड़ा उठे।

दधिवाहन के भागने के समाचार सुनकर रानी धारिणी और वसुमति भी मौका देख भागी। नगर के बाहर निकलते एक साढणी सवार ने उन्हे देख लिया। राजरानी और राजकुमारी के रूप को देखकर मोहित हो गया। उसने सोचा कि इस नगर से इन्ही को लेना चाहिए। उसने उनका पीछा किया और उन दोनो को पकड कर भयानक जंगल की ओर चल दिया, जहा उन्हे कोई नही देख सके।

भयानक जगल मे पहुँचने पर रानी ने सवार से पूछा कि—

तुम हमारा क्या करोगे ? शील के मूल्य को नहीं समझने वाले सवार ने कहा कि मैं तुमको अच्छा भोजन कराऊंगा और तुम्हें अपनी पत्नी बनाऊंगा। वज्रपात जैसे वचन सुनकर राणी को आघात पहुँचा और वह मूर्च्छित हो नीचे गिरी और मृत्यु हो गई। माता की अचानक मृत्यु को देखकर वसुमति दुखी होकर विलाप करने लगी और थोड़ी देर मे मूर्च्छित हो गई।

सांढणी सवार इस अचानक घटना को देखकर घबरा गया। उसने सोचा कि राजकन्या को भी कुछ नहीं कहना। वसुमति की मूर्च्छा दूर होने पर सवार ने मीठे वचनो से उसे आश्वासन दिया और अपने साथ कौशाम्बी नगरी में ले गया।

कौशाम्बी मे आकर सवार ने सोचा कि यह कन्या अत्यंत रूपवान है, इसलिए इसे बेचेंगे तो बहुत धन मिलेगा। इसलिए उसने कौशाम्बी के चौराहे पर उसे बेचने के लिए खड़ी कर दी।

कौशाम्बी व्यापार का केन्द्र थी और राजधानी थी इसलिए लोगो का आना जाना खूब रहता था। वसुमति को देखकर बहुत लोग एकत्र हो गये परन्तु सवार उसका मूल्य अधिक माँग रहा था इसलिए किसी ने नही खरीदी। इतने मे उस जगह धनावह सेठ पहुँच गये। धनावह सेठ भद्र स्वभाव की प्रेममूर्ति और दया के भंडार थे। उन्होंने सोचा कि यह किसी उच्च कुल की कन्या है। भाग्यवश बिकने का अवसर आ गया है। किसी नीच के गले पड़ गई तो इसकी लाज सुरक्षित नही रह सकेगी, इसलिए उसने उसका मुंह-मांगा मूल्य देकर खरीद ली और उसे घर ले गये। अपनी पत्नी मूला को सौंपकर कहा कि यह अपनी पुत्री है और इसकी बराबर देखभाल करना।

वसुमति वहां अपने घर की तरह रहने लगी। मधुर वचनों से सेठ आदि को प्रसन्न रखने लगी। उसके वचन चंदन की तरह शीतल होने से उसका नाम चंदनवाला रखा।

चंदनवाला रूपवती तो थी ही, फिर युवावस्था होने से रूप और निखर गया। मूला सेठानी को शंका होने लगी कि कहीं सेठ अपनी पत्नी न बनाले। इतने में अचानक एक दिन ऐसा प्रसंग बन गया कि सेठानी की शंका मजबूत हो गई।

ग्रीष्म ऋतु की सख्त गर्मी मे सेठ घर आये। पैर धोने-वाला कोई नौकर नही था यह देखकर चंदना ने पिता तुल्य धनावह के पैर धोये। इस बीच टेढ़ी होने से उसकी चोटी खुल गई और बाल नीचे झुक गये। सेठ ने अपने हाथ से उसके बाल ठीक कर दिये। मूला झरोखे से यह दृश्य देख रही थी। इससे उसकी ईर्षाग्नि भभक उठी। उसने किसी तरह चंदना का काटा दूर करने का विचार कर लिया।

सेठ भोजन कर, थोड़ा आराम कर दुकान चले गये। अब मूला ने अपना काम शुरू किया। एक नाई को बुलाकर चंदना के बाल कटवा दिये। पैर में बेड़ी डालकर दूर की कोठरी में पिटाई कर बंद कर दी। नौकरो को हुक्म दे दिया कि यदि कोई चंदना के सम्बन्ध में बतायगा उसकी खैर नहीं होगी। ऐसा कह कर वह अपने पितृगृह चली गई।

संध्या को सेठ घर आये, इधर-उधर देखा परन्तु चंदना को नही देख पूछताछ की। परन्तु सेठानी की धमकी से किसी ने उत्तर नहीं दिया। सेठ ने सोचा इधर-उधर खेल रही होगी। दूसरे दिन भी उन्होंने चंदना को नहीं देखकर सब

नौकरो से पूछा परन्तु कुछ पता न चला, और सोचा कही सहेली के यहाँ चली गई होगी। तीसरे दिन भी चदना को नही देख, सब नौकरो को इकट्ठा कर धमकाया इसलिये एक नौकरानी ने साहस कर सारी बात बताई।

यह सुनते ही सेठ को ऊपर से नीचे तक पसीना आ गया। तुरन्त नौकरानी के साथ उस कोठरी के पास आये। सेठ ने दरवाजा खोला तो देखा कि चदना के पैरो मे बेड़ी, सिर मुडा हुआ, मुह में नवकार मत्र का जाप और आखों मे आसू। कमल को मुरझाते कितनी देर लगे? चदना का मुख कमल तीन दिवस के उपवास से मुरझा गया। यह दृश्य देखते ही सेठ की आंखों से अश्रु धार उमड पड़ी। मूला के प्रति अत्यत क्रोध आया परन्तु उन्होने पहले चदना को कुछ भोजन देने का सोचा। रसोईघर में गये परन्तु कुछ नही मिला। सिर्फ एक तरफ कोने मे सूप मे उडद के बाकले पड़े थे, वे लेकर चदना के पास आकर कहा कि बेटी! अभी तू इन बाकलो का भोजन कर, मैं अभी लुहार को बुलाकर लाता हूँ।

चदना विचार करती है कि जीवन की विचित्रता कैसी है! कहा राजकुमारी का जीवन? किस तरह फस गई? किस तरह बिकी और अत मे यह दशा हुई! तीन दिन के उपवास के बाद भी बाकले मिले! कर्म की गति विचित्र है! ऐसे समय भी यदि कोई अतिथि आजाय तो मेरा कल्याण हो जावे।

वीर परमात्मा ने घोर अभिग्रह धारण किया हुवा है। कोई सती और सुन्दर राजकुमारी दासी बनी हो, पैर में लोहे की बेड़ी हो, सिर मुडा हो, भूखी हो, रोती हो, एक पैर

अंदर और एक पैर कमरे के बाहर रख बैठी हो, खाने के लिये उड़द के बाकले हो, वे बाकले मुझे वहोरावे तब ही मैं गोचरी ग्रहण करूं।

ऐसा घोर अभिग्रह कैसे पूरा हो ? पाच माह और पच्चीस दिन हो गये फिर भी इस अभिग्रह की पूर्णाहुती नही हुई। कौशाम्बी नगरी मे भगवत गोचरी के लिए घूम रहे थे। चंदना के भाग्यबल से अचानक परमात्मा वहा जा पहुँचे। सब बाते बराबर देखी, परन्तु चदना की आखो मे अश्रु नही थे। इसलिये भगवंत लौटे। चंदनबाला ने देखा कि अतिथि वापिस जा रहे है इसलिए अश्रु पूरित नेत्रो से निवेदन किया कि हे कृपानाथ! आप वापिस क्यो लौट रहे है ? उड़द के बाकले ग्रहण कर मेरे पर कृपा करो। भगवंत ने चदना की आखो मे आसू देखे और अपना हाथ आगे बढ़ाया। चदना ने भक्तिपूर्वक बाकले वहोराये।

तीन जगत् के स्वामी का अभिग्रह पूरा हुआ। प्रकृति भी प्रसन्न हुई। देवो ने जयजयकार किया। प्रकृति खिल उठी। चंदना की बेड़ी टूट गई। देवो ने स्वर्णवृष्टि की। चंदना पूर्ववत् मनोहर हो गई।

सेठ लुहार को लेकर आये तो चंदना को पहले जैसी रूपवती देखकर हर्षित हुए मूला भी यह चमत्कार देख वहा आपहुँची। चंदना ने सेठ-सेठानी के चरण स्पर्श किये। मूला सेठानी का आभार मानते हुए कहा कि—हे माता! आपका मेरे पर अत्यत उपकार है, क्योकि तीन जगत् के नाथ महावीर परमात्मा ने मेरे हाथ से पारणा किया।

नगर में यह खबर फैलते ही जनता वहा आने लगी। राजा-रानी भी आये और चदनबाला को धन्य धन्य कहा।

इतने मे एक सिपाही आया । चंदना के पैरो मे गिरकर रोने लगा । ऐसे हर्ष के समय उससे रोने का कारण पूछा तब उसने बताया कि यह चदना चपा नगरी की राजकुमारी वसुमति है । मैं इनका सेवक था । इनकी यह दशा देखकर मुझे रोना आता है । कहा वह वैभव और कहां आज की यह दशा ? शतानिक राजा मुझे बदी बनाकर यहा लाये थे, इससे मुझे दु.ख हुआ था, परन्तु चदना का यह दु.ख मेरे दु ख के आगे इस हिसाब मे कुछ भी नही है ।

सिपाही से यह बात सुनते ही शतानिक राजा की रानी मृगावती बोली कि—धारिणी तो मेरी बहन होती है । चंदनबाला का हाथ पकड़कर राजमहल मे ले गई और वह मौसी मृगावती के पास रहने लगी ।

राजमहल मे रहते हुए भी चदना का मन वैभव-विलास में नही लगता था । उसे सिर्फ परमात्म-चिंतवन और धर्म-ध्यान की ही लगन थी । आभूषण व सुन्दर भोजन पदार्थ उसे नही लुभा सके । प्रभु श्रीवीर केवलज्ञान होने से पहले देशना देते नही और अपना शिष्य भी नही बनाते इसलिए चदना उनके केवलज्ञान प्राप्ति के समय की प्रतीक्षा करते हुए पवित्र जीवन व्यतीत करने लगी ।

प्रभु को केवलज्ञान प्राप्त होने पर चदना ने उनसे दीक्षा ली । प्रभु महावीर की ये प्रथम साध्वी - शिष्या थी । वे भगवत महावीर की छत्तीस हजार साध्वियो की मुख्य प्रवर्तिनी थी ।

बाद मे मृगावती ने भी दीक्षा ली और चंदनबाला की शिष्या हुई। एक बार सूर्य और चंद्र अपने विमान में वीरप्रभु को वंदन करने उनके समोवसरण में आये। उनकी उपस्थिती में मृगावती को सूर्यास्त होने का पता नही चला। सूर्य व चन्द्रमा के जाने के बाद रात्रि के समय मृगावती साध्वी उपाश्रय मे आई। इसलिए मुख्य प्रवर्तिनी चन्दनबाला ने रात्रि मे आने के कारण उपालम्भ दिया। साध्वी मृगावती को अपनी भूल का कारण समझ में आ गया और उसकी आलो-चना करते-करते केवलज्ञान हो गया। रात्रि मे चन्दनबाला सोती थी इतने मे उनके पास एक काले सर्प को जाते देख मृगावती ने साध्वी चन्दनबाला का हाथ ऊपर किया इसलिये उनकी नीद टूट गई। हाथ को ऊपर करने का कारण पूछने पर मृगावती साध्वी ने काले साप का होना बताया। साध्वी चन्दनाजी ने पूछा कि घोर अंधेरी रात्रि मे आपको साप कैसे दिखाई दिया? मृगावती ने बताया कि आपकी कृपा से। इसलिये उन्होने फिर पूछा कि क्या आपको केवलज्ञान हुवा है? मृगावती ने नम्रता से हॉ कहा तो चन्दनाजी ने सोचा कि मैंने केवली की आशातना की है और नम्रता से इसके लिए उनसे क्षमा मागी। शुभ भाव से क्षमा मागने के कारण आर्या चन्दनाजी को भी केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। धन्य है ऐसी क्षमा याचना को।

आयुष्य पूर्ण कर आर्या चन्दबाला मोक्ष गई। चन्दनबाला जैसे तप, त्याग और शीयल प्राप्त करने के लिए अट्ठम करना जरूरी है।

श्री चन्दनबाला तप की विधि

यह तप मृगसर वद १० से वेशाख सुदी १० तक में अथवा पर्यु षण मे अथवा किसी भी दिन किया जा सकता है। इसमें एक अठ्ठम कर चौथे दिन मुनिराज को उडद के बाकले वहोराकर स्वय भी उसी से पारणा करना। पच्चक्खाण आयबिल का करना तथा ठाम चऊविहार करना।

महावीर स्वामीनाथाय नमः पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि बारह-बारह करना।

विशेष-विधि—श्री चन्दनबाला तप के पारणे पर चांदी के सूप में उड़द के बाकले भर कर वहोरावे साथ मे रूपानाणा से गुरु पूजन करे। पैर मे तथा हाथ मे सूत अथवा रेशम की लच्छी को आटी लगा मुनि को वहोरावे।

---

११२. छिन्नवे जिन की ओली तप और विधि

भरत क्षेत्र के आश्रयी भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीनो काल के चौवीसी के वहोत्तर तीर्थंकर, महाविदेहक्षेत्र के आश्रयी बीस विहरमान और चार शाश्वत जिन—ऋषभानन, चद्रानन, वारिषेण और वर्धमान—इस प्रकार छिन्नवे तीर्थंकर परमात्मा के आश्रयी यह तप किया जाता है।

इस तप मे अतीत, अनागत और वर्तमान जिन आश्रयी तीन चौवीसी तथा सीमधरादिक वीस विहरमान और श्री ऋषभानन, चद्रानन, वारिषेण और वर्धमान ये चार शाश्वत जिन—कुल छिन्नवे जिन आश्रयी एक-एक उपवास करना। समय की अनुकूलता के अनुसार छुटक—छुटक छिन्नवे उपवास मे पूर्ण होता है। गुणना निम्न प्रकार। जिन तीर्थंकर का तप हो उनके नाम की वीस माला गिनना। स्वस्तिक, खमासमण आदि बारह-बारह करना। उद्यापन मे चौवीस जिनो को तिलक चढाना।

अतीत चौवीसी जिन नाम

१ श्री केवलज्ञानिने नमः
२ श्री निर्वाणिने नमः
३ श्री सागराय नमः
४ श्री महायशसे नमः
५. श्री विमलाय नमः
६. श्री सर्वानुभूतये नमः
७ श्री घरनाथाय नमः
८ श्री दत्तनाथाय नमः
९ श्री दामोदर नाथाय नम·
१० श्री सुतेजोनाथाय नमः
११ श्री स्वामिनाथाय नमः
१२ श्री मुनिसुव्रतनाथाय नमः
१३ श्री सुमतिनाथाय नमः
१४ श्री शिवगतिनाथाय नमः
१५ श्री अस्तागनाथाय नमः
१६ श्री नमीश्वराय नमः
१७ श्री अनिलनाथाय नमः
१८ श्री यशोधरनाथाय नमः
१९. श्री कृतार्थनाथाय नमः
२० श्री स्वामीनाथाय नमः
२१ श्री शुद्धमतिनाथाय नमः
२२. श्री शिवंकरनाथाय नमः
२३ श्री स्यदननाथाय नम.
२४. श्री सम्प्रतिनाथाय नमः

वर्तमान चौवीसी जिन नाम

१. श्री ऋषभदेवाय नमः २ श्री अजितनाथाय नम.
३. श्री सभवनाथाय नम· ४ श्री अभिनंदननाथाय नमः
५. श्री सुमतिनाथाय नमः ६. श्री पद्मप्रभवे नम
७ श्री सुपार्श्वनाथाय नम· ८ श्री चन्द्रप्रभवे नम·
९ श्री सुविधिनाथाय नमः १० श्री शीतलनाथाय नम
११. श्री श्रेयासनाथाय नम· १२ श्री वासुपूज्यनाथाय नमः
१३. श्री विमलनाथाय नम. १४ श्री अनतनाथाय नम.
१५ श्री धर्मनाथाय नमः १६. श्री शातिनाथाय नमः
१७ श्री कुथुनाथाय नमः १८ श्री अरनाथाय नम
१९ श्री मल्लिनाथाय नम· २०. श्री मुनिसुव्रतनाथाय नम.
२१ श्री नमिनाथाय नमः २२ श्री नेमिनाथाय नम.
२३ श्री पार्श्वनाथाय नमः २४ श्री महावीर स्वामिने नम.

अनागत चौवीसी जिन नाम

१ श्री पद्मनाभाय नम. २. श्री सुरदेवाय नमः
३ सुपार्श्वनाथाय नम. ४ श्री स्वयंप्रभवे नमः
५ श्री सर्वानुभूतये नमः ६. श्री देवश्रुतनाथाय नमः
७ श्री उदयनाथाय नम ८ श्री पेढालनाथाय नमः
९ श्री पोट्टिलनाथाय नमः १० श्री शतकीर्तये नम·
११ श्री सुव्रतनाथाय नम १२ अममनाथाय नमः
१३. श्री निष्कषायनाथाय नम· १४ श्री निष्पुलाकनाथाय नमः
१५. श्री निर्मलनाथाय नम. १६ श्री चित्रगुप्ताय नम.
१७ श्री समाधिनाथाय नमः १८ श्री सवरनाथाय नम.
१९. श्री यशोधरनाथाय नमः २०. श्री विजयनाथाय नमः

२१ श्री मल्लनाथाय नमः २२ श्री देवनाथाय नमः
२३ श्री अनंतवीर्यनाथाय नमः २४ श्री भद्रकृद्नाथाय नमः

बीस विहरमान जिन नाम

१. श्री सीमंधरस्वामिने नम. २. श्री युगमधरस्वामिने नमः
३. श्री बाहुजिनाय नमः ४ श्री सबाहुजिनाय नम.
५. श्री सुजातजिनाय नमः ६. श्री स्वयंप्रभवे नमः
७ श्री ऋषभाननाय नमः ८ श्री अनतवीर्याय नम
९. श्री सुरप्रभाय नमः १० श्री विशालनाथाय नमः
११. श्री वज्रंधराय नमः १२. श्री चन्द्राननजिनाय नमः
१३. श्री चंद्रबाहवे नमः १४ श्री भुजंगनाथाय नम.
१५. श्री ईश्वरनाथाय नमः १६. श्री नेमिप्रभवे नम.
१६. श्री वीरसेननाथाय नमः १८ श्री महाभद्राय नम
१९. श्री देवजसाजिनाय नमः २० श्री अजितवीर्याय नम.

श्री शाश्वत चार जिव नाम

१. श्री ऋषभाननजिनाय नम. २ श्री चंद्राननजिनाय नमः
३. वर्धमानजिनाय नमः ४. श्री वारिषेणजिनाय नमः

---

११३. श्री जिनगुण संपत्ति तप (नं. बं.)

श्री जिनेश्वर भगवान् के गुण गणनातीत है। उनकी समृद्धि या संपत्ति का वर्णन नही हो सकता। एक कवि ने कहा है कि—परमात्मा के गुण तो अनन्त है, जबकि मेरे तो

जिह्वा एक ही है और आयु के परिमित दिन है। इतने समय मे एक जिन्हा से मैं अनतगुणवाले परमात्मा के गुण किस तरह गा सकता हूँ ? यहाँ मात्र संक्षिप्त प्रकार से परमात्मा के नव्वे गुणो को लेकर उसके अनुसार तप करने की मर्यादा वताई है।

अरिहत परमात्मा को जन्म से चार, कर्मक्षय से ग्यारह और देवकृत उन्नीस अतिशय होते है। इस प्रकार ३४ अतिशय जिनेश्वर भगवत के होते हैं।

वीस तरह से तीर्थंकरनामकर्म का उपार्जन होता है, जिसके सम्वध मे तप नं. ८९ मे वता दिया गया है। च्यवन आदि पाच कल्याणक सम्वन्धी सक्षिप्त वर्णन तप न ५५ व तप न. ५८ में दर्शा दिया गया है। सिद्ध भगवत के इकतीस गुण होते है, इस तरह ३४+२०+५+३१=९० उपवास मे यह तप पूरा होता है।

चौतीस अतिशय सम्बधी वर्णन निम्न प्रकार हैं—

अतिशय अर्थात् प्रभाव सूचक लक्षण। इस बारे मे विस्तृत वर्णन श्री समवायागसूत्र के चौतीसवे सूत्र मे किया है।

जन्म से प्राप्त चार अतिशय

१. लोकोत्तर अद्‌भूत स्वरूपवान देह, २ सुगधी श्वासोच्छ्वास, ३ दूध की तरह मास तथा रुधिर, ४. चर्मचक्षुओ वाला आहार तथा ५ निहार के लिये अदृश्यपन।

ज्ञानावरणीयादि कर्म के क्षय से उत्पन्न ग्यारह अतिशय

१. समवसरण की रचना, २. अर्थगंभीर वाणी, ३. भाषा की सर्वदेशीयता, ४ आसपास के विस्तार मे

ज्वरादि रोगों का नाश, ५. परस्पर के वैर की शांति, ६ फसल को नाश करने वाले कीडो आदि का अभाव, ७. उपद्रवो की शांति, ८. अतिवृष्टि, ९. अनावृष्टि, १०. अकाल का अभाव, ११. स्वचक्रभय या परचक्रभय सभव नही।

देवकृत उन्नीस अतिशय

१. धर्मचक्र का घूमना, २. चवर का ढुलना, ३. पादपीठ सहित सिंहासन का चलना, ४. तीन छत्रो को धारण करना, ५. रत्नमय ध्वज का आगे आगे चलना, ६. स्वर्णकमल की रचना, ७. समवसरण के आसपास तीन प्रकार के किलो की रचना, ८. उपदेश के समय चारो दिशाओं मे परमात्मा के चार मुंह दिखना, ९. श्री तीर्थंकर परमात्मा जहा विराजते हो वहां अशोक वृक्ष की रचना का होना, १० रास्ते के काटों का अधोमुख होना, ११. वृक्ष की शाखाओं का झुक कर नमन करना, १२. देवदुदुभी बजना, १३. सवर्तक जाति का पवन चलना, जिससे कचरा आदि मलिन पदार्थ दूर हो सब को सुखदायक प्रतीत हो, १४. पक्षियो द्वारा प्रदक्षिणा देना, १५ गधोदक की वृष्टि होना, १६. पचरंगी दिव्य पुष्पो की वर्षा होना, १७. श्री तीर्थंकर परमात्मा के मस्तक के बाल, दाढी, मूछ तथा हाथ पैर के नखों की वृद्धि न होना, १८. अनेक देवो का समीप रहना, १९. अनुकूल और मनोहर ऋतुओ का होना।

श्री जिनगुण सम्पत्ति तप विधि

इस तप मे नब्वे उपवास पृथक्-पृथक् करने वे इस प्रकार— तीर्थंकर नामकर्म के बीस, तिर्थंकर के सहज अतिशय चार,

कर्मक्षय से हुए अतिशय ग्यारह, देवकृत अतिशय उन्नीस, इतने गुण आश्रमी एक एक उपवास करते नव्वे उपवास मे तप पूरा होता है ।

नमो अरिहंताण पद की बीस माला गिनना । स्वस्तिक आदि बारह बारह करना ।

---

११४. श्री जिन जनक तप और विधि

जिस तरह तप नं० ७२ श्री जिनेश्वर भगवत की माताओ को लक्ष्य मे रख किया जाता है वैसे ही श्री जिनेश्वर भगवत के पिताओ को लक्ष्य मे रख यह तप किया जाता है ।

वर्तमान चौवीसी के तीर्थंकरो मे प्रथम ऋषभदेव के पिता नाभिराजा नागकुमार निकाय मे देव हुए । श्री अजितनाथजी, चद्रप्रभस्वामी आदि सात तीर्थंकरो के पिता ईशान देवलोक मे गये । श्री सुविधिनाथजी से शातिनाथजी तक के आठ तीर्थंकरो के पिता सनत्कुमार देवलोक मे देव हुए । श्री कुंथुनाथजी से श्री महावीर स्वामी तक आठ तीर्थंकरो के पिता माहेद्र देवलोक मे गये ।

श्री महावीर स्वामी के प्रथम माता-पिता देवानदा और ऋषभदत्त विप्र का मोक्ष मे जाना और सिद्धार्थराजा और त्रिशला देवी का बारहवे अच्युत देवलोक मे जाने का भी उल्लेख मिलता है ।

पुण्यश्लोक पुरुषोत्तम त्रिजगद्‌गुरु परमात्मा के पिता भी उत्कृष्ट पुण्यशाली ही होते है इसलिए उनको लक्ष्य मे रख यह तप किया जाता है।

इस तप मे निरंतर वत्तीस आयंबिल करना। उद्यापन में जिनपूजा, गुरुभक्ति, संघभक्ति आदि करना।

नमो अरिहंताणं पद की २० माला गिनना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

११५. तेरह काठियों का तप

काठिया अर्थात लूटेरे। मार्ग मे चलते प्राणियो को रोककर जैसे लूटेरे लूट लेते हैं वैसे धर्म सन्मुख हुए प्राणियो को बीच में अटकाकर आलस आदि दुर्गुण धर्मरूपी धन लूट लेते हैं, जिससे उन्हे **काठिया** की उपमा दी गई है। तेरह काठियों के क्रम की जो योजना वनाई गई है वह भी बुद्धि मे आसके वैसी है।

धर्म करने वाले प्राणी को पहले आलस आता है। कुछ पुरुपार्थ कर वह जाग्रत होता है। तब मोह सुभट जोर लगाता है। मोह को कुछ परास्त किया जाता है तो तिरस्कार काठिया जोर लगाता है। उसे रोका जाता है तब अभिमान रूपी काठिया आ पहुँचता है। इस तरह इन काठियो का क्रम संकलन योजनावद्ध है। विस्तृत विवेचन के लिये '**तेरह काठियों का रास**' पढ़ना।

श्री तेरह काठिया तप विधि

प्रथम एक अट्ठम कर पारणे पर लपसी का एकासना करना, ठाम चऊविहार करना। दूसरे अट्ठम के पारणे गेहूँ की

रोटी का एकासना करना। तीसरे अट्ठम के पारणे क्षीर का एकासना करना। चौथे अट्ठम के पारणे मान को छोडकर परघर[1] जाकर एकासना करना। पाचवे अट्ठम का पारणा परघर जाने पर वे कहें कि पारणा करो तो पारणा करना। छटे अट्ठम के पारणे पर दो कटोरी लेकर एक में घी और एक मे पानी भरकर ढक देना, फिर अनजान मनुष्य से कोई एक कटोरी खुलवाना, घी की खुले तो एकासना और पानी की खुले तो आयबिल करना। सातवे अट्ठम के पारणे पर छै घर दूसरों के और एक घर अपना ऐसे सात घरों में से कही एक जगह करना। आठवे अट्ठम के पारणे पर उडद के बाकले मुनिराज को वहोराकर स्वयं भी वही लेना। नवे अट्ठम का पारणा रोटी अथवा पूडी से करना। परन्तु गरम गरम नही खाना। दसवे अट्ठम का पारणा गेहूँ गुड़ की चक्की मिले तो लेना परन्तु गरम नही खाना। ग्यारहवे अट्ठम का पारणा किशमिश, खजूर आदि मेवो से करना। अभक्ष्य मेवा नही खाना। बारहवें अट्ठम का पारणा मिश्री के पानी का करना। तेरहवें अट्ठम का पारणा शक्कर, दही से करना। सब ही पारणे एकासना ही करना। यह तप पृथक पृथक अट्ठम करके भी किया जा सकता है। कुल १३ अट्ठम और १३ पारणे मिलकर बावन दिन मे यह तप पूरा होता है। स्वस्तिक आदि आठ आठ करना। गुणना निम्न प्रकार करना।

१. आलसकाठीयो निवारकाय सिद्धाय नमः या ॐ ह्रीधम्मोज्ज-मियाण नम.

२. मोहकाठीयो निवारकाय ,, ,, विजयरागाण ,,

---

१ परघर अर्थात् अपने सम्बन्धी का घर, परन्तु अनजान होकर जाना

३. अवज्ञाकाठीयो निवारकाय सिद्धाय नमः या ॐ ह्रीं विनय धारिणं नमः

४. मानकाठियो ,, ,, ,, मद्दवगुणसंपन्नाणं ,,
५. क्रोधकाठियो ,, ,, ,, खंतिगुणसपन्नाणं ,,
६. प्रमादकाठियो ,, ,, ,, अघमतचारिण ,,
७. कृपणकाठियो ,, ,, ,, दानलद्धीसंपन्नाणं ,,
८. भयकाठियो ,, ,, ,, ववगयभयाण ,,
९. शोककाठियो ,, ,, ,, वीयसोयाणं ,,
१०. अज्ञानकाठियो ,, ,, ,, सुमईनाणधराणं ,,
११. व्याक्षेपकाठियो ,, ,, ,, लद्धीजुत्ताण ,,
१२. कुतूहलकाठियो ,, ,, ,, अप्पकम्मसंवरधारिण,
१३. विषयकाठियो ,, ,, ,, अट्ठपयवणजणणीधारिण नम.

अथवा **नमो सिद्धाणं** पद की वीस माला गिननी। तेरह काठियों के तेरह अठ्ठम आयविल के पारणे वाले भी किये जाते हैं।

---

११६. श्री देवल इंडा तप और विधि
(विधि प्रपा.)

इस तप मे वियासणा ५, एकासना ७, नीवो ९, आयंविल ५, उपवास १—इस तरह २७ दिन मे यह तप पूरा होता है।

नमो अरिहंताणं पद की २० माला गिनना। स्वस्तिक आदि बारह-बारह करना।

---

११७. श्री द्वादशांगी तप और विधि

(जैन प्र. नं. ब.)

बारह अगो के समूह को द्वादशागी कहते है । अभी आचाराग सुयगडाग आदि ग्यारह अंग प्रचलित हैं । इनका सक्षिप्त वर्णन तप नं० १०८ में—पैतालीस आगमो के तप में किया गया है ।

बारहवा **दृष्टिवाद** नाम का अग था । परन्तु वह बारह वर्षीय भयकर अकाल मे नष्ट हो गया ।

इस तप मे शुक्ल पक्ष की बारस, बारह माह तक करना । एकासना आदि तप करना ।

उद्यापन ज्ञानपचमी के तप की तरह करना ।

दुवालसंगीणं नमः पद की २० माला गिनना । स्वस्तिक आदि बारह-बारह करना ।

---

११८. श्री नव निधान तप

(ला. वि. प्र.)

नो निधानो की प्राप्ति, मुख्यतः चक्रवर्ती को होती है । पुण्यशाली भी आठ महासिद्धि और नो निधी की इच्छा करते है । महान् पुण्य राशि एकत्र होती है तब नो निधि की प्राप्ति

होती है । ये निधान एसे हैं कि इनका कभी नाश नही होता ।
नो निधानो का सक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है ।

१. **नैसर्गनिधान**—इससे छावनी, शहर, ग्राम, खान, द्रोणमुख, मण्डप और पत्तन आदि का निर्माण होता है ।

२. **पांडुकनिधान**—इससे मान, उत्मान और प्रमाण इन सबका गणित तथा धान्य और बीज सम्भव होते है ।

३. **पिंगलनिधान**—इससे नर, नारी, हाथी और घोड़ा के सर्व जाति के आभूषणों की विधि जानी जा सकती है ।

४. **कालनिधान**—इससे वर्तमान, भूत और भविष्य तीनों काल का ज्ञान, कृषि आदि कर्म और अन्य शिल्पादि का ज्ञान होता है ।

५. **महाकालनिधान**—इससे परवाला, चांदी, स्वर्ण, मुक्ताफल, लोहा तथा लोहादि धातुओ की खान उत्पन्न होती है ।

६. **माणवनिधान**—इससे योद्धा, आयुध और कवच की सम्पत्तिया तथा सब प्रकार की युद्धनीति और दण्डनीति प्रकट होती है ।

७. **सर्वरत्नक निधान**—इससे चक्ररत्न आदि सात एकेन्द्रिय और सात-पचेंद्रिय रत्न उत्पन्न होते हैं ।

८. **महापद्मनिधान**—इससे सब प्रकार के शुद्ध और रंगीन वस्त्र उत्पन्न होते हैं ।

९. **शंखनिधान**—इससे चार प्रकार की काव्य की सिद्धि नाट्य-नाटक की विधि और सब प्रकार के वाजित्र निष्पन्न होते हैं ।

ये महानिधियां गंगा नदी के मु ह मे मागध तीर्थ मे रहती है। ये निधिया आठ चक्र पर प्रतिष्ठित हुई होती हैं। आठ योजन ऊँची, नो योजन चौडी और दस योजन लम्बाई में होती है। इन निधानो के जैसे नाम वाले, पल्योपम की आयु वाले नागकुमार निकाय के देव उनके अधिष्ठायक होते है।

नो निधान की प्राप्ति के लिए यह तप अवश्य करना चाहिए।

नो निधान तप विधि

यह तप शुक्ल पक्ष की नवमी के दिन उपवास करने से पूरा होता है। स्वस्तिक आदि नो नो करना व गुणना इस प्रकार करना—

१. श्री नैसर्गनिधानाय नम.
२. श्री पाडुकनिधानाय नमः
३. श्री पिगलनिधानाय नमः
४. श्री कालनिधानाय नम
५ श्री महाकाल निधानाय नमः
६. श्री माणवनिधानाय नमः
७ श्री सर्वरत्नक निधानाय नम
८. श्री महापद्म निधानाय नमः
९. श्री शखनिधानाय नम.

उद्यापन मे प्रभु के नो अगो पर तिलक चढाना।

---

११९. श्री बड़ा दस पच्चक्खाण तप और विधि (पं. त. आदि)

विवाहित जीवन के बाद स्त्रियो मे यह तप बहुत प्रचलित है। कोई कोई कुमारी अवस्था मे भी छोटे-बड़े दस पच्चक्खाण का तप करती हैं।

पहले दिन तिविहार उपवास, दूसरे दिन एकासना, तीसरे दिन एक चांवल का एकासना, चौथे दिन नीवी, पांचवे दिन एक कवल - ठाम चउविहार, छटे दिन एक अगीय एकासना अर्थात् एक हाथ और मुंह सिवाय दूसरा अग नहीं हिलाना-ठाम चउविहार, सातवे दिन दत्ति आयंविल-ठाम चउविहार, आठवे दिन आयंविल-तिविहार, नवे दिन परघरिया एकासना ठाम चउविहार तथा दसवें दिन खांखरे का आयंविल ठाम चउविहार करना। गुणना, स्वस्तिक आदि निम्न प्रकार करना।

		सा. ख. लो. नो.
१.	श्री समकित पारंगताय नमः	६७-६७-६७-२०
२.	श्री अक्षयसमकिताय नमः	१७-१७-१७-२०
३.	श्री समकितनिधिनाथाय नमः	८- ८- ८-२०
४.	श्री केवलज्ञानिनाथाय नमः	२१-२१-२१-२०
५	श्री एकत्वगताय नमः	३१-३१-३१-२०
६.	श्री स्वर्णनिधिनाथाय नमः	४५-४५-४५-२०
७.	श्री गौतमलब्धिनाथाय नमः	२८-२८-२८-२०
८.	श्री अक्षयनिधिनाथाय नमः	९- ९- ९-२०
९.	श्री परव्रताय नम.	१३-१३-१३-२०
१०.	श्री मुनिसुव्रताय नमः	१२-१२-१२-२०

उद्यापन में दस मोदक प्रभु के आगे रखना। ज्ञान पूजा करना और अष्टप्रकारी पूजा पढ़ाना।

---

१२०. श्री छोटा दस पच्चक्खाण तप और विधि (प. त. आदि)

इस तप मे प्रथम एक उपवास, दूसरे दिन एकासना, तीसरे दिन आयंविल, चौथे दिन एकासना, पाचवे दिन नीवी, छटे दिन एक कवल, सातवे दिन क्षीर का एकासना, आठवे दिन खोपरे का एकासना, नवे दिन पूरा भाण एकासना, तथा दसवे दिन उपवास। इस तरह दस दिन करना। गुणना, उद्यापन आदि बड़े दस पच्चक्खाण की तरह करना।

---

१२१. श्री नवपद ओली (सिद्धचक्र आराधना)

दिन प्रतिदिन श्री नवपदजी की ओली का महात्म्य बढता जा रहा है। इस ओली के बारे मे कुछ बताना दिन मे सूर्य को दीपक वताने जैसा है। इस ओली की आराधना से अनेक भव्य प्राणी इस भवसागर से पार हुए हैं; फिर भी राजा श्रीपाल और मयणासुन्दरी ने श्री नवपदजी की आराधना से जो ऋद्धि सिद्धि प्राप्त कर आत्मश्रेय साधा उस कारण इस तप की विशेष प्रसिद्धि हुई है। श्रीपाल राजा और मयणासुन्दरी का संक्षिप्त वृत्तात निम्न प्रकार है। विस्तृत विवेचन के लिए श्रीपाल राजा का रास अर्थ-वाला या श्रीपाल चरित्र पढ़ना चाहिए।

श्रीपाल और मयणा सुन्दरी

इस भरतक्षेत्र के अवती प्रदेश मे उज्जयिनी नगरी थी। वहा प्रजापाल राजा राज्य करते थे। उनके सुरसुन्दरी और मयणासुन्दरी दो पुत्रिया थी। सुरसुन्दरी की माता सौभाग्य सुन्दरी मिथ्यात्व मार्ग को मानने वाली थी इसलिए सुरसुन्दरी मिथ्यात्व मार्ग मे दृढ वनी और मयणासुन्दरी की माता रूपसुन्दरी श्रीजिनेश्वर देव के मार्ग में दृढ होने से मयणासुन्दरी श्री जिनेश्वर देव के मार्ग मे श्रद्धावान वनी।

दोनो राजकुमारियो को अलग अलग पडितों के पास अभ्यास कराया। अभ्यास पूर्ण होने पर एक दिन अपने अपने पडितो की उपस्थिती मे राजा प्रजापाल ने राज्यसभा मे ही दोनो राजकुमारियों की परीक्षा लेते पूछा कि—हे पुत्रियो! **पुण्य से क्या प्राप्त होता है?** मिथ्या मार्ग के शिक्षण से सुरसुन्दरी ने वताया कि—हे पिता! पुण्य द्वारा धन, सुन्दर रूप, अच्छा कुटुम्ब और भोग सामग्री आदि प्राप्त होते हैं। सुरसुन्दरी के जवाव से राजा वहुत प्रसन्न हुए।

श्री जिनेश्वर भगवत के धर्म मे दृढ श्री मयणासुन्दरी को भी वही प्रश्न पूछने पर उसने वताया कि—हे पिता! जीव को जो शुभ-अशुभ सयोग प्राप्त होते है वे सव पूर्व भवो मे सचित किए कर्मो के अनुसार भोगने पडते है, इसमे अन्य जीव तो निमित्तमात्र हैं। मयणा का यह उत्तर राजा को अच्छा नहीं लगा। इससे वे क्रोधित हो गये। पिता के गुस्से से जरा भी घवराए विना मयणासुन्दरी ने राज्यसभा मे कर्म-सत्ता के सिद्धांत पर अच्छी तरह प्रकाश डाला, इससे अधिक क्रोधित हो राजा प्रजापाल ने मयणा को वताया कि—हे मयणा! मैं अभी भी तुझे वता देता हूँ कि यदि तुझे सुखी होना हो तो

अपने कर्मवाद को भूल जा अपने कदाग्रह को छोड दे। मैं तेरी श्रेष्ठ राजकुमार के साथ शादी कर दूंगा परन्तु यदि तू अपने कर्म सिद्धांत पर अडी रहेगी तो तेरी कर्मसत्ता दुखी-निर्धन को खीच लायेगी और उसीके साथ विवाह करूंगा।

पिता के ऐसे आक्रोशपूर्ण वचन सुनकर मयणा ने बडी शांति से पिता को कहा कि—हे पिता! जिसके साथ मेरा सम्बन्ध होना होगा वही व्यक्ति आपको मिल जायगा। मयणा का यह उत्तर सुनकर अभिमान मे अधे बने राजा ने मयणासुन्दरी को कोढियों के सरदार उबर राजा को दी और सुरसुन्दरी की महामहोत्सव पूर्वक राजकुमार के साथ शादी की।

महासती मयणासुन्दरी ने उंबर राजा के आवास स्थान पर आने के बाद उबर राजा ने उसकी कई तरह से परीक्षा ली। वह सब परिक्षाओ मे स्वर्ण की तरह चमकती रही। कुष्ट रोगी उंबर राजा की पतिदेव की तरह सेवा करने लगी।

मयणासुन्दरी और उंबर राजा देशाटन करते करते एक वक्त मार्ग मे आए श्री जिनेश्वरदेव के मदिर मे दर्शन करने गये। मयणा ने एकाग्रता से परमात्मा की भक्ति की इसलिए प्रसन्न हुए अधिष्ठायक देव ने प्रभु के गले की पुष्पमाला मयणासुन्दरी को दी और हाथ मे रहा बीजोरा उबर राजा को दिया।

प्रभु भक्ति पूरी कर दोनो मदिर के पास उपाश्रय में गुरु महाराज को वदन करने गये। आचार्य भगवत ने वंदन करती मयणासुन्दरी को पहिचान ली। उन्होने उसकी इस दुर्दशा का कारण पूछा तव उसने कर्मवाद के सिद्धांत संवधी वाद-विवाद

जो पिताजी के साथ हुआ था वह सब बताया। दया के भण्डार गुरु महाराज ने मयणासुन्दरी को आश्वासन देते हुए बताया कि—बहिन ! शांति रख, दुःख मे धीरज रखना यही मनुष्य का भूषण है। हम तो साधु हैं, हमको संसार की आधि-व्याधि या उपाधि नही होती। हम न दया करते हैं और नही औषधि देते हैं। हमारे पास तो समस्त रोगों की एक ही औषधि है और उसका नाम **धर्म** है। तू भाग्यशाली मालूम होती है। धर्म के प्रभाव से सब अच्छा ही होगा। तू एकचित्त से धर्म ध्यान करना। आगमरूपी सागर को विलोकर मक्खन रूप मंत्र तुझे बताता हूँ, उसकी तू एकचित्त से आराधना कर। यह महा प्रभाविक यंत्र है **श्री नवपद यंत्र।** इसका ध्यान धर और श्री सिद्धचक्र की आराधना कर। इसके प्रभाव से सारे दुःख-दारिद्र दूर हो जायेंगे।

नवपद में प्रथम पद है—**अरिहंत** जिन्होने संसार से तिरने का मार्ग बताया। दूसरा पद **सिद्ध** भगवत का है जिन्होने भवसागर पार कर सिद्धगति प्राप्त की। तीसरा पद **आचार्य** जो पंचाचार के पालक और धर्म के नायक हैं। चौथा पद **उपाध्याय** का है जो अज्ञानी को भी ज्ञानमार्ग बताते हैं और शिष्यो को वाचन देते है। पाचवां पद **साधु** का है, जो कचन-कामिनी के त्यागी होते हैं, शील-संयम के पालक होते है। छठा पद **दर्शन** है जो शासन के प्रति सच्ची श्रद्धा उत्पन्न करता है। सातवां पद **ज्ञान** है, जो हिताहित के विचार बताता है ज्ञान तथा ज्ञानी का आदर करना बताता है। आठवां पद **चारित्र** है, जिसमे आठ कर्मो को क्षय करने की शक्ति है। नवा पद **तप** है, तपश्चर्या की शक्ति अमोघ है। निकाचित कर्मों को भी दूर करने की शक्ति तप मे है।

मयणासुन्दरी ने गुरु के वचन स्वीकार किए और उसके अनुसार आसोज तथा चैत्र मास मे श्री नवपदजी की शुद्ध मन से आराधना शुरू की । कुछ समय बीतते ही नवपदजी के प्रक्षाल-जल से श्रीपाल का कुष्ट रोग दूर हो गया और सात सौ कुष्ट रोगी भी निरोग हो गये । सर्वत्र आनन्द ही आनन्द फैल गया और नवपदजी की महिमा सब तरफ फैल गई ।

भाग्ययोग से महाराणी कमलप्रभा भी देशाटन करती करती जहां पुत्र श्रीपाल (उबर राजा) थे वहां आ पहुँची और पुत्र को राजकुमारी के साथ देख आनंदित हुई ।

माता को अचानक आया देख श्रीपाल के हर्ष की सीमा न रही । उन्होंने तुरन्त माता से पूछा कि मुझे कुष्ट रोगियो के पास छोडकर आप कहा चले गये थे ? तब माता ने कहा कि-हे पुत्र ! तुझे कुष्ट रोग हो गया था जिससे मुझे अत्यत दु ख हुआ था तब किसी मनुष्य से ज्ञात हुआ कि कौशाबी नगरी मे कुष्ट व्याधि दूर करने वाला वैद्य है । इसलिए मैं कौशाबी नगरी मे गई परन्तु अभाग्य से वैद्य के बाहर गाव चले जाने से वे नही मिल सके । तब निराश हो मैं जिन मदिर मे दर्शन कर, उपाश्रय मे रहे गुरु महाराज को वंदन करने गई । वदन कर, तेरे सम्बन्ध मे निवेदन किया तो उन्होने बताया कि—हे श्राविका ! तेरा पुत्र कुशलपूर्वक है । प्रजापाल राजा की पुत्री के साथ उसका विवाह हो गया है । श्रीनवपदजी की आराधना के प्रताप से उसका कुष्ट रोग दूर हो गया है और अभी तेरी पुत्र वधु के साथ अमुक स्थान पर आनन्द से दिन व्यतीत कर रहा है । ज्ञानी भगवत की सूचना के अनुसार मै ढूंढती-ढूंढती

यहां आई और मेरे पूर्व के पुण्योदय से तुझे पुत्र वधु के साथ देख अतिशय आनन्दित हुई।

उधर प्रजापाल राजा के दुष्कृत्य से क्रोधित हो मयणा की माता रूपसुन्दरी अपने भाई पुण्यपाल राजा के पास गई। धीरे-धीरे पुत्री सम्बन्धी शोक कम हुआ।

देवयोग से ऐसा हुआ कि श्रीपाल कुंवर, माता तथा पत्नी सहित उसी नगर मे जा पहुँचे और जिन मन्दिर मे दर्शन करने गये। रूपसुन्दरी भी उसी समय जिन मन्दिर मे दर्शन करने जा पहुंची। अपनी पुत्री मयणा को तेजस्वी राजकुंवर के साथ देख उसके दिल में अनेक शंकाए उत्पन्न हुई कि मेरी पुत्री की शादी तो कुष्टी के साथ हुई थी और यह तेजस्वी राजकुमार इसके साथ कैसे? श्रीपाल की माता कमलप्रभा ने रूपसुन्दरी को विचारमग्न देख सारा वृत्तान्त वताया तव रूप सुन्दरी भी अत्यन्त प्रसन्न हुई। फिर वातचीत के अन्त मे रूपसुन्दरी ने कमलप्रभा से श्रीपाल के कुल सम्बन्धी वात पूछी तव उसने शुरू से सारा वृत्तांत वताया कि मेरे पति सिंहरथ राजा की मृत्यु के वाद मेरे दो वर्ष के पुत्र श्रीपाल को गद्दी पर विठाया गया। परन्तु मेरे देवर अजितसेन के मन मे दगा आने से इसे मारने का षड्यन्त्र करने लगा। इस वात की खवर मन्त्री द्वारा मुझे लगी इसलिए रात्रि मे मैं चुपचाप पुत्र को लेकर निकल भागी। अजितसेन को समाचार मिलने पर उसने चारो तरफ सुभट भेजे। मैं पकड़ी जाने वाली ही थी कि इतने मे भाग्य से मुझे सात सौ कुष्ट रोगियो का समूह मिला। उन्होने मुझे वहिन कहकर बुलाया तव मैंने अपनी सारी कथा सुनाई इसलिये उन्होने हम दोनो को अपने झुण्ड मे छिपा लिया।

सुभट निराश हो वापिस लौट गये। कुष्ट समूह मे रहने से पुत्र को कुष्ट रोग हो गया। क्रोधित प्रजापाल राजा ने अपनी पुत्री की शादी इसके साथ कर दी। परन्तु सती मयणासुन्दरी के नवपद महाराज की आराधना से मेरे पुत्र का रोग दूर हो गया। यह सारा वृत्तान्त सुन रूपसुन्दरी भी बहुत प्रसन्न हुई। पुण्यपाल राजा को उसने सारी बात बताई तब वे उन्हे राजमहल मे ले गये।

भाग्य योग से उज्जयिनी नगरी से राजा प्रजापाल का अचानक वहा आना हुआ। अपनी पुत्री मयणासुन्दरी को तेजस्वी राजकुमार के साथ देखी। पहले तो वे चमके, परन्तु राजा पुण्यपाल ने जब सारा वृत्तान्त बताया तब उनका आश्चर्य हर्ष, में बदल गया। और अतिशय आग्रह कर अपनी पुत्री-जमाई को अपनी राजधानी उज्जयिनी में ले गये।

एक बार श्रीपाल कुंवर उज्जयिनी नगरी मे बाहर घूमने जाने के लिये हाथी पर बैठकर राजमार्ग से निकले तब उन्हे देखने के लिये प्रजा उलट पड़ी। इतने में एक झरोखे से एक स्त्री ने किसी से पूछा कि क्या राजा हाथी पर बैठकर बाहर जा-रहे है? तब उसने उत्तर दिया कि ये राजा नहीं है वरन् राजा के जमाई हैं। श्रीपाल ने यह सब सुन लिया। उनके दिल मे दुःख हुआ और तुरन्त अपने महल मे आकर माता कमलप्रभा को देशान्तर जाने की बात कही। कमलप्रभा ने अचानक देशान्तर जाने का कारण पूछा तो उन्होने हुई घटना बताकर माता से कहा कि मैं ससुर के नाम से पहिचा-नना नही चाहता। वास्तव मे शूर वीर और साहसी पुरुष

अपने बाहुबल से प्रसिद्ध होने की इच्छा करता है। माता ने भी सहर्ष आज्ञा दे दी।

शुभ मुहूर्त मे प्रयाण कर अनेक स्थानों पर घूमते-घूमते श्रीपाल कुमार भरूच नगर जा पहुँचे। वहा धवल सेठ के पांच सौ जहाज समुद्र में जाम हो गये थे। बहुत प्रयत्न करने पर भी जहाज बाहर नही निकलते थे। श्रीपाल कुमार ने नवपद के ध्यान से वे जहाज चलते करे इसलिये धवल सेठ ने उनका सत्कार कर उन्हे अपने साथ ले लिया। फिरते-फिरते वे बब्बर द्वीप पहुँचे। वहा के महाकाल राजा को जकात-चुंगी न देने के अपराध मे धवल सेठ को पकड लिया। श्रीपाल कुमार ने अकेले ही सैनिकों से युद्ध कर सेठ को छुड़ाया और ढाई सौ जहाज प्राप्त किये। कुमार के इस बाहुबल से प्रसन्न हो महाकाल राजा ने अपनी पुत्री **मदनसेना** का उनके साथ विवाह कर दिया।

वहां से प्रयाण कर वे सब रत्नद्वीप पहुँचे। वहां किसी देव कोप से जिन मन्दिर का द्वार बन्द था वह श्रीपाल की दृष्टि पड़ते ही खुल गया जिससे सतुष्ट हुए कनकध्वज राजा ने अपनी पुत्री **मदन मंजूषा** का उनके साथ विवाह कर दिया।

वहां से वे समुद्री मार्ग से आगे बढ़े। श्रीपालकुमार का उत्कर्ष देख धवल सेठ को ईर्षा होने लगी। अपने ढाई सौ जहाज उन्हे देने पड़े तथा दो राजकुमारियों के साथ विवाह हुआ। इसलिये किसी तरह उन्हे मारकर सब हस्तगत करने का विचार किया। एक दिन श्रीपालकुमार को विश्वास मे लेकर कौतुक दिखाने के बहाने एक सूत के झूले में बिठाकर

कपट से उसे काट डाला, जिससे कुमार समुद्र में गिर गये, परन्तु गिरते ही कुमार ने श्री नवपद का ध्यान किया वास्ते एक विशालकाय मगरमच्छ ने उन्हे अपनी पीठ पर उठा लिया और उन्हें कोकण देश के थाना बंदरगाह के किनारे पर छोड़ दिया। वहा नजदीक मे चपा के वृक्ष के नीचे विश्राम लेने को सो गये और उन्हें नीद आ गई।

इधर ऐसा हुआ कि थाना नरेश को किसी ज्योतिषी ने बताया कि चपा के वृक्ष के नीचे सोता हुआ व्यक्ति मिलेगा वह आपकी पुत्री मदन मजरी का स्वामी होगा। राजसैनिकों ने ढूंढते-ढूंढते श्रीपालकुमार को वहा देखा और वे उन्हें सम्मानपूर्वक राजमहल मे ले गये। वसुपाल राजा ने उनका आदर सत्कार किया और अपनी पुत्री की शादी उनके साथ कर दी और राज्य दरबार मे उच्च स्थान दिया।

उधर श्रीपालकुमार के समुद्र में गिर जाने पर दुष्ट धवल सेठ ने श्रीपाल की दोनो पत्नियो का शील तथा जहाज व माल लेने का प्रयास किया परंतु श्रीचक्रेश्वरी देवी की कृपा से उसकी इच्छा पूरी नही हुई। फिर जहाजो को उत्तर दिशा में ले जाने का प्रयास किया गया परन्तु दैवयोग से पवन के प्रतिकूल होने से जहाज कोकण देश के थाना बदरगाह पर जा पहुचे।

अच्छी भेट लेकर धवल सेठ वसुपाल राजा की सभा मे गया वहा श्रीपालकुमार को देखते ही वह आश्चर्य चकित हुआ। वह श्रीपालकुमार ही है यह खातरी करके किसी भी प्रकार उसे मार डालने का षड़यन्त्र रचा। चाण्डाल जाति

के सरदार को एकांत में बुला, उसे खूब प्रलोभन दे, श्रीपाल को चाण्डाल सिद्ध करने का प्रयास किया, जिससे राजा क्रोधित हो श्रीपाल को वध करने का आदेश दे और अपना कार्य सिद्ध हो।

परंतु प्रकृति का नियम है कि जो खड्डा खोदता है वही उसमे गिरता है। चाण्डाल का सरदार राज्यसभा मे श्रीपाल कुमार के पास जाकर उन्हे पकडकर कहने लगा कि—हे पुत्र! अब तक तू कहां था? तेरे बिना मेरे दिन दुःख से बीत रहे है। चल अपने घर चल, तेरी माता तेरे बिना दुखी हो रही है। यह सब देखकर राजा ने क्रोधित हो आवेश मे श्रीपालकुमार का वध करने का आदेश दे दिया। राजकुमारी ने बीच मे आकर पिता से निवेदन किया कि पहले इनसे कुल संबंधी वृत्तात तो पूछे और फिर आप अपना आदेश दें।

राजा ने पुत्री के निवेदन पर विचार कर श्रीपाल को उनके कुल के बारे में पूछा तब श्रीपाल कुमार ने कहा कि—शूरवीर का कुल उसकी बहादुरी से जाना जाता है। आप अपने सब सैनिको को मेरे सामने भेजो तब मेरे कुल का पता लग जायगा। अथवा विशेष जानकारी करना हो तो बंदरगाह मे आये जहाज मे मेरी दो पत्निया है, उनसे पूछ लो। तब वसुपाल राजा ने दोनो राजपुत्रियो को जहाज से बुलाकर पूछने पर श्रीपाल कुवर के गोत्र, कुल, शूरवीरता सम्बन्धी सब वृत्तात मालूम हुआ। तब कपटी चाण्डाल को वध करने का आदेश दिया तो चाण्डाल बोला कि मैंने यह सब कार्य धवल सेठ के कहने से किया है, मैं निर्दोष हूँ। वसुपाल राजा को धवल सेठ पर गुस्सा आया इसलिए उसने सेठ का तत्काल वध

करने का हुकम दिया। यह आदेश सुनकर दयावान श्रीपाल-कुमार ने राजा को निवेदन कर उसे मुक्त करवाया। देखो, गुणी पुरुषो के लक्षण, वे अपकार करने वाले के साथ भी उपकार करते है।

धवल-सेठ को पिता तुल्य मानकर कुमार ने उसे अपने सात खण्डी महल मे रखा, परन्तु जहरीले साप को कितना ही दूध पिलाओ वह अपना जहर नही छोडता। धवल सेठ को एक दिन दुर्बुद्धि उत्पन्न हुई। उसने श्रीपालकुमार को तेज तलवार से मार डालने का विचार किया। रात्रि को घोर अधकार होने पर धवल सेठ तेज तलवार लेकर महल के ऊपरी भाग पर जाने लगा जहां श्रीपाल कुमार का शयन कक्ष था परन्तु सातवे खण्ड पर पहुँचते उसका पैर फिसलने से शरीर धूजने लगा, अपनी ही तलवार अपने देह मे लग जाने से उसी समय उसकी मृत्यु हो गई और मरकर सातवे नरक मे गया। धवल सेठ की अचानक मृत्यु के समाचार सुनकर कुमार ने उसकी सब उत्तर क्रिया की और उसकी धन दौलत विश्वासपात्र मनुष्य के साथ उसके कुटुम्बीजनों के पास पहुँचा दी।

फिर कुमार वहा से प्रयाण कर देशाटन करते-करते कई राजपुत्रियो से विवाह किया। वाद मे अपनी माता और मयणासुन्दरी से मिलने की अभिलाषा होने पर उज्जयिनी नगरी मे आकर उनसे मिले। वाद में प्रजापाल राजा को भी बताया कि कर्म के प्रभाव को देखो। राजा ने वास्तविकता स्वीकार कर श्रीपालकुमार और मयणा की हिम्मत व धैर्य की प्रशसा की।

बाद में एक दिन राजसभा पूरी भर गई उस समय शुभ प्रसग के अवसर पर श्रीपालकुमार ने अपने ससुर महीपाल राजा द्वारा प्रदत्त नव नट मण्डली को नाटक खेलने का आदेश दिया। नाटक का आदेश मिलने पर भी मुख्य नटी खडी नहीं हो रही थी। इस तरह रंग मे भंग पड़ते देख नाटक के सूत्र-धार ने गुस्से से उस नटी से कहा तब वह जोर-जोर से रोने लगी। प्रजापाल राजा ने उससे रोने का कारण पूछा तब उसने कहा कि—

मैं आपकी पुत्री सुरसुन्दरी हूँ और कर्मवश नटी बनी हूँ। यह हकीकत सुनते ही राजसभा मे हाहाकार मच गया। प्रजापाल राजा ने पुत्री को आश्वस्त कर, उसकी इस स्थिति का कारण पूछा तो सुरसुन्दरी कहने लगी।

आपने शखपुरी के राजकुमार अरिदमन के साथ मेरा विवाह कर दिया। हम अपनी नगरी मे पहुँचे उससे पहले रात हो गई इसलिए हम नगर के बाहर उद्यान मे ठहरे। इतने मे रात्रि को लूटेरो ने हमला कर सब कुछ लूट लिया। आपके जमाई मुझे अकेली छोड़कर भाग गये। चोरो ने मुझे पकडकर बव्वर देश के महाकाल राजा को बेच दी। वहा मुझे नृत्य सिखाया गया और जब महाकाल, राजा ने अपनी पुत्री का विवाह श्रीपालकुमार के साथ किया तब-सब नाटक मण्डली उन्हे दहेज मे दे दी। इस तरह मैं उनके साथ नृत्य करती फिरती रही हूँ परन्तु आज आप सबको देखकर मेरा हृदय भर आया।

प्रजापाल राजा ने अपनी पुत्री को हृदय से लगाया। श्रीपालकुमार ने उसे नृत्य मडली से मुक्त की और अरिदमन-

कुमार को बुलाकर उन्हें सौंप दी। इस घटना से प्रजापाल राजा को कर्मसत्ता के प्रभाव का पूरी तरह पता चल गया।

अब श्रीपालकुमार की इच्छा हुई कि अपने पिता का राज्य वापिस लेना चाहिए इसलिए उन्होने काका अजितसेन को कहलाया, परन्तु काका अजितसेन नही माने। अन्त में श्रीपालकुमार ने युद्धकर अपना राज्य लिया। अजितसेन को वैराग्य आजाने से दीक्षा ली और विहार करने लगे। घोर तपश्चर्या और सयम की भली प्रकार आराधना कर वे अवधिज्ञानी हुए।

विचरते-विचरते अजितसेन मुनि किसी समय चम्पापुरी नगरी के उद्यान मे पधारे। उन्हे आए जानकर श्रीपालकु वर सपरिवार उन्हे वदन करने गये। अजितसेन मुनि की सुन्दर देशना सुनने के बाद श्रीपालकुंवर ने उन्हे अपना पूर्वभव पूछा तव ज्ञानी मुनि ने सविस्तार सुनाकर वताया कि यह सब प्रभाव नवपद आराधना का है।

अपने महल को लौटकर श्रीपालकुमार नवपद की विशेष रूप से आराधना करने लगे, और उसका बड़े महोत्सव पूर्वक उद्यापन किया। अपनी अतुल सम्पत्ति का सदुपयोग उसके प्रचार - प्रसार मे किया और अन्त मे श्रीपाल तथा मयणा आदि नवपद आराधना के प्रताप से देवलोक मे गये। वहा से मनुष्य भव लेकर सिद्धगति प्राप्त करेगे।

श्री नवपद ओली विधि

चेत सुदी ७ से अथवा आसोज सुदी ७ से ओली शुरु करें। कदाचित् अगर तिथि घटी हो तो छट्ठ से, अगर वढी हो तो अष्टमी से शुरु करे। नौ दिन बराबर आयंबिल करे। भूमि को शुद्ध करके चौकी अथवा पट्टे के ऊपर निम्नलिखित काव्य और मंत्र से सिद्धचक्रजी की स्थापना करे—

पूर्णाङ्क–पूतं परमं पवित्रं, यदर्हदाद्याप्त–पदैर्विचित्रम्।
श्री सिद्धचक्रं हतवैरिचक्रं, नये सुपीठ नतसाधुशक्रम् ॥१॥

इयनवपयसिद्धं लद्धि विज्ञा–समिद्धं,
पयडियसरवग्गं ह्रींतिरेहा–समग्ग ।
दिसिवइ–सुरसारं खोणिपीढा–वयारं,
तिजयविजय चक्कं, सिद्धचक्कं नमामि ॥२॥

मन्त्र–ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधु सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तपोभूत श्री सिद्धचक्र अत्रावतरावतर स्वाहा। ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं श्री सिद्धचक्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ठः स्वाहा।

प्रभात समय में राइप्रतिक्रमण करके, वस्त्रो की पडिलेहण करे फिर मदिरजी मे अथवा जहां सिद्धचक्र जी की स्थापना की हो वहां जाकर पाच नमुत्थुणं० से वन्दना (देववंदन) करे। पीछे नौ मदिरों के दर्शन कर नौ चैत्यवदन करे, अगर नौ मदिरो का योग न हो तो एक ही मदिर मे एक बार चैत्यवदन

करना चाहिये। हमेशा दिन मे तीन बार पूजा करे। प्रातः काल वासक्षेप से पूजा करे। दोपहर के समय स्नात्र पूजा कर अष्ट प्रकार की पूजा और शाम को धूप, दीप से पूजा करे। दोपहर के समय गुरु के पास आकर राई आलोवे। अब्भुट्ठिओमि के पाठ सहित आयविल[1] का पच्चक्खाण लेवे। प्रथम अरिहत पद का वर्ण सफेद है अतएव चावल और गरम पानी से आयंबिल करे। पीछे अरिहत के बारह गुणों को विचार

---

१. आयविल मे प्राय निरस आहर लिया जाता है, यानि नमक, सौंठ आदि के मिलने से सरस बना आहार नही लेना, कारण ? नवाग सूत्र टीकाकार श्री अभयदेवसूरिजी महाराज अनुत्तरोपपातिकदशाग सूत्र की टीका मे लिखते हैं कि—"आयविल नाम शुद्धोदनादि" अर्थात् आयविल नाम उसका है जिसमे केवल चावल आदि शुद्ध अनाज ही लिया जाय, और शुद्ध अनाज वही कहा जा सकता है जिसमे नमक, सौंठ, हीग, कालीमिर्च आदि किसी भी स्वाद वृद्धिकारक वस्तु की मिलावट न हो। निशीथचूर्णी मे पाठ है कि—,'दोहि दव्वेहि आविल" मतलव—कोई भी एक अन्न और दूसरा पानी इन दो द्रव्यो से आयविल होता है। इसी तरह अभयदेवसूरिजी महाराज के समकालीन आचार्य श्री यशोदेवसूरिजी स्वरचित "प्रत्याख्यान स्वरूप गायाओ" में लिखते हैं कि—"जावइय उवजुज्जइ, तावइय भायणे गहे अणं। जलनिव्वुड्ड काउ भुतव्व एस इत्य विही ॥१॥ इन्ही प्राचीन शास्त्रकारो की आज्ञानुसार वडे दादा साहव श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज भी स्वरचित 'सदेह दोहवाली प्रकरण' मे लिखते हैं कि—"गिहिणो इह विहियायविलस्स कप्पति दुवि दव्वाइं। एग समुच्चियमवं, वीय पुण फासुय नीरं ॥१॥"

कर नमस्कार करे । प्रत्येक गुणों के पूर्व मे इच्छामि० से खमासमण देना चाहिये ।

इस प्रकार नमस्कार करके अणत्थ० कहकर १२ लोगस्स का कायोत्सर्ग कर प्रगट लोगस्स० कहे । पीछे स्वस्थान पर जाकर चैत्यवंदन करे । पच्चक्खाण पार आयंबिल करे । पीछे चैत्यवंदन कर पाणहार पच्चक्खाण करे । 'ॐ ह्री नमो अरिहंताण' इस पद की वीस माला फेरे । श्रीपाल चरित्र पढे अथवा सुने । पौन प्रहर दिन बाकी रहने से तीसरी वार नमुत्थुणं से देववन्दन करे । फिर सामायिक ग्रहण कर दिन रहते प्रतिक्रमण करें तथा मंदिरजी मे धूप पूजा कर आरती करे । सोने के पूर्व इरियावही० पडिक्कम कर चैत्यवदन करे । राई संथारा गाथा पढे अथवा सुने । जहा तक निद्रा न आवे वहां तक नवपद के गुणों का स्मरण करे । मन, वचन, काया से ब्रह्मचर्य का पालन करे ।

द्वितीय दिवस विधि

इसी तरह दूसरे दिन भी प्रभातिक क्रिया करे । सिद्ध पद का लाल वर्ण है अतएव गेहू का आयंविल करे 'ॐ ह्री णमो

वर्तमान समय मे गुजरात देश की तरफ जो आयंविल किया जाता है वह आयविल नही है नीवी है । कारण आयविल में दो द्रव्य लेने की आज्ञा है एक उबला हुआ अन्न दूसरा गरम जल ।

अतएव जो तपस्वी नमक, सौंठ, कालीमिर्च आदि कोई चीज लेना चाहें वे कृपया आयविल का पचक्खाण न लेवे, नीवी का पचक्खाण लेवे ताकि दोष के भागी न बनें ।

सिद्धाण' इस पद की २० माला गिने। सिद्धपद के आठ गुण हैं अतएव ८ नमस्कार खमासमण सहित करे और अणत्थ० कह आठ लोगस्स का कायोत्सर्ग करे। शेष विधि पूर्वोक्त करे।

तृतीय दिवस विधि

पूर्वोक्त विधि से प्रभातिक कृत्य करे। आचार्य पद का पीला वर्ण है अतएव चने का आयबिल करे। 'ॐ ह्री णमों आयरियाण' की २० माला गिने। आचार्य पद के गुणो का खमासमण सहित छत्तीस नमस्कार करे। इस प्रकार करके अणत्थ० पूर्वक ३६ लोगस्स का कायोत्सर्ग करे पीछे पारकर एक लोगस्स० कहे सपूर्ण शेष विधि पूर्वोक्त करे।

चतुर्थ दिवस विधि

'ॐ ह्रों नमो उपज्झायाणं' की बीस माला गिने। मूग का आयबिल करे। उपाध्याय पद के गुणो को खमासमण सहित २५ नमस्कार करे। इस रीति से २५ नमस्कार कर, अणत्थ सहित २५ लोगस्स का कायोत्सर्ग कर प्रगट लोगस्स० कहे। पूर्वोक्त शेष विधि प्रथम दिन की तरह करे।

पंचम दिवस विधि

'ॐ ह्रीं नमो लोए सव्व साहूणं' इस पद की २० माला गिने। साधु पद का रंग काला होने से उड़द का आयंबिल करे। साधु पद के २७ गुणो को खमासमण पूर्वक नमस्कार करे। २७ लोगस्स का कायोत्सर्ग करे। शेष संपूर्ण विधि पूर्ववत करे।

इन पंच परमेष्ठि के सब गुणों का जोड़ १०८ होता है अतएव माला मे भी दाने १०८ होते है।

षष्ठम दिवस विधि

'ॐ ह्री नमो दंसणस्स' की बीस माला गिने। दर्शन पद का वर्ण सफेद होने से चावल का आयंबिल करे। सम्यक्त्व के ६७ गुणों को खमासमण पूर्वक नमस्कार करे। पीछे ६७ लोगस्स का कायोत्सर्ग करना। शेष विधि पूर्ववत जानना।

सप्तम दिवस विधि

'ॐ ह्री नमो नाणस्स' इस पद की २० माला फेरे। ज्ञान पद का उज्ज्वल वर्ण है अत चावल का आयविल करे। ज्ञान पद के गुणो को खमासमण पूर्वक ५१ नमस्कार करे। पीछे अणत्थ० पूर्वक ५१ लोगस्स का कायोत्सर्ग पार प्रगट लोगस्स० कहे। शेष विधि पूर्वोक्त है।

अष्टम दिवस विधि

'ॐ ह्री नमो चारित्तस्स' इस पद की २० माला गिने। चारित्र पद का उज्ज्वल,वर्ण है अतएव चावल का आयविल करे। चारित्र पद के गुणो को खमासमण पूर्वक ७० नमस्कार करे। पीछे अणत्थ० सहित ७० लोगस्स का कायोत्सर्ग पार प्रकट लोगस्स० कहे। शेष विधि पूर्ववत।

नवम दिवस विधि

'ॐ ह्री नमो तवस्स' इस पद की २० माला गिने। चावल का आयविल करे। तप पद के गुणों की खमासमण पूर्वक ५०

नमस्कार करे। प्रत्येक गुण के पूर्व मे खमासमण देवे। पीछे अणत्थ० पूर्वक ५० लोगस्स का कायोत्सर्ग पार प्रगट लोगस्स० कहे। शेष विधि उपरोक्त समझना।

अत मे नवमे दिन अधिक भक्ति-भाव पूर्वक विधि अनुसार नवपद मण्डल पूजा करावे।

दसम दिवस विधि

मदिर और ज्ञान के खाते में तथा गुरु को यथाशक्ति दान देवे। साधर्मीवत्सल करे। यदि शक्ति न हो तो साधु-साध्वी को भात-पाणी (वहोरावे) का लाभ लेवे व शक्ति अनुसार कम से कम एक या अधिक व्रतधारी श्रावकों को भो न करावे।

दसवे दिन तप का उद्यापन करे। उद्यापन तप के बीच मे भी किया जा सकता है।

नवपद जयति (वन्दना)

नवपद जयति, चैत्यवदन, स्तवन, स्तुति

अरिहत पद की १२ जयति

अशोक वृक्ष प्रातिहार्य सयुक्ताय श्री अरिहताय नमः ॥ १ ॥
पुष्पवृष्टि प्रातिहार्य संयुक्ताय श्री अरिहताय नमः ॥ २ ॥
दिव्यध्वनि प्रातिहार्य सयुक्ताय श्री अरिहताय नम. ॥ ३ ॥
चामरयुग प्रातिहार्य सयुक्ताय श्री अरिहताय नम. ॥ ४ ॥
स्वर्ण सिहासन प्रातिहार्य सयुक्ताय श्री अरिहताय नम ॥ ५ ॥

भामण्डल प्रातिहार्य संयुक्ताय श्री अरिहंताय नमः ॥ ६ ॥
दुन्दुभि प्रातिहार्य सयुक्ताय श्री अरिहताय नमः ॥ ७ ॥
छत्रत्रय प्रातिहार्य संयुक्ताय श्री अरिहंताय नमः ॥ ८ ॥
ज्ञानातिशय संयुक्ताय श्री अरिहंताय नमः ॥ ९ ॥
पूजातिशय संयुक्ताय श्री अरिहंताय नमः ॥१०॥
वचनातिशय संयुक्ताय श्री अरिहंताय नमः ॥११॥
अपाया पगमातिशय संयुक्ताय श्री अरिहंताय नमः ॥१२॥

अरिहंत पद चैत्यवन्दन

जय जय श्री अरिहन्त भानु, भवि कमल विकाशी ।
लोकालोक अरूपी रूप, सम वस्तु प्रकाशी ॥१॥
समुद्घात शुभ केवले, क्षय कृत मल राशी ।
शुक्ल चरम शुचि पाद से, भयो वरन अविनाशी ॥२॥
अन्तरंग रिपु गण हणिए, हुए अथा अरिहन्त ।
तसु पद पंकज मे रहत, हीर धरम नित सन्त ॥३॥

अरिहन्त पद स्तवन

त्रीजे भव विधि से करी, बीस स्थानक तप करीने रे ।
गोत्र तीर्थंकर बांधियो, समकित शुद्ध मन धरीने रे ॥
अरिहन्त पद नित वंदिए, कर्म कठिन जिम छुडिए रे आं० ॥१॥
जन्म कल्याणक ने दिने, नारकी सुखिया थावे रे ।
मति श्रुत अवधि विराजता, जसु ओपम कोई नावे रे आं० ॥२॥
दीक्षा लीधी शुभ मने, मन पर्यव आदरियो रे ।
तप करी कर्म खपाई ने, ततखिण केवल वरियो रे आं० ॥३॥

[1]चउतीस अशितय शोभता, वाणी गुण पंतीसौ रे ।
अठदश दोष रहित थई, पूरे संघ जगीशो रे आं० ॥४॥
तन मन वयण लगाईने, अरिहन्त पद आराधे रे ।
ते नर निश्चय थी सही अरिहन्त पदवी साधे रे आं० ॥५॥

अरिहन्त पद स्तुति

सकल द्रव्य पर्याय प्ररूपक, लोकालोक स्वरूपोजी ।
केवलज्ञान की ज्योति प्रकाशक, अनन्त गुणे करि पूरो जी ॥
तीजे भव थानक आराधी, गोत्र तीर्थङ्कर नूरो जी ।
वारे गुणांकरी एहवां अरिहन्त, आराधो गुण सूरो जी ॥ १ ॥

श्री सिद्ध पद की ८ जयति

अनन्त ज्ञान संयुक्ताय श्री सिद्धाय नमः ॥१॥
अनन्तदर्शन संयुक्ताय श्री सिद्धाय नमः ॥२॥
अव्यावाध गुण सयुक्ताय श्री सिद्धाय नमः ॥३॥
अनन्त चारित्र गुण संयुक्ताय श्री सिद्धाय नमः ॥४॥
अक्षय स्थिति गुण संयुक्ताय श्री सिद्धाय नमः ॥५॥
अरूपी निरंजन गुण संयुक्ताय श्री सिद्धाय नमः ॥६॥
अगुरु लघु गुण संयुक्ताय श्री सिद्धाय नमः ॥७॥
अनन्तवीर्य गुण संयुक्ताय श्री सिद्धाय नमः ॥८॥

सिद्ध पद चैत्यवन्दन

श्री शैलेसी पूर्व प्रान्त, तनुहिनत भागी ।
पुव्व पओग असंग से ऊरध गत जागी ॥१॥

---

१ तीर्थंकर भगवान् को केवलज्ञान होने के वाद विहारकाल मे उपरोक्त अतिशय होते हैं ।

समय एक में लोक प्रान्त, गये निगुरण निरागो ।
चेतन भूपे आत्म रूप, सुदिसा लहि सागी ॥२॥
केवल दंसरण रणारणथी ए रुपातीत स्वाभाव,
सिद्ध भये तसु हीर धर्म वन्दे धरि शुभ भाव ॥३॥

सिद्ध पद स्तवन

सकल कर्म नो क्षयकरी, सिद्ध अवस्था पाई रे ।
गुरण इगतीस विराजता, ओपम जस नहीं कांई रे ॥
मन शुद्ध सिद्ध पद वंदिए ॥ १ ॥
जन्म मरण दुख निर्गम्यां, शुद्धातम चिद्रूपी रे ।
अनन्त चतुष्टय धारता, अव्याबाध-अरूपी रे ॥मन०॥२॥
जास ध्यान जोगीसरु, करे अजपा जापे रे ।
भव भव संच्यां जीवड़े, कठिरण करम ते कापे रे ॥मन०॥३॥
ध्यान धरतां सिद्धनु, पूजतां मनरागे रे ।
अविचल पदवी पाइये, कहयु जिनवर बड़भागे रे ॥मन०॥४॥

सिद्ध पद स्तुति

[1]अष्ट कर्म कूं दमन करीने, गमन कियो शिववासी जो ।
अव्याबाध सादि अनादि, चिदानन्द चिदराशीजो ॥१॥
परमातम पद पूर्ण विलाशी, अव घन दाघ विनाशीजो ।
अनन्त चतुष्टय शिवपद ध्यावो, केवलज्ञानो भाषोजो ॥२॥

---

१ सिद्ध भगवान में यह आठ गुण मोक्ष मे जाने के बाद पैदा हो जाते हैं ।

आचार्य पद को ३६ जयति

१. प्रतिरूप गुण सयुक्ताय श्री आचार्याय नम. ।
२. सूर्यवत्तेजस्वी गुण संयुक्ताय श्री आचार्याय नमः ।
३. युगप्रधान गुण संयुक्ताय श्री आचार्याय नम· ।
४ मधुर वाक्य गुण संयुक्ताय श्री आचार्याय नमः ।
५ गाम्भीर्य गुण संयुक्ताय श्री आचार्याय नम· ।
६ धैर्य गुण संयुक्ताय श्री आचार्याय नम. ।
७. उपदेश गुण संयुक्ताय श्री आचार्याय नम ।
८ अपरि श्रावी गुण संयुक्ताय श्री आचार्याय नमः ।
९ सौम्य प्रकृति गुण सयुक्ताय श्री आचार्याय नमः ।
१० शीतल गुण संयुक्ताय श्री आचार्याय नमः ।
११. अविग्रह गुण संयुक्ताय श्री आचार्याय नमः ।
१२. अविकथक गुण सयुक्ताय श्री आचार्याय नमः ।
१३. अचपल गुण संयुक्ताय श्री आचार्याय नम· ।
१४. प्रशांत वंदन गुण संयुक्ताय श्री आचार्याय नमः ।
१५. क्षमा गुण संयुक्ताय श्री आचार्याय नम. ।
१६. ऋजु गुण संयुक्ताय श्री आचार्याय नमः ।
१७. मृदु गुण संयुक्ताय श्री आचार्याय नमः ।
१८. सर्व संग मुक्ति गुण सयुक्ताय श्री आचार्याय नम. ।
१९ द्वादश विधि तप गुण सयुक्ताय श्री आचार्याय नमः ।
२०. सप्तदश विधि संयम गुण सयुक्ताय श्री आचार्याय नमः ।
२१. सत्यव्रत गुण संयुक्ताय श्री आचार्याय नमः ।
२२. शौच्य गुण सयुक्ताय श्री आचार्याय नमः

२३. अकिंचन गुण संयुक्ताय श्री आचार्याय नमः ।
२४. ब्रह्मचर्य गुण संयुक्ताय श्री आचार्याय नमः ।
२५. अनित्य भावना भावकाय श्री आचार्याय नमः ।
२६. अशरण भावना भावकाय श्री आचार्याय नमः ।
२७. संसार स्वरूप भावकाय श्री आचार्याय नमः ।
२८. एकत्व स्वरूप भावकाय श्री आचार्याय नमः ।
२९. अन्यत्व भावना भावकाय श्री आचार्याय नमः ।
३०. अशुचि भावना भावकाय श्री आचार्याय नमः ।
३१. आश्रव भावना भावकाय श्री आचार्याय नमः ।
३२. संवर भावना भावकाय श्री आचार्याय नमः ।
३३. निर्जरा भावना भावकाय श्री आचार्याय नमः ।
३४ लोक स्वरूप भावना भावकाय श्री आचार्याय नमः ।
३५. बोधिदुर्लभ भावना भावकाय श्री आचार्याय नमः ।
३६. धर्म दुर्लभ भावना भावकाय श्री आचार्याय नमः ।*

आचार्य पद चैत्यवन्दन

जिन पद कुल मुख रस अनिल, मित रस गुणधारी ।
प्रबल सबल धन मोह की, जिणतें चमुहारी ॥१॥
ऋज्वादिक जिनराज गीत, नय तय विस्तारी ।
भवकूपें पापें पडत, जग जन निस्तारी ॥२॥
पंचाचारी जीव के, आचारज पद सार ।
तिन कूं वन्दे हीर धर्म, अष्टोत्तर सौ वार ॥३॥

---

* आचार्य महाराज मे ये ३६ गुण अवश्यमेव होना ही चाहिये ।

आचार्य पद स्तवन

गुण छत्तीसे दीपता, पाले पंच आचारो रे।
जिन मारग, साचो कहे, युगप्रधान जयकारो रे॥
आचारज पद वंदिए—॥१॥
सारण वारण चोयणा, पडिचोयण चौ शिक्षा रे।
भव्य जीव समझायवा, देवाने ते दक्षा रे॥ आ.॥२॥
जिनवर सूरज आथम्या, परतिख दीपक जेहा रे।
सकल भाव परगट करे, ज्ञानमयी जसु देहा रे॥ आ.॥३॥
विधि सु पूजा साचवे, ध्यावे निज हित जाणी रे।
पावे लघुतर कालमां, आचारजपद प्राणी रे॥ आ.॥४॥

आचार्य पद स्तुति

पंचाचार कूं पाले उजवाले, दोष रहित गुणधारी जी।
गुण छत्तीसे आगमधारी, द्वादश अंग विचारी जी॥
प्रबल सबल घन मोह हरण कूं, अनिल समो गुणवाणी जी।
क्षमा सहित जे सयम पाले, आचारज गुणध्यानी जी॥१॥

उपाध्याय पद की २५ जयति

१. आचारांग सूत्र पठनगुण युक्ताय श्री उपाध्याय नयः।
२ सुयगडांग सूत्र पठन गुण युक्ताय श्री उपाध्याय नमः।
३. श्री ठाणाग सूत्र पठन गुण युक्ताय श्री उपाध्याय नमः।
४. श्री समवायांग सूत्र पठन गुण युक्ताय श्री उपाध्याय नमः।
५ श्री भगवती सूत्र पठन गुण युक्ताय श्री उपाध्याय नमः।

६. श्री ज्ञाता सूत्र पठन गुण युक्ताय श्री उपाध्याय नमः ।
७. श्री उपाशक दशा सूत्र पठन गुण युक्ताय श्री उपाध्याय नम· ।
८. श्री अंतगढ़ दशा सूत्र पठन गुण युक्ताय श्री उपाध्याय नमः ।
९. श्री अणुत्तरोववाई सूत्र पठन गुण युक्ताय श्री उपाध्याय नमः
१०. श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र पठन गुण युक्ताय श्री उपाध्याय नमः।
११. श्री विपाक सूत्र पठन गुण युक्ताय श्री उपाध्याय नमः ।
१२. उत्पाद पूर्व पठन गुण युक्ताय श्री उपाध्याय नमः ।
१३. आग्रायणी पूर्व पठन गुण युक्ताय श्री उपाध्याय नमः ।
१४. वीर्यप्रवाद पूर्व पठन गुण युक्ताय श्री उपाध्याय नमः ।
१५. अस्ति प्रवाद पूर्व पठन गुण युक्ताय श्री उपाध्याय नमः ।
१६. ज्ञान प्रवाद पूर्व पठन गुण युक्ताय श्री उपाध्याय नमः ।
१७. सत्य प्रवाद पूर्व पठन गुण युक्ताय श्री उपाध्याय नमः ।
१८. आत्म प्रवाद पूर्व पठन गुण युक्ताय श्री उपाध्याय नमः ।
१९. कर्म प्रवाद पूर्व पठन गुण युक्ताय श्री उपाध्याय नमः ।
२०. प्रत्याख्यान प्रवाद पूर्व पठन गुण युक्ताय श्री उपाध्याय नमः ।
२१. विद्या प्रवाद पूर्व पठन गुण युक्ताय श्री उपाध्याय नमः ।
२२. अबिन्ध्य प्रवाद पूर्व पठन गुण युक्ताय श्री उपाध्याय नमः ।
२३. प्राणायाम प्रवाद पूर्व पठन गुण युक्ताय श्री उपाध्याय नमः ।
२४. क्रिया विशाल पूर्व पठन गुण युक्ताय श्री उपाध्याय नमः ।
२५. लोक बिन्दुसार पूर्व पठन गुण युक्ताय श्री उपाध्याय नमः ।*

---

* उपाध्याय महाराज २५ गुणो करके साहित होते है, वर्तमान मे ११ अग, १२ उपाग, ६ छेद ग्रथ, १० पइण्णा, ६ मूल सूत्र, इन ४५ आगमो के जानकार होना चाहिये ।

उपाध्याय पद चैत्यवन्दन

धन धन श्री उवझाय राय, सठतां धन भंजन।
जिनवर दिशत दुवाल संग, कर कृत जग रंजन ॥१॥
गुण वण भंजण मण गयंद, सुय शृणि किय गंजण।
कुणा लघ लोय लोयणें, जत्थय सुय मजण ॥२॥
महाप्राण मे जिन लह्योए, आगम से पद तुर्य।
तिन पें अहि निशि हीर धर्म, वन्दे पाठक वर्य ॥३॥

उपाध्याय पद स्तवन

द्वादशांगी वाणी वन्दे, सूत्र अर्थ विस्तारे रे।
पच वर्ण गुण जेहना, सुमति गुप्ति धारे रे॥
श्री उवझाया वंदिए०—॥१॥
दायक आगम वांचना, भेदभाव युत सारी रे।
मूरख कु पंडित करे, जगत जन्तु हितकारी रे॥२॥
शीतलचंद किरण समो, वाणी जेहनी कहिए रे।
ते उवझाया पूजतां, अविचल सुखडां लहिए रे॥
श्री उवझाया वंदिए० ॥३॥

श्री उपाध्याय पद स्तुति

अंग इग्यारे चउ दे पूरब, गुण पंचवीशनाधारीजी।
सूत्र अरथधर पाठक कहिए, जोग समाधि विचारीजी॥
तपगुण सूरा आगम पूरा, नयनिक्षेपे तारीजी।
मुनि गुणधारी गुण विस्तारी, पाठक पूजो अविकारीजी ॥१॥

साधु पद को २७ जयति

१. प्राणातिपाल विरमणव्रत युक्ताय श्री साधवे नमः ।
२. मृषावाद विरमणव्रत युक्ताय श्री साधवे नमः ।
३. अदत्तादान विरमणव्रत युक्ताय श्री साधवे नम. ।
४. मैथुन विरमणव्रत युक्ताय श्री साधवे नमः ।
५. परिग्रह विरमणव्रत युक्ताय श्री साधवे नमः ।
६. रात्रिभोजन विरमणव्रत युक्ताय श्री साधवे नमः ।
७. पृथ्वीकाय रक्षकाय श्री साधवे नम. ।
८. अप्पकाय रक्षकाय श्री साधवे नम ।
९. तेऊकाय रक्षकाय श्री साधवे नम. ।
१०. वायुकाय रक्षकाय श्री साधवे नमः ।
११. वनस्पतिकाय रक्षकाय श्री साधवे नम. ।
१२ त्रसकाय रक्षकाय श्री साधवे नम ।
१३ एकेन्द्रिय जीव रक्षकाय श्री साधवे मम. ।
१४. वेइन्द्रिय जीव रक्षकाय श्री साधवे यमः ।
१५. तेइन्द्रिय जीव रक्षकाय श्री साधवे नम. ।
१६. चौरिन्द्रिय जीव रक्षकाय श्री साधवे नमः ।
१७. पंचेन्द्रिय जीव रक्षकाय श्री साधवे नमः ।
१८ लोभ निग्रह काय श्री साधवे नमः ।
१९. क्षमा गुण युक्ताय श्री साधवे नमः ।
२०. शुभ भावना भावकाय श्री साधवे नम. ।
२१. प्रतिलेखनादि क्रिया शुद्धकारकाय श्री साधवे नमः ।
२२. संयम योग युक्ताय श्री साधवे नमः ।

२३. मनोगुप्ति युक्ताय श्री साधवे नमः ।
२४. वचन गुप्ति युक्ताय श्री साधवे नमः ।
२५. काय गुप्ति युक्ताय श्री साधवे नमः ।
२६. शीतादि द्वाविंशति परिसह सहन तत्पराय श्री साधवे नमः ।
२७. मरणांत उपसर्ग सहन तत्पराय श्री साधवे नमः ।*

साधु पद चैत्यवंदन

दंसण णाण चरित्त करो, वर शिव पद गामी ।
धर्म शुक्ल सुचि चक्रसे, आदिम खय कामी ॥१॥
गुण पमत्त अपमत्त पें, भये अंतरजामी ।
मानस इन्द्रिय दमन भूत, सम दम अभिरामी ॥२॥
चारित्र धन गुण गण, भरयो ए पंचम पद मुनिराज ।
तत्पद पंकज, नमत है हीर धर्म के काज ॥३॥

साधु पद स्तवन

समता सागर मुनि पद ध्याऊँ, शिवरामा वर चित्त रमाऊँ ।
संयम ध्याने गुत्ति सुगुत्ता, नित अप्रमत्ता कषाय विमुत्ता ॥
समता सागर० ॥ १॥
इंद्रिय पच प्रमादने जीता, काय बंधु नग भयथी रीता ।
मदवसु खंडन अव्रत वारक, धरम यती तप पडिमा धारक ॥
समता सागर० ॥२॥

* साधुओ मे ये २७ गुण अवश्य होने चाहिये ।

अठारे सहस्स शीलांग रथ घोरी, कर्मभूमि विचरे नव कोड़ि ।
'निद्धि उदय चारित्र नंदि' वंदे, साधु सकल गुण पूनमचंदे ॥
समता सागर० ॥३॥

साधु पद स्तुति

सुमति गुपति कर संयम पाले, दोष बयालीस टाले जी ।
षट्काया गोकुल रखवाले, नव विध ब्रह्म व्रत पाले जी ॥
पंच महाव्रत सूधा पाले, धर्म शुक्ल उजवाले जी ।
क्षपक श्रेणि करि कर्म खपावे, दमपद गुण उपजावे जी ॥१॥

सम्यक्त्व दर्शन पद को ६७ जयति

१. परमार्थ सस्तव रूप श्री सद्दर्शनाय नमः ।
२ परमार्थ ज्ञातृ सेवन रूप श्री सद्दर्शनाय नमः ।
३. व्यापन्न दर्शन वर्जन रूप श्री सद्दर्शनाय नमः ।
४. कुदर्शन वर्जन रूप श्री सद्दर्शनाय नमः ।
५. शुश्रूषा रूप सद्दर्शनाय नमः ।
६. धर्म राग रूप सद्दर्शनाय नमः ।
७. वैयावृत्ति रूप सद्दर्शनाय नमः ।
८. अर्हद विनय रूप सद्दर्शनाय नमः ।
९. सिद्ध विनय रूप सद्दर्शनाय नमः ।
१०. चैत्य विनय रूप सद्दर्शनाय नमः ।
११. श्रुत विनय रूप सद्दर्शनाय नमः ।
१२. धर्म विनय रूप सद्दर्शनाय नमः ।
१३. साधुवर्ग विनय रूप सद्दर्शनाय नमः ।

१४. आचार्य विनय रूप सद्दर्शनाय नमः ।
१५. उपाध्याय विनय रूप सद्दर्शनाय नमः ।
१६. प्रवचन विनय रूप सद्दर्शनाय नमः ।
१७. दर्शन विनय रूप सदद्दर्शनाय नमः ।
१८. संसारे जिन सार मिति चिंतन रूप सद्दर्शनाय नमः ।
१९. ससारे जिन मतिसार मिति चिंतन रूप सद्दर्शनाय नमः ।
२०. संसारे जिन मत स्थित साध्वादिसार मिति चिंतवन रूप
सद्दर्शनाय नमः ।
२१. शंका दूषण रहिताय सद्दर्शनाय नमः ।
२२. कांक्षा दूषण रहिताय सद्दर्शनाय नमः ।
२३. विचिकित्सा रूप दूषण रहिताय सद्दर्शनाय नमः ।
२४. कुदृष्टि प्रसशा दूषण रहिताय सद्दर्शनाय नमः ।
२५. तत्परिचय दूषण रहिताय सद्दर्शनाय नमः ।
२६. प्रवाचन प्रभावक रूप सद्दर्शनाय नमः ।
२७. धर्मकथा प्रभावक रूप सद्दर्शनाय नमः ।
२८. वादी प्रभावक रूप सद्दर्शनाय नमः ।
२९ नैमित्तिक प्रभावक रूप सद्दर्शनाय नमः ।
३०. तपस्वी प्रभावक रूप सद्दर्शनाय नमः ।
३१ प्रज्ञप्तादि विद्या मृत्प्रभावक रूप सद्दर्शनाय नमः ।
३२. चूर्ण जनादि सिद्ध प्रभावक रूप सद्दर्शनाय नमः ।
३३ कवि प्रभावक रूप सद्दर्शनाय नमः ।
३४. जिनशासने कौशलता भूषण रूप सद्दर्शनाय नमः ।
३५. प्रभावना भूषण रूप सद्दर्शनाय नम. ।

३६. तीर्थ सेवा भूषण रूप सद्दर्शनाय नमः ।
३७. धैर्यता भूषण रूप सद्दर्शनाय नमः ।
३८. जिन शासने भक्ति भूषण रूप सद्दर्शनाय नमः ।
३९. उपशम गुण रूप सद्दर्शनाय नमः ।
४०. संवेग गुण रूप सद्दर्शनाय नमः ।
४१. निर्वेद गुण रूप सद्दर्शनाय नमः ।
४२. अणुकंपा गुण रूप सद्दर्शनाय नमः ।
४३. आस्तिक गुण रूप सद्दर्शनाय नमः ।
४४. परतीर्थंकादि वंदन वर्जन रूप श्री सद्दर्शनाय नमः ।
४५. परतीर्थंकादि नमस्कार वर्जन रूप श्री सद्दर्शनाय नमः ।
४६. परतीर्थंकादि आलाप वर्जन रूप श्री सद्दर्शनाय नमः ।
४७ परतीर्थंकादि संलाप वर्जन रूप श्री सद्दर्शनाय नमः ।
४८. परतीर्थंकादि असनादिक दान वर्जन रूप श्री सद्दर्शनाय नमः ।
४९. परतीर्थंकादि गंधपुष्पादि प्रेषण वर्जन रूप श्री सद्दर्शनाय नमः ।
५०. राजाभियोगाकार युक्त श्री सद्दर्शनाय नमः ।
५१. गणाभियोगाकार युक्त श्री सद्दर्शनाय नमः ।
५२. बलाभियोगाकार युक्त श्री सद्दर्शनाय नमः ।
५३. सुराभियोगाकार युक्त श्री सद्दर्शनाय नमः ।
४५. कांतार वृत्याकार युक्त श्री सद्दर्शनाय नमः ।
५५. गुरु निगृहाकार युक्त श्री सद्दर्शनाय नमः ।
५६. सम्यक्त्व चारित्र धर्मस्य मूलमिति चिंतन रूप श्री सद्दर्शनाय नमः ।

५७. चारित्र धर्म पुरस्य द्वारमिति चिंतन रूप श्री सद्दर्शनाय नमः ।
५८. चारित्र धर्मस्य प्रतिष्ठानमिति चिंतन रूप श्री सद्दर्शनाय नमः ।
५९. चारित्रधर्मस्याधार चिंतन रूप श्री सद्दर्शनाय नमः ।
६०. चारित्र धर्मस्य भाजनमिति चिंतन रूप श्री सद्दर्शनाय नमः ।
६१. चारित्र धर्मस्य निधि सन्निभूमिति चिंतन रूप श्री सद्दर्शनाय नमः ।
६२. अस्ति जीवेति श्रद्दान स्थानयुक्त श्री सद्दर्शनाय नमः ।
६३. सत्य जीव नित्येति श्रद्दान स्थानयुक्त श्री सद्दर्शनाय नमः ।
६४. सत्य जीव श्रद्दान स्थानयुक्त श्री सद्दर्शनाय नमः
६५. सत्य जीव कर्माणि करोतीति श्रद्दान स्थानयुक्त श्री सद्दर्शनाय नमः ।
६६. जीव स्यास्ति निर्व्वाणमिति श्रद्दान स्थानयुक्त श्री सद्दर्शनाय नमः ।
६७. अस्ति पुनर्मोक्षोपयेति श्रद्दान स्थानयुक्त श्री सद्दर्शनाय नमः ।*

दर्शन पद चैत्यवंदन

दुय पुग्गल परियट्ट अड्ढ परमित संसार, गंठि भेद तब करि लहे ।
सब गुण आधार ॥१॥

*६७ भेदों करके सहित जीव सम्यक्त्वी होता है ।

क्षायक वेदक शशि असंख उपशम पणवार ।

विना जेण चारित्र णाण, नहिं हुए शिव दातार ॥२॥

श्री सुदेव गुरु धर्म नीए । रुचि लंछन अभिराम ।

दरशन कूं गणि हीर धम अहनिश करत प्रणाम ॥३॥

दर्शन पद स्तवन

रामचन्द्र के बाग आओ मोह रह्योरि (ए चाल) देवें श्री जिनराज । गुरुते साधु भण्योरी । धर्म जिनेश्वर प्रोक्तं । लंछण बोधि तणोरी ॥१॥ बोध लाभ के काज । सप्तम नरक भलो री । तेण विना सुरलोक । तासे अधिक बुरोरी ॥२॥ मिथ्या तापे तप्त, बोध ही छांह लहेरी । उपशम क्षायक वेद ईश्वर तीन कहेरी ॥३॥ भवसायर है अपार, कुण अस्ताघ कह्योरी । जसु लाभे ते होय गोस पद मात्र खरोरी ॥४॥ यद् भावें अप्रमाण, णाण चारित्र भलोरी, बोध धर्म में जीव, लावे कुशल कला री ॥५॥

दर्शन पद स्तुति

जिन पण्णत्त तत्व सुधा सरवे, समकित गुण उजवाले जी ।

भेद छेद करि आतम निरखी, पशु टली सुर पावे जी ॥

प्रत्याख्याने सम तुल भाख्यो, गणवर अरिहंत सूरा जी ।

ए दर्शन पद नित २ वंदो, भव सागर को तीरा जी ॥१॥

ज्ञान पद को ५१ जयति

१. स्पर्शनेन्द्रि व्यंजनावग्रह मतिज्ञानाय नमः।
२. रसनेन्द्री व्यंजनावग्रह मतिज्ञानाय नमः।
३. घ्राणेन्द्री व्यंजनावग्रह मतिज्ञानाय नमः।
४. श्रोत्रेन्द्री व्यंजनावग्रह मतिज्ञानाय नमः।
५ स्पर्शनेन्द्रि अर्थावग्रह मतिज्ञानाय नमः।
६. रसनेन्द्री अर्थावग्रह मतिज्ञानाय नमः।
७. घ्राणेन्द्री अर्थावग्रह मतिज्ञानाय नमः।
८. चक्षुरिन्द्री अर्थावग्रह मतिज्ञानाय नमः।
९. श्रोत्रेन्द्री अर्थावग्रह मतिज्ञानाय नमः।
१०. मन अर्थावग्रह मतिज्ञानाय नमः।
११. स्पर्शनेन्द्री ईहा मतिज्ञानाय नमः।
१२. रसनेन्द्री ईहा मतिज्ञानाय नमः।
१३. घ्राणेन्द्री ईहा मतिज्ञानाय नमः।
१४. चक्षुरिन्द्री ईहा मतिज्ञानाय नमः।
१५. श्रोत्रेन्द्री ईहा मतिज्ञानाय नमः।
१६. मनोंकरी ईहा मतिज्ञानाय नमः।
१७. स्पर्शनेन्द्री अपाय मतिज्ञानाय नमः।
१८. रसनेन्द्री अपाय मतिज्ञानाय नमः।
१९. घ्राणेन्द्री अपाय मतिज्ञानाय नमः।
२०. चक्षुरिन्द्री अपाय मतिज्ञानाय नमः।
२१. श्रोत्रेन्द्री अपाय मतिज्ञानाय नमः।
२२. मनोंकरी अपाय मतिज्ञानाय नमः।

२३. स्पर्शनेन्द्रो धारणा मतिज्ञानाय नमः ।
२४. रसनेन्द्रो धारणा मतिज्ञानाय नमः ।
२५. घ्राणेन्द्रो धारणा मतिज्ञानाय नमः ।
२६. चक्षुरिन्द्रो धारणा मतिज्ञानाय नमः ।
२७. श्रोत्रेन्द्रिय धारणा मतिज्ञानाय नमः ।
२८. मनोधारणा मतिज्ञानाय नमः ।
२९. अक्षर श्रुतज्ञानाय नमः ।
३०. अनक्षर श्रुतज्ञानाय नमः ।
३१. संज्ञी श्रुतज्ञानाय नमः ।
३२. असंज्ञी श्रुतज्ञानाय नमः ।
३३. सम्यक् श्रुतज्ञानाय नमः ।
३४. असम्यक् श्रुतज्ञानाय नमः ।
३५. सादि श्रुतज्ञानाय नमः ।
३६. अनादि श्रुतज्ञानाय नमः ।
३७. सपर्यवसित श्रुतज्ञानाय नमः ।
३८. अपार्यवसित श्रुतज्ञानाय नमः ।
३९. गमिक श्रुतज्ञानाय नमः ।
४०. अगमिक श्रुतज्ञानाय नमः ।
४१. अंग प्रविष्ट श्रुतज्ञानाय नमः ।
४२. अनंग प्रविष्ट श्रुतज्ञानाय नमः ।
४३. अणुगामी अवधिज्ञानाय नमः ।
४४. अणुणगामी अवधिज्ञानाय नमः ।
४५ वर्द्धमान अवधिज्ञानाय नमः ।

४६. हीयमान अवधिज्ञानाय नमः।
४७. प्रतिपाती अवधिज्ञानाय नमः।
४८. अप्रतिपाती अवधिज्ञानाय नमः।
४९. ऋजुमति मनः पर्यव ज्ञानाय नमः।
५०. विपुलमति मनः पर्यव ज्ञानाय नमः।
५१. लोकालोक प्रकाशक श्री केवल ज्ञानाय नमः।*

ज्ञान पद चैत्यवंदन

क्षिप्रादिक रस राम वन्हि, तिम आदम णाण। भाव मिलाप सें जिन जनित, सुय बीस प्रमाण ॥१॥ भव गुण पज्जव ओहि दोय, जगलोचन णाण। लोकालोक स्वरूप जाण, इक केवल भाण ॥२॥ णाणा वरणी नास थिये, चेतन णाण प्रकाश। सप्तम पद में हीर धर्म, नित चाहत अवकाश ॥४॥

ज्ञान पद स्तवन

म्हारे अति उछरंगे (ए चाल) जिनवर भाषित आगम भाणिया तत्त्व यथास्थिति गमियाजी ॥ (म्हारे जगजन तारू) ते उत्तम वर णाण काहाये भविजन अह निशि चाहे जी (म्हारे जगजन तारू) ॥१॥ भक्षा भक्ष कुपंथ सुपंथा। पेयापेय अग्रंथा जी (म्हारे जगजन तारू) देव कुदेव अहित हितधारी। जाणे जेण विचारी जो (म्हारे जगजन तारू) ॥२॥

---

* मतिज्ञान के २८ भेद होते हैं श्रुतज्ञान के १४, अवधिज्ञान के असंख्याते भेद हैं, यहा मुख्य ६ भेद दिये गये हैं। मनपर्यव के २ भेद हैं, केवलज्ञान का १ भेद है, सब मिलाकर ५१ भेद होते हैं।

श्रुत मति दोय छे इन्द्रिय साखूं तेण परोक्ष विचारूं जी (म्हारे जगजन तारू) ओहि मण केवल है वारू। जीव प्रत्यक्ष सुधारूं जी (म्हारे जगजन तारू) ॥३॥ अयवि जस्सवलें जग जाणें लोकाद्विक अनुमानें जो (म्हारे जगजन तारु) त्रिभुवन पूजें जासु पसायें। धारी शुभ अध्यवसायें जी (म्हारे जगजन तारू) ॥४॥ णाणा वरणी उपशम क्षय थी, चेतन णाणकूं विलसे जी (म्हारे जगजन तारू) सप्तम पद में भविजन हरखें। निश दिन कुशलता निरखें जी (म्हारे जगजन तारू) ॥५॥

ज्ञान पद स्तुति

मति श्रुति इन्द्रिय जनित कहिये। लहिये गुण गंभीराजी।
आतमधारी गणधर विचारी, द्वादश अंग विस्तारी जी ॥
अवधि मनपर्यव केवल वलि प्रत्यक्ष रूप अवधारो जी ॥
ए पंच ज्ञान कूं वन्दो पूजो भविजन ने सुखकारो जी ॥१॥

ज्ञान पद स्तुति

मति श्रुत अवधि-मन पर्यव केवलज्ञान।
सप्तम पद सेवो, भेद एकावन जान ॥
ज्ञानी जन जाने, जड़ चेतन का भेद।
सद्ज्ञान रमणतां, दूर करे भव खेद ॥१॥

चारित्र पद को ७० जयति

१. प्राणातिपात विरमण रूप चारित्राय नम।
२. मृषावाद विरमण रूप चारित्राय नमः।
३. अदत्तादान विरमण रूप चारित्राय नमः।
४. मैथुन विरमण रूप चारित्राय नमः।
५. परिग्रह विरमण रूप चारित्राय नमः।
६. क्षमा धर्म रूप चारित्रेभ्यो नमः।
७. आर्यव धर्म रूप चारित्रेभ्यो नमः।
८. मृदुता धर्म रूप चारित्रेभ्यो नम।
९ मुक्त धर्म रूप चारित्रेभ्यो नमः।
१०. तपो धर्म रूप चारित्रेभ्यो नमः।
११. सयम धर्म रूप चारित्रेभ्यो नम।
१२. सत्य धर्म रूप चारित्रेभ्यो नमः।
१३. शौच धर्म रूप चारित्रेभ्यो नम.।
१४. अकिंचन धर्म रूप चारित्रेभ्यो नम।
१५. बभ धर्म रूप चारित्रेभ्यो नमः।
१६. पृथ्वी रक्षा सयम चारित्रेभ्यो नम।
१७. उदग् रक्षा सयम चारित्रेभ्यो नम.।
१८. तेउ रक्षा सयम चारित्रेभ्यो नम।
१९. वायु रक्षा संयम चारित्रेभ्यो नम.।
२०. वनस्पति रक्षा सयम चारित्रेभ्यो नमः।
२१. द्वीन्द्रिय रक्षा सयम चारित्रेभ्यो नम.।
२२. त्रीन्द्रिय रक्षा सयम चारित्रेभ्यो नम.।

२३. चतुरिन्द्रिय रक्षा संयम चारित्रेभ्यो नमः ।
२४. पचेन्द्रिय रक्षा सयम चारित्रेभ्यो नमः ।
२५. अजीव रक्षा संयम चारित्रेभ्यो नमः ।
२६. प्रेक्षा संयम चारित्रेभ्यो नमः ।
२७. उपेक्षा संयम चारित्रेभ्यो नम· ।
२८. अतिरिक्त वस्त्र भक्तादि परठण त्याग रूप संयम चारित्रेभ्यो नमः ।
२९. प्रमार्जन रूप सयम चारित्रेभ्यो नमः ।
३०. मन· रूप संयम चारित्रेभ्यो नम· ।
३१. वाक् रूप संयम चारित्रेभ्यो नम ।
३२. काया रूप संयम चारित्रेभ्यो नम ।
३३. आचार्य वेयावृत्य रूप सयम चारित्रेभ्यो नम· ।
३४. उपाध्याय वेयावृत्य रूप चारित्रेभ्यो नमः ।
३५. तपस्वी वेयावृत्य रूप चारित्रेभ्यो नम· ।
३६. लघुशिष्यादि वेयावृत्य रूप चारित्रेभ्यो नम, ।
३७. ग्लान साधु वेयावृत्य रूप चारित्रेभ्यो नमः ।
३८. साधु वेयावृत्य रूप चारित्रेभ्यो नमः ।
३९. श्रमणोपासक वेयावृत्य रूप चारित्रेभ्यो नमः ।
४० संघ वेयावृत्य रूप चारित्रेभ्यो नम· ।
४१. कुल वेयावृत्य रूप चारित्रेभ्यो नम· ।
४२. गण वैयावृत्य रूप चारित्रेभ्यो नम· ।
४३. पशु पण्डकादि रहित वशति वसण ब्रह्मगुप्त चारित्रेभ्यो नमः ।

४४. स्त्री हास्यादि विकथा वर्जन ब्रह्मगुप्त चारित्रेभ्यो नमः ।
४५. स्त्री आसन वर्जन ब्रह्मगुप्त चारित्रेभ्यो नमः ।
४६. स्त्री अंगोपांग निरीक्षण वर्जन ब्रह्मगुप्त चारित्रेभ्यो नमः ।
४७. कुड्यंतर सहित स्त्री हाव भाव सुनन वर्जन चारित्रेभ्यो नमः ।
४८. पूर्व स्त्री संभोग चिंतन वर्जन ब्रह्मगुप्त चारित्रेभ्यो नमः ।
४९. अति सरस आहार वर्जन ब्रह्मगुप्त चारित्रेभ्यो नमः ।
५०. अति आहार करण वर्जन ब्रह्मगुप्त चारित्रेभ्यो नमः ।
५१. अंग विभूषण वर्जन ब्रह्मगुप्त चारित्रेभ्यो नमः ।
५२. अणशण तपो रूप चारित्रेभ्यो नमः ।
५३. ऊणोदरी तपो रूप चारित्रेभ्यो नमः ।
५४. वित्ति सखेव तपो रूप चारित्रेभ्यो नमः ।
५५. रसत्याग तपो रूप चारित्रेभ्यो नमः ।
५६. कायक्लेश तपो रूप चारित्रेभ्यो नमः ।
५७. सलेखणा तपो रूप चारित्रेभ्यो नमः ।
५८. प्रायश्चित तपो रूप चारित्रेभ्यो नमः ।
५९. विनय तपो रूप चारित्रेभ्यो नमः ।
६०. वेयावच्च तपो रूप चारित्रेभ्यो नमः ।
६१. सज्झाय तपो रूप चारित्रेभ्यो नमः ।
६२. ध्यान तपो रूप चारित्रेभ्यो नमः ।
६३. उपसर्ग तपो रूप चारित्रेभ्यो नमः ।
६४. अनन्तज्ञान संयुक्त चारित्रेभ्यो नमः ।

६५. अनन्त दर्शन संयुक्त चारित्रेभ्यो नम. ।
६६. अनन्त चारित्र संयुक्त चारित्रेभ्यो नमः ।
६७. क्रोध निग्रह करण सयुक्त चारित्रेभ्यो नमः ।
६८. मान निग्रह करण संयुक्त चारित्रेभ्यो नमः ।
६९. माया निग्रह करण संयुक्त चारित्रेभ्यो नमः ।
७०. लोभ निग्रह करण संयुक्त चारित्रेभ्यो नमः ।*

चारित्र पद चैत्यवन्दन

जस्स पसायें साहु पाय, जुग-जुग समितें दे ।
नमन करें सुभ भाव लाय, फुण नरपति वृन्दे ॥१॥
जपे धरि अरिहंत राय, करि कर्म निकन्दें ।
सुमति पच तीन गुप्ति युत, दे सुक्ख अमन्दें ॥२॥
इखु कृति मान कषाय थीये, रहित लेत शुचिवन्त ।
जीव चरित कूं हीर धर्म, नमन करत नित संत ॥३॥

चारित्र पद स्तवन

निर्विकल्प अज निर्गुणी, चिदा भास निरसग (सुज्ञानी सांभलो)
मूर्त्तिहीन चेतन करे, रूपी पुद्गल रंग॥ (सुज्ञानी सांभलो)॥१॥
स्पर्द्धक कारण वर्गणा, कार्यें कारण भाव (सुज्ञानी सांभलो)
कृत्वा जोग सुधा मता। लब्धा संख स्वभाव (सुज्ञानी सांभलो)॥२॥
पर्याप्ता लघु जोग में। वृद्धि लहे जुगमान (सुज्ञानी सांभलो)।
मध्ये वसु समयें लहे। अंते द्वौ तेजाण (सुज्ञानी सांभलो) ॥३॥

---

* चारित्रधारी पुरुषो मे ये ७० गुण अवश्य होने चाहिये ।

सहकारो माणसमुखा । कारण रम्य वलेण (सुज्ञानी सांभलो) ।
प्राप्ता हासु प्रकारता सप्त प्रभृत कातेन ॥ (सुज्ञानी सांमलो)॥४॥
तद्रो घन रूपो भलो । चेतन संयम धाम (सुज्ञानी सांभलो) ।
कर घन मिल पद धर्म मे कुशल भवतु अभिराम ॥
(सुज्ञानी सांभलो) ॥५॥

चारित्र पद स्तुति

करम अपचय दूर खपावे, आलम ध्यान लगावें जी ॥
बारे भावना सूधी भावे, सागर पार उत्तारें जी ॥
षट खड राज को दूर तजोने, चक्रि सयम धारें जी ॥
एहवो चारित्र पद नित वन्दो, आतम हित गुण कारेंजो ॥१॥

तप पद की ५० जयति

१. यावत् कथित तपसे नम. ।
२. इत्वर तप भेद तपसे नम· ।
३. बाह्य ऊणोदरी तपभेद तपसे नमः ।
४. अभ्यतर ऊणोदरो तपभेद तपसे नम. ।
५. द्रव्य तप वित्ति सखेप तपभेद तपसे नमः ।
६ क्षेत्र तप वित्ति सखेप तपभेद तपसे नमः ।
७. काल तप वित्ति सखेप तपभेद तपसे नमः ।
८. भाव तप वित्ति सखेप तपभेद तपसे नमः ।
९. कायक्लेश तपभेद तपसे नमः ।
१० रसत्याग तपभेद तपसे नमः ।

११. इन्द्रिय कषाय योग विषयक संलीणता तपसे नमः ।
१२. स्त्री पशु पंडकादि वजित स्थान अवस्थित सलीणता तपसे नमः ।
१३. आलोयण प्रायश्चित तपसे नमः ।
१४. पडिक्कमणे प्रायश्चित तपसे नमः ।
१५. मिश्र प्रायश्चित तपसे नमः ।
१६. विवेक प्रायश्चित तपसे नमः ।
१७. उपसर्ग प्रायश्चित तपसे नमः ।
१८. तप प्रायश्चित तपसे नमः ।
१९. भेद प्रायश्चित तपसे नमः ।
२०. मूल प्रायश्चित तपसे नमः ।
२१. अणवस्थित प्रायश्चित तपसे नमः ।
२२. पारंचिय प्रायश्चित तपसे नमः ।
२३. त्याग विनय रूप तपसे नमः ।
२४. दर्शन विनय रूप तपसे नमः ।
२५. चारित्र विनय रूप तपसे नमः ।
२६. गुर्वादिक मन विनय रूप तपसे नमः ।
२७. वचन विनय रूप तपसे नमः ।
२८. काय विनय रूप तपसे नमः ।
२९. उपचारक विनय रूप तपसे नमः ।
३०. आचार्य वेयावच्च तपसे नमः ।
३१. उपाध्याय वेयावच्च तपसे नमः ।
३२. साधु वेयावच्च तपसे नमः ।

३३. तपस्वी वेयावच्च तपसे नमः ।
३४. लघु शिष्यादि वेयावच्च तपसे नमः ।
३५. ग्लान साधु वेयावच्च तपसे नमः ।
३६. श्रमणोपासक वेयावच्च तपसे नमः ।
३७. संघ वेयावच्च तपसे नमः ।
३८. कुल वेयावच्च तपसे नमः ।
३९. गण वेयावच्च तपसे नमः ।
४०. वायणा तपसे नमः ।
४१. प्रच्छना तपसे नमः ।
४२. परावर्त्तना तपसे नमः ।
४३. अनुप्रेक्षा तपसे नमः ।
४४. धर्मकथा तपसे नमः ।
४५. आर्त्तध्यान निवृत्ति तपसे नमः ।
४६. रौद्रध्यान निवृत्ति तपसे नमः ।
४७. धर्मध्यान चिंतन तपसे नमः ।
४८. शुक्लध्यान चिंतन तपसे नमः ।
४९. बाह्य उपसर्ग तपसे नमः ।
५०. अभ्यंतर उपसर्ग तपसे नमः ।*

तप पद चैत्यवन्दन

श्री ऋषभादिक तीर्थनाथ, तद्भव शिव जाण । विहि अतेरपि बाह्य, मध्य द्वादश परिमाण ॥१॥ वसु कर मित

* तपस्वियो में ये ५० गुण अवश्य होने चाहिये ।

आमो सहो, आदिक लब्धि निदान। भेदें सकता युत क्षिणें हणघन कर्म विमान ॥२॥ नवमों ओ तपपद भलोए, इच्छा रोध स्वरूप। वन्दन सें नित हीर धर्म, दूरभवतु भव कूप ॥३॥

तप पद स्तवन

वारस भेद भण्या जिन राजे। वाह्म मध्य तणा जग काजे रे॥ शिवपदनी श्रेणी॥ तिण भव सिद्धि तणा वर ज्ञाता। जिणवर पिण तप ना कर्त्ता रे॥ शिव०॥ १॥ शमता सहिते जिनते भारी। भली कर्म चमूं पिण हारी रे॥ शिवपद नी श्रेणी॥ जोव कनक से कर्म कचोरा। दहे तप पावक का जोरा रे॥ शिवपदनी श्रेणी॥ २॥ तप तरू वरना कुसुम ते ऋद्धि देव नरनी फलते सिद्धि रे॥ शिवपदनी श्रेणी॥ पाप सकल है तम नो राशो। तप भानू सें जाये नाशी रे॥ शिवपदनी श्रेणी॥ ३॥ जस्स पसायें लहिये वारू। लब्धा सगली जग हित कारू रे॥ शिवपदनी श्रेणी॥ अति दुक्कर फुण साध्यत होना। काम तातें वारू कीना रे॥ शिवपदनी श्रेणी॥ ४॥ इच्छा रोधन रूपो कहिये। तप पद हो चेतन वहिये रे॥ शिवपदनी श्रेणी॥ ५॥

तप पद स्तुति

इच्छा रोधन तपतें भाख्यो, आगम तेहनो साखो जी।
द्रव्य भाव ते द्वादश दाखी, जोग समाधि राखी जी॥
चेतन निज गुण परिणत पेखो, ते हित तप गुण दाखी जी।
लब्धि सकल नो कारण देखो, ईश्वर से मुख भाखी जी॥१॥

श्री नवपद चैत्यवन्दन

श्री अरिहंत उदार कांति, अति सुन्दर रूप ।
सेवो सिद्ध अनन्त शान्त, आतम गुण भूप ॥१॥
आचारज उवज्झाय साधु, समता रस धाम ।
जिन भाषित सिद्धान्त शुद्ध, अनुभव अभिराम ॥२॥
बोधिबीज गुण सम्पदा ए, नाण चरण तप शुद्ध ।
ध्यावो परमानन्द पद, ए नवपद अविरूद्ध ॥३॥
इह परभव आनन्द कन्द, जग मांहि प्रसिद्धो ।
चिंतामणि सम जास जोग बहु पुण्ये लद्धो ॥४॥
तिहुअण सार अपार एह, महिमा मनधारो ।
परिहर पर जंजाल जाल, नित एह सम्भारो ॥५॥
सिद्धचक्र पद सेवतां सहजानन्द स्वरूप ।
अमृतमय कल्याण-निधि, प्रगटे चेतन भूप ॥६॥

श्री नवपद चैत्यवन्दन

जय जय श्री अरिहंत देव, द्वादशगुणधारी ।
जय जय सिद्ध महाराज, शत्रुगण हणिया भारी ॥१॥
जय जय सूरि उवझाय, पचवीश गुणधारी ।
जय जय साधु शान्त दान्त, भविजन हितकारी ॥२॥
ज्ञान चरण नमो, तप सेवो निरधारी ।
माणकचन्द प्रणमें सदा, नित वन्दो नरनारी ॥३॥

श्री नवपदजी की लावणी (स्तवन)

जगत में नवपद जयकारी, पूजतां रोग टले भारी । प्रथम पद तीर्थपतिराजे, दोष अष्टादशकूं त्याजे । आठ प्रातिहारज

छाजे, जगतप्रभु गुण बारे साजे ।। अष्ट कर्म दल जीत के, सकल सिद्धि ते थाय ।। सिद्ध अनन्त भजो बीजे पद, एक समय शिव जाय प्रगट भयो निज स्वारूप भारी ।। जगत० १ ।। सूरि पद में गोतम केशी, ओपमा चन्द सूरज जैसी । उवार्‍यो राजा परदेशी, एक भव मांहे शिव लेसी ।। चौथे पद पाठक नमूं, श्रुतधारी उवझाय । सव्व साहू पंचम पदे, धन धन्नो मुनिराय वखाण्यो वीर जिनन्द भारी ।। जगत० २ ।। द्रव्य षट् की श्रद्धा आवे, सम सवेगादिक पावें । विना यह ज्ञान नहीं किरिया, जैन दर्शन से सब तिरिया । ज्ञान पदारथ सातमें, पद से आतमराम । रमतारम्य अध्यातमें, निज पद साधें काम ।। देखता वस्तु जगत सारी ।। जगत० ३।। जोग की महिमा बहु जाणी, चक्रधर छोड़ी सब राणी । यति दश धर्म करी सोहे, मुनि श्रावक सब मन मोहे । करम निकाचित काटवा, तप कुठार कर ल्याय । क्षमा युत नवमां पद धरें, कर्म मूल कट जाय ।। भजो तुम नवपद सुखकारी ।। जगत० ४ ।। श्री सिद्ध चक्र भजो भाई, आचामल तप विधि से थाई । पाप त्रिहुं जोगे परिहरजो, भाव श्रीपाल तणे करजो । सम्वत् उगणीसे सतरा समें, जयपुर श्रीजिन पाश । चैत्र धवल पूनम दिने, सफल फली मुझ आश ।। बाल कहे नवपद छवि प्यारी ।। जगत० ५ ।।

श्री नवपदजी का स्तवन

श्री सिद्धचक्र आराधो, मन वांछित कारज साधो रे । भवियां ! श्री सिद्ध चक्र आराधो ।। टेर ।।

पद पहिले अरिहंत भाणो, जेम अरिहतपदनो पावो रे। भवियां! श्री० ॥१॥ पद दूजे सिद्ध सनावो, जिम सिद्ध सरूपो होई जावो रे। भवियां! श्री० ॥२॥ सूरि त्रीजे गुणवता, जगनायक जग जयवंता रे। भवियां! श्री० ॥३॥ चौथे पद उवझाया, जिणे मारग आण बताव्या रे। भवियां! श्री० ॥४॥ साधु सकल गुणधारी, पद पांचमे जग हितकारी रे। भवियां! श्री० ॥५॥ दरसण पद छट्ठे वन्दो, जिन कीरति होय जीर नन्दोरे। भवियां! श्री० ॥६॥ ज्ञानपद सातमे दाख्यो, चारित्र पद आठमें भाख्यो रे। भवियां! श्री० ॥७॥ तप पद नवमें शाख्यो, जेम वीरजीने वचने राख्योरे। भवियां श्री० ॥८॥ श्रीपाल ने सैणा लीधो, नवमे भव कारज सीध्यो रे। भवियां! श्री० ॥९॥ इम नवपद महिमा आणी, 'जिनचन्द्र' हिये मण आणी रे। भवियां! श्री० ॥१०॥

श्री नवपदजी स्तवन

जिया चतुर सुजाण! नवपद के गुण गाया रे ॥ टेर ॥ नवपद महिमा जग मे मोटी, गणधार पार न पायरे, जिया० ॥१॥ करम निकाचित दूर करण को, सुन्दर शुद्ध उपाय रे, जिया० ॥२॥ इनका पुष्ट आलंबन करतां, अजरामर सुख पाय रे, जिया० ॥४॥ ए जिण भये अगामी होगे, नवपद संघ पसाय रे, जिया० ॥४॥ परम 'क्षमा' शिवरमणी वर के, समर-समर गुण गाय रे, जिया० ॥५॥

श्री नवपदजी स्तवन

नवपद ध्यान धरो रे ॥ भविका न० ॥ मन वच काय कर एकते, विकथा दूर हरो रे ॥ भ० न० ॥१॥ मत्र जड़ी अरू

तन्त्र घघेरा, इन सवकूं गिसरो रे ॥ अरिहंतादिक नवपद जपने, पुण्य भंडार भरो रे ॥ भ० न० ॥२॥ अड़सिद्ध नवनिधि मंगल माला, सपत्ति सहज वरो रे ॥ लालचन्द याको वलिहारी शिवतरु बीज खरोरे ॥ भ० न० ॥३॥

श्री नवपद स्तुति

वीर जिणेसर अति अलवेसर, गौतम गुणना दरीआजी ।
एक दिन आणा वीरनी लेइने, राजगृही संचरीयाजी ॥
श्रेणिक राजा वदन आव्या, उलट मनमां आणीजी ।
पर्षदा आगल बार विराजे, हवे सुणो भवि प्राणीजी ॥१॥
मानव भव तुमे पुण्ये पाम्या, श्री सिद्धचक्र आराधोजी ।
अरिहंत सिद्ध सूरि उवज्झाया, साधु देखी गुण वाधेजी ॥
दरशण नाण चारित्र तप कीजे, नवपद ध्यान धरीजेजी ।
धुर आसोथी करवां आंबिल, सुख सम्पदा पामीजेजी ॥२॥
श्रेणिक राय गौतम ने पूछे, स्वामी ए तप केणे कीधोजी ।
नव आंबिल तप विधिशुं करतां, वांछित सुख केणे लीधोजी ॥
मधुरी ध्वनि बोल्या श्री गौतम, सांभलो श्रेणिकराय वयणांजी ।
रोग गयो ने संपदा पाम्या, श्री श्रीपाल ने मयणाजी ॥
रुमझुम करती पाये नेउर, दीसे देवी रुपालीजी ।
नाम चक्केसरी ने सिद्धाई, आदि जिणवर रखवालीजी ॥
विघन कोड हरे सहु संघनां, जे सेवे एना पायजी ।
'भाणविजय' कवि सेवक नय कहे, सानिध करजो मायजी ॥४॥

श्री नवपद स्तुति

जग नायक दायक सिद्ध चक्र सुखकंद, जेहना जपथी भाजे भव भय फंद। श्रीपाल ने मैना विधि से ये तप कीध, नवपद थी थासे अष्टसिद्धि नव नीध ॥१॥ जिन सिद्ध आचारज पाठक श्री मुनिराय, दर्शन ज्ञान चरित्र नवमो तप कहवाय। एक एक पद ध्याता। जीव तर्या संसार, चौवीसी प्रणमूं कीधो भवि उपगार ॥२॥ आसू वलि चैत्र सुदि सातम थी जान, आलोकी जे शुभ भावे आंबिल कर पचखान। पद पद नो गुणनो, कीजे मन सुजगीस आगम माहे बोल्यो ध्यावो तुम निस दीस ॥३॥ विमलादिक देवा देवि चक्केसरि मान, सिद्धचक्र ना सेवक आपे वंछित दान। खरतरगच्छ दिनकर श्री जिन अखय सुरिन्द, तासु चरण पसायें भाखे श्री जिनचंद ॥४॥

श्री नवपद स्तुति

निरुपम सुखदायक जगनायक, लायक शिवगति गामीजी।
करुणासागर निज गुण आगर, शुभ समता रस धामीजी॥
श्री सिद्धचक्र शिरोमणि जिनवर, ध्यावे जे मन रंगेजी।
ते मानव श्रीपाल तणी परें, पामे सुख सुर संघेजी ॥१॥
अरिहंत सिद्ध आचारज पाठक, साधु महा गुणवंताजी।
दरिसन नाण चरण तप उत्तम, नवपद जग जयवताजी॥
एहनूं ध्यान धरतां लहिये, अविचल पद अविनाशीजी।
ते सघला जिन नायक नमिये, जिणे ए निति प्रकाशीजी ॥२॥
आसू मास मनोहर तिम वलि, चैत्रक मास जगीसेजी।

उजवाली सातमथो करिये, नव आयंबिल नव दिवसेजी ॥
तेर सहस वलि गुणिये गुणणो, नवपद केरो सारोजी ।
इणि परि निरमल तप आदरिये आगम साख उदारोजी ॥३॥
विमल कमल दल लोयण सुंदर, श्री चक्केसरि देवीजी ।
नवपद सेवक भविजन केरा, विघ्न हरो सुरसेवीजी ॥
श्री खरतरगच्छ नायक सद्गुरु, श्री जिन भक्ति मुनिंदाजी ।
तासु पसायें इण परि पभणें, श्री जिनलाभसुरिंदाजी ॥४॥

श्री नवपद स्तुति

नवपद आराधो जाणो गुण अपार ।१।
अरिहतादि पूजो करो आंबिल निधार ।२।
अन्न जल बे द्रव्य थी भाख्युं आंबिल सार ।३।
श्रीनिशिथ चूर्ण्यादिमां श्रुतदेवी देजो सुविचार ।४।

तप का उद्यापन (उजमणा)

जिस तरह मदिर पर मेरु का महत्त्व है उसी तरह तप मे उजमणे का महत्त्व है, अतः उजमणे की विधि गुरु महाराज से समझकर उजमणा करना चाहिये। यदि बड़े रूप में उजमणा करने की शक्ति न हो तो भावना पूर्वक छोटे रूप में उजमणा करने पर भी उत्कृष्ट लाभ प्राप्त किया जा सकता है। उजमणा तप के बाद मे कभी भी किया जा सकता है।

श्री नवपद आरती

जय जय जग जन वंछित पूरण, सुरतरु अभिरामो।
आतम रूप विमल कर तारक अनुभव करिनामो ॥ जय जय

जग सारा, जय जय जग सारा। आरती पार उतारा, सिद्ध चक्र सुखकारा ॥१॥ जगनायक जगगुरु जिनचंदा, भज श्री भगवंता। आतमराम रमा सुखभोगी, सिद्धा जयवंता ॥२॥ पंचाचार दिपे आचारज, जुगवर गुणधारी। धारक वाचक सूत्र अर्थना, पाठक भवतारी ॥ जय० ३॥ सम दम रूप सकल गुण ज्ञायक, मोटा मुनिराया। दरसन ज्ञान सदा जयकारक, संजम तपभाया ॥ जय० ४॥ नवपद सार परम गुरु भाखे, सिद्धचक्र सुखकारी। ए भव परभव ऋद्धि सिद्धि दायक भवसागर वारी ॥ जय० ५॥ करजोड़ो सेवक गुण गावे, मन वछित फल पावे। श्री जिनचंद्र अखय पद पूजत, शिवकमला पावें ॥ जय० ६ ॥

श्री नवकार माहात्म्य

समरो मत्र भलो नवकार, ए छे चौदह पूरबनो सार।
एनो महिमा नो नहि पार, एनो अर्थ अनंत अपार ॥
समरो मत्र० ॥१॥

सुखमाँ समरो दुःखमाँ समरो, समरो दिन ने रात।
जीवताँ समरो मरताँ समरो, समरो सौ सघात ॥ समरो मत्र।२।

जोगी समरे भोगी समरे, समरे राजा-रंक।
देवो समरे दानव समरे, समरे सौ निःशंक ॥ समरो मंत्र०।३।

अड़सठ अक्षर एना जाणो, अड़सठ तीरथ सार।
आठ सम्पदाथी परमाणो, अडसिद्धि दातार ॥ समरो मत्र०।४।

नवपद एना नव निधि आपे, भव भवनाँ दुःख कापे।
वीरवचनथी हृदये व्यापे, परमातम-पद आपे ॥ समरो मंत्र०।५।

१३००० का गुणना एवं रोज की क्रियाऐं ।

	गुण	खमासणा	स्वस्तिक	कायोत्सर्ग	गणनु	नवकार-वाली	पद का वर्ण
१. ॐ ह्रीं नमो अरिहंताण	१२	१२	१२	१२	१२००	२०	उज्जवल
२. ॐ ह्रीं नमो सिद्धाणं	८	८	८	८	८००	२०	रक्त
३. ॐ ह्रीं नमो आयरियाणं	३६	३६	३६	३६	३६००	२०	पीत
४. ॐ ह्रीं नमो उव्वझायाणं	२५	२५	२५	२५	२५००	२०	नील
५. ॐ ह्रीं नमो लोएसव्वसाहूण	२७	२७	२७	२७	२७००	२०	श्याम
६. ॐ ह्रीं नमो दंसणस्स	६७	६७	६७	६७	१०००	२०	उज्जवल
७. ॐ ह्रीं नमो नाणस्स	१	५१	५१	५१	५००	२०	उज्जवल
८. ॐ ह्रीं नमो चारित्तस्स	७० १७	७० १७	७० १७	७० १७	५००	२०	उज्जवल
९. ॐ ह्रीं नमो तवस्स	५० १२	५० १२	० १२	५० १२	२००	२०	उज्जवल
सर्व पदों की सख्या	३४६ ३२४	३४६ ३२४	३४६ ३२४	३४६ ३२४	१३०००	१८०००	पंचवर्ण

नौ दिन मे नौ पद का १३,००० गणना गिनना। पहले दिन 'ॐ ह्री नमो अरिहताणं अशोक वृक्ष प्रतिहार्य संयुक्ताय अरिहताय नमो नमः' । इस तरह से पद बोलकर नवकारवाली गिनना। इसी प्रकार से अरिहंत की बारह गुण की बारह नवकारवाली गिनना। सिद्ध पद की ८ गुण की ८ नवकारवाली गिनना। आचार्य पद की ३६ गुणों की तीसरे दिन ३६ नवकारवाली गिननी। चौथे दिन उपाध्याय की २५ गुणों की २५ नवकारवाली, पाचवे दिन साधु के २७ गुणो की २७ नवकारवाली गिननी। छठे दिन दर्शन के ६७ गुणों मे से **"ॐ ह्रीं नमो दंसणस्स श्री अर्हद्विनय युक्त दर्शनाय नमो नमः" आठवें गुण से सत्तरहवें गुण १० गुण की १० नवकारवाली गिनना :** सातवे दिन ॐ ह्री श्री मतिज्ञानाय नमो नमः इस तरह श्रुत, अवधि, मनः पर्यव, केवलज्ञान—ये पांच ज्ञान के नाम की पाच नवकारवाली गिनना। आठवें दिन ॐ ह्री श्री सामायिक चारित्राय नमो नमः इसी तरह छेदोपस्थापनीय, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्मसपराय, यथाख्यात ये ५ चरित्र के नाम की ५ नवकारवाली गिननी। नवें दिन ॐ ह्री श्री छभेद बाह्य तपसे नमो नमः" "ॐ ह्री श्री छभेद अभ्यन्तर तपसे नमो नमः।" ये दो नवकारवाली तप पद की गिननी। इस तरह से गिनते हुऐ ९ दिन मे १३,००० गुणना होता है। इति

पंच परमेष्ठि के १०८ गुण

श्री अरिहंत प्रभु के १२ गुण, श्री सिद्ध प्रभु के ८ गुण, श्री आचार्य भगवंत के ३६ गुण, श्री उपाध्याय भगवंत के २५ गुण, श्री साधु भगवत के २७ गुण। इस तरह कुल १०८ गुण होते हैं।

---

१२२. श्री नो ब्रह्मचर्य गुप्ति तप

(न. क.)

ब्रह्मचर्य शब्द ब्रह्मन् से बना है। श्री स्थानांग सूत्र के नवे स्थान की टीका मे बताया है कि **ब्रह्म च कुशलानुष्ठानं तच्च-त्तच्चर्यं चाऽऽसेव्यमिति ब्रह्मचर्यम्**। ब्रह्म अर्थात् कुशल अनुष्ठान, उसका सेवन करना वह ब्रह्मचर्य। कुशल अनुष्ठान अर्थात् आत्मा की हितकारक क्रिया। सामान्यतया ब्रह्मचर्य का व्यवहारिक अर्थ यह है कि—स्त्री भोग से दूर रहना, मैथुन का त्याग करना।

श्रीमद् हेमचंद्रसूरि महाराज ने योग शास्त्र के प्रथम प्रकाश मे ब्रह्मचर्य के अठारह भेद बताये है।

दिव्यौदारिककामानां कृतानुमति-कारितैः।
मनो-वाक्-कायतस्त्यागो, ब्रह्माष्टादशधा मतम्॥

दिव्य और औदारिक कामों को मन, वचन और काया से करना, कराना और अनुमोदन करने का त्याग करना। इस प्रकार ब्रह्मचर्य अठारह तरह का है, **दिव्य** अर्थात् देव सम्बन्धी और **औदारिक** अर्थात् मनुष्य तथा तिर्यंच सम्बधी कामभोग मैथुन करने की इच्छा का मन, वचन और काया से स्वय त्याग करना, दूसरे को त्याग कराना, जो मैथुन करता है उसे अच्छा नही समझना।

मैथुन-कामभोगेच्छा दो तरह की है। संप्राप्त और असंप्राप्त। स्त्री-पुरुप आदि की परस्पर सग करने की इच्छा

वह **संप्राप्त कामभोग** है। उसके हसित, ललित आदि आठ भेदो का काम शास्त्र मे वर्णन है। **संग** करने की इच्छा करने वाले व्यक्ति की अनुपस्थिति हो वहां उसका स्मरण करना, चितन करना तथा सग करने की तीव्र अभिलाषा करना वह **असप्राप्त-कामभोग** कहलाता है।

खेत की रक्षा करने के लिए जैसे बाड़ बनाई जाती है उसी तरह अठारह प्रकार से ब्रह्मचर्य को रक्षा के लिए शास्त्रकारो ने नो प्रकार की बाड बताई है, वह इस प्रकार है।

१ **विविक्तवसतिसेवा**—स्त्री, पशु और नपुंसक के सहवास से रहित एकात स्थान मे निवास करना।

२. **स्त्री कथा परिहार**—स्त्री सम्बधी बातो का त्याग।

३. **निषद्याऽनुयवेशनम्**—स्त्री के बैठने की वस्तु पर नही बैठना अर्थात् जिस पाट, पाटला या आसन, शयन पर स्त्री बैठी हो वह दो घडी तक काम मे नही लेना।

४ **इन्द्रियाप्रयोग**—राग के वश हो स्त्रियो के अगोपाग, स्तन, कटि, मुँह आदि अवयव देखने का प्रयत्न नही करना।

५ **कुड्यान्तरदाम्पत्यवर्जनम्**—अपनी दिवाल के पास स्त्री-पुरुष का जोडा रहता हो उस निवास स्थान का त्याग करना।

६. **पूर्वक्रीडितास्मृति**—स्त्री के साथ पूर्व मे की गई क्रीड़ा को स्मरण नही करना।

७. **प्रणीताभोजनम्**—इद्रियों को उत्तेजित करने वाले मादक आहार-पान का त्याग करना। हो सके वहां तक निरस आहार ही करना।

८. **अतिमात्राऽभोग**—प्रमाण से अधिक आहार नही करना।

९. **विभूषा-परिवर्जनम्**—शरीर की टीपटाप नही करना, शृङ्गार नही करना।

हरएक व्रत मे ब्रह्मचर्य व्रत की महत्ता है और इसी कारण कहते हैं कि—ब्रह्मचर्य व्रतधारी को प्रणाम कर पीछे इन्द्र महाराज अपने सिहासन पर बैठते हैं।

श्री नो ब्रह्मचर्य गुप्ति तप की विधि

इस तप से एक-एक गुप्ति के आश्रयी एक-एक एकासना नो-नो कवल का करना। अर्थात् नो दिन में यह तप पूरा होता है। इसमे कुल कवल इक्यासी होते है।

नमो नवबभचेरगुत्तिधराय पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि नो नो करना।

उद्यापन मे साधु-साध्वी तथा ब्रह्मचारी श्रावक-श्रविका को वस्त्र देना।

---

१२३. श्री निगोद आयुक्षय तप (जै. सि.)

साधारण वनस्पति काय को निगोद कहते हैं। सूक्ष्म साधारण वनस्पतिकाय को सूक्ष्म निगोद कहते हैं। चर्मचक्षु से जो न

दिखाई सके उसे सूक्ष्म कहते है। इस विश्व में असंख्य गोले हैं, एक एक गोले मे असंख्यात निगोद हैं और एक एक निगोद में अनंत जीव होते हैं। ये जीव अनादि काल से सूक्ष्म निगोद में ही रहते आए है, कदापि उससे बाहर नही निकले। ये **अव्यवहारराशि** के जीव कहलाते है। जो जीव सूक्ष्म निगोद से बाहर निकल चुके होते हैं वे **व्यवहारराशि** जीव कहलाते है।

निगोद के जीवो का आयुष्य अन्तर्मुहूर्त होता है। अन्तर्मुहूर्त का काल अर्थात् दो घडी के भीतर का समय। इसकी शुरूआत नो समय से होती है। अत्यत सूक्ष्म काल को समय कहा जाता है। निमिष मात्र मे असंख्य समय व्यतीत हो जाता है। ऐसे **निगोद** सम्बंधी आयु के क्षय होने के लिए यह तप किया जाता है।

श्री निगोद आयुक्षय तप की विधि

प्रथम एक उपवास पर एकासना, फिर दो उपवास पर एकासना, फिर तीन उपवास पर एकासना, फिर दो उपवास पर एकासना, फिर एक उपवास पर एकासना। इस तरह चौदह दिन मे यह तप पूरा होता है।

उद्यापन मे चौदह मोदक रखना। **इस तप से निगोद के आयुष्य का क्षय होता है।**

नमो अरिहंताणं पद को बीस माला गिनना स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

दूसरी विधि (रं. वि.)—

प्रथम एक उपवास पर एकासना, फिर दो उपवास पर

एकासना, फिर तीन उपवास पर एकासना, फिर चार उपवास पर एकासना, फिर पांच उपवास पर एकासना, फिर चार उपवास पर एकासना, फिर तीन उपवास पर एकासना, फिर दो उपवास पर एकासना और फिर एक उपवास पर एकासना। इस प्रकार ३४ दिन (२५ उपवास व ६ एकासना) मे यह तप पूरा होता है।

---

१२४. श्री निजिगीष्ट तप और विधि (नं. अ. आदि विधि प्र.)

इस तप मे एक उपवास पर एक आयबिल—इस तरह आठ उपवास और आठ आयविल अर्थात् सोलह दिन मे यह तप पूरा होता है।

उद्यापन मे सोलह मोदक, फल आदि देव के पास रखना।

नमो अरिहताणं पद की वीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि वारह वारह करना।

---

१२५. श्री पदकड़ी तप और विधि (जैन प्र. जै. सिं.)

प्रथम एक उपवास कर पारणा, फिर दो उपवास कर पारणा, फिर एक उपवास कर पारणा, यह प्रथम ओली हुई। फिर एक उपवास पर पारणा, दो उपवास पर पारणा एक

उपवास पर पारणा, यह दूसरी ओली हुई। फिर एक उपवास पर पारणा, दो उपवास पर पारणा, तीन उपवास पर पारणा, दो उपवास पर पारणा, एक उपवास पर पारणा, यह तीसरी ओली हुई। फिर एक उपवास पर पारणा, दो उपवास पर पारणा, तीन उपवास पर पारणा, चार उपवास पर पारणा, तीन उपवास पर पारणा, दो उपवास पर पारणा, एक उपवास पर पारणा, यह चौथी ओली हुई। कुल तेंतीस उपवास और १८ पारणे मिलकर ५१ दिन होते है।

उद्यापन मे तेंतीस मोती तथा प्रवाल देव को चढ़ाना। पूजा आदि यथाशक्ति करना।

नमो सिद्धाणं पद की वीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि आठ आठ करना।

---

१२६. श्री दारिद्रयहरण तप और विधि (वि. प्र.)

यह तप पूर्णिमा से शुरू करना होता है। प्रथम दिन उपवास, दूसरे दिन एकासना, तीसरे दिन नीवी, चौथे दिन आयंबिल, पांचवे दिन बियासना, इस तरह एक ओली हुई। ऐसी दो ओली करना। यह तप दस दिन मे पूरा होता है। पारणे के दिन साधु मुनिराज की भक्ति करना।

उद्यापन में ज्ञान पूजा करना।

नमो नाणस्स पद की वीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि ५१-५१ करना।

---

१२७. श्री पंचामृत तप और विधि (वि. प्र.)

इस तप में पांच अठ्ठम छै. माह मे करना होते हैं। इसमें पहले अठ्ठम पा पारणा श्रीखण्ड से, दूसरे अठ्ठम का पारणा हलवे से, तीसरे अठ्ठम का पारणा लपसी से, चौथे अठ्ठम का पारणा लड्डू से, पाचवे अठ्ठम का पारणा क्षीर से करना। पारणे से पहले मुनिराज को वहोराकर पारणा करना।

नमो अरिहंताणं पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

१२८. श्री पांच छट्ठ तप और विधि (पं. त.)

प्रथम छट्ठ के पारणे हलवा, दूसरे छट्ठ के पारणे क्षीर, तीसरे छट्ठ के पारणे साधु साध्वी को झोली वहोराकर भरे भाणे एकासना, चौथे छट्ठ के पारणे मूर्च्छा रहित स्वाद लिये बिना एकासना, पाचवे छट्ठ के पारणे पानी का लोटा भर कर दो-तीन घर जाना, यदि कोई भोजन करने को कहे तो उपवास करना। यह तप १५ दिन मे पूरा होता है।

उद्यापन मे स्वधर्मी भाइयो को भोजन कराकर श्रीफल देना।

नमो अरिहंताणं पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

१२९. श्री पंच महाव्रत तप

जो व्रत बहुत बड़ा होता है, पालन करने मे मुश्किल होता है उसे **महाव्रत** कहते हैं। व्रत अर्थात् प्रतिज्ञा।

श्री स्थानाग सूत्र के पाचवे स्थानक मे कहा है कि :—

पञ्च महव्वया पण्णत्ता, तं जहा—
सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं ।१।
सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं ।२।
सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं ।३।
सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं ।४।
सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं ।५।

१. **सर्व प्राणातिपात विरमण**—हिसा का त्याग।

२. **सर्व मृषावाद विरमण**—असत्य-झूठ का त्याग।

३. **सर्व अदत्तादान विरमण**—चोरी का सर्वथा त्याग।

४. **सर्व मैथुन विरमण**—मैथुन का सर्वथा त्याग।

५. **सर्व परिग्रह विरमण**—परिग्रह का सर्वथा त्याग।

इन महाव्रतो को **सर्व विरति** कहा जाता है। और ये सर्व विरति-चारित्र के मूल होने से **मूलगुण** से पहिचाने जाते हैं।

श्री पंच महाव्रत तप विधि

इस तप में प्रत्येक महाव्रत के आश्रयी एक एक उपवास तथा एक बियासणा करना। इस तरह यह तप दस दिन मे पूरा होता है।

नमो लोए सव्वसाहूणं पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक वगैरह २७-२७ करना।

---

१३०. श्री पार्श्व जिन गणधर तप

भगवंत श्री महावीर देव के ११ गणधर थे जबकि पुरुषादाणी श्री पार्श्वनाथ भगवंत के १० गणधर थे। उन्हें लक्ष्य में रखकर यह तप किया जाता है। दसों गणधर के जीवन चरित्र के सम्बध मे श्री पार्श्वनाथ चरित्र पढना यहाँ तो सिर्फ उनके माता-पिता आदि के विषय मे बताया जाता है।

१. **शुभदत्त**—क्षेमपुर नगरी, धनंज्य पिता, लीलावती माता

२. **आर्यघोष**—राजगृही नगरी, मंत्री पुत्र, बाल ब्रह्मचारी

३. **विशिष्ट**—कोपिल्यपुर नगरी, महेद्र राजा के पुत्र

४. **ब्रह्म**—सुरपुर नगर, कनककेतु राजा पिता, शांतीमति माता, बाल ब्रह्मचारी।

५. **सोम**—क्षितिप्रतिष्ठित नगर, महीधर राजा पिता, रेवती माता।

६. श्रीधर—पोतनपुर नगर, नागबल राजा पिता, सुंदरी माता ।

७ वीरभद्र (वारिषेण)—मिथिला नगरी, नमि राजा पिता, यशोधरा माता ।

८. यशोभद्र (भद्रयश)—पोतनपुर नगर, समरसिंह राजा पिता, पद्मा माता ।

९. अमायि (जय)—

१०. महागुणी (विजय)—श्रावस्ती नगरी, राजपुत्र

श्री पार्श्वजिन गणधर तप विधि

इस तप में लगातार दस छठ्ठ करना । छठ्ठ के पारणे बियासणा करना । स्वस्तिक आदि १०-१० करना । गुणना निम्न प्रकार करना :—

१. श्री शुभगणधराय नमः ।

२. श्री आर्यघोष गणधराय नमः ।

३. श्री विशिष्ट गणधराय नमः ।

४. श्री ब्रह्मगणधराय नमः ।

५. श्री सोमगणधराय नमः ।

६. श्री श्रीधरगणधराय नमः ।

७. श्री वीरभद्रगणधराय नमः ।

८. श्री यशोभद्रगणधराय नम ।

९. श्री अमायि (जय) गणधराय नमः ।

१०. श्री महागुणि (विजय) गणधराय नमः ।

उद्यापन में श्री गणधर देव की पूजा करना और उन्हें आंगी आदि दस चढाना। गणधर की प्रतिमा के अभाव मे किसी भी प्रभु की प्रतिमा को चढ़ाना।

---

१३१. श्री पौष दसमी तप (पं. त. आदि)

पौष वद १० के दिन यह तप शुरू होता है। यह तप तीन तरह से किया जा सकता है।

(१) दस वर्ष और दस मास तक पौष वद नम, दसम और ग्यारस तीन दिन आराधना की जाती है।

(२) जीवन पर्यंत पौष वद १० की आराधना।

(३) दस वर्ष तक पौष वद १० की आराधना।

श्रेणिक महाराज ने राजगृही के उद्यान में भगवंत महावीर स्वामी को प्रश्न किया कि—हे भगवंत ! पौष माह मे कौनसा दिन उत्तम गिना जाय ? भगवंत ने कहा कि—पौष वद १० का दिन उत्तम है। श्रेणिक राजा ने पुनः पूछा कि इसका क्या कारण है ? तथा उस दिन की आराधना से किसे व कैसा फल प्रात हुआ ?

भगवंत श्री महावीर देव ने श्रेणिक राजा को बताया कि पौष वद १० मेरे से पूर्व हुए तेवीसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवंत का जन्म दिन है, इस कारण इसका अधिक माहात्म्य है। उस दिन की आराधना से (सुरदत्त) सेठ की गई हुई ऋद्धि

सिद्धि मिली और अन्त में सिद्धि गति प्राप्त करेंगे। इसका संक्षिप्त वृतांत इस प्रकार है—

वाणारसी नगरी में अश्वसेन राजा की वामा राणी की कुक्षि से श्री पार्श्वनाथ भगवान् का पौष वदी १० के दिन जन्म हुआ। उनके जन्म से राज्य में सर्वत्र आनन्द फैल गया। अश्वसेन राजा ने दीन-याचक जनों को प्रचुर मात्रा में दान दिया।

कुशलस्थल के प्रसेनजीत राजा के प्रभावती नाम की सर्व गुण सम्पन्न और अपूर्व लावण्यवती राजकुमारी थी। कलिंग देश के यवन राजा ने प्रभावती को प्राप्त करने के लिए कुशल-स्थल पर हमला किया। प्रसेनजीत राजा ने अश्वसेन राजा से सहायता मांगी। पिताश्री को रोककर श्री पार्श्वनाथ भगवंत स्वयं कुशलस्थल गये। उनके आते ही यवन राजा सेना लेकर लौट गया। प्रसेनजीत ने पार्श्वनाथ भगवंत के साथ प्रभावती का महोत्सव पूर्वक लग्न किया।

एक बार भगवंत श्री पार्श्वनाथ झरोखे में बैठे नगरचर्या देख रहे थे, इतने मे बहुत लोगों को आनन्दपूर्वक विविध सामग्री लेकर जाते देखा। मालूम करने पर पता चला कि—कमठ नाम का योगी उद्यान मे आया हुआ है। वह पंचाग्नि तप करता है, इसलिए लोग उसकी वंदना-पूजनार्थ जा रहे हैं। भगवंत ने इसे मिथ्यात्वी क्रिया समझ लोगों को सन्मार्ग पर लाने का विचार किया। तीन ज्ञान के धारक परमात्मा से क्या छिपा था!

वे राजसवारी के साथ कमठ योगी के पास पहुँचे। उस समय योगी के पास पंचाग्नि जल रही थी। लकड़ी के बीच में सर्प भी जल रहा था, वह भगवंत से कैसे छिपा रह सकता

था ? लोगो को आकर्षित करना मात्र सत्य धर्म नहीं है। सद्धर्म तो शुद्ध निष्कलक आचरण और व्यवहार मे है, यह बताने के लिए उन्होने जल रही लकड़ी को अपने सेवक से फड़वाई तो उसमे अर्धजला सांप सब के देखने मे आया। सर्प अंतिम सांसे गिन रहा था, उस समय उन्होंने उसे नवकार मत्र सुनाया जिसके प्रभाव से वह सर्प मरकर धरेंद्र देव हुआ।

कमठ के अज्ञान तप-कष्ट को जान लोग लौट पड़े। कमठ अपने पराभव के कारण पार्श्वकुमार के प्रति द्वेषी होगया, परन्तु उस स्थिति में वह उनका कुछ अहित कर हा नही सकता था। बाद में मरने पर वह कमठ मेघमाली देव हुआ।

बसत ऋतु के आगमन से पार्श्वकुमार प्रभावती देवी के साथ वन मे क्रीडा करने गये। वहा जिनमंदिर देख उसमे प्रवेश किया। जिनमंदिर की दिवाल पर अपने पूर्व के बाईसवे तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवत ने अपनी पत्नी राजमति को, लग्न करने से पूर्व ही त्याग दिया था उस सम्बन्धी चित्रो पर उनकी दृष्टि गई। परमात्मा को निमित्त मिल गया। संसार त्याग करने की मनोभावना हुई, इतने मे लोकांतिक देवो ने आकर **धर्मप्रवर्तावने** के लिए प्रभु से प्रार्थना की।

संवत्सरी दान दे परमात्मा ने पौष वद ११ के दिन प्रवज्या ग्रहण की। दीक्षा के बाद **कादम्बरी** अटवी मे आते ही जाति-स्मरण प्राप्त हुए हाथी ने सूंढ से प्रभु का स्नानाभिषेक किया। वह स्थान **कलिकुण्ड** तीर्थ के रूप मे प्रसिद्ध हुआ।

बाद मे कौस्तुभ वन में आने पर परमात्मा के देह पर धरणेंद्र ने अपने फण फैलायें, इसलिए उस स्थान पर स्मृति रूप में **अहिच्छत्रा नगरी** वसी।

मेघमाली देव ने अपने पूर्व भव का बदला लेने के लिए श्री पार्श्वप्रभु जब कायोत्सर्ग ध्यान में खड़े थे उस समय नाना प्रकार के उपसर्ग किए, परन्तु मेरू पर्वत क्या प्रचण्ड वायु से भी चलायमान होता है ? परमात्मा को निश्चल देख मेघमाली देव ने अखण्ड धारा से वृष्टि शुरू की। नदी-नाले भर गये, जमीन पर सर्वत्र पानी ही पानी हो गया। सात दिन तक वर्षा होने के कारण पानी प्रभु की नासिका तक पहुँच गया। इतने में धरणेंद्र का आसन कंपित हुआ। अवधिज्ञान से मेघमाली देव का य दुष्कृत्य देख जल्दी से परमात्मा के पास आये और उन पर अपने फण से छत्र किया। धरणेंद्र ने मेघमाली को इस दुष्कृत्य के लिए उपालम्भ दिया। मेघमाली भी परमात्मा की निश्चलता और समभाव के सामने अपना पराभव स्वीकार कर, परमात्मा को नमस्कार कर, क्षमा मांग चला गया। धरणेंद्र भी परमात्मा की स्तुति कर अपने स्थान को लौट गये।

परमात्मा वहां से विहार कर आश्रमपद उद्यान मे पधारे और वैसाख वद चौथ के दिन केवलज्ञान प्राप्त हुआ। अनेक भव्य जीवो को प्रतिबोध कर अपना निर्वाण समय नजदीक जानकर श्री समेतशिखर पर पधारे। ७० वर्ष दीक्षित जीवन और ३० वर्ष गृहस्थ जीवन-कुल सौ वर्ष की आयु भोग, श्री समेतशिखर पर तैंतीस मुनिवरो के साथ एक माह का अनशन कर निर्वाण पधारे।

श्री पार्श्वनाथ भगवंत का आदेयनामकर्म अतिशय था इसलिए वे सर्वत्र विशेष पूजा तथा आदर के पात्र हुए हैं।

सुरेंद्रपुर नगर में नरसिंह राजा के गुणसुन्दरी रानी थी। उसी नगर में सुरदत्त सेठ के शीलवती नामक पत्नी थी। सेठ के पास अपार सम्पत्ति थी परन्तु वह मिथ्यात्वी था।

एक समय माल के ढाई सौ जहाज भर कर रत्नद्वीप भेजे। क्रय-विक्रय करते वहुत लाभ हुआ। दूसरे कियाणे भर जहाज वापिस लौट रहे थे इतने मे समुद्र में तूफान आया और वे सब जहाज कालकूट द्वीप जा पहुंचे। इधर जहाज तो वापिस नहीं लौटे उधर सेठ के घर मे ग्यारह करोड़ सोनैया भी जो निधान रूप रखे थे वे कोयले के रूप मे बदल गये। पांच सौ गाड़ियाँ माल लेकर आ रही थी उन्हे डाकुओं ने लूट लिया। इस प्रकार अचानक उपाधि से सेठ दरिद्र हो गया। धन चले जाने से नगर सेठाई, मान-सम्मान सव चला गया। जिसकी आज्ञा मे लोग हाथ जोड़े खड़े रहते थे आज उसकी तरफ कोई देखने वाला भी नही रहा।

समयानुयोग से देवेंद्रसूरि महाराज नगर मे पधारे। नरसिंह राजा भी ठाठ-वाठ से वंदन करने गये। सुरदत्त सेठ भी गया। सूरि महाराज की देशना सुनने से उसके हृदय को शांति मिली। देशना के वाद सवके जाने पर एकान्त मे उसने गुरु महाराज से जीव का स्वरूप पूछा। गुरु महाराज ने उसे जीव सम्वन्धी सब स्वरूप समझाया, तपश्चर्या की महिमा भी वताई। सुरदत्त सेठ ने गुरु महाराज के वताये अनुसार **पौष दशम** की आराधना शुरू की। आराधना करते सिर्फ दस माह ही हुए थे कि ढाई सौ जहाज माल सहित सही सलामत पीछे आगये। घर में गडा निधान भी प्रगट हुआ और आनंद ही आनद फैल गया। **पौष दशमी** के प्रभाव को जानकर सुरदत्त सेठ ने विशेष रूप से आराधना चालू रखी। नगर सेठ की पदवी भी पुनः प्राप्त हुई।

सेठ के दस पुत्र हुए । सेठ ने पौष दशमी व्रत का भली प्रकार उद्यापन किया । बाद में गुरु महाराज से दीक्षा अंगीकार की । छट्ठ-अट्ठम की तपश्चर्या करते मर कर दसवें लोक में गये । वहां बीस सागरोपम का आयुष्य भोग महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती विजय की मंगलावती नगरी के सिंहसेन राजा की गुण सुन्दरी की पटरानी की कुक्षि से **जयसेन** पुत्र रूप में पैदा होंगे । केवल ज्ञान प्राप्त कर सिद्धि गति मे जायंगे ।

भगवंत महावीर के मुखारविंद से पौष दसमी का ऐसा अचित्य प्रभाव जानकर श्रेणिक महाराज ने उस पवित्र दिन की अत्यंत प्रशंसा की ।

श्री पौष दसमी तप विधि

यह तप पौष दसमी को लक्ष्य मे रखकर किया जाता है । इसमे प्रथम नवमी के दिन शक्कर के पानी से एकासना कर ठाम चउविहार करना । दसमी के दिन एकासना कर ठाम चउविहार करना तथा ग्यारस के दिन तिविहार एकासना करना । एकासना कर त्रिविध आहार का पञ्चक्खाण करना । तीनो दिन ब्रह्मचर्य पालना व दोनों वक्त प्रतिक्रमण करना । जिन मदिर मे जाकर अष्टप्रकारी अथवा सत्तरप्रकारी पूजा पढ़ाना । स्नात्र महोत्सव करना । आडंबर सहित नव अंग की पूजा करना । गुरु के पास जाकर सिद्धांत श्रवण करना । इस तरह दस वर्ष तक करना । तपश्चर्या के दिन (पौष वद १०) पौषध करना । **इस प्रकार जो तप करता है उसकी मनोकामना पूरी होती है ।**

श्री पार्श्वनाथार्हते नमः पद की बीस माला गिनना । स्वस्तिक आदि बारह बारह करना ।

उद्यापन में दस पूठिया, दस रूमाल (पुस्तक बांधने के), दस नवकारवाली, दस नीलमणि, दस चंद्रवा, सोना—रूपा—कांसा—पीतल इन चार धातुओं की दस दस प्रतिमा, ज्ञान, दर्शन और चारित्र के उपकरण दस दस। बाकी विधि गुरुगम से जानना।

---

१३२. श्री दूज का तप और विधि (पं.स.)

यह तप कार्तिक सुद दूज से शुरू किया जाता है। इसमें हर माह की सुद दूज को चऊविहार उपवास करना। इस तरह बाईस माह तक अथवा उत्कृष्ट बाईस वर्ष तक यह तप करना। दोनों वक्त प्रतिक्रमण, प्रतिलेखन; त्रिकाल देववंदन करना।

उद्यापन शक्ति अनुसार करना। बीस वस्तुएं ज्ञान के पास रखना। गुणना आदि नीचे अनुसार करना।

		सा. ख. लो. नो.
१.	नंदिसूत्राय नमः	५१—५१—५१—२०
२.	अनुयोगद्वारसूत्राय नमः	६२—६२—६२—२०

या

१.	ओघनिर्युक्तिसूत्राय नमः	१४—१४—१४—२०
२.	अनुयोगद्वारसूत्राय नमः	६२—६२—६२—२०

---

१३३. श्री बड़ा रत्नोत्तर तप और विधि (रा. वि.)

प्रथम एक अठ्ठम कर पारणा, फिर दूसरा अठ्ठम कर पारणा करना। पारणे के दिन बियासना करना।

नमो अरिहंताणं पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

१३४. श्री रत्नरोहण तप और विधि (जै. प्र. आदि)

यह तप आसोज सुद पांचम के दिन शुरू करना। इसमें चार चार दिन की ओली हैं। पहली ओली मे प्रथम दिन एकासना, दूसरे दिन नीवी, तीसरे दिन आयंबिल और चौथे दिन उपवास। दूसरी ओली मे क्रमशः नीवी, आयंबिल, उपवास और एकासना। तीसरी ओली में क्रमशः आयबिल, उपवास, एकासना, नीवी। चौथी ओली में क्रमशः उपवास, एकासना, नीवी, आयंविल करना। पांचवी ओली मे कमशः उपवास, एकासना, नीवी और आयबिल करना। इस तरह यह तप बीस दिन करना।

उद्यापन मे नवकारवाली ५, स्थापनाचार्य ५, रत्नमय बिंब ५ बनवाना, मोदक २० ज्ञान के पास रखना। तप के दिनों में ब्रह्मचर्य सहित ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना करना। पारणे के दिन गुरु की अंगपूजा यथाशक्ति द्रव्य से

करना। देव को अष्टप्रकारी पूजा करना। यह तप तीन वर्ष तक करना।

नमो अरिहंताणं पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि वारह वारह करना।

१३५. श्री बृहत्संसारतारण तप और विधि (जै० प्र० आदि)

इस तप मे तीन वार लगातार एक अट्ठम कर पारणे पर आयंविल करना। इस तरह यह तप नो उपवास और तीन आयविल से वारह दिन में पूरा होता है।

उद्यापन मे दूध से भरे भाणे पर चांदी का जहाज तिराना। जहाज मे रूपानाणा, मोती, विद्रुम भरना। यथाशक्ति पूजा पढाना। ज्ञान पूजा करना। देववदन, प्रतिक्रमण, पड़िलेहण आदि सव करना। गुणना आदि निम्न प्रकार करना।

	सा. ख. लो. नो
१. केशिगणधराय नमः	११–११–११–२०
२. सूरिसिंहगणधराय नमः	११–११–११–२०
३. दर्शनआराधनाय नमः	६७–६७–६७–२०
४. ज्ञानआराधनाय नमः	५१–५१–५१–२०
५. चारित्रआराधनाय नमः	१७–१७–१७–२०
६. तपआराधनाय नमः	१२–१२–१२–२०

७. देवश्रुतआराधनाय नमः ८— ८— ८—२०
८. क्षायिकसम्यक्त्वाय नमः ९— ९— ९—२०
९. सागरसेनाय नमः ८— ८— ८—२०
१०. विमलबोधाय नमः ८— ८— ८—२०
११. महायशसे नमः ८— ८— ८—२०
१२. सर्वानुभूतये नमः ८— ८— ८—२०

---

१३६. श्री लघु संसारतारण तप और विधि (जै. प्र. आदि)

इस तप मे लगातार तीन आयबिल पर एक उपवास करना। इस तरह नो आयंबिल और तीन उपवास करना। इस तरह बारह दिन मे यह तप पूरा होता है। बाकी सब ऊपर के तप न० १३५ के अनुसार।

---

१३७. श्री ऋषभदेव संवत्सर तप (वर्षी तप) (प्रत नं. बा.)

इस तप को वर्षी तप कहते हैं। तेरह मास और ग्यारह दिन से यह तप पूरा होता है। चैत्र वद ८ से तप शुरू किया जाता है और वैशाख सुद ३ अक्षय तृतीया को १०८ गभों के

रस के घड़े से पारणा किया जाता है। प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवंत ने चार सौ उपवास के पारणे पर अक्षय तृतिया को पारणा किया था, इसे लक्ष्य में रखकर यह तप किया जाता है। भगवंत के जैसे शरीर—संघयण नहीं होने से वर्तमान में एकान्तर उपवास से यह तप किया जाता है। इस तप सम्बन्धी वृत्तांत निम्न प्रकार है—

भगवंत श्री ऋषभदेव स्वामी वर्तमान चौवीसी के आद्य तीर्थंकर हैं। इतना ही नही परन्तु व्यवहार धर्म के भी आदि प्रवर्तक हैं। उन्होनें लोगो को व्यवहार सिखाया, व्यापार सिखाया और कल्पवृक्षों के प्रभाव मंद हो जाने से लोगों को आजीविका के साधन भी बताये।

वे वीस लाख पूर्व वर्ष युवराज अवस्था में रहे और तिरेसठ लाख पूर्व वर्ष राज्यधुरा वहन की। एक बार वे नन्दन उद्यान में गये हुए थे वहां लता मंडप मे बिराजकर लोगों की क्रीड़ा देख रहे थे। क्रीड़ा देखते-देखते उनको विचार पैदा हुआ कि—ऐसा मैंने पहले भी कही देखा है। ऐसा सोचते-सोचते उन्हें जातिस्मरण ज्ञान हुआ। दीक्षा लेने की इच्छा हुई इतने मे ही लोकांतिक देवो ने आकर परमात्मा को प्रार्थना की कि—स्वामिन्! तीर्थ प्रवर्ताएं। परमात्मा ने संवत्सरी दान देना शुरू किया। फिर चैत्र वद ८ के दिन कच्छ-महाकच्छ आदि चार हजार राजाओं के साथ दीक्षा ली।

युगलियो को मुनियों को निरवद्य (बयालिस दोष रहित) आहार देने का ज्ञान नहीं था। संयम की अवस्था मे तो निर्दोष गोचरी मिले तब ही स्वीकार की जा सकती है।

परमात्मा को पारणे पर शुद्ध एषणीय आहार नही मिला इसलिए उन्होंने उपवास चालू रखे। परमात्मा के प्रति भक्ति से लोग उनके समक्ष अश्व, गज, मूल्यवान वस्त्र, उत्तम आभूषण आदि वस्तुएं रखने लगे, परन्तु परमात्मा को उनमें से कोई भी वस्तु नही कल्पती थी। पारणे के लिए कल्प्य-शुद्ध आहार न मिले वहां तक परमात्मा ने उपवास चालू ही रखे। कच्छ-महाकच्छ आदि ने शुरू में तो उनका अनुकरण किया परन्तु अन्त मे धैर्य छूट जाने से वन मे जाकर कन्दमूल का भक्षण कर तापस बने।

परमात्मा अकेले विहार करते २ हस्तिनापुर पधारे। दीर्घ तपस्वी भगवंत को पारणे के लिए लोगो ने नाना प्रकार की भेट रखी। बारंबार निवेदन करने पर भी उनमे से किसी वस्तु को स्वीकार नही किया। लोग शोक विह्वल होकर कोलाहल करने लगे। अचानक लोगों का कोलाहल सुन राजमंदिर मे बैठे भरत महाराज के पौत्र और सोमप्रभ राजा के पुत्र श्रेयासकुमार ने प्रतिहारी को पता लगाने भेजा। प्रतिहारी ने भगवंत के आगमन की सूचना दी। परमात्मा के आगमन को सुन श्रेयासकुमार नगे पैर दौड़ पड़े। भगवंत भी उन्ही के स्थान को ओर पधार रहे थे। परमात्मा को देखते ही श्रेयांसकुमार को अपने आप आभास हुआ कि—पहले भी मैंने भगवंत को कही देखे हैं। बारंबार सोचते सोचते उन्हें जाति स्मरण ज्ञान हुआ और उसके प्रभाव से जाना कि—पहले परमात्मा महाविदेह क्षेत्र मे वज्रनाभ चक्रवर्ती थे तब मैं उनका सारथी था। परमात्मा को कल्पे वैसा आहार वहोराने के लिए श्रेयासकुमार ने सोचा इतने में उसी समय कोई एक नागरिक ताजा गन्ने के रस से भरे घड़े श्रेयांसकुमार

को भेंट करने के लिए ले आया। श्रेयांसकुमार ने वह इक्षुरस परमात्मा को वहोराया, परमात्मा ने भी उसे कल्प्य जान अपना हाथ फैलाया। परमात्मा ने पारणा किया वह दिन वैशाख सुद तीज का था। उस समय से यह दिन **अक्षयतृतिया** के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

श्रेयांसकुमार के परमात्मा को पारणा कराने से उस जगह पंच दिव्य प्रगट हुए। पूर्वभव के अनुभव के आधार पर श्रेयांसकुमार ने लोगो को मुनिधर्म समझाया और तब से लोगों मे सुपात्रदान की प्रवृत्ति आरम्भ हुई। परमात्मा ने संवत्सरी दान से **दान धर्म** प्रवर्ताया, परन्तु श्रेयासकुमार ने **सुपात्रदान** रूप धर्म प्रवर्ताया।

इस प्रकार भगवंत ने दीक्षा लेने के तेरह मास और ग्यारहवें दिन पारणा किया। इसे लक्ष्य में रख यह तप किया जाता है। श्री नवपद आराधना की तरह वर्तमान मे इस तप की आराधना दिन दिन बढ़ रही है।

श्री ऋषभदेव संवत्सर तप विधि

यह तप चैत्र वद ८ के रोज शुरू कर यथाशक्ति एकान्तर उपवास करना। इसमें कुल ४०० उपवास करना। तीसरे वर्ष अक्षय तृतिया के दिन देवगुरु की पूजा, संघ वात्सल्य कर पारणा करना। इस तप मे बीच मे जिस अक्षय तृतिया को पारणे का दिन आवे तो उपवास करना।

श्री ऋषभदेवनाथाय नमः पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

दूसरी विधि—

श्री ऋषभदेव स्वामी के शासन मे उत्कृष्ट तप ३६० दिन का है। जिससे उसके आश्रयी ३६० एकातर उपवास करना। बाकी सब ऊपर बताये अनुसार।

वर्तमान मे यह तप इस प्रकार करने का रिवाज है—चैत्र वद ८ के दिन उपवास से शुरू कर एकान्तर पारणे बियासणा कर तेरह माह और ग्यारह दिन अर्थात् अक्षय तृतिया को पारणा करते है। पारणे के दिन १०८ घड़े गन्ने के रस अथवा शक्कर के पीते है। (घड़ा चादी का बहुत छोटा बनाते है)

इस तप मे दो दिन साथ खाने के नही आना चाहिए, तथा चतुर्दशी को खाने का दिन नही आना चाहिए, उसी तरह चौमासी (१४-१५) का छठ्ठ करना चाहिए और अंत मे छठ्ठ से कम का पारणा नही करना चाहिये। पारणे पर गन्ने का रस पीने का होता है और वह भी ताजा हो तब ही पीया जाता है, क्योकि दोपहर के बाद का गन्ने का रस लघु प्रवचन सारोद्धार मे अभक्ष्य बताया है। गन्ने के रस के अभाव मे शक्कर का पानी काम मे लिया जा सकता है।

इस तपस्या से तपस्वो को कष्ट नहीं होता, आनंद भोगता है। रोग, शोक, भय आदि दौर्भाग्य की प्राप्ति नही होती, संसार मे यश फैलता है और मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है।

---

१३८. श्री छैःमासी तप और विधि[१] (जै. प्र. आदि)

श्री महावीर स्वामी के शासन मे उत्कृष्ट छेः मासी तप है। इससे उसके आश्रयी एक सौ अस्सी उपवास एकान्तर पारणे वाले करना।

उद्यापन में १८० लड्डू, फल आदि प्रभु के पास रखना।

श्री महावीर स्वामीनाथाय नमः पद की वीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि वारह-वारह करना।

एकान्तर उपवास छैः माह तक करना। चतुर्दशी को नहीं खाना, चौमासी को छठ्ठ करना। शुरू भी छठ्ठ से करना व पारणा भी छठ्ठ से करना। (इस छैः मासी तप मे ६० उपवास होते हैं)

---

१३९. श्री शत्रुंजय मोदक तप और विधि (जै. प्र. आदि)

इस तप मे पहले दिन पुरिमड्ढ, दूसरे दिन एकासना, तीसरें दिन नीवी, चौथे दिन आयविल, पांचवे दिन उपवास करना।

---

१. ये १८० उपवास एकान्तर पारण वाला शक्ति के अभाव मे वताये हैं, वरना तो करीव ३०० वर्ष पहले दिल्लीपति के दिवान के चम्पाबाई ने लगातार १८० उपवास वादशाह के सामने किये थे ऐसा लेख है।

उद्यापन मे पाच माणा के मोदक तथा पांच रुपया देव के पास रखना। ज्ञान की पूजा रूपानाणा से करना।

श्री शत्रुंजयतीर्थाय नमः पद की वीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि २१-२१ करना।

---

१४०. श्री शत्रुंजय छठ्ठ अठ्ठम तप (पं. त. वि.)

श्री शत्रुंजय तीर्थाधिराज के विशेष वर्णन के लिए **श्री शत्रुंजय माहात्म्य** पढ़ना। यह तप प्रचलित है और श्री सिद्धाचल की **यात्रा नवाणुकरिये विमलगिरो** इस स्तवन मे भी कहा गया है—**सात छठ्ठ दोय अठ्ठम तपस्या करी चटिये गिरिवरीए-विमलगिरो** यात्रा नवाणु करिये।

श्री शत्रुंजय छठ्ठ अठ्ठम तप विधि

इस तप मे शुरू मे व अन्त मे अठ्ठम करना और बीच में सात छठ्ठ करना। इस तरह बीस उपवास तथा नो पारणे मिल २९ दिन मे तप पूरा होता है। स्वस्तिक आदि २१-२१ करना। प्रतिदिन बीस माला निम्न प्रकार से गिनना।

१. अठ्ठम—श्री पुंडरीकगणधराय नमः

२. छठ्ठ—श्री ऋषभदेवसर्वज्ञाय नमः

३. छठ्ठ—श्री विमलगणधराय नमः

४. छट्ठ—श्री सिद्धक्षेत्राय नमः

५. छट्ठ—श्री हरिगणधराय नमः

६. छट्ठ—श्री वाहुवलिगणधराय नमः

७. छट्ठ—श्री सहस्रादिगणधराय नमः

८. छट्ठ—श्री सहस्रकमलाय नमः

९. अट्ठम—श्री कोडिगणधराय नमः

अथवा इस प्रकार—

१. दोनो अट्ठम—श्री सिद्धद्रि शत्रुंजयसिद्धगिरिवराय नमः।
२. छट्ठ—श्री आदीश्वरपरमेष्ठिने नमः
३. छट्ठ—आदीश्वरअर्हतेनमः
४. छट्ठ—श्री आदीश्वरनाथाय नमः
५. छट्ठ—श्री आदीश्वरसर्वज्ञाय नमः
६. छट्ठ—श्री आदीश्वरपारगताय नमः
७. छट्ठ—श्री शत्रुंजय सिद्धक्षेत्रपुंडरीकाय नमः
८. छट्ठ—श्री सिद्धक्षेत्रपुंडरिकविमलगिरये नमः

अथवा—श्री शत्रुंजय पर्वताय नमः पद की माला प्रतिदिन गिनना।

इक्कीस खमासरा निम्न प्रकार देना—

१. श्री शत्रुंजय पर्वताय नमः
२. श्री पुंडरीक पर्वताय नमः
३. श्री सिद्धक्षेत्र पर्वताय नमः
४ श्री विमलाचलाय नमः
५. श्री सुरगिरये नम.
६. श्री महागिरये नम.
७. श्री पुण्यराशये नमः
८. श्री पर्वताय नमः
९. श्री पर्वतेंद्राय नमः
१०. श्री महातीर्थाय नमः
११. श्री सारस्वताय नमः
१२. श्री दृढशक्तिपर्वताय नमः

१३ श्री मुक्तिनिलयाय नमः   १४. श्री पुष्पदताय नमः
१५. श्री महापद्माय नमः   १६ श्री पृथ्वीपीडाय नमः
१७ श्री सुभद्रगिरिपर्वताय नमः
१८ श्री कैलासगिरिपर्वताय नमः १९ श्री पातालमूलाय नमः
२०. श्री अकर्मकाय नमः   २१. श्री सर्वकामपूर्णाय नमः

उद्यापन मे नवाणु प्रकार की पूजा पढाना। यथाशक्ति ज्ञानपूजा, प्रभावना आदि करना।

---

१४१. श्री मेरूत्रयोदशी तप (पं.त. आदि)

माघ वद १३ को मेरू त्रयोदशी कहते हैं। इस पवित्र दिन को प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवत का अष्टापद पर्वत पर निर्वाण हुआ उसे लक्ष्य मे रख यह तप किया जाता है।

परमात्मा को केवलज्ञान होने के बाद एक लाख पिचासी हजार साढे छैः सौ मुनिवर, तीन लाख साध्विया, तीन लाख पच्चीस हजार शुद्ध समकितधारी श्रावक, तथा पाच लाख चौपन हजार श्राविकाए जितना परिवार हुआ। एक लाख पूर्व तक सयम पालने के बाद अपना निर्वाण समीप जान प्रथम तीर्थंकर अष्टापद पर्वत पधारे और दस हजार मुनियो के साथ अनशन किया। तीसरे सुखम दुखम नाम के आरे के नवासी पखवाड़े बाकी रहे तब माघ वद १३ के दिन पूर्वाह्न समय, चंद्र अभिजित् नक्षत्र मे था तब पर्यकसन मे बिराजे हुए परमात्मा लोकाग्र को—सिद्धावस्था को प्राप्त हुए। परमात्मा के अग्नि-सस्कार की भूमि के नजदीक अष्टापद पर्वत पर भरत महाराज ने तीन कोस ऊँचा और एक योजन लम्बा–पहोला सिंहनिषद्या

प्रासाद बनवाया और उसमे चौबीस तीर्थंकरों की मान, लांछन और वर्णयुक्त प्रतिमाए स्थापित की । इस सम्बध का विशेष वर्णन तप न ७४ और ६८ मे बताया है ।

श्री मेरू त्रयोदशी तप विधि

इस तप को माघ वद १३ के दिन शुरु किया जाता है। उस दिन श्री ऋषभदेव स्वामी का निर्वाण कल्याणक होने से इसका बडा माहात्म्य है। उस दिन चऊविहार उपवास करना (शक्ति न हो तो तिविहार करना) । रत्न के पाच मेरु बनाना उनके चारों दिशाओ मे चार छोटे मेरु करना । रत्न के नहीं बन सकें तो घी के बनाना । उसके पास चार दिशाओं मे चार नंदावर्त करना । दीप, धूप आदि से पूजा करना ।

श्री ऋषभदेव पारगताय नमः पद की बीस माला गिनना ।

यह प्रति माह करने से सर्व प्रकार के कर्म क्षय होते हैं। इस भव तथा परभव मे सुख सपदा प्राप्त होती है। इस दिन पौषध करना । पारणे के दिन गुरु को वहोराकर—अतिथि-संविभाग कर पारणा करना । स्वस्तिक आदि बारह बारह करना ।

---

१४२. श्री शिवकुमार का छट्ठ तप

(ज० प्र० ज० सि०)

नमस्कार महामत्र को आराधना के लिए यह तप किया जाता है। श्री नवकार महामत्र की आराधना से कितने ही

प्राणी भव समुद्र पार कर गये हैं परन्तु नवकार महामंत्र का प्रचलित—वांछित पूरे विविध परे, **श्री जिनशासन सार, निश्चे श्री नवकार नित्य, जपता जयजयकार**—इस छंद मे तेरह दृष्टातों मे से शिवकुमार का दृष्टांत भी एक है, जैसे कि—

नवकार थकी श्रीपाल नरेसर, पाम्या राज्य प्रसिद्ध ।
श्मशान विषे शिवनामकुमारने, सोवनपुरुषो सिद्ध ।।

श्री शिवकुमार की कथा

श्री रत्नपुर मे यशोभद्र सेठ के शिवकुमार नामका पुत्र था। सेठ के पास अपार धन राशि थी। शिवकुमार बचपन से ही कुमार्ग की तरफ चलने लगा और इसके परिणाम स्वरूप अधिकांश धन व्यय होने लगा। सेठ ने उसे सुमार्ग पर लाने के बहुत प्रयत्न किये, परन्तु शिवकुमार पर कुछ असर नही हुआ। यशोभद्र सेठ जब मृत्यु शय्या पर थे तब शिवकुमार को अपने पास बुलाकर अतिम शिक्षा दी कि—जब अचानक—अकस्मात कोई आपत्ति का कारण उपस्थित हो तब नवकार मंत्र का स्मरण करना। शिवकुमार ने यह शिक्षा स्वीकार की और पिता ने प्राण छोड़ दिये।

पिता की मृत्यु के बाद शिवकुमार धीरे धीरे निर्धन हो गया। जीवन निर्वाह भी कैसे किया जाय इसकी भी उसे चिंता होने लगी। इतने मे उसका एक कापालिक से सम्पर्क हुआ। कापालिक मंत्र प्रयोग द्वारा **स्वर्ण पुरुष** सिद्ध करना चाहता था और इसके लिए उसे बत्तीस लक्षण-वाले उत्तर साधक पुरुष की जरूरत थी। शिवकुमार उसे बत्तीस लक्षण वाला लगा इस-

लिए उसे लालच देकर अपने साथ स्मशानभूमि में ले गया। उस जगह एकांत में यज्ञकुंड बनाया। कापालिक एक शव ले आया और उसके हाथ मे तलवार देकर मंत्रजाप शुरू किया। यह सब दृश्य देखकर शिवकुमार ने सोचा कि—यह तो मृत्यु की उपस्थिति होगई लगती है। आपत्ति के समय नमस्कार मंत्र का स्मरण करने की पिता की शिक्षा उसे याद आई।

उसने एकाग्रता से नवकार महामत्र का जाप शुरू किया। मंत्र जाप के प्रभाव से कापालिक के मत्र जाप से खड़ा होता शव वापिस गिरने लगा। इसलिए कापालिक ने शिवकुमार से प्रश्न किया कि—क्या तू भी कुछ मत्र जाप करता है? शिवकुमार ने इन्कार किया। थोड़ी देर बाद तो नवकार मत्र के जाप के प्रभाव से शव ने अपने हाथ की तलवार से कापालिक का वध कर दिया और उसे यज्ञकुंड मे होम देने से वह तुरन्त स्वर्ण पुरुष के रूप में परिवर्तित हो गया। इस तरह शिवकुमार को स्वर्ण पुरुष की सिद्धि हुई।

नवकार महामत्र का ऐसा अचित्य प्रभाव जानकर इसकी आराधना के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिये।

श्री शिवकुमार के छठ्ठ तप विधि

इस तप में बारह छठ्ठ लगातार आयबिल के पारणा वाला करना। लगातार न हो सके तो अलग अलग करना।

उद्यापन मे बारह बारह मोदक, फल, रूपानाणा आदि देव के पास रखना। ज्ञान की पूजा तथा गुरु की भक्ति करना।

नमो अरिहंताणं पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

१४३ श्री षट्काय तप और विधि

इस तप में लगातार छै. उपवास करना। उद्यापन मे शक्ति अनुसार जीवदया मे द्रव्य व्यय करना। **नमो अरिहंताण** पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

१४४ श्री सात सौख्य आठ मोक्ष तप और विधि (जै० प्र०)

इस तप मे सात एकासना कर ऊपर एक उपवास करना। उद्यापन मे सात मोदक तथा आठवा मोदक चारगुणा बडा देव के पास रखना। सोलह जाति के पकवान, फल आदि भी रखना। ज्ञान पूजा करना। **नमो अरिहंताण** पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

---

१४५ श्री सिद्धि तप और विधि (पं० त० ज०)

इस तप मे प्रथम एक उपवास पर पारणा, फिर दो उपवास पर पारणा, इस तरह चढ़ते चढ़ते आठ उपवास पर पारणा

करना। पारणे के दिन बियासना करना। उद्यापन में यथाशक्ति पूजा प्रभावना करना। गुणना नीचे लिखे अनुसार बीस माला का करना। स्वस्तिक आदि आठ आठ करना।

१. श्री अनन्तज्ञानसयुताय सिद्धाय नमः
२. श्री अनतदर्शनसंयुताय सिद्धाय नमः
३. श्री अव्यावाधगुणसयुताय सिद्धाय नमः
४. श्री अनंतचारित्रगुणसयुताय सिद्धाय नमः
५. श्री अक्षयस्थितिगुणसयुताय सिद्धाय नमः
६. श्री अरूपोनिरंजनगुणसंयुताय सिद्धाय नमः
७. श्री अगुरुलघुगुणसयुताय सिद्धाय नमः
८. श्री अनंतवीर्यगुणसंयुताय सिद्धाय नमः

---

१४६ श्री सिंहासन तप और विधि
(पं० त० ला०)

इस तप में पाच उपवास पर पारणा करना। इस तरह चार वार पाच पाच उपवास करना। इस तरह कुल बीस उपवास होते हैं। उद्यापन यथाशक्ति करना।

नमो अरिहंताणं पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि पाच पाच करना।

(यह तप समवसरण तप पूरा होने पर करने की प्रथा है)

---

१४७. श्री सौभाग्यसुंदर तप और विधि (जै. प्र. आदि)

यह तप एकान्तर सोलह उपवास और पारणे पर आयबिल करने से तीस दिन मे पूरा होता है। उद्यापन मे ज्ञान की पूजा-भक्ति करना।

नमो अरिहंताण पद की वीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि वारह वारह करना।

---

१४८. श्री स्वर्गकरंडक (स्वर्गदंड) तप (जै. प्र. आदि)

स्वर्ग की प्राप्ति के लिए यह तप किया जाता है। चौदह राजलोक मे नीचे के सात राज मे नरक पृथ्वी है। नाभि के स्थान पर तीच्र्छालोक है। तीच्र्छालोक समभूतला पृथ्वी से नो सौ योजन नीचे और नो सौ योजन ऊंचा है अर्थात् अठारह सौ योजन ऊंचा है और एक राज प्रमाण लम्बा व पहोला है। ऊपर के नो सौ योजन मे सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि ज्योतिश्चक्र का समावेश हो जाता है। इसके वाद एक राज ऊंचे दक्षिण दिशा मे (१) सौधर्म और उत्तर दिशा मे (२) ईशान—ये दो देवलोक वरावर समान सीध मे स्थित हैं। वहा से एक राज ऊंचा (३) सनत्कुमार और (४) माहेंद्र

दो देवलोक दक्षिण-उत्तर मे बराबर स्थित हैं, वहां से एक राज ऊंचे (५) ब्रह्म और (६) लांतक—दो देवलोक कुछ दूरी पर एक दूसरे के ऊपर स्थित हैं। वहा से एक राज ऊंचे (७) शुक्र और (८) सहस्त्रार—दो देवलोक एक एक के ऊपर कुछ दूरी पर हैं। वहा से कुछ ही ऊंचाई पर (९) आनत और (१०) प्राणत देवलोक दक्षिण-उत्तर को बराबर में हैं और सहस्त्रार से एक राज ऊंचे (११) आरण और (१२) अच्युत—दो देवलोक दक्षिण-उत्तर की ओर बराबर में हैं।

यहां से एक राज ऊंचे पुरुष के गले के स्थान पर नवग्रैवेयक जिसमें एक एक की ऊपर अनुक्रम से स्थित हैं। और इनसे एक रोज ऊंचे पांच अनुत्तर विमान है, जिसमें सर्वार्थसिद्ध विमान वीच में है और विजयादि चार उसके आसपास चारों दिशाओं में हैं। इन अनुत्तर विमानो के ऊपर सिद्धशिला है।

इन देवलोकवासी देवो की आयुष्य और शरीर प्रमाण कितना होता है उसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—

नाम	शरीर प्रमाण	आयु प्रमाण
१. सुधर्म देवलोक	सात हाथ	दो सागरोपम
२. ईशान देवलोक	,,	,, ,, अधिक
३. सनत्कुमार देवलोक	छै: हाथ	सात सागरोपम
४. माहेंद्र देवलोक	,,	,, ,, अधिक
५. ब्रह्म देवलोक	पाच हाथ	दस सागरोपम
६. लांतक देवलोक	,,	चौदह ,,
७. शुक्र देवलोक	चार हाथ	सत्तर ,,

८. सहस्त्रार देवलोक	चार हाथ	अठारह	सारगोपम
९. आनत देवलोक	तीन हाथ	उन्नीस	,,
१०. प्राणत देवलोक	,,	बीस	,,
११. आरण देवलोक	,,	इक्कीस	,,
१२. अच्युत देवलोक	,,	बाईस	,,

नवग्रैवेयक मे हरएक का शरीर प्रमाण दो हाथ और आयु तेवीस सागरोपम से एक-एक क्रमश. वढते नवे ग्रैवेयक देव का इकतीस सागरोपम का होता है।

पांच अनुत्तर बिमानवासी देवो का शरीर प्रमाण एक हाथ का होता है जबकि **विजय, विजयंत, जयंत** और **अपराजित** इन चार विमानवासियो का आयुष्य ३१ से ३३ सागरोपम तक का होता है। पाचवे सर्वार्थ सिद्ध विमानवासी देव का आयुष्य तेतीस सागरोपम का होता है।

श्री स्वर्ग करंडक तप विधि

इस तप मे प्रथम बारह देवलोक के आश्रयी बारह एकासना करना, पीछे नो ग्रैवेयक के आश्रयी नो नीवी, फिर पांच अनुत्तर विमान आश्रयी पांच आयविल और अन्त मे एक उपवास-इस तरह सताईस दिन मे तप पूरा होता है।

नमो अरिहंताणं पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

१४९. श्री स्वर्ग स्वस्तिक तप और विधि (जै. प्र. आदि)

इसमे चार एकासना कर ऊपर उपवास करना। उद्यापन मे पांच धान का स्वस्तिक करना। पांच धान एक एक मण ज्ञान के पास रखना। नमो नाणस्स पद को बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि इक्कावन-इक्कावन करना।

---

१५०. श्री बावन जिनालय तप और विधि (प. त. ला. जा.)

इस तप सम्बन्धी वर्णन तप नं. ३३ मे भी आया है। यह तप नदीश्वर द्वीप के बावन जिनालय की आराधना के निमित्त किया जाता है। इसे बावन अजवाला तप भी कहते हैं,

इस तप मे शुक्ल व कृष्ण पक्ष की अष्टमी और चतुर्दशी के दिन उपवास करना। यह तप तेरह मास यानि बावन उपवास मे पूरा होता है।

यह तप करते यदि किसी तिथि को उपवास करना रह जाय तो तप फिर से शुरू करना पड़ता है।

उद्यापन मे ज्ञान की पूजा-भक्ति तथा दर्शन भक्ति करना। अथवा नदीश्वर द्वीप की पूजा पढ़ाना। गुणना बीस माला का निम्न प्रकार करना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

शुक्ल पक्ष की अष्टमी-श्री चंद्राननस्वामि सर्वज्ञाय नामः।
कृष्ण पक्ष की अष्टमी-श्री वर्धमानस्वामि सर्वज्ञाय नमः।
शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी-श्री ऋषभाननस्वामि सर्वज्ञाय नमः।
कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी-श्री वारिषेणस्वामि सर्वज्ञाय नमः।

१५१. श्री अष्ट महासिद्धि तप और विधि (ला.)

इस तप सम्बन्धो वर्णन तप न. ६१ मे किया गया है। इस अष्ट महासिद्धि का समावेश छब्बीसवी वैक्रिय लब्धि मे किया गया है।

इस तप मे लगातार आठ एकासना करना अथवा एकांतर आठ उपवास करना। उद्यापन मे ज्ञानपूजा आदि यथाशक्ति करना। गुणना २० बीस माला का निम्न प्रकार करना। स्वस्तिक आदि आठ आठ करना।

१. अणिमासिद्धये नमः　　२ महिमासिद्धये नम.
३. लघिमासिद्धये नमः　　४. गरिमासिद्धये नम.
५. वशितासिद्धये नमः　　६. प्राकाम्य सिद्धये नमः
७. प्राप्तिसिद्धये नम.　　८. इशितसिद्धये नम.

अथवा

कामावसायिसिद्धये नमः

स्वस्तिक आदि आठ करना।

१५२. श्री रत्नमाला तप और विधि (ला.)

यह तप बावन दिन किया किया जाता है। इसमे क्रमशः निम्न प्रकार तपश्चर्या करना।

१. उपवास २ एकासना ३. एक धान का आयंबिल ४. एकलठाणा (एकासना) ५. पर घर एकासना-ठामचऊविहार ६. उपवास ७. सफेद धान का एकासना ८. आयंबिल ९. एकलठाणा १०. एकासना ११. उपवास १२. एकासना (जो भी खाने की वस्तु हो वे सब जिनेश्वर के पास रख फिर खाना) १३. उपवास १४. एकासना (इस दिन जिनेश्वर की अष्टप्रकारी पूजा कर प्रभु के पास क्षीर का थाल रखना) १५. उपवास १६. एकासना १७. उपवास १८. बियासना १९ उपवास २०. एकासना २१. नीवी २२ आयंबिल २३. एकलठाणा २४. उपवास २५. एकासना २६. उपवास २७. एकलठाणा २८. उपवास २९. एकासना ३०. उपवास ३१. एकासना ३२ एकलठाणा ३३. बियासना ३४. उपवास ३५. एकासना ३६. एकासना ३७. उपवास ३८. एकासना (अष्टप्रकारी पूजा कर क्षीर का थाल रखना) ३९. उपवास ४०. एकासना (खाने की सब वस्तुएं प्रभु के पास रखना) ४१. उपवास ४२ एकासना ४३. एकलठाणा ४४. आयंबिल ४५. सफेद धान का एकासना ४६. उपवास ४७ पर घर एकासना ४८. एकलठाणा ४९. एक धान का आयंबिल ५०. एकासना ५१. चऊविहार उपवास ५२. एकासना

(अतिथि सविभाग करना) इस तरह बावन दिन करना । जिन भक्ति विशेप रूप से करना ।

उद्यापन में अष्ट प्रकारी पूजा पढाना, प्रभु के गले मे स्वर्ण की, चादी की अथवा पुष्प की माला शक्ति अनुसार पहनाना । सघ वात्सल्य करना ।

नमो अरिहंताणं पद की बीस माला गिनना ।

---

१५३. श्री चितामरिण तप और विधि (वि. प्र.)

इस त५ छै: दिन क्रमश उपवास, एकासना, नीवी, उपवास, एकासना और उपवास करना । उद्यापन में ज्ञान पूजा, रात्रि जागरण करना । पाच स्त्रियो को ताबूल (पान) देना । **नमो अरिहताणं** पद की बीस माला गिनना । स्वस्तिक आदि बारह बारह करना ।

---

१५४. श्री परदेशी राजा का छठ्ठ (छु. प.)

परदेशी राजा का सम्पूर्ण वृत्तात जानना हो तो राय-पसेरणीय सूत्र पढ़ना चाहिए ।

केकय देश का यह राजा बहुत ही क्रूर था, शरीर से भिन्न आत्मा है, मृत्यु के बाद जन्मांतर है, पुण्य-पाप की प्रवृत्ति द्वारा ही सुख-दुख होते हैं ऐसे सिद्धांतो को वह नही मानता था।

उस राजा के चित्र नाम का व्यवहार-कुशल मंत्री था। राजा का नास्तिकपन दूर करने की उसे सदा चिंता रहती थी। एक दिन उनकी केशी गणधर से भेट हुई। चित्र मंत्री ने अपने राजा की नास्तिकता का हाल बताकर अपने नगर में पधारने का आमंत्रण दिया। फिरते फिरते केशी श्रमण उस स्थान पर जा पहुचे और उद्यान में ठहरे। चित्र मत्री को यह समाचार मिला तो घोड़ा खेलने के बहाने परदेशी राजा को साथ लिया।

थक जाने पर मत्री राजा को उसी उद्यान मे ले गया जहां केशी श्रमण ठहरे हुए थे और वहां एकात स्थान मे दोनो बैठ गये। इतने मे दूर से केशी गणधर की धर्म-देशना उनके सुनने मे आई इसलिए राजा ने अपने स्वभाव के अनुसार मंत्री को पूछा कि यहा यह कौन बड़बडाहट कर रहा है? मंत्री ने उपयुक्त अवसर जानकर गुरु महाराज के आगमन की बात बताई और शंका का समाधान करने के लिए प्रोत्साहित किया।

दोनों केशी गणधर के पास गये। केशी गणधर भगवत ने भी परदेशी राजा के अनेक नास्तिक प्रश्नों का मनोगम्य और युक्तियुक्त जवाब शाती से दिया। परदेशी राजा का स्वभाव गुरु महाराज के इस प्रथम समागम से ही बदल गया।

वह अब पूरा आस्तिक बन गया। फिर तो उसने कई बार केशी गणधर भगवंत की देशना का लाभ लिया।

परदेशी राजा का जीवन ही सारा बदल गया। परन्तु उनकी सूर्यकाता रानी को राजा का धार्मिक जीवन पसंद नही आया। राजा भोग विलास से भी विमुख रहने लगा। एक बार रानी ने राजा को विष दे दिया। राजा को इस बात का पता भी चल गया परन्तु वह जरा भी क्रोधित नही हुआ और रानी के प्रति द्वेष भाव भी नहीं आया। आराधना भाव मे मर कर राजा सूर्याभ देव हुए। उसने भगवत महावीर के पास अपूर्व देव नृत्य किया। केशी गणधर के समागम से परदेशी राजा का जीवन उन्नत बन गया।

श्री परदेशी राजा के छट्ठ तप विधि

इस तप मे तेरह छठ्ठ करना, पारणे बियासना करना। कुल ३९ दिन मे तप पूरा होता है। गुणना बीस माला का निम्न प्रकार से करना—

१. नमो कारकदसण धराण
२. नमो रोचकदंसण धराणं
३. नमो दीपकदसण धराणं
४. नमो निसग्गरुइ धराणं
५. नमो उवएसरुइ धराणं
६. नमो सुत्तरुइ धराण
७. नमो आणारुइ धराणं
८. नमो बीयरुइ धराणं
९. नमो अभिगमरुइ धराण
१०. नमो विथ्थाररुइ धराणं
११. नमो किरियारुइ धराणं
१२. नमो सखेवरुइ धराणं
१३. नमो धम्मरुइ धराण।

१५५. श्री सुख-दुख महिमा तप और विधि (ला.)

इसमें प्रथम माह में एक उपवास और पारणे आयंबिल— इस तरह पन्द्रह वार करना। दूसरे माह में पन्द्रह आयंबिल और नीवी एकान्तरे करना। तीसरे माह मे पन्द्रह नीवी और एकासना एकान्तरे करना। चौथे माह में पन्द्रह एकासना और बियासणा एकांतरे करना। उद्यापन में ज्ञान पूजा-भक्ति करना।

नमो अरिहंताणं पद की वीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

१५६. श्री रत्नपावड़ी तप और विधि (आसोज, चैत्र के छट्ठ) (ला.)

इस तप में आठ छठ्ठ और अठ्ठम किये जाते हैं। किसी भी वर्ष की आसोज सुद, चैत्र सुद, १४-१५ का छठ्ठ करना और अन्त मे नवें वर्ष मे आसोज सुद चैत्र सुद को १३-१४-१५ को अठ्ठम करना। गुणना आदि निम्न प्रकार करना।

	सा. ख. लो. नो.
१. पहले वर्ष—नमो अरिहताणं	१२-१२-१२-२०
२. दूसरे वर्ष—नमो सिद्धाणं	८- ८- ८-२०
३. तीसरे वर्ष—नमो आयरियाणं	३६-३६-३६-२०
४. चौथे वर्ष—नमो उवज्झायाणं	२५-२५-२५-२०
५. पांचवें वर्ष—नमो लोए सव्वसाहूणं	२७-२७-२७-२०

६. छटे वर्ष—नमो दंसणस्स ६७-६७-६७-२०
७. सातवें वर्ष—नमो नाणस्स ५१-५१-५१-२०
८. आठवें वर्ष—नमो चरित्तस्स ७०-७०-७०-२०
९. नवें वर्ष—नमो तवस्स १२-१२-१२-२०

उद्यापन में नवपदजी की पूजा पढ़ाना।

१५८. श्री मेरु कल्याणक तप और विधि (जै. प्र. वि.)

यह तप श्री आदीश्वर भगवंत की भक्ति का है। इसमें प्रथम तीन अठ्ठम करना, पारणे बियासणा करना। फिर एकांतर छै: उपवास करना, पारणे बियासणा करना। यदि शुरू मे तीन अठ्ठम न हो सके तो दो करना और एक अंत में करना। यह तप एक ही वर्ष में पूरा करना। मेरु तेरस को अंतिम उपवास आवे इस प्रकार तप शुरू करना।

उद्यापन मे यथाशक्ति पूजा पढाना।

श्री ऋषभदेव पारंगताय नमः पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि बारह बारह करना।

१५९. श्री तीर्थ तप और विधि (श्रा.)

तीर्थ यात्रा जाने के मुहूर्त के दिन को या तीर्थ दर्शन करने के दिन को यात्रा की स्मृति में उपवास करना (गुजराती श्राद्ध विधि ४६३ के पृष्ठ पर)

उपवास के दिन प्रतिवर्ष **श्री तीर्थाधिराजाय नमः** पद की बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि २०-२० करना।

१६०. श्री प्रतिहार्य तप और विधि (रं. वि.)

प्रथम एक उपवास, एक एकासना और एक बियासणा करना। इस तरह आठ बार करने से २४ दिन मे तप पूरा होता है। फिर ज्ञान पूजा, प्रभु पूजा, प्रभावना, रात्रि जागरण करना। **नमो अरिहंताणं** पद को बीस माला गिनना। स्वस्तिक आदि १२-१२ करना।

१६१. श्री पंचरंगी तप और विधि (प्र.)

इस तप में २५ आदमी होने चाहिए। इनमे से पहले पांच मनुष्यो को पांच उपवास का पच्चक्खाण करना। दूसरे दिन दूसरे पाच आदमियों को चार उपवास का पच्चक्खाण करना। तीसरे दिन दूसरे पांच आदमियों को तीन उपवास का पच्चक्खाण करना। चौथे दिन अन्य पांच मनुष्यों को दो उपवास का पच्चक्खाण करना। पांचवे दिन अन्य पांच मनुष्यों को एक उपवास का पच्चक्खाण करना। इन सब ही २५ आदमियो का पारणा एक दिन आना चाहिए। इस तप में ज्ञान की स्थापना करना। प्रदक्षिणा, स्वस्तिक, खमासमण आदि ५१-५१ करना। तप पूर्ण होने पर वरघोड़ा निकालना। **नमो नाणस्स** पद की बीस माला गिनना।

१६२. श्री युगप्रधान तप

जब जब जैन शासन का ह्रास होता है तब तब **युगप्रधान** आचार्य जन्म लेते हैं और जैन शासन को पुनः देदीप्यमान करते हैं। श्री वीर भगवंत का शासन पांचवें आरे के अंत तक चलने वाला है और इसमें समय समय पर **युगप्रधान** जन्म लेकर जैन शासन का उद्योत करेंगे। इस सम्बंधी विशेष वर्णन **युगप्रधान-गंडिका** जैसी पुस्तकों से जानना।

युगप्रधान का कार्य अति कठिन है। मान स्वभाव हमेशा गतानुगतिक होता है। लोग रूढी के आधीन रहते हैं और अनुकरण करते रहना यह उनका प्रिय विषय है। इस तरह प्रविष्ठ हुए विकारो को दूर करने का कार्य युगप्रधान करते हैं। वर्षा ऋतु मे नदी के प्रवाह में बह जाना कठिन नहीं, परन्तु उस प्रवाह मे तैर कर किनारे पहुंचने मे ही महत्ता है। युगप्रधानों का काम ऐसा मूल्यवान और कठिन है।

श्री युगप्रधान तप विधि

प्रथम ज्ञान की पूजा पढाना। पहले उदय के २० दिन में पहले व आखरी दिन आयबिल अथवा उपवास करना, बाकी के अठारह दिन एकासना करना। हमेशा बीस खमासमरण देना, बीस प्रदक्षिणा देना, बीस लोगस्स का कायोत्सर्ग करना, दोनों वक्त प्रतिक्रमण करना, तीनो वक्त देववदन तथा ज्ञानपूजा करना। पहले व अतिम दिन रूपानाणा से ज्ञान पूजा करना और बीच के अठारह दिन शक्ति अनुसार ज्ञान पूजा करना। स्वस्तिक, बीस करना, बादाम और फल-नैवेद्य आदि

२०-२० वस्तु ज्ञान के पास रखना । फिर ज्ञान पूजा, प्रदक्षिणा, खमासमण, चैत्यवन्दन और पच्चक्खाण करना । दूसरे उदय के २३ दिनों की विधि भी इसी प्रकार जानना । युगप्रधान का फोटो ठवणी पर रख उसकी वासक्षेप द्वारा पूजा करनी । गुणना निम्न प्रकार हर रोज २० माला का करना ।

पहले उदय में

१. श्री सुधर्म स्वामिने नमः
२. श्री जंबूस्वामिने नमः
३. श्री प्रभवस्वामिने नमः
४. श्री शय्यभवस्वामिने नमः
५. श्री यशोभद्रसूरये नमः
६. श्री संभूतिविजयसूरये नमः
७. भद्रबाहुसूरये नमः
८. श्री स्थूलभद्रसूरये नमः
९. श्री आर्यमहागिरये नमः
१०. श्री आर्यसुहस्तिसूरये नमः
११. श्री गुणसुन्दरसूरये नमः
१२. श्री कालिकाचार्यसूरये नमः
१३. श्री स्कन्दिलाचार्यसूरये नमः
१४. श्री रेवतिमित्रसूरये नमः
१५. श्री आर्यधर्मसूरये नमः
१६. श्री भद्रगुप्तसूरये नमः
१७. श्री गुप्तसूरये नमः
१८. श्री वज्रस्वामिसूरये नमः
१९. श्री आर्यरक्षितसूरये नमः
२०. श्री दुर्बलिकापुष्पमित्रसूरये नमः

दूसरे उदय में

१. श्री वज्रसेनसूरये नमः
२. श्री नागहस्तिसूरये नमः
३. श्री रेवतिमित्रसूरये नमः
४. श्री सिंहसूरये नमः

५. श्री नागार्जुन सूरये नमः   ६. श्री भूतदीन्नसूरये नमः
७ श्री कालिकाचार्यसूरये नमः ८. श्री सत्यमित्रसूरये नमः
९. श्री हारिल्लसूरये नमः
१०. श्री जिनभद्रक्षमाश्रमण सूरये नमः
११. श्री उमास्वाती वाचक सूरये नमः
१२. श्री पुष्पमित्रसूरये नमः   १३. श्री संभूतिसूरये नमः
१४. श्री संभूतिगुप्तसूरये नमः   १५. श्री धर्मरक्षितसूरये नमः
१६. श्री ज्येष्ठांगगणिसूरये नमः १७. श्री फल्गुमित्रसूरये नमः
१८. श्री धर्मघोषसूरये नमः   १९. श्री विनयमित्रसूरये नम
२०. श्री शीलमित्रसूरये नमः   २१. श्री रेवंतसूरये नमः
२२. श्री सुमिणमित्रसूरये नमः २३. श्री अरीहदिन्नसूरये नमः

(अज्ञानतिमिर भास्कर मे दिये मन्त्र के अनुसार ये नाम लिखे गये हैं।)

---

१६३. श्री ग्यारह गणधर तप और विधि

शुभ दिन शुभ मुहुर्त्त मे गुरु के मुख से ११ गणधर तप ग्रहण करें। ग्यारह दिन उपवास या एकासणा करे। जिस दिन जिस गणधर महाराज का तप हो उस दिन उन्ही के नाम की २० माला का जाप करे। नीचे ग्यारह गणवरो के जाप दिये गये हैं। चूंकि ये भगवान् महावीर स्वामी के प्रमुख शिष्य थे, जाति के ब्राह्मण थे, और द्वादशाङ्गी वाणी के रचयिता थे; अतः माङ्गलिक होने से भव्यात्माओ के लिये यह तप भी आदरणीय हैं। इसलिये भव्य जीव गणधर तप की आराधना करे तथा गौतम रास पढे अथवा सुने। तप के पूर्ण होने पर गणधरो की पूजा करावे, गुरु महाराज की भक्ति करे, दान देवे, यथाशक्ति साधर्मीवात्सल्य करे। **इससे अंत में पुण्य उपार्जन हो उनन्त (मोक्ष) अक्षय सुख की प्राप्ति होती है॥**

गणधर तप गुणना

१. श्री इन्द्रभूतिजी गणधराय नमः। २. श्री अग्निभूतिजी गणधराय नम । ३. श्री वायुभूतिजी गणधराय नमः। ४. श्री व्यक्तभूतिजी गणधराय नमः। ५. श्री सुधर्मास्वामीजी गणधराय नमः। ६. श्री मन्डितस्वामीजी गणधराय नमः। ७. श्री मौर्य्यपुत्र गणधराय नमः। ८ श्री अकम्पितजी गणधराय नमः। ९ श्री अचलजी गणधराय नम । १०. श्री मेतार्य्यजी गणधराय नमः। ११. श्री प्रभवजी गणधराय नमः।

गृहस्थ स्त्रियों के लिए सुख प्राप्त करने के तप

१६४. श्री सासु सुख तप

आठ नीवी आठ दिन करके पारणा करे। प्रभु की पूजा भक्ति करे। इससे सासु से सुख मिलेगा।

१६५. श्री ससुर सुख तप

आठ आयबिल निरन्तर कर नवे दिन पारणा करना। प्रभु की पूजा भक्ति करना। इससे ससुर से सुख की प्राप्ति होती है।

१६६. पुत्री सुख तप

पाच छट्ठ एकान्तरे करना। पारणे पर एकासना करना। प्रभु की सेवा-पूजा करना।

१६६. पुत्र सुख तप

पाच अट्ठम एकान्तरे करना। एकातरे पारणे पर आयबिल करना। प्रभु की पूजा भक्ति करना।

१६६. श्री पति सुख तप

आठ उपवास एकातरे करना। पारणे मे बियासना करना। प्रभु की पूजा भक्ति करना।

१६७. श्री जेठ सुख तप

पांच नीवी निरंतर करना। छट्टे दिन पारणा करना। प्रभु की पूजा भक्ति करना।

१६८. श्री देवर सुख तप

पांच एकासना निरंतर कर छट्टे दिन पारणा करना। प्रभु की सेवा पूजा भक्ति करना।

१६९. श्री माता-पिता सुख तप

पांच छट्ठ एकांतरे करना। पारणे पर एकासना करना। प्रभु पूजा और भक्ति करना।

परिशिष्ट

(पहला)

आवश्यक सूचनाएं एवं जानकारी

तप के दिन

१. चतुर्दशी क्षय होने पर उस दिन के व्रत पच्चक्खाण, त्याग, पौषध उपवासादि धर्मकृत्य, एव पाक्षिक-चौमासी-प्रतिक्रमण पूनम व अमावस्या को होते है। मात्र १४ तिथि पखवासा का उपवास १३, १४ भेलि में हो सकेगा।

२. पर्व तिथि, बीज, पाचम, आठम, ग्यारस, पूनम व अमावस के क्षय होने पर क्रमशः एकम, चौथ, सातम, दशम व चौदस को पर्व आराधना होती है।

३ तिथि व पर्वतिथि वृद्धि होने पर प्रथम तिथि मे (प्रथम चौदस मे पाक्षिक चौमासी प्रतिक्रमणादि) धर्मकृत्य होते हैं।

४ भाद्रपद शुक्ल चौथ का क्षय होने पर पाचम को तथा चौथ दो होने पर प्रथम चौथ को सवत्सरी पर्व होता है।

५. श्रावण दो होने पर द्वितीय श्रावण सुद ४ को, भाद्रवा दो होने पर प्रथम भाद्रवा सुद ४ को सवत्सरी पर्व होता है।

६. दुविहार के पच्चक्खाण में मात्र जल का उपयोग होता है, न कि दूध या मुखवास की वस्तु का भी।

जैन तिथि मन्तव्य।

पूज्यपाद श्रीमद् हरिभद्रसूरीश्वरजी महाराजकृत तत्त्वतरगिणी ग्रन्थ का तथा श्रीउमास्वातिजी महाराज कृत आचारवल्लभादि ग्रन्थों का यह फरमान है :—

तिहि पड़णे पुव्वा तिहि । कायव्वा जुत्ता धम्म कज्जेव ॥
चाउद्दसी विलोवे । पुण्णमिअं पक्खिपडिक्कमणं ॥१॥

अर्थ :—तिथि का क्षय हो तो पूर्व तिथि में धर्मकार्य करना युक्त है । चौदस का क्षय हो तो पूर्णिमा को पक्खी प्रतिक्रमण करना चाहियें ।

व्याख्या :—तिथि मात्र में से कोई तिथि का क्षय हो तो उस तिथि सम्वन्धी धर्मकृत्य उसकी पूर्व तिथि मे करना योग्य है; परन्तु यदि चतुर्दशी का क्षय हो तो पूर्णिमा या अमावस्या में पाक्षिक प्रतिक्रमण करना चाहिये, कारण कि समीप मे रही हुई पर्वतिथि (पूर्णिमा-अमावस्या) को छोड़ कर अपर्वतिथि में पर्वतिथि का आराधन करना युक्त नही है ।

आशंका :—कदाचित् यहां पर कोई महानुभाव यह प्रश्न करे कि यदि पर्वतिथि का आराधन अपर्व तिथी में नही करना तो अष्टमी आदि के क्षय होनें पर तन्सम्वंधी धर्मकृत्य सप्तमी आदि को करना कैंसे उचित हो सकेगा ?

उत्तर :—प्रिय सज्जनो ! हमको पर्व तिथि का कृत्य पर्व तिथि में ही इष्ट है; परन्तु अनन्तर पर्व तिथि का योग न होने से पूर्व मे रही हुई सप्तमी आदि मे करना ही योग्य है; मगर नवमी आदि में करना उचित नही ।

पर्व तिथि का क्षय हो तो समीप में रही हुई पर्व तिथि मे तत्संवंधी धर्मकृत्य करना इस ही नियम के अनुसार होता है । सांवत्सरिक पर्व की चौथ का क्षय हो तो पंचमी को सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करना मगर तीज को नही, यह वात क्षयतिथि सवंधी हुई ।

तिहि बुड्ढीए पुव्वा गहिया । पडिपुन्नभोगसंजुत्ता ॥
इयरा वि माणणिज्जा । परं थोवात्ति न तत्तुल्ला ॥१॥

तिथि की वृद्धि हो तो पूर्व तिथि में धर्मकृत्य करना उचित है, दूसरी तिथि भी पर्वरूप मानी जाती है; परन्तु अल्परूप में न तु पूर्व सदृश ।

व्याख्या :—पन्द्रह तिथियों मे कोई तिथि बढे तो उस सम्वन्धी धर्मकृत्य पूर्व तिथि मे करना, कारण कि समीप की पर्व तिथि को छोड़ कर दूरवर्तिनी पर्व तिथि को ग्रहण करना यह तत्त्वदृष्टि से अमान्य है ।

आशंका :—कोई महोदय यहा पर ऐसी आशंका करे कि सूर्योदय तिथि अपने को मान्य है, फिर दूसरी मानने मे क्या बाधा है ?

उत्तर :—जिज्ञासु महाशयो ! आप स्वय विचार कर सकते हैं कि सूर्योदय व अस्त दोनो टाइम मे रही हुई पूर्ण तिथि को छोड कर अल्प समयवर्तिनी द्वितीय तिथि को मानना कहाँ तक ठीक हो सकता है ? पण्डित जन विचारें ।

(विशेष विचार)

मास प्रतिबद्ध जितने पर्व हैं वे सब मास की वृद्धि में कृष्ण पक्ष सवन्धी प्रथम मास मे व शुक्लपक्ष सबन्धी द्वितीय मास में आराधन करना चाहिये; यह शास्त्रसम्मत व वृद्ध-परंपरानुसार मान्य है ।

पर्युषण पर्व दिन प्रतिबद्ध होने से आषाढ चौमासी से पचासवें दिन करना ही शास्त्रसम्मत व युक्तियुक्त है ।

फुटकर आवश्यक जानकारी :

प्राकृतिक चिकित्सा

"किसी रोगी मनुष्य के पेट में भोजन न रहनें दो; इससे वह रोगी नही बल्कि रोग भूखों मर जायेगा।"

धर्म ग्रन्थ और उपवास

बड़े बड़े धर्माचार्य स्वय बहुत दिनों तक उपवास करके अपने अनुयायियों और भक्तो को उसके लाभ बतलाते थे और स्वय उसके आदर्श बनते थे।

पशु और उपवास

केंचुली बदलने के समय साँप कई सप्ताह तक बिना आहार के ही पड़ा रहता है। इसका कारण यही है कि आहार न करने के कारण उसकी वह क्रिया थोड़े कष्ट मे और जल्दी हो जाती है।

आयुर्वेद और उपवास

"आहार पचति शिखी दोषानाहारवर्जित·।" अर्थात् आहार को अग्नि पचाती है और जब पेट मे आहार नही रहता तब दोषों को पचाती या नष्ट करती है। इससे यह बात प्रमाणित होती है कि खाली पेट रहने से दोषो या रोगो का नाश ही होता है। निराहार रहने से शरीर को लाभ ही होता है, हानि नही। उपवास रोगो को शरीर से बाहर निकाल देने की एक सर्वोत्तम क्रिया है। इससे बड़े बड़े असाध्य रोग दूर हो जाते हैं।

मन और उपवास

उपवास के कारण हमारे शरीर का सारा विकार नष्ट हो जाता है।

शारीरिक बल और उपवास

मनुष्य के शरीर के फालतू अश और उनके साथ के रोग, विकार और दोष आदि पचने लगते है। उन सबके पच जाने के उपरान्त मनुष्य को एक वार फिर भूख लगती है और वही भूख वास्तविक होती है।

मस्तिष्क और उपवास

यह सिद्ध है कि उपवास से मस्तिष्क के कामो मे कोई बाधा नही पड़ती बल्कि उसमे और सहायता मिलती है।

उपवास काल मे शरीर की दशा

"शरीर के सारे विकार प्राय. बाहर निकल जाते है। श्वास अधिक सरलता से और गहरी चलने लगती है और फेफडे अपना काम उत्तमता से करने लगते है। मनुष्य के शरीर मे बल और मुख पर तेज आ जाता है।"

"उपवास के आरभ मे कानो तथा आखो मे भी पीड़ा होती है, पर उपवास के अत मे वे भाग भी बिलकुल स्वस्थ हो जाते है।"

"ज्यो ज्यो कष्ट वढते जायँ त्यो त्यो यही समझना चाहिये कि विकारो का नाश हो रहा है और उनका अत समीप ही है। विकारो का नाश होते ही कष्टो का भी अन्त हो जाता है और मनुष्य की दशा आपसे आप सुधरने लगती है।"

"जिस मनुष्य के शरीर मे जितना अधिक विकार होता है, उपवासकाल मे उसे उतना ही अधिक कष्ट होता है और जिसे जितना अधिक कष्ट होता है, उपवास की समाप्ति पर वह उतना ही अधिक निरोग और स्वस्थ हो जाता है।"

उपवास सम्बन्धी अनुभव

"यह समझना बडी भारी भूल है कि उपवास करने से शरीर की सारी शक्ति नष्ट हो जाती है।"

उपवास काल मे भय के चिन्ह

"यदि मनुष्य को अचानक कोई भारी रोग आ घेरे, तो केवल उस रोग के कारण ही वह आठ दस दिनो तक निराहार रह सकता है और उसके शरीर मे भय का कोई चिन्ह दिखलाई नही दे सकता।"

नींद और उपवास

"अन्न की अपेक्षा जल मे कहा अधिक सजीविनी शक्ति होती है। जल सदा शरीर को लाभ हो पहुँचाता है, हानि नही।"

उपवास किस प्रकार छोडना चाहिए ?

"यदि उपवास छोडने के समय किसी प्रकार की असावधानी या कुपथ्य हो जावे तो उपवास का सारा लाभ नष्ट हो जाता है और कभी कभी तो हानि भी सहनी पडती है।"

"अधिक दिनो का (कई सप्ताह या महीनो का) उपवास छोड़ने के उपरान्त कुछ अधिक खा लेने से मृत्यु तक की संभावना होती है।

अधिक दिनों का उपवास करने वाले लोगो को उपवास छोडने के समय भोजन पर विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता होता है। एक, दो या चार दिनो का उपवास करने वालो को उसके लिए उतना चिन्ता नही करनी चाहिये। पर जो लोग कई सप्ताह या महीनो बिना भोजन के रह चुके हो उन्हे उस समय भोजन का ध्यान रखना चाहिये। भोजन बहुत ही थोड़ी मात्रा मे आरम्भ करके बहुत धीरे धीरे बढाना चाहिये।

"उपवास छोडने के समय बहुत सावधानी रखनी चाहिए। उपवास की समाप्ति के उपरान्त शरीर की रचना पुनः नयी शुरू होती है और उस समय इस बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिये कि हम क्या खावे, किस प्रकार खावे और कितना खावे। उपवास छोडने के उपरान्त जब हम भोजन आरम्भ करते हैं, उस समय हमारी इच्छा बहुत अधिक खाने की होती है। यदि हम उस समय अधिक खाना आरम्भ कर दे तो उपवास करने से हमारे शरीर को जितना लाभ हुआ होगा वह सब नष्ट हो जायगा।"

"छोटे या बडे प्रत्येक उपवास से होनेवाला लाभ उपवास छोड़ने के प्रकार पर ही अवलम्बित रहता है।"

"उपवास छोड़ने के उपरान्त बहुत अधिक भूख लगने पर कभी बहुत अधिक भोजन नही करना चाहिये। जहा तक हो सके बहुत ही कम खाना चाहिये। विशेषत तरल (द्रव) पदार्थ ही लेना लाभदायक होता है। इस प्रकार दो चार दिनो तक नही बल्कि दो-तीन सप्ताह तक रहना चाहिये।"

'उपवास चिकित्सा विधि' से साभार
(लेखक—रामचद्र वर्मा)

आवश्यक जानकारी

आसन

सामायिक, प्रतिक्रमण आदि मे आसन ऊनी ही होना चाहिये, जिससे कि जीवो की जयणा हो एव इसके माप का तो यही प्रमाण है कि आसन उतना वडा जरूर होना चाहिये कि उस पर पालथी मारकर ठीक से वैठा जासके।

मुँहपत्ति

यह भी जयणा के लिये ही है। इसका रग सफेद ही होना चाहिए। यह सूती कपडे की होती है तथा अपने हाथ के एक गिरह तथा चार अगुल चौड़ी तथा उतनी ही लवी होनी चाहिए जिससे ४ पुट करके मुख के आगे रखी जा सके।

चरवला

यह लकड़ी की डडी तथा सफेद ऊन की फलियों का होता है। डडी करीब २४" की होनी चाहिए तथा औरतो एव पुरुषो की डडी मे थोड़ा फर्क भी होता है। औरतें चौकोर एवं पुरुष गोल डडी रखते हैं।

चैत्यवदन

प्रभु के सामने जव चैत्यवदन दाया गोड़ा ऊंचा करके करते है तो वह धर्म का प्रतीक है। जैसे इन्द्र महाराज ने भगवान् के सन्मुख किया एवं वाया गोड़ा ऊंचा करते हैं तो वह दीनता दर्शाने का प्रतीक है।

कायोत्सर्ग

सामायिक या प्रतिक्रमण मे या अन्यान्य समय भी जब कायोत्सर्ग करना हो तो पालथी मारकर या खड़े होकर करना चाहिए। कायोत्सर्ग के समय शरीर हिलना, मुंह से उच्चारण करना या शरीर के अन्यान्य अंगो का इधर - उधर करना आसन बदलना मना है। एक ध्यान होकर दृष्टि को नाक की नोक पर केद्रित करके करना चाहिए।

देवगुरु-सन्मुख

प्रभु के दरबार मे कभी भी खाली हाथ नही जाना चाहिए। कम से कम चावल और अधिक मे चावल, फल मिठाई चढानी चाहिए, तथा प्रभुजी की मूर्ति तथा गुरु महाराज से कुछ दूर बैठकर वन्दना नमस्कार, स्तवन, भजन या वार्तालाप करना चाहिये।

कुछ जानने योग्य बातें

१ आयम्बिल मे भुना हुआ चना तथा मुरमुरा (मुर्रा जो चावल से बनता है।) खाना उचित नही है क्योकि उसमें नमक का अंश रहता है। धान की लाई खाई जा सकती है (पढिऐ इसी पुस्तक का फुट नोट पृष्ठ स. ३५३-५४)

२. ट्रेन आदि सफर मे खाखरा चूर कर फासू जल मे भिगो दिया जावे तो दलिए (थूली) जैसा हो जाता है।

३. साधु-साध्वी तथा ज्ञानियो की सेवा करने तथा सम्पर्क रहने से दर्शन, ज्ञान, चारित्र की प्राप्ति सहज मे ही हो जाती है।

४. क्रियाएँ कर्म, उपयोगे धर्म, परिणामे बंध कहा है।

५ क्रिया कभी निष्फल नही होती हैं, जल्दी या देरी से उसका फल अवश्य मिलता ही है।

६. कुछ भाग्यशाली प्राय· रोज एकासना करते हैं तथा इकट्ठे आयम्बिल करते है (आषाढ चौमासे मे प्राय. देखा जाता है) यदि इसके साथ गुरुगम से समझकर तप ग्रहण कर लिया जावे तो इसका फल कई गुना अधिक बढ जाता है। तथा बड़े से बडे तप सहज मे ही सरलता से करने का मार्ग दर्शन मिल जाता है।

७. पिछले १५० – २०० वर्षो से दिन पर दिन वातावरण अशांति की ओर बढता जा रहा है। सवेरे से रात्रि मे ६ - १० बजे तक रेडियो, लाउड स्पीकर, सिनेमा एडवरटाइजमेन्ट, व्यापार, चुनाव आदि के प्रचार की आवाजे हो– हल्ला चलता ही रहता है, चित्त इधर उधर चला जाता है तथा ध्यान भंग हो जाता है। उसको रोकने के लिए कानो के छेद मे डालने के लिऐ कुंडल बना लेना ठीक है। गहरे रंग के कपडे के टुकड़े मे रुई रख कर रंगीन धागे से सिलाई कर इनको कानो के छेद में डाल देवें। इससे प्राय: ७०%-७५% तक हो-हल्ला, आवाज कम सुनाई देगी।

८. तपो के जाप की मालाएँ २० गिननी पड़ती हैं तब कई बार ध्यान इधर हो जाने से गिनती मे भूल हो जाती है इसलिए एक डिब्बी मे माला के दाने (२० नग) रख लिये जावे और हर माला पूरी होने पर एक दाना उसके ढक्कन मे रख लिया जावे इससे माला पूरी सख्या मे गिनी जा सकेगी तथा मन भी शान्त रहेगा।[1]

१— मिति, दिन, तारीख, स्वस्तिक, खमासमण, कायोत्सर्ग, लोग्गस्स, माला और तपस्या के दिनों की संख्या।

९. हर अनाज के दाने के छिलके मे उसका पोषक तत्त्व (विटामिन) अधिक रहता है इसलिए छिलके-सहित अनाज से बनी हुई चीजें खाना स्वास्थ्यवर्धक है। इसी तरह मेवा (Dry fruit) तथा फल सम्बन्धी समझ लेना चाहिये ।[२]

१० चूंकि आत्मा निमित्त-वासी है इसलिए अधिक से अधिक धार्मिक निमित्तो को जोडना तथा उनसे संबध रखना चाहिए।

११. तपस्या मे पेट हलका रहने से तपस्या सरलता से होती है। जब जरा भी पेट भारी या कडा लगे तो त्रिफले की

लाख सवा लाख मत्रो का जाप करना है उनको दो खड और भी ज्यादा बनाना विशेष हितकारी है। जरूरी भी है। क्योकि मालाएँ गिनकर लाखो की सख्या का जाप सभव है। एक खड मे (एक बैठक मे) जितनी मालाए गिननी हो उनकी सख्या नोट कर लेना चाहिए। इस प्रकार हर बैठक की मालाए नोट करनी चाहिए यह खड बड़ा रखना ठीक है। और दूसरे खड मे रात-दिन की गिनी हुई माला का जोड़ लिख देना चाहिए इससे माला की सही सख्या मालूम हो जाती है। यह अत्यन्त लाभदायक है। **परिक्षित है।**

इन खडो मे कमी भी की जा सकती हैं परन्तु तपस्याओं के बीच बीच मे अन्य तपस्याओ के तथा बारह पर्वों के तप करने मे आते हैं तब खड रखने से भूल नही होती है।

२—चूंकि मूग रेचक पाचक होता है इसलिए अनाजो में इसको विशेष प्रधानता दी गई है।

गोमूत्र मे बनी गोली अथवा त्रिफला चूर्ण खाना उचित है। इससे पेट नरम व हलका हो जाता है।

१२. द्रव्य क्रिया को भाव क्रिया बनाने के लिऐ आठ विशेषण बताऐ गऐ हैं। वह भी साधक की साध्य के साथ एकता-लयलीनता साधने के लिऐ खास जरूरी है।

१. उसमे सामान्य उपयोग वाला।
२. उसमे विशेष उपयोग वाला।
३. उसमे लेश्या की विशुद्धि वाला।
४. उसमे अध्यवसाय की विशुद्धि वाला।
५. उसमे अध्यवसाय की तीव्र विशुद्धि वाला।
६. उसके अर्थ में ही उपयोग वाला।
७. उसमे ही तीनो करणो का (मन-वचन-काया) समर्पण किया हुआ।
८. उसकी ही भावना में भावित।

अर्थात्— उसी मे लयलीन बनकर अन्य कोई भी स्थान में मन को न जाने देकर क्रिया करें, तब भाव क्रिया बनती है।

१३. मार्गानुसारी के गुणो मे से जितने अधिक गुण जिसमे रहेगे उसका मन उतना ही अधिक जाप, ध्यान, तप में लगेगा जैसे पानी जितना अधिक साफ निर्मल होगा उसमें उतना ही अधिक रग खिलेगा।

१४. पच्चक्खाण हाथ जोड़ कर लिए जाते हैं तथा मुट्ठी बंद करके पारे जाते हैं।

तपस्वियों के लिए आवश्यक जानकारी

(१) यात्रा मे उबाला हुआ पानी, यदि उपलब्ध न हो सके तो कच्चे पानी मे त्रिफला चूर्ण, राख, शक्कर या मिश्री डाल देने से ४८ मिनट बाद जल फासू हो जाता है। ध्यान रहे कि फासू होने के ४८ मिनट के भीतर ही उपयोग मे ले लेना चाहिये।

(२) अट्ठम आदि के पारणे मे उकाली, कैर, कैर का पानी मैथीदाने का पानी, मूंग का पानी, इस प्रकार की हलकी चीजें लेनी चाहिये।

(३) अट्ठाई, १५ उपवास, मासक्षमण आदि बड़ी तपस्यायों के पारणे पर विशेष सावधानी रखने की जरूरत रहती है। पारणे के दिन सिर्फ उकाली, कैर का पानी, मूंग का पानी, मैथीदाने का पानी आदि तरल पदार्थ लेना चाहिये। इससे आंतो मे चिपका मल भी निकल जाता है व तपस्वी को शान्ति रहती है।

बड़ी तपस्या करने वाले को पारणे के बाद कम से कम उपवास के आधे दिनो तक पूरी तरह से खाने-पीने का परहेज रखना चाहिये। इससे अनेक बीमारियाँ दूर होकर स्वास्थ्य अच्छा हो जाता है।

(४) जो तप चलता हो उससे सम्बन्धित स्तुति, चैत्यवंदन पढ़ने-बोलने से उस तप सम्बधी भावना विशेष जागृत होती है। वैसे अन्य स्तुति आदि बोलना भी ठीक है।

(५) माला गिनते समय अगो को कंपायमान न करे, न हसे, न इधर - उधर देखे और न बीच - बीच मे किसी से बात ही करे। परस्पर हाथ - पैरो का संघर्षण निषिद्ध माना जाता है। दृष्टि को नासिका के अग्र भाग पर केन्द्रित करके या ऐसा न बन पडे तो स्थापनाचार्यजी को तरफ दृष्टि रख कर ध्यान करना लाभदायक है।

नोट:— प्राथमिक अवस्था मे आख बन्द करके बोलना ही ठीक है।

(६) तपस्वी को मन मे प्रसन्नता और सौम्य भाव, मौन रखते हुए आत्मसयम करना तथा शुद्ध भाव मे स्थित रहना चाहिये।

(८) तप–जप, धूप दीप के साथ करना चाहिये। यह गृहस्थ के लिये अच्छा है। इससे वायुमडल का वातावरण शुद्ध रहता है।

(९) तपस्वी को मौन रखना हितकारी है इससे शक्ति का ह्रास नही होता।

(१०) कोई भी तप विधि के अनुसार उपवास आयम्बिल इत्यादि से करने की शक्ति न हो तो एकासना से भी करना हितकारी है।

(११) कठिन से कठिन तप संबधी जानकारी साधुजी से कर लेने से वे सरल मार्ग बता देते हैं।

(१२) यदि कभी थकावट लगे तो सीधे (चित) लेटकर हाथ लबे कर लेवे एव पूरे शरीर को बिल्कुल ढीला छोड देवे। आंखें भी बन्द कर लेवे यानी एकदम मृतक समान होकर ८–१० मिनट लेटे रहे इससे थकावट दूर हो जाती है।

(१३) तपस्या मे वह शक्ति है कि तपस्वी अपने लक्ष्य की प्राप्ति मे तो सफल होता ही है, साथ ही वह चाहे जिस वडे से वडे कार्य को भी पूर्ण कर लेता है।

(१४) कर्म को निकालने के लिये देववन्दन आदि का विधान है। प्रतिक्रमण पाप को पराजित करने के लिये है। तप संताप को दूर करने के लिये हैं। क्षमा जंजाल के झझावत को शान्त करने के लिए है। तप - जाप पूर्ण के कर्म बंधनों को भस्म कर देने वाले हैं।

(१५) तप केवल निर्जरा के लिये किया जाता है।

(१६) पौषध करने वाला यदि देव दर्शन न करे तो दो या पाँच उपवास के प्रायश्चित का भागी होता है, ऐसी शास्त्रोक्ति है।

(१७) पारणे वाले दिन पारणे के बाद यदि मल निकलने मे तकलीफ हो तो अरंडी का तेल २-३ चम्मच १००-१२५ ग्राम गर्म दूध के साथ पी लेवे तथा ऊपर से २५०-३०० ग्राम दूध पी लेवे तो आतो मे चिपका हुआ मल निकल जायगा।

(१८) यदि तपस्या चालू हो और मल निकलने में तकलीफ हो तो पेठ की नाभि पर तथा आस पास हींग का गर्म लेप करके लगावें तथा गर्म पानी की रबर की थैली से सेक करें, १५-२० मिनिट मे मल ढीला, नर्म होकर निकल जायगा।

अथवा पेट की नाभि तथा आसपास मे कुनकुना घी मलकर १५-२० मिनट तक गर्म पानी की थैली से सेक करे तो मल ढीला होकर निकल जायगा।

(१९) शरीर में गर्मी बढ़ जावे तब मस्तक पर चन्दन घिस कर लगाने से तथा चन्दन का तेल मस्तक व ललाट पर तथा नाक के अन्दर लगाने से गर्मी शात हो जायगी। अथवा पैर की पगथली मे घी की मालिश करने से भी गर्मी शांत हो जाती है तथा स्फूर्ति मालूम होने लगतो है।

प्यास की सामान्य चिकित्सा

(२०) भीगे कपड़े पर लेटने और भीगा कपड़ा ओढने से प्यास, और घोर-दाह शान्त हो जाते है।

गीले कपड़े को मुंह से दूर रखना चाहिये ताकि व्रत खंडित होने का डर न रहे। गुलाब जल से कपड़ा भिगोकर सिर तथा मस्तक मे रखने से गर्मी शान्त होती है।

गोले कपड़े की पट्टी बनाकर गले के चारों तरफ लपेटना भी जरूरी है।

ब्रह्मचर्य व्रत का महत्त्व

(२१) कोई मनुष्य कनक कोटि दान देवे या कोई सोने का मदिर बनवाये परन्तु ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वाले को इससे भी अधिक पुण्य हाता है।

सामायिक महत्त्व

(२२) कोई प्रतिदिन लाख सोने की मोहरे दान करे और कोई एक सामायिक करे तो सामायिक करने वाले की बराबरी मे वह लाख मोहरो का दान करने वाला नही हो सकता। ऐसी सामायिक की महिमा है। कही कही ऐसा भी कहा गया है कि कोई लाख मोहरो का दान लाख वर्ष तक नित्य करता रहे तब भी एक सामायिक की बराबरी नहीं हो सकती। जब

की सामायिक के फलस्वरूप मोक्ष भी मिला है, मिलता है तथा भविष्य मे भी मिलेगा ।

सामायिक करते हुवे श्रावक साधु जैसा होता है । इसलिये अनेक बार सामायिक करनी चाहिये । सामायिक मोक्ष का उत्कृष्ट अग है ।

चौमासी काल का विवरण

चौमासी काल की विगत

नाम	कातिक सुद १५ से	फाल्गुन सुद १५ से	आषाढ़ सुद १५ से
सुखड़ी का काल	१ महीना	२० दिन	१५ दिन
कामली का काल	४ घडी ३ घन्टा १२ मि०	२ घडी १ घन्टा ३६ मि०	६ घडी ४ घन्टा ४८ मि०
गरम उबाले हुए पानी का काल	४ प्रहर १२ घन्टे	५ प्रहर १५ घन्टे	३ प्रहर ६ घन्टे

वस्तु - काल - बिचार

चांवल प्रहर ८, राब प्रहर १२, घेस प्रहर २०, छाश प्रहर २४, दही प्रहर १६, दूध प्रहर ४, काजीवडा प्रहर २४, घोलबड़ा प्रहर ४, तला हुआ बड़ा प्रहर ४, पूड़ी प्रहर ८, रोटी प्रहर ४, बाजरा उष्ण प्रहर १२, ज्वार उष्ण

प्रहर १२, बाजरी की खिचड़ी प्रहर ८, ज्वार की खिचड़ी प्रहर ८, चांवल की खिचडी प्रहर ४।

आटा-सियाले दिन १०, उन्हाले दिन ८, वर्षा में दिन ५।
पकवान-सियाले दिन ३०, उन्हाले दिन १५, वर्षा में दिन ६।
फासु नमक-उन्हाले दिन ८, सियाले दिन ५, वर्षा मे दिन ३।
फासु घी-उन्हाले दिन ५, सियाले दिन ८, वर्षा मे दिन ३।
उष्ण जल-उन्हाले प्रहर ५, सियाले प्रहर ४, वर्षा में प्रहर ३।

समस्त अनाज की घूघरी पानी में भिगोई हुई प्रहर ८, घी तेल की तली हुई घूघरी २०-२४ प्रहर, बडी प्रहर ८, कढी प्रहर ४, सर्व दाल प्रहर ४-६, रायता प्रहर ८, घी की तली वस्तु १६ प्रहर।

इस प्रकार काल से उपरान्त वस्तु चलित रस वाली हो जाती है। अथवा देश काल के अनुसार पहले भी लीलन-फूलन वाली हो जाय तो वह भी अभक्ष्य हो जाती है।

सूतक विचार

पुत्र जन्म होने पर दिन १० सूतक। पुत्री जन्म होने पर दिन ११ सूतक। जिस स्त्री के पुत्र-पुत्री हो उसके एक महीने तक सूतक। गाय, भैस, घोडी, सांढ आदि अपने घर मे व्यावे तो दिन एक सूतक। अपने निश्रा मे रहे हुए दास दासी के पुत्र पौत्रादिक जन्म व मृत्यु हो तो दिन ३ सूतक। जितने महीने का गर्भ गिरे उतने दिन का सूतक।

मृत्यु होने पर दिन १२ सूतक, पुत्र होते ही मृत्यु पावे तो दिन १ सूतक। परदेश में मृत्यु हो तो दिन १ सूतक। गाय, भैंस, घोड़ा, ऊंट आदि का मृतक कलेवर जहाँ तक बाहर नही ले जाया जाय वहाँ तक सूतक।

जिसके घर जन्म मृत्यु का सूतक हो वह बारह दिन देवपूजा नही करे। मृतक के घर का जो मूल खाधिया हो वह १० दिन और अन्य घर का ३ दिन देव पूजा न करे। जो मृतक को छुआ हो वह चौबीस प्रहर प्रतिक्रमण न करें। यदि सदा का अखड नियम हो तो समता भाव से संवर मे रहे, परन्तु मुँह से नवकार मन्त्र का भी उच्चारण नही करे। स्थापनाचार्यजी को हाथ न लगावे। जिसने मृतक को नही छुआ हो वह मात्र आठ प्रहर प्रतिक्रमण नही करे। अगर किसी को न छुआ हो तो स्नान से शुद्ध होकर सब कार्य करे।

भैस के बच्चा हो तब १५ दिन पीछे दूध पीना कल्पता है। गाय के बच्चा हो तो तब १७ दिन पीछे दूध पीना कल्पता है। बकरी के जब बच्चा हो तो तब ८ दिन पीछे दूध पीना कल्पता है।

ऋतुवती स्त्री चार दिन भांडादि को नही छूवे, चार दिन प्रतिक्रमण न करे व पाँच दिन देव पूजा न करे।

रोगादि के कारण किसी स्त्री को तीन दिन पीछे रक्त बहता दिखे तो असभाय नही, विवेक पूर्वक पवित्र होकर चार पांच दिन पीछे स्थापना पुस्तक छूवे, जिन दर्शन करे, अग्रपूजा करे परन्तु अग पूजा न करे, साधु को पडिलाभे।

ऋतवती तपस्या करे तो सफल होती है परन्तु जिन पूजा, प्रतिक्रमणादि क्रिया सफल नही होती, ऐसा 'चर्चरी' ग्रन्थ में कहा है।

जिसके घर मे जन्म मरण का सूतक हो वहाँ १२ दिन साधु आहार-पाणी न बहरे, सूतक वाले के घर के जल से १२ दिन तक देवपूजा न करे, निशीथ सूत्र के सौलहवे उद्देश मे सूतक वाले का घर दुर्गमनीय कहा है।

गाय के मूत्र में २४ प्रहर पीछे, भैंसके मूत्र में १७ प्रहर पीछे, गाडर, गधेड़ी, घोड़ी के मूत्र में ८ प्रहर और नर नारी के मूत्र में अन्तरमुहुर्त पीछे संमुर्छिम जीव उत्पन्न होते हैं— विशेष ग्रन्थान्तर से जानना ।

तपस्या का फल

१	नवकारशी	एक सौ	वर्ष का नरकायु दूर करता है
२	पोरसी	एक हजार	,, ,, ,, ,,
३	साढ पोरसी	दश हजार	,, ,, ,, ,,
४	पुरिमढ़	एक लाख	वर्ष का नरकायु दूर करता है
५	एकासना	दश लाख	,, ,, ,, ,,
६	निवी	एक करोड़	,, ,, ,, ,,
७	एकलठाना	दस करोड़	,, ,, ,, ,,
८	एकदत्ती	सा करोड़	,, ,, ,, ,,
९	आयंबिल	एक हजार करोड़	,, ,, ,, ,,
१०	उपवास	दस हजार करोड़	,, ,, ,, ,,
११	दो उपवास	एक लाख करोड़	,, ,, ,, ,,
१२	तीन उपवास	दस लाख करोड़	,, ,, ,, ,,

१३ आठ उपवास एक लाख उपवास का फल होता है

अणाहारी औषधियां और उनके गुण

१. अगर—तरस, मूर्च्छा, शीतल, वाई, अपस्मार आदि के लिए।

२. अफीम—ग्राही, पीड़ा शामक, ऊंघ लाने वाली और परसेवा वालने वाली। अफीम + केशर = कोलेरा।

३. आसंघ—ग्राही, दम, ऊवरस और पौष्टिक।

४. आकड़े का पचांग—वातहर, कफघ्न, उलटी कराने वाली और परसेवा वालने वाली।

५. एलियो—रेचक, ऋतु लाने वाली और ज्वरघ्न

६. अंबर—वायुहर, तरस, मुंभवण, पग का तोड़ दूर करने वाली, पौष्टिक

७. अतिविषनी कली—ज्वरघ्न, कटु, पौष्टिक, दस्त बंद करने वाली।

८. इंद्रावरणा का मूल—रेचक, अजीर्ण, आमदोष, पित्त-नाशक।

९. ऊपलेट की लकड़ी—वातहर, तरस तथा उल्टी का नाश करने वाली।

१०. करेण की जड़—ज्वरघ्न, मस्तक शूल।

११. करीआतु—ज्वरघ्न सारक, अरुचि नाशक।

१२. कस्तूरी—अंग का खिचाव, आचकी, वायु, तृषा, उल्टी तथा शोष नाशक।

१३. कडु—सारक, पाचक और ज्वरघ्न।

१४. **केशर**—कठरोग, मस्तकशूल, उल्टी, शीतल, स्तंभक, पौष्टिक।

१५. **कौंदरू**—ऊष्ण, कफघ्न, रक्तातिसार, ज्वरघ्न, स्वेदल।

१६. **काथो**—दात से खून आना और वातहर।

१७. **केरमूल**—रुचि कारक, शूलघ्न और वातहर।

१८. **कुंवार**—अपच, रेचक, गुल्मघ्न, पित्तशामक, बरलवृद्धि।

१९. **खारो**—पेट का दुखना।

२०. **खेरसार**—कफशामक, दांत को लाभदायक, ऊधरस मिटाने वाला।

२१ **खेर का मूल तथा छाल**—रक्त शोधक।

२२. **गुगल**—वयस्थापक, वातहर और शोधक।

२३. **गलो**—ज्वरघ्न, शीतल, पित्तशामक, मूत्रल, तृषा, दाह।

२४. **गोमूत्र**—मूत्रल, सारक, मलावरोध, पेट का रोग, रेचक।

२५. **चित्रकमूल**—रंभक, पेट दुखना, वातहर, दिपन, पाचक।

२६. **चिमेड़**—वातहर, पौष्टिक, चक्षुष्य।

२७. **चोड़**—(तेलिया) देवदार की लकडी, मूत्र शोधक, मलावरोध, आफरा, हेड़की, मूर्छा, वायुहर, दीपन, पाचक।

२८. **चूना**—शिलस, अजीर्ण।

२६. **जरदा**—(तम्बाकू) कफशामक, वात्तानुलोमन, वातहर।

३०. **जवखार**—मूत्रल, उष्ण, दीपन, पाचक।

३१. **टंकणखार**—मूत्रल, ऋतु लानेवाला, वेण लाने वाला।

३२. **भेरी नालीयेर**—पौष्टिक, ज्वरघ्न, अपच, दस्त, चूक।

३३. **दाभ का मूल**—बस्तिशूल, उल्टी, वातीहर, मूत्रल, रक्त स्तंभक।

३४ **तम्बाकू**—(किसी भी किस्म की पर बिनाकी, खाने की अथवा सूघने की)—कफशामक, हिस्टीरिया, दान मजबूत होना।

३५ **तगर**—उल्टी के लिए।

३६. **त्रिफला**—सारक, पित्तशामक, दाह, तृषा, मूझवण दूर करने वाली।

३७. **थोर का मूल**—ऊघ दूर करने वाला, गुल्म और अष्टिला।

३८ **अनार की छाल**—ऊंघरस, कफनाशक, पित्तशामक, ग्राही।

३६. **धमासा**—उल्टी, उधरस, ज्वर, दाह, हेडकी, मूत्रल

४० **निर्मली**—मूत्रल, शूल, गोला नाश करने वाली, रुचिकर।

४१. **नइकंद**—वातीकर, सख्त उल्टी कराने वाली, सर्प विप निकालने के लिए।

४२. पान की जड़—वातहर, ऊष्ण, रुचिकारक, मेल नाशक।

४३. पुंवाडावीज—ज्वरघ्न, त्वचा के दोष दूर करने वाला।

४४. फिटकरी—ग्राही, रक्त स्तम्भक।

४५. बुचकण—(मुचकंद) पित्त की उल्टी, वायु सम्बंधी मस्तक पीड़ा, तृषाहर।

४६. बेहड़ा की छाल—उधरस, कफनाशक, शीतल।

४७. बैर की छाल—श्रम, शोषनाशक, शामक, ग्राही।

४८. बोरड़ी का मूल—ज्वरघ्न, कफ पित्त नाशक।

४९. बावल की छाल—रक्तातिसार, अतिसार खांसी।

५०. बीया—(बोवला)—रक्त पित्त नाशक, रक्तस्तंभक, ग्राही।

५१. बोल (एलिया की किस्म)—सारक, आर्तवशोधक।

५२. भोरींगणी मूल—ज्वरघ्न, पड़खे का दर्द, दम, उधरस, हृदयरोग।

५३. मलयागरू—तृषा, दाह, ज्वर नाशक, स्वादु, रक्त पित्त नाशक।

५४. मजीठ—शूल, अर्श, रक्तातिसार, पित्तशामक।

५५. मरेठी—गले की सूजन, मुंह आना, उधरस।

५६. राख—(सब किस्म की)—दांत साफ करने वाली।

५७. रोहू की छाल—वातहर, पौष्टिक, शोधक।

५८. **लींवड़े का पंचांग**—(छाल, डांखली, पान, मूल, महोर)—पौष्टिक, ज्वरघ्न, शीतल, उल्टी बंद करने वाली, पित्त शामक, तृषाहार, मुंझवण नाशक।

५९. **मखमा**—पेट दुखना, आफरा, आहर पाचक, भेदक, वातहर।

६०. **बड़गुंदा**—ग्राही, अतिसार, कोलेरा।

६१. **गंधोलीवज**—ग्राही, गले का शोष, मलावरोध, कफघ्न।

६२. **खुरोखार**—मूत्रल, स्वेदल, शीतल।

६३. **साजीखार**—वायुहर, दीपक, पाचन।

६४. **सुखड़ की किस्म**—शीतल, पित्त शामक।

६५. **हलदर**—अपच नाशक, कफघ्न, पौष्टिक।

६६ **हीमज**—तृषा, मूझवण नाशक, सारक।

६७. **हरड़े की छाल**—आयुष्य वर्धक, सारक, शोधक, शीतल।

६८. **हीराबोल**—ऋतु लाने वाली, ऊष्ण, कफघ्न।

६९. **त्रिफला की गोमूत्र गोली**—दस्तावर, पेट का वातहर।

श्रावक करणी सज्झाय

श्रावक उठ तूं वड़ो परभात, चार घड़ी रहे पिछली रात ।
मन मे समरो श्री नवकार, जिससे होय भवसागर पार ॥१॥

कौन देव कौन गुरु धर्म, कौन हमारा है कुल कर्म ।
कौन हमारो है व्यवसाय, ऐसा चिंतन कर मन मांय ॥२॥

सामायिक को लेना है शुद्ध, धर्म तणी मन राखो वुद्ध ।
प्रतिकमण राई कीजिये, निज प्रायश्चित आलोइये ॥३॥

काया शक्ति करो पचखाण, सूधी पालो जिनवर आण ।
पढिये गुनिये स्तवन सज्झाय, जिससे भव निस्तारा पाय ।४।

चौदह नियम चितवन करो, दया पाली जीवन सुख भरो ।
मन्दिर जा जुहारो देव, द्रव्य भाव से करना सेव ॥५॥

पूजा करते लाभ अपार, प्रभू वड़े मोक्ष दातार ।
जो उत्थापे जिनवर देव, ताहिं न शब्द कान में लेव ॥६॥

उपाश्रये गुरु वन्दो जाय, सुनो वखान सदा चित्त लाय ।
निर्दूषण कर शुद्ध आहार, साधुन को दीजिये सुविचार ॥७॥

स्वामिवत्सल कीजे घना, हेत वडा है स्वामी तणा ।
दुखिया हीन दीन को देख, करिये उनपर दया विशेष ॥८॥

शक्ति देख निज देना दान, वडन सो नहीं कीजे मान ।
लेहुं प्रत्तिज्ञा गुरु के पास, धर्म अवज्ञा करहु न वास ॥९॥

और करो तुम शुद्ध व्यापार, कमती ज्यादे का परिहार ।
मत भरना तुम झूठी साख, झूठे जन से बात न भाख ॥१०॥

अनन्तकाय कहे बत्तीस, अभक्ष बाईस विश्वा बीस ।
वे भक्षण मत करना तीम, कच्चे खट्टे फल मत जीम ॥११॥

रात्रि भोजन का बहु दोष, समझ राख दिल मे संतोष ।
सज्जी साबुन लोह और गुली, मधु गूंद मत वेचो बली ॥१२॥
और रंगाई कर्म न करो, दूषण उनमें अति सांभरो ।
पानी छानो दो दो बार, अनछाने मे दोष अपार ॥१३॥
यत्न करो जीवाणी तणा, यत्ने पुण्य बंधे अति घना ।
छाणा इन्धन भट्टी जोय, वावरिये जिम पाप न होय ॥१४॥
घृत सम वापरना तुम नीर, अनछाने मे मत धो चीर ।
बारह व्रत तुमे सुध पालो, अतिचार उनके सभी टालो ॥१५॥
कहे पन्द्रह कर्मा दान, पाप तणी परिहरिये आन ।
माथे मत ले अनरथ दड, मिथ्या मेल मत भरजो पिंड ॥१६॥
समकित दिल मे राखो शुद्ध, बोल विचारी भाखिये बुद्ध ।
पंच तिथि मत कर आरभ, पालो शील तजो मन दभ ॥१७॥
तेल तक्र घृत पय अरु दही, उघाड़ा मत राखो सही ।
श्रेष्ठ कार्य मे खरचो वित्त, पर उपकार करो शुभ चित्त ॥१८॥
दिन प्रति दिन करो चौविहार, चारो आहार तणा परिहार ।
दिवस के आलोओ पाप, जिससे भागे सब सताप ॥१९॥
सध्याये आवश्यक साचवे, जिनवर चरण सरण भवभवें ।
चारो सरणा कर दृढ़ हो, सागारी अणसण ले सो ॥२०॥
सदविचार को मन मे धार, जाऊ सिद्धाचल गिरनार ।
सम्मेत शिखर आबू तारग, धन्य घडी कब भेटूं उमग ॥२१॥
श्रावक तणी क्रिया है एह, इसमे होता है भव छेह ।
अष्ट कर्म दल पातला, पाप तणा छुटे आमला ॥२२॥
बहुरि लीजिये अमर विमान, अनुक्रमे पावे शिवपुर ठाम ।
कहे जिन हर्ष घणो ससनेह, करणी दु ख हरणी है यह ॥२३॥

परिशिष्ट

(दूसरा)

पच्चक्खाण कोष्टक

(बम्बई)

मास	तारीख	सूर्योदय घ मि	नोकारसी घ मि.	पोरिसी घ मि	साढ पोरिसी घ. मि.	पूरीमट्ट घ मि	अवट्ट घ मि	सूर्यास्त घ मि
जन.	१	७-१३	८-०१	०९-५७	११-२०	१२-४२	३-२६	६-११
,,	१६	७-१६	८-०४	१०-०२	११-२५	१२-४८	३-३४	६-२०
फर.	१	७-१५	८-०३	१०-०३	११-२८	१२-५२	३-४१	६-३०
,,	१६	७-०८	७-५६	१०-००	११-२६	१२-५३	३-४५	६-३८
मार्च	१	७-००	७-४८	०९-५६	११-२४	१२-५१	३-४७	६-४३
,,	१६	६-४८	७-३६	०९-४८	११-१८	१२-४८	३-४७	६-४७
अप्रैल	१	६-३४	७-२३	०९-३९	११-११	१२-४३	३-४६	६-५५
,,	१६	६-२३	७-११	०९-३१	११-०५	१२-३९	३-४७	६-५४
मई	१	६-१३	७-०१	०९-२४	११-००	१२-३६	३-४७	६-५९
,,	१६	६-०६	६-५४	०९-२०	१०-५८	१२-३५	३-४९	७-०४
जून	१	६-०३	६-५१	०९-१८	१०-५८	१२-३६	३-५३	७-१०
,,	१६	६-०३	६-५१	०९-२१	११-००	१२-३९	३-५०	७-१५
जुलाई	१	६-०६	६-५४	०९-२४	११-०३	१२-४२	४-००	७-१८
,,	१६	६-११	६-५९	०९-२७	११-०६	१२-४५	४-०१	७-१८
अगस्त	१	६-१७	७-०५	०९-३१	११-०८	१२-४५	३-५९	७-१३
,,	१६	६-२१	७-०९	०९-३२	११-०८	१२-४३	३-५४	७-०५
सेप्टे.	१	६-२५	७-१३	०९-३२	११-०५	१२-३९	३-४६	६-५३
,,	१६	६-२७	७-१५	०९-३०	११-०२	१२-३४	३-३७	६-४०
अक्टो	१	६-३०	७-१८	०९-२९	१०-५९	१२-२९	३-२८	६-२७
,,	१६	६-३४	७-२२	०९-२९	१०-५७	१२-२४	३-२०	६-२५
नो	१	६-४०	७-२८	०९-३१	१०-५७	१२-२२	३-१३	६-०५
,,	१६	६-४७	७-३५	०९-३५	१०-५९	१२-२३	३-११	५-५९
दिस	१	६-५७	७-३५	०९-४२	११-०५	१२-२८	३-३३	५-५९
,,	१६	७-०६	७-५४	०९-५०	११-१२	१२-३४	३-१०	६-०२

पच्चक्खाण कोष्टक

(अहमदाबाद)

मास	तारीख	सूर्योदय घ मि	नोकारसी घ मि	पोरिसी घ - मि.	साढ़ पोरिसी घ. मि	पूरीमड्ढ घ मि	अवड्ढ घ. मि	सूर्यास्त घ. मि.
जन.	१	७-२२	८-१०	१०-०२	११-२४	१२-४४	३-२५	६-०५
"	१६	७-२५	८-१३	१०-०८	११-३०	१२-५०	३-३३	६-१५
फर.	१	७-२१	८-०९	१०-०८	११-३१	१२-५४	३-४१	६-२७
"	१६	७-१३	८-०१	१०-०४	११-३०	१२-५५	३-४६	६-३६
मार्च	१	७-०४	७-५२	९-५९	११-२६	१२-५३	३-४८	६-४२
"	१६	६-५०	७-३८	९-५०	११-२०	१२-४९	३-४९	६-४८
अप्रैल	१	६-३४	७-१५	९-३९	११-१२	१२-४४	३-४९	६-५४
"	१६	६-२०	७-०८	९-३०	११-०५	१२-४०	३-५०	७-००
मई	१	६-०८	६-५५	९-२३	११-००	१२-३७	३-५२	७-०६
"	१६	६-००	६-३३	९-१९	१०-५८	१२-३७	३-५५	७-१३
जून	१	५-५१	६-३३	९-१७	१०-५८	१२-३८	३-५९	७-२०
"	१६	५-४४	६-४२	९-१७	१०-५९	१२-४०	४-०३	७-२६
जुलाई	१	५-५८	६-३३	९-२१	११-०२	१२-४४	४-०७	७-२९
"	१६	६-०४	६-५२	९-२५	११-०६	१२-४६	४-०७	७-२७
अगस्त	१	६-११	६-५९	९-२९	११-०८	१२-४९	४-०४	७-०६
"	१६	६-१७	७-०५	९-३१	११-०८	१२-४४	३-५८	७-११
सेप्टे	१	६-२३	७-११	९-३२	११-०६	१२-४०	३-४९	६-५७
"	१६	६-३०	७-१५	९-३२	११-०३	१२-३५	३-३९	६-४२
अक्टो.	१	६-३३	७-२१	९-२९	११-०१	१२-३०	३-२९	६-२७
"	१६	६-३८	७-२६	९-२२	१०-५९	१२-२६	३-२०	६-१३
नो.	१	६-४६	७-३४	९-३१	११-००	१२-२४	३-१३	६-०१
"	१६	६-५५	७-३३	९-४०	११-०३	१२-२५	३-१०	५-५४
दिस	१	७-०५	७-५३	९-५७	११-०८	१२-२९	३-११	५-५२
"	१६	७-१५	८-०३	९-५६	११-१६	१२-३६	३-१६	५-५६

पच्चक्खाण कोष्टक

(लखाबावल–जामनगर)

मास	तारीख	सूर्योदय	नोकारसी	पोरिसी	साढ पोरिसी	पूरीमड्ढ	अवड्ढ	सूर्यास्त
		घ. मि से.	घ मि	घ मि	घ मि.	घ मि से.	घ मि.	घ मि से.
जन.	१	७-३१-१६	८–२०	१०–१३	११–३३	१२-५३-१७	१५–३५	६-१५-१८
,,	१६	७-३३-४३	८–२२	१०–१७	११–३९	१२-५९-३६	१५–४३	६-२५-२९
फर.	१	७-३०-४२	८–१९	१०–१८	११–४१	१३-०३-३४	१५–५०	६-३६-२६
,,	१६	७-२३-०१	८–१२	१०–१४	११–३९	१३-०४-१३	१५–५५	६-४५-२५
मार्च	१	७-१३-२२	८–०२	१०–०८	११–३६	१३-०२-३४	१५–५८	६-५१-४६
,,	१६	७-००-०६	७–४९	१०–००	११–३०	१२-५८-४७	१५–५९	६-५७-४८
अप्रैल	१	६-४५-००	७–३३	९–५०	११–२२	१२-५४-०९	१५–५९	७-०३-१७
,,	१६	६-३१-३१	७–२०	९–४१	११–१६	१२-५०-००	१६–००	७-०८-२९
मई	१	६-२०-०४	७–०९	९–३४	११–११	१२-४७-०९	१६–०१	७-१४-१४
,,	१६	६-११-४९	७–००	९–३०	११–०८	१२-४६-१७	१६–०४	७-२०-४५
जून	१	६-०७-२४	६–५६	९–२८	११–०८	१२-४७-३६	१६–०८	७-२७-४८
,,	१६	६-०७-२८	६–५६	९–२८	११–१०	१२-५०-२३	१६–१२	७-३३-१८
जुलाई	१	६-१०-५७	६–५९	९–३३	११–१३	१२-५३-३४	१६–१५	७-३६-११
,,	१६	६-१६-२८	७–०५	९–३७	११–१७	१२-५५-५२	१६–१६	७-३५-१६
अगस्त	१	६-२३-००	७–११	९–४०	११–१८	१२-५६-१६	१६–१३	७-२९-३२
,,	१६	६-२८-४४	७–१७	९–४२	११–१९	१२-५४-२३	१६–०८	७-२०-०२
सेप्टे	१	६-३३-४७	७–२२	९–४२	११–१७	१२-५०-१३	१५–५९	७-०६-३९
,,	१६	६-३८-०२	७–२७	९–४२	११–१४	१२-४५-०९	१५–४९	६-५२-१६
अक्टो.	१	६-४२-२२	७–३१	९–४२	११–११	१२-३९-५६	१५–३९	६-३७-३०
,,	१६	६-४७-४२	७–३६	९–४२	११–०९	१२-३५-४६	१५–३०	६-२३-५०
नो	१	६-५५-०९	७–४४	९–४५	११–१०	१२-३३-३९	१५–२३	६-१२-०९
,,	१६	७-०४-०१	७–५३	९–५०	११–१३	१२-३४-४४	१५–२१	६-०५-२७
दिस.	१	७-१४-१०	८–०३	९–५७	११–१८	१२-३८-५६	१५–२२	६-०३-४२
,,	१६	७-२३-४९	८–१२	१०–०५	११–२६	१२-४५-२९	१५–२७	६-०७-०९

पच्चक्खाण कोष्टक

(कलकत्ता)

मास	तारीख	सूर्योदय	नोकारसी	पोरिसी	साढ पोरिसी	पूरीमट्ट	अवट्ट	सूर्यास्त
		घ मि.	घ. मि	घ. मि	घ मि.	घ मि	घ मि	घ मि.
जन.	१	६–२२	७–१८	९–०६	१०–२९	११–५१	२–३५	४–५८
,,	१६	६–२५	७–१३	९–११	१०–३४	११–५७	२–४३	५–०८
फर.	१	६–२१	७–०९	९–१०	१०–३५	१२–००	२–४८	५–१९
,,	१६	६–१४	७–०२	९–०६	१०–३२	११–५९	२–५१	५–२८
मार्च	१	६–०४	६–५२	९–००	१०–२८	११–५५	२–५१	५–३५
,,	१६	५–५०	६–३८	८–५०	१०–२०	११–५०	२–४९	५–४०
अप्रैल	१	५–३४	६–२२	८–३८	१०–१०	११–४२	२–४५	५–४८
,,	१६	५–१९	६–०७	८–२७	१०–०१	११–३५	२–४३	५–५४
मई	१	५–०८	५–५६	८–१९	९–५५	१०–३१	२–४२	६–००
,,	१६	४–५९	५–४७	८–१३	९–५१	११–२८	२–४२	६–०७
जून	१	४–५५	५–४३	८–११	९–५०	११–२८	२–४५	६–१४
,,	१६	४–५४	५–४२	८–१२	९–५१	११–३०	२–४८	६–२०
जुलाई	१	४–५८	५–४६	८–१६	९–५५	११–३४	२–५२	६–२२
,,	१६	५–०३	५–५१	८–१९	९–५८	११–३७	२–५३	६–२२
अगस्त	१	५–०९	५–५७	८–२३	१०–००	११–३७	२–५२	६–१६
,,	१६	५–१५	६–०३	८–२६	१०–०२	११–३७	२–४८	६–०६
सेप्टे	१	५–२१	६–०९	८–२८	१०–०१	११–३५	२–४२	५–५३
,,	१६	५–२६	६–१४	८–२९	१०–०१	११–३३	२–३६	५–३८
अक्टो	१	५–३१	६–१९	८–३०	१०–००	११–३०	२–२९	५–२२
,,	१६	५–३७	६–२५	८–३२	१०–००	११–२८	२–२२	५–०८
नो	१	५–४५	६–३३	८–३६	१०–०२	११–२७	२–१८	४–५६
,,	१६	५–५४	६–४२	८–४२	१०–०६	११–३०	२–१८	४–४९
दिस.	१	६–०४	६–५२	८–५०	१०–१२	११–३५	२–२१	४–४७
,,	१६	६–१४	७–०२	८–५८	१०–२१	११–४३	२–२६	४–५०

ॐ

पच्चक्खाण कोष्टक

(पालीताणा)

मास	तारीख	सूर्योदय	नोकारसी	पोरिसी	साढ़ पोरिसी	पूरीमट्ट	अवट्ट	सूर्यास्त
		घ मि	घ मि.	घ मि	घ मि	घ मि	घ मि.	घ. मि
जन.	१	७-२५	८-१३	१०-०६	११-२७	१२-४७	३-२८	६-०८
,,	१६	७-२८	८-१६	१०-११	११-३२	१२-५३	३-३६	६-१८
फर	१	७-२४	८-१२	१०-११	११-३४	१२-५७	३-४३	६-३०
,,	१६	७-२०	८-०४	१०-०६	११-३३	१२-५७	३-४९	६-३९
मार्च	१	७-०७	७-५५	१०-०२	११-२९	१२-५६	३-५२	६-४५
,,	१६	६-५३	७-४१	९-५३	११-२३	१२-५२	३-५२	६-५१
अप्रैल	१	६-३७	७-२५	९-४२	११-१५	१२-४७	३-५३	६-५७
,,	१६	६-२३	७-११	९-३३	११-०८	१२-४३	३-५५	७-०३
मई	१	६-११	६-५९	९-२६	११-०३	१२-४०	३-५८	७-०९
,,	१६	६-०३	६-५१	९-२२	११-०१	१२-४०	४-०२	७-१६
जून	१	५-५८	६-४६	९-२०	११-०१	१२-४१	४-०६	७-२३
,,	१६	५-५७	६-४५	९-२०	११-०२	१२-४३	४-१०	७-२९
जुलाई	१	६-०१	६-४९	९-२४	११-०६	१२-४७	४-१०	७-३२
,,	१६	६-०७	६-५५	९-२८	११-०९	१२-४९	४-०७	७-३१
अगस्त	१	६-१४	७-०३	९-३०	११-११	१२-४९	४-०१	७-२४
,,	१६	६-२०	७-०७	९-३४	११-११	१२-४७	३-५२	७-१४
सेप्टे	१	६-२६	७-१४	९-३५	११-०९	१२-४३	३-४२	७-००
,,	१६	६-३०	७-१८	९-३४	११-०६	१२-३८	३-३२	६-४५
अक्टो.	१	६-३६	७-२४	९-३५	११-०४	१२-३३	३-२३	६-३०
,,	१६	६-४१	७-२९	९-३५	११-०२	१२-२९	३-१६	६-१६
नो.	१	६-४९	७-३७	९-३८	११-०३	१२-२७	३-१३	६-०४
,,	१६	६-५८	७-४६	९-४३	११-०६	१२-२८	३-१४	५-५७
दिस.	१	७-०८	७-५६	९-५०	११-११	१२-३२	३-१५	५-५५
,,	१६	७-१८	८-०६	९-५९	११-१८	१२-३९	३-१९	५-५९

पच्चक्खाण कोष्टक

(नासिक)

मास	तारीख	सूर्योदय	नोकारसी	पोरिसी	साढ़ पोरिसी	पुरीमड्ढ	अवड्ढ	सूर्यास्त
		घ मि.	घ. मि.	घ. मि	घ. मि.	घ. मि.	घ. मि.	घ. मि.
जन.	१	७-०४	७-५२	९-५०	११-१३	१२-३७	३-२५	६-११
"	१६	७-०८	७-५६	९-५६	११-१९	१२-४३	३-३२	६-२०
फर.	१	७-०७	७-५५	१०-००	११-२४	१२-५०	३-३७	६-२९
"	१६	७-००	७-४८	९-५४	११-२१	१२-४८	३-४०	६-३६
मार्च	१	६-५३	७-४१	९-५०	११-१८	१२-४७	३-४४	६-४१
"	१६	६-४२	७-३०	९-४३	११-१४	१२-४३	३-४३	६-४४
अप्रैल	१	६-२९	७-१७	९-३४	११-०९	१२-३८	३-४२	६-४७
"	१६	६-१८	७-०६	९-२६	११-००	१२-४४	३-४२	६-५०
मई	१	६-०८	६-५६	९-१९	१०-५४	१२-३१	३-४३	६-५४
"	१६	६-०२	६-५०	९-१६	१०-५३	१२-३०	३-४५	६-५९
जून	१	५-५९	६-४७	९-१५	१०-५३	१२-३२	३-४९	७-०५
"	१६	५-५९	६-४७	९-१६	१०-५४	१२-३४	३-५२	७-०९
जुलाई	१	६-०३	६-५१	९-२०	१०-५२	१२-३७	३-५५	७-१२
"	१६	६-०७	६-५५	९-२३	११-०१	१२-४०	३-५७	७-१३
अगस्त	१	६-१३	७-०२	९-२६	११-०२	१२-४०	३-५५	७-०८
"	१६	६-१७	७-०५	९-२७	११-०३	१२-३८	३-५०	७-००
सेप्टे.	१	६-२०	७-०८	९-२७	११-००	१२-३४	३-४१	६-४८
"	१६	६-२३	७-०१	९-२५	१०-५७	१२-२९	३-३३	६-३६
अक्टो.	१	६-२४	७-१२	९-२४	१०-५४	१२-२४	३-२४	६-२४
"	१६	६-२७	७-१५	९-२३	१०-५१	१२-२०	३-१७	५-२३
नो.	१	६-३२	७-२०	९-२४	१०-५०	१२-१७	३-११	६-०३
"	१६	६-३९	७-२७	९-२८	१०-५२	१२-१८	३-०९	५-५८
दिस	१	६-४८	७-३६	९-३५	१०-५८	१२-२२	३-००	५-५७
"	१६	६-५६	७-४४	९-४३	११-०६	१२-२९	३-१५	६-०२

पच्चक्खाण कोष्टक

(बीजापुर, आकोला एवं जलगांव)

मास	तारीख	सूर्योदय घ. मि	नोकारसी घ. मि	पोरिसी घ मि	साढ पोरिसी घ. मि	पूरीमड्ढ घ मि	अवड्ढ घ मि	सूर्यास्त घ मि.
जन.	१	६–५७	७–४५	९–४३	११–०६	१२–३०	३–१८	६–०४
,,	१६	७–०१	७–४९	९–४९	११–१२	१२–३६	३–२५	६–१३
फर.	१	७–००	७–४८	९–५३	११–१७	१२–४३	३–३०	६–२२
,,	१६	६–५३	७–४१	९–४७	११–१४	१२–४१	३–३३	६–२९
मार्च	१	६–४६	७–३४	९–४३	११–११	१२–४०	३–३७	६–३४
,,	१६	३–३५	७–२३	९–३६	११–०७	१२–३६	३–३६	६–३७
अप्रैल	१	६–२२	७–१०	९–२७	११–०२	१२–३१	३–३५	६–४०
,,	१६	६–११	६–५९	९–१९	१०–५३	१२–३७	३–३५	६–४३
मई	१	६–०१	६–४९	९–१२	१०–४७	१२–२४	३–३६	६–४७
,,	१६	५–५५	६–४३	९–०९	१०–४६	१२–२३	३–३८	६–५२
जून	१	५–५२	६–४०	९–०८	१०–४६	१२–२५	३–४२	६–५८
,,	१६	५–५२	६–४०	९–०९	१०–४७	१२–२७	३–४५	७–०२
जुलाई	१	५–५६	६–४४	९–१३	१०–५१	१२–३०	३–४८	७–०५
,,	१६	६–००	६–४८	९–१६	१०–५४	१२–३३	३–५०	७–०६
अगस्त	१	६–०६	६–५५	९–१९	१०–५५	१२–३३	३–४८	७–०१
,,	१६	६–१०	६–५८	९–२०	१०–५६	१२–३१	३–४३	६–५३
सेप्टे	१	६–१३	७–०१	९–२०	१०–५३	१२–२७	३–३४	६–४१
,,	१६	६–१६	७–०४	९–१८	१०–५०	१२–२२	३–२६	६–२९
अक्टो.	१	६–१७	७–०५	९–१७	१०–४७	१२–१७	३–१७	६–१७
,,	१६	६–२०	७–०८	९–१६	१०–४४	१२–१३	३–१०	६–१६
नो.	१	६–२५	७–१३	९–१७	१०–४३	१२–१०	३–०४	५–५६
,,	१६	६–३२	७–२०	९–२१	१०–४५	१२–११	३–०२	५–५१
दिस.	१	६–४१	७–२९	९–२८	१०–५१	१२–१५	३–०३	५–५०
,,	१६	६–४९	७–३७	९–३६	१०–५९	१२–२२	३–०८	५–५५

पच्चक्खाण कोष्टक

(नागपुर)

मास	तारीख	सूर्योदय घ. मि	नोकारसी घ मि	पोरिसी घ मि.	साढ पोरिसी घ. मि	पूरीमट्ट घ मि.	अवट्ट घ मि.	सूर्यास्त घ मि.
जन	१	६-४९	७-२७	९-३५	१०-५८	१२-२२	३-१०	५-५६
,,	१६	६-५३	७-४१	९-४१	११-०४	१२-२८	३-१७	६-०५
फर	१	६-५२	७-४०	९-४५	११-०९	१२-३५	३-२२	६-१४
,,	१६	६-४५	७-३३	९-३९	११-०६	१२-३३	३-२५	६-२१
मार्च	१	६-३८	७-२६	९-३५	११-०३	१२-३२	३-२९	६-२६
,,	१६	६-२७	७-१५	९-२८	१०-५९	१२-२८	३-२८	६-२९
अप्रैल	१	६-१४	७-०२	९-१९	१०-५४	१२-२३	३-२७	६-३२
,,	१६	६-०३	६-५१	९-११	१०-४५	१२-१९	३-२७	६-३५
मई	१	५-५३	६-४१	९-०४	१०-३९	१२-१६	३-२८	६-३९
,,	१६	५-४७	६-३५	९-०१	१०-३८	१२-१५	३-३०	६-४४
जून	१	५-४४	६-३१	९-००	१०-३८	१२-१७	३-३४	६-५०
,,	१६	५-४४	६-३१	९-०१	१०-३९	१२-१९	३-३७	६-५४
जुलाई	१	५-४८	६-३६	९-०५	१०-४३	१२-२२	३-४०	६-५७
,,	१६	५-५२	६-४०	९-०८	१०-४६	१२-२५	३-४२	६-५८
अगस्त	१	५-५८	६-४७	९-११	१०-४७	१२-२५	३-४२	६-५३
,,	१६	६-०२	६-५०	९-१२	१०-४८	१२-२३	३-३५	६-४५
सेप्टे	१	६-०५	६-५३	९-१२	१०-४५	१२-१९	३-२६	६-३३
,,	१६	६-०८	६-५६	९-१०	१०-४२	१२-१४	३-१८	६-२१
अक्टो.	१	६-०९	६-५७	९-०९	१०-३९	१२-०९	३-०९	६-०९
,,	१६	६-१२	७-००	९-०८	१०-३६	१२-०५	३-०२	५-५८
नो	१	६-१७	७-०५	९-०९	१०-३५	१२-०२	२-५८	५-४८
,,	१६	६-२४	७-१२	९-१३	१०-३८	१२-०४	२-५४	५-४३
दिस.	१	६-३३	७-२१	९-२०	१०-४३	१२-०७	२-५५	५-४२
,,	१६	६-४१	७-२९	९-२८	१०-५१	१२-१४	३-००	५-४७

पच्चक्खाण कोष्टक

(सोलापुर)

मास	तारीख	सूर्योदय	नोकारसी	पोरिसी	साढ पोरिसी	पूरीमट्ट	अवट्ट	सूर्यास्त
		घ मि	घ मि	घ मि	घ मि	घ. मि	घ. मि	घ मि
जन	१	६–५६	७–३४	९–४२	११–०५	१२–२९	३–१७	६–०३
,,	१६	७–००	७–४८	९–४८	११–११	१२–३५	३–२४	६–०२
फर	१	६–५९	७–४७	९–५२	११–१६	१२–४२	३–२९	६–२१
,,	१६	६–५२	७–४०	९–४६	११–१३	१२–४०	३–३२	६–२८
मार्च	१	६–४५	७–३३	९–४२	११–१०	१२–३९	३–३६	६–३३
,,	१६	६–३४	७–२२	९–३५	११–०६	१२–३५	३–३५	६–३६
अप्रैल	१	६–२१	७–०९	९–२६	११–०१	१२–३०	३–३४	६–३९
,,	१६	६–१०	६–५८	९–१८	१०–५२	१२–२६	३–३४	६–४२
मई	१	६–००	६–४८	९–११	१०–४६	१२–२३	३–३५	६–४६
,,	१६	५–५४	६–४२	९–०८	१०–४५	१२–२२	३–३७	६–५१
जून	१	५–५१	६–३९	९–०७	१०–४५	१२–२४	३–४१	६–५७
,,	१६	५–५१	६–३९	९–०८	१०–४६	१२–२६	३–४३	७–०१
जुलाई	१	५–५५	६–४३	९–१२	१०–५०	१२–२९	३–४७	७–०४
,,	१६	५ ५९	६–४७	९–१५	१०–५३	१२–२२	३–४९	७–०५
अगस्त	१	६–०५	६–५४	९–१८	१०–५४	१२–३२	३–४७	७–००
,,	१६	६–०९	६–५७	९–१९	१०–५५	१२–३०	३–४२	६–५२
सेप्टे	१	६–१२	७–००	९–१९	१०–५२	१२–२६	३–३३	६–४०
,,	१६	६–१५	७–०३	९–१७	१०–४९	१२–२१	३–२५	६–२८
अक्टो	१	६–१६	७–०४	९–१६	१०–४६	१२–१६	३–१६	६–१६
,,	१६	६–१९	७–०७	९–१५	१०–४३	१२–१२	३–०९	६–०५
नो.	१	६–२४	७–१२	९–१६	१०–४२	१२–०९	३–०३	५–५५
,,	१६	६–३१	७–१९	९–२०	१०–४५	१२–११	३–०१	५–५०
दिस.	१	६–४०	७–२८	९–२७	१०–५०	१२–१४	३–०२	५–४९
,,	१६	६–४८	७–३६	९–३५	१०–५८	१२–२१	३–०७	५–५४

नोट :—"इस समय के पाच मिनिट पश्चात् पच्चक्खाण पारना चाहिये ।"

पच्चक्खाण कोष्टक

(दिल्ली)

मास	तारीख	सूर्योदय घ मि	नोकारसी घ मि	पोरिसी घ. मि	साढ पोरिसी घ मि	पूरीमड्ढ घ मि.	अवड्ढ घ. मि	सूर्यास्त घ मि
जन.	१	७–१४	८–०२	९–५६	११–१६	१२–३७	३–१९	५–३५
,,	१६	७–१६	८–०४	९–५८	११–१८	१२–३९	३–२१	५–४५
फर	१	७–१०	७–५८	१०–००	११–२५	१२–४५	३–३८	५–५९
,,	१६	७–०१	७–४९	९–५१	११–१६	१२–३६	३–२९	६–१०
मार्च	१	६–४७	७–३५	९–४१	११–०८	१२–३५	३–२९	६–२१
,,	१६	६–३२	७–२०	९–२६	१०–५३	१२–२०	३–१४	६–२९
अप्रैल	१	६–१२	७–००	९–१२	१०–४२	१२–१२	३–१२	६–३९
,,	१६	५–५६	६–४४	८–५६	१०–२६	११–५६	२–५६	६–४७
मई	१	५–४१	६–२९	८–४८	१०–२२	११–५४	३–०१	६–५६
,,	१६	५–३१	६–१९	८–३८	१०–१२	११–४४	२–५१	७–०४
जून	१	५–२४	६–१२	८–३७	१०–१४	११–४९	३–०२	७–१४
,,	१६	५–२३	६–११	८–३६	१०–१३	११–४८	३–०१	७–२०
जुलाई	१	५–२७	६–१५	८–४७	१०–२७	१२–०७	३–२७	७–२३
,,	१६	५–३३	६–२१	८–५३	१०–३३	१२–१३	३–३३	७–२१
अगस्त	१	५–४३	६–३१	८–५६	१०–३३	१२–०८	३–२१	७–१२
,,	१६	५–५०	६–३८	९–०३	१०–४०	१२–१५	३–२८	७–०१
सेप्टे	१	५–५९	६–४७	९–०६	१०–४०	१२–१२	३–१९	६–४३
,,	१६	६–०६	७–५४	९–१३	१०–४७	१२–१९	३–२६	६–२६
अक्टो.	१	६–१४	७–०२	९–१४	१०–४४	१२–१४	३–१४	६–०७
,,	१६	६–२२	७–१२	९–२२	१०–५२	१२–२२	३–२२	५–५२
नो.	१	६–३३	७–२२	९–२७	१०–५४	१२–२१	३–१५	५–३६
,,	१६	६–४४	७–३२	९–३८	११–०५	१२–३२	३–२६	५–२७
दिस.	१	६–५७	७–४५	९–४७	११–१२	१२–३२	३–२२	५–२४
,,	१६	७–०७	७–५५	९–४०	११–२२	१२–४२	३–३२	५–२६

नोट :—"इस समय के पांच मिनिट पश्चात् पच्चक्खाण पारना चाहिये ।"

पच्चक्खाण कोष्टक

(बनारस)

मास	तारीख	सूर्योदय घ. मि	नोकारसी घ. मि	पोरिसी घ. मि	साढ पोरिसी घ. मि.	पूरीमट्ट घ मि	अवट्ट घ मि	सूर्यास्त घ मि
जन	१	६–४६	७–३४	९–२८	१०–४८	१२–०९	२–५१	५–१४
,,	१६	६–४२	७–३०	९–२४	१०–४४	१२–०५	२–४७	५–१८
फरे.	१	६–३४	७–२२	९–२४	१०–४९	१२–०९	३–०२	५–२६
,,	१६	६–२४	७–१२	९–१४	१०–३९	११–५९	२–५२	५–३६
मार्च	१	६–१५	७–०३	९–०९	१०–३६	१२–०३	२–५७	५–४५
,,	१६	६–०४	६–५२	८–५८	१०–२५	११–५२	२–४६	५–५६
अप्रैल	१	५–५३	६–४१	८–५३	१०–२३	११–५३	२–५३	६–०७
,,	१६	५–४१	६–२९	८–४१	१०–११	११–४१	२–४१	६–१९
मई	१	५–३१	६–१९	८–३८	१०–१२	११–५४	२–५१	६–२९
,,	१६	५–२३	६–११	८–३०	१०–०४	११–४४	२–४३	६–३७
जून	१	५–१६	६–०४	८–२९	१०–०६	११–४१	२–५४	६–४४
,,	१६	५–१३	६–०१	८–२६	१०–०३	११–३८	२–५१	६–४७
जुलाई	१	५–१३	६–०१	९–२१	१०–१३	११–५३	३–१३	६–४७
,,	१६	५–१७	६–०५	९–२५	१०–१७	११–५७	३–१७	६–४३
अगस्त	१	५–२४	६–१२	९–२५	१०–१४	११–४९	३–०२	६–३६
,,	१६	५–३३	६–२१	९–३४	१०–२३	११–५८	३–११	६–२७
सेप्टे	१	५–४४	६–३२	९–२९	१०–२५	११–५७	३–०४	६–१६
,,	१६	५–५४	६–४२	९–४९	१०–३५	१२–०७	३–१४	६–०६
अक्टो	१	६–०६	६–५४	९–५४	१०–३६	१२–०६	३–०६	५–५४
,,	१६	६–१७	७–०५	१०–०५	१०–४७	१२–१७	३–१७	५–४३
नो	१	६–२८	७–१६	९–२२	१०–४९	१२–१६	३–१०	५–३२
,,	१६	६–३७	७–२५	९–३१	१०–५८	१२–२५	३–१९	५–२३
दिसं	१	६–४३	७–३१	९–३३	१०–५८	१२–१८	३–०८	५–१७
,,	१६	६–४७	७–३५	९–३७	११–०२	१२–२२	३–१२	५–१३

नोट :—"इस समय के पाच मिनिट पश्चात् पच्चक्खाण पारना चाहिये ।"

पच्चक्खाण कोष्टक

(बेंगलोर)

मास	तारीख	सूर्योदय घ मि.	नोकारसी घ मि	पोरिसी घ. मि	साढ़ पोरिसी घ. मि.	पूरीमट्ट घ. मि.	अवट्ट घ मि	सूर्यास्त घ मि
जन.	१	६-४२	७-३०	९-२४	१०-४४	११-०५	२-४७	६-०४
,,	१६	६-४६	७-३४	९-२८	१०-४८	११-०९	२-५१	६-१२
फर.	१	६-४७	७-३५	९-३७	११-०२	११-२२	३-१५	६-२१
,,	१६	६-४३	७-३१	९-३३	१०-५८	११-१८	३-११	६-२५
मार्च	१	६-३६	७-२४	९-३०	१०-५७	११-२४	३-२८	६-२८
,,	१६	६-२७	७-१५	९-२१	१०-४८	११-२५	३-०९	६-३१
अप्रैल	१	६-१७	७-०५	९-१७	१०-४७	१२-१७	३-१७	६-३१
,,	१६	६-०८	६-५६	९-०८	१०-४८	१२-०८	३-०८	६-३२
मई	१	५-५९	६-४७	९-०६	१०-४७	१२-१२	३-१९	६-३५
,,	१६	५-५४	६-४२	९-०१	१०-४५	१२-१७	३-१४	६-३८
जून	१	५-५२	६-४०	९-१६	१०-४२	१२-१७	३-३०	६-४२
,,	१६	५-५३	६-४१	९-१७	१०-४३	१२-१८	३-३१	६-४७
जुलाई	१	५-५८	६-४६	९-१८	१०-५८	१२-३८	३-५८	६-५०
,,	१६	६-०१	६-४९	९-२१	११-०१	१२-४१	४-०१	६-५०
अगस्त	१	६-०५	६-५३	९-१८	१०-५५	१२-३०	३-४३	६-४७
,,	१६	६-०८	६-५६	९-२१	१०-५८	१२-३३	३-४६	६-४०
सेप्टे.	१	६-०९	६-५७	९-१६	१०-५०	१२-४९	३-२९	६-३१
,,	१६	६-०९	६-५७	९-१६	१०-५०	१२-४९	३-२९	६-२१
अक्टो.	१	६-१०	६-५८	९-१०	१०-४०	१२-१०	३-१०	६-१०
,,	१६	६-११	६-५९	९-११	१०-४१	१२-११	३-११	६-०१
नो.	१	६-१४	७-०२	९-०८	१०-३५	१२-०२	२-५६	५-५४
,,	१६	६-२०	७-०८	९-१४	१०-४१	१२-०८	३-०२	५-५०
दिस.	१	६-२७	७-१५	९-१७	१०-४२	१२-०२	२-५२	५-५१
,,	१६	६-३४	७-२२	९-२४	१०-४९	१२-०९	२-५९	५-५६

नोट :—"इस समय के पांच मिनिट पश्चात् पच्चक्खाण पारना चाहिये।"

पच्चक्खाण कोष्टक

(हैदराबाद)

मास	तारीख	सूर्योदय	नोकारसी	पोरिसी	साढ पोरिसी	पूरीमड्ढ	अवड्ढ	सूर्यास्त
		घ मि.	घ मि	घ मि.	घ मि.	घ. मि.	घ. मि	घ मि.
जन.	१	६–४६	७–२४	९–३२	१०–५५	१२–१७	३–०७	५–५३
,,	१६	६–५०	७–३८	९–३८	११–०१	१२–२५	३–१४	६–०२
फर	१	६–४९	७–३७	९–४२	११–०३	१२–३२	३–१९	६–११
,,	१६	६–४२	७–३०	९–३६	११–०६	१२–३०	३–२२	६–१८
मार्च	१	६–३५	७–२३	९–३२	११–००	१२–२९	३–२६	६–२३
,,	१६	६–२४	७–१२	९–२५	१०–५६	१२–२५	३–२५	६–२६
अप्रैल	१	६–११	६–५९	९–१६	१०–५१	१२–२०	३–२४	६–२९
,,	१६	६–००	६–४८	९–०८	१०–४२	१२–१६	३–२४	६–३२
मई	१	५–५०	६–३८	९–०१	१०–३६	१२–१३	३–२५	६–३६
,,	१६	५–४४	६–३२	८–५८	१०–३५	१२–१२	३–२७	६–४१
जून	१	५–४१	६–२९	८–५७	१०–३५	१२–१४	३–३१	६–४७
,,	१६	५–४१	६–२९	८–५८	१०–३६	१२–१६	३–३४	६–५१
जुलाई	१	५–४५	६–३३	७–०२	१०–४०	१२–१९	३–३७	६–५४
,,	१६	५–४९	६–३७	७–०५	१०–४३	१२–२२	३–३९	६–५५
अगस्त	१	५–५५	६–४४	७–०८	१०–४४	१२–२२	३–३७	६–५०
,,	१६	५–५९	६–४७	७–०७	१०–४५	१२–२०	३–३२	६–४२
सेप्टे	१	६–०२	६–५०	७–०७	१०–४२	१२–१६	३–२३	६–३०
,,	१६	६–०५	६–५३	७–०७	१०–३९	१२–११	३–१५	६–१८
अक्टो	१	६–०६	६–५४	७–०६	१०–३६	१२–०६	३–०६	६–०६
,,	१६	६–०९	६–५७	७–०५	१०–३३	१२–०२	२–५९	५–५५
नो	१	६–१४	७–०२	७–०६	१०–३२	११–५९	२–५३	५–४५
,,	१६	६–२१	७–०९	७–१०	१०–३५	१२–०१	२–५१	५–४०
दिस	१	६–३०	७–१८	७–१७	१०–४०	१२–०४	२–५२	५–३९
,,	१६	६–३८	७–२६	७–२५	१०–४८	१२–११	२–५७	५–४४

नोट :—"इस समय के पाच मिनिट पश्चात् पच्चक्खाण पारना चाहिये ।"

पच्चक्खाण कोष्टक

(मदरास)

मास	तारीख	सूर्योदय घ मि	नोकारसी घ मि	पोरिसी घ मि.	साढ पोरिसी घ मि	पूरी मट्ट घ. मि	अवट्ट घ मि.	सूर्यास्त घ. मि
जन.	१	६–५३	७–३१	९–३९	११–०२	१२–२६	३–१४	६–००
"	१६	६–५७	७–४५	९–४५	११–०८	१२–३२	३–२१	६–०९
फर	१	६–५६	७–४४	९–४७	११–१३	१२–३९	३–२६	६–१८
"	१६	६–४९	७–३७	९–४३	११–१०	१२–३७	४–२९	६–२५
मार्च	१	६–४२	७–३०	९–३९	११–०७	१२–३६	३–३३	६–३०
"	१६	६–३१	७–१९	९–३२	११–०३	१२–३२	३–३२	६–३३
अप्रैल	१	६–१८	७–०६	९–२३	१०–५८	१२–२७	३–३१	६–३६
"	१६	६–०७	६–५५	९–१५	१०–४९	१२–२३	३–३१	६–३९
मई	१	५–५७	६–४५	९–०८	१०–४३	१२–२०	३–३२	६–४३
"	१६	५–५१	६–३९	९–०५	१०–४२	१२–१९	३–३४	६–४८
जून	१	५–४८	६–३६	०–०४	१०–४२	१२–२१	३–३८	६–५४
"	१६	५–४८	६–३६	९–०५	१०–४३	१२–२३	३–४१	६–५८
जुलाई	१	५–५२	६–४०	९–०९	१०–४७	१२–२६	३–४४	७–०१
"	१६	५–५६	६–४४	९–१२	१०–५०	१२–१९	३–४६	७–०२
अगस्त	१	६–०२	६–५१	९–१५	१०–५१	१२–२९	३–४४	६–५७
"	१६	६–०६	६–५४	९–१६	१०–५२	१२–२७	३–३९	६–४९
सेप्टे	१	६–०९	६–५७	९–१६	१०–४९	१२–२३	३–३०	६–३७
"	१६	६–१२	७–००	९–१४	१०–४६	१२–१८	३–२२	६–२५
अक्टो	१	६–१३	७–०१	९–१३	१०–४३	१२–१३	३–१३	६–१३
"	१६	६–१६	७–०४	९–१२	१०–४०	१२–०९	३–०६	६–०२
नो	१	६–२१	७–०९	९–१३	१०–३९	१२–०६	३–००	५–५२
"	१६	६–२८	७–१६	९–१७	१०–४२	१२–०८	३–५८	५–४७
दिस	१	६–३७	७–२५	९–२४	१०–४७	१२–११	३–५९	५–४६
"	१६	६–४५	७–३३	९–३२	१०–५५	१२–१८	३–०४	५–५१

नोट :—"इस समय के पांच मिनिट पश्चात् पच्चक्खाण पारना चाहिये।"

पच्चक्खाण कोष्टक

(जयपुर)

मास	तारीख	सूर्योदय घ मि	नोकारसी घ मि.	पोरिसी घ. मि	साढ़ पोरिसी घ मि	पूरीमड्ढ घ मि	अवड्ढ घ मि.	सूर्यास्त घ. मि.
मार्च	२३	६–३४	७–२२	९–३४	११–०४	१२–३५	१५–३५	६–३६
अप्रेल	५	६–१७	७–०५	९–२४	१०–५७	१२–३०	१५–०७	६–४३
"	२१	६–०१	६–४९	९–१४	१०–५०	१२–२६	१५–३९	६–५१
मई	५	५–५०	६–३८	९–०७	१०–४६	१२–२४	१५–४१	६–५८
"	२०	५–४०	६–२८	९–०२	१०–४३	१२–२३	१५–४५	७–०६
जून	३	५–३८	६–२६	९–०२	१०–४४	१२–२५	१५–४८	७–१२
"	१८	५–३६	६–२४	९–०२	१०–४५	१२–२७	१५–५२	७–१८
जुलाई	३	५–४२	६–३०	९–०६	१०–४९	१२–३१	१५–५५	७–२०
"	१८	५–४८	६–३६	९–११	१०–५३	१२–३३	१५–५६	७–१८
अगस्त	२	५–५५	६–४३	९–१४	१०–५४	१२–३३	१५–५२	७–११
"	१६	६–०३	६–५१	९–१८	१०–५५	१२–३२	१५–४७	७–०१
सेप्टे	१	६–०९	६–५७	९–१८	१०–५२	१२–२६	१५–३५	६–४३
"	१४	६–१७	७–०५	९–२०	१०–५२	१२–२३	१५–२६	६–२९
अक्टो	१	६–२३	७–११	९–२०	१०–४९	१२–१७	१५–१४	६–०९
"	१४	६–३१	७–१९	९–२२	१०–४७	१२–१३	१५–०४	५–५५
"	३०	६–४०	७–२८	९–२६	१०–४९	१२–१२	१४–५८	५–४४
न.	१२	६–४९	७–३७	९–३०	१०–५१	१२–११	१४–५२	५–३३
"	२८	७–००	७–४८	९–३७	१०–५६	१२–१४	१४–४१	५–२८
दिस.	१२	७–०९	७–५७	९–४५	११–०३	१२–२०	१४–५६	५–३१
"	२८	७–२०	८–०८	९–५४	११–११	१२–२९	१५–०४	५–३७
जन	११	७–२०	८–०८	९–५७	११–१५	१२–३४	१५–१०	५–४७
"	२६	७–१९	८–०७	९–५९	११–१९	१२–४०	१५–३०	६–००
फर	१०	७–१३	८–०१	९–५७	११–१९	१२–४२	१५–२६	६–०१
"	२४	७–०१	७–४९	९–५१	११–१६	१२–४०	१५–३०	६–१९
मार्च	१०	६–४८	७–३६	९–४३	११–११	१२–३८	१५–३३	६–२८

नोट :—"इस समय के पाच मिनिट पश्चात् पच्चक्खाण पारना चाहिये।"

पच्चक्खाण कोष्टक

(बीकानेर)

मास	तारीख	सूर्योदय	नोकारसी	पोरिसी	साढ पोरिसी	पूरीमट्ट	अवट्ट	सूर्यास्त
		घ मि	घ मि.	घ. मि	घ मि	घ मि	घ मि	घ. मि
जन	१	७-२८	८-१६	१०-१०	११-३०	११-५१	३-३३	५-५२
,,	१६	७-३१	८-१९	१०-१३	११-३३	११-५४	३-३६	६-०१
फर	१	७-२६	८-१४	१०-२०	११-४१	०१-०१	३-५४	६-१५
,,	१६	७-१७	८-०५	१०-११	११-३२	१२-५२	३-४५	६-२५
मार्च	१	७-०५	७-५३	०९-५९	११-२६	१२-५३	३-४७	६-३३
,,	१६	६-५१	७-३९	०९-४५	११-१२	१२-३९	३-३३	६-४१
अप्रेल	१	६-३३	७-२१	०९-३३	११-०३	१२-३३	३-३३	६-५०
,,	१६	६-१९	७-०७	०९-१९	१०-४९	१२-१९	३-१९	६-५६
मई	१	६-०४	६-५२	०९-११	१०-४५	१२-१७	३-२४	७-०५
,,	१६	५-५५	६-४३	०९-०२	१०-३६	१२-३२	३-१५	७-१२
जून	१	५-४९	६-३७	०९-०२	१०-३९	१२-१४	३-२७	७-२०
,,	१६	५-४८	६-३६	०९-०१	१०-३८	१२-१३	३-२६	७-२६
जुलाई	१	५-५१	६-३९	०९-११	१०-५१	१२-३१	३-५१	७-२९
,,	१६	५-५८	६-४६	०९-१८	१०-५८	१२-३८	३-५८	७-२७
अगस्त	१	६-०५	६-५३	०९-१८	१०-५५	१२-३०	३-४३	७-२१
,,	१६	६-१३	७-०१	०९-२६	११-०३	१२-३८	३-५१	७-११
सेप्टे.	१	६-१९	७-०७	०९-२६	११-००	१२-३२	३-३९	६-५५
,,	१६	६-२४	७-१२	०९-३१	११-०५	१२-३७	३-४४	६-४०
अक्टो.	१	६-३३	७-२१	०९-३१	११-०३	१२-३३	३-३३	६-२२
,,	१६	६-४०	७-२८	०९-४७	११-१०	१२-४०	३-४०	६-०७
न.	१	६-४९	७-३७	०९-४३	११-१०	१२-३७	३-३१	५-५३
,,	१६	७-००	७-४८	०९-५४	११-२१	१२-४८	३-४२	५-४४
दिस.	१	७-११	७-५९	१०-०१	११-२६	१२-४६	३-३६	५-४२
,,	१६	७-२१	८-०९	१०-११	११-३६	१२-५६	३-४६	५-४३

नोट :—"इस समय के पाच मिनिट पश्चात् पच्चक्खाण पारना चाहिये ।'

पच्चक्खाण कोष्टक

(जोधपुर)

मास	तारीख	सूर्योदय घ मि	नोकारसी घ मि	पोरिसी घ मि	साढ पोरिसी घ मि	पूरीमड्ढ घ मि	अवड्ढ घ मि	सूर्यास्त घ मि
जन	१	७–२२	८–१०	१०–०३	११–२४	१२–४४	३–२५	६–०५
”	१६	७–२५	८–१३	१०–०८	११–२९	१२–५०	३–३३	६–१५
फर.	१	७–२१	८–०२	१०–०८	११–३१	१२–५४	३–४१	६–२७
”	१६	७–१३	८–०१	१०–०४	११–३०	१२–५५	३–४६	६–३६
मार्च	१	७–०४	७–५२	९–५९	११–२६	१२–५३	३–४८	६–४२
”	१६	६–५०	७–३८	९–५०	११–२०	१२–४९	३–४९	६–४८
अप्रेल	१	६–३४	७–२२	९–३९	११–१२	१२–४४	३–४९	६–५४
”	१६	६–२०	७–०८	९–३०	११–०५	१२–४०	३–५०	७–००
मई	१	६–०८	६–५६	९–२३	११–००	१२–३७	३–५२	७–०६
”	१६	६–००	६–४८	९–१९	१०–५८	१२–३७	३–५५	७–१३
जून	१	५–५५	६–४३	९–१७	१०–५८	१२–३८	३–५९	७–२०
”	१६	५–५४	६–४२	९–१७	१०–५९	१२–४०	४–०३	७–३६
जुलाई	१	५–५८	६–४३	९–२१	११–०३	१२–४४	४–०७	७–२९
”	१६	६–०४	६–५२	९–२५	११–०६	१२–४६	४–०७	७–२७
अगस्त	१	६–११	६–५२	९–२९	११–०८	१२–४६	४–०४	७–२१
”	१६	६–१७	७–०५	९–३१	११–०८	१२–४४	३–५८	७–११
सेप्टे.	१	६–२३	७–११	९–३२	११–०६	१२–४०	३–४९	६–५७
”	१६	६–२७	७–१५	९–३१	११–०३	१२–३५	३–३९	६–४२
अक्टो	१	६–३३	७–२१	९–३२	११–०१	१२–३०	३–२९	६–२७
”	१६	६–३८	७–२६	९–३१	१०–५९	१२–२६	३–२०	६–१३
न.	१	६–४६	७–३४	९–३५	११–००	१२–२४	३–१३	६–०१
”	१६	६–५५	७–४३	९–४०	११–०३	१२–२५	३–१०	५–५४
दिस	१	७–०७	७–५३	९–४७	११–०८	१२–२९	३–११	५–५२
”	१६	७–१५	८–०३	९–५६	११–१६	१२–२६	३–१६	५–५६

नोट .—“इस समय के पाच मिनिट पश्चात् पच्चक्खाण पारना चाहिए ।”

पच्चक्खाण कोष्टक

(उदयपुर)

मास	तारीख	सूर्योदय	नोकारसी	पोरिसी	साढ पोरिसी	पूरीमट्ट	अवट्ट	सूर्यास्त
		घ. मि.	घ मि.	घ मि	घ मि	घ. मि	घ मि	घ मि.
जन.	१	७-२०	८-०८	१०-०२	११-२२	१२-४३	३-२५	५-५[illegible]
,,	१६	७-२३	८-११	१०-०५	११-२३	१२-४६	३-२८	६-०६
फर	१	७-१८	८-०६	१०-०८	११-३३	१२-५६	३-३८	६-१८
,,	१६	७-११	७-५९	१०-०१	११-२६	१२-४६	३-३१	६-२७
मार्च	१	६-५९	७-४७	९-५३	११-२०	१२-४७	३-४१	६-३६
,,	१६	६-४६	७-३४	९-४०	११-०७	१२-३४	३-२८	६-४३
अप्रेल	१	६-२८	७-१६	९-२८	१०-५८	१२-४८	३-२८	६-५१
,,	१६	६-१६	७-०४	९-१६	१०-४६	१२-१६	३-१६	६-५६
मई	१	६-०१	६-४९	९-०८	१०-४२	१२-१४	३-२१	७-०४
,,	१६	५-५२	६-४०	८-५९	१०-३३	१२-०५	२-५२	७-१२
जून	१	५-४६	६-३४	८-५९	१०-३६	१२-११	३-२४	७-१[illegible]
,,	१६	५-४३	६-३१	८-५६	१०-३३	१२-०८	३-२१	७-२[illegible]
जुलाई	१	५-४९	६-३७	९-०९	१०-४९	१२-२९	३-४९	७-२[illegible]
,,	१६	५-५५	६-४३	९-१५	१०-५५	१२-३५	३-५५	७-२[illegible]
अगस्त	१	६-०६	६-५१	९-१६	१०-५३	१२-२८	३-४१	७-१[illegible]
,,	१६	६-१०	६-५८	९-२३	१०-५०	१२-३५	३-४८	७-०[illegible]
सेप्टे	१	६-१७	७-०५	९-२४	१०-५८	१२-३०	३-३७	६-५[illegible]
,,	१६	६-२२	७-१०	९-२९	११-०३	१२-३५	३-४२	६-३[illegible]
अक्टो.	१	६-२९	७-१७	९-२९	१०-५९	१२-२९	३-२९	६-२[illegible]
,,	१६	६-३३	७-२१	९-३३	११-०३	१२-३३	३-३३	६-०[illegible]
न	१	६-४३	७-३१	९-३७	११-०४	१२-२८	३-२५	५-५[illegible]
,,	१६	६-५२	७-४०	९-४६	११-१३	१२-४८	३-३४	५-४[illegible]
दिस.	१	७-०४	७-५२	९-५४	११-१९	१२-३९	३-२९	५-४[illegible]
,,	१६	७-१३	८-०१	९-५३	११-२८	१२-४८	३-३८	५-४[illegible]

नोट .—"इस समय के पाच मिनिट पश्चात् पच्चक्खाण पारना चाहिये।"

पच्चक्खाण कोष्टक

(रतलाम)

मास	तारीख	सूर्योदय	नोकारसी	पोरिसी	साढ पोरिसी	पूरीमड्ड	अवड्ड	सूर्यास्त
		घ मि	घ मि	घ मि	घ मि.	घ मि.	घ मि	घ मि.
जन.	१	७–१५	८–०३	९–५४	११–१४	१२–३४	३–१३	५–५२
,,	१६	७–१९	८–०७	९–५९	११–२१	१२–४१	३–२२	६–०२
फर	१	७–१४	८–०२	९–५९	११–२२	१२–४४	३–२९	६–१३
,,	१६	७–११	७–५९	९–५९	११–२३	१२–४७	३–३५	६–२३
मार्च	१	६–५४	७–४२	९–४८	११–१५	१२–४३	३–३७	६–३१
,,	१६	६–४३	७–३१	९–४१	११–१०	१२–४०	३–३८	६–३६
अप्रेल	१	६–२५	७–१३	९–३०	११–०२	१२–३४	३–३९	६–४३
,,	१६	६–१५,	७–०३	९–२३	१०–५७	१२–३२	३–४०	६–४८
मई	१	६–००	६–४८	९–१४	१०–५१	१२–२७	३–४१	६–५४
,,	१६	५–५४	६–४२	९–११	१०–५०	१२–२८	३–४४	७–०१
जून	१	५–४७	६–३५	९–०७	१०–४७	१२–२८	३–४८	७–०८
,,	१६	५–४९	६–३७	९–११	१०–५१	१२–३२	३–५४	७–१५
जुलाई	१	५–५२	६–४०	९–१४	१०–५४	१२–३५	३–५७	७–१९
,,	१६	५–५७	६–४५	९–१७	१०–५७	१२–३८	३–५८	७–१८
अगस्त	१	६–०४	६–५२	९–२१	१०–५९	१२–३८	३–५५	७–११
,,	१६	६–०९	६–५७	९–२१	१०–५७	१२–३३	३–४५	६–५७
सेप्टे.	१	६–१६	७–०५	९–२४	१०–५८	१२–३३	३–४१	६–४९
,,	१६	६–२०	७–०८	९–२३	१०–५४	१२–२५	३–२८	६–३०
अक्टो	१	६–२४,	७–१२	९–२२	१०–५१	१२–१९	३–१८	६–१६
,,	१६	६–३०	७–१८	९–२३	१०–५०	१२–१६	३–०९	६–०२
न.	१	६–३८	७–२६	९–२६	१०–५०	१२–१३	३–०१	५–४८
,,	१६	६–४७	७–३५	९–३१	१०–५३	१२–१६	२–५९	५–४४
दिस.	१	६–५८	७–४६	९–३९	१०–५९	१२–२०	३–०१	५–४१
,,	१६	७–०६	७–५४	९–४६	११–०६	१२–२६	३–०६	५–४५

नोट :—"इस समय के पाच मिनिट पश्चात् पच्चक्खाण पारना चाहिये।"

पच्चक्खाण कोष्टक

(भोपाल)

मास	तारीख	सूर्योदय	नोकारसी	पोरिसी	साढ पोरिसी	पूरीमट्ट	अवड्ढ	सूर्यास्त
		घ मि.	घ. मि	घ. मि	घ. मि.	घ. मि	घ. मि.	घ. मि.
जन	१	७–०५	७–५७	९–४४	११–०४	१२–२४	३–०३	५–४२
,,	१६	७–०९	७–५३	९–४९	११–११	१२–३१	३–१२	५–५२
फर.	१	७–०४	७–५८	९–४९	११–१२	१२–३४	३–१९	६–०३
,,	१६	७–०१	७–४९	९–४९	११–१३	१२–३७	३–२५	६–१३
मार्च	१	६–४४	७–३२	९–३८	११–०५	१२–३३	३–२७	६–२१
,,	१६	६–३३	७–२१	९–३१	११–००	१२–३०	३–२८	६–२६
अप्रेल	१	६–१५	७–०३	९–२०	१०–५२	१२–२४	३–१९	६–३३
,,	१६	६–०५	६–५७	९–१३	१०–४७	१२–२२	३–३०	६–३८
मई	१	५–५०	६–३८	९–०४	१०–४१	१२–१७	३–३१	६–४४
,,	१६	५–४४	६–३२	९–०१	१०–४०	१२–१८	३–३४	६–५१
जून	१	५–३७	६–२५	८–५७	१०–३७	१२–१८	३–३८	६–५८
,,	१६	५–३९	६–२७	९–०१	१०–४१	१२–२२	३–४४	७–०५
जुलाई	१	५–४२	६–३०	९–०४	१०–४४	१२–२५	३–४७	७–०९
,,	१६	५–४७	६–३५	९–०७	१०–४७	१२–२८	३–४८	७–०८
अगस्त	१	५–५४	६–४२	९–११	१०–४९	१२–२८	३–४५	७–०१
,,	१६	५–५९	६–४७	९–११	१०–४७	१२–२३	३–३५	६–४७
सेप्टे	१	६–०६	६–५५	९–१४	१०–४८	१२–२३	३–३१	६–३९
,,	१६	६–१०	६–५८	९–१३	१०–४४	१२–१५	३–१८	६–२०
अक्टो	१	६–१४	७–०२	९–१२	१०–४१	१२–०९	३–०८	६–०६
,,	१६	६–२०	७–०८	९–१३	१०–४०	१२–०६	२–५९	५–५२
न	१	६–२८	७–१६	९–१६	१०–४०	१२–०३	२–४९	५–३८
,,	१६	६–३७	७–२५	९–२१	१०–४३	१२–०६	२–४९	५–३४
दिस.	१	६–४८	७–३६	९–२९	१०–४९	१२–१०	२–५९	५–३१
,,	१६	६–५६	७–४४	९–३६	१०–५६	१२–१६	२–५६	५–३५

नोट :—"इस समय के पाच मिनिट पश्चात् पच्चक्खाण पारना चाहिये ।"

पच्चक्खाण कोष्टक

(जबलपुर)

मास	तारीख	सूर्योदय घ मि	नोकारसी घ. मि	पोरिसी घ मि	साढ़ पोरिसी घ मि	पूरीमड्ढ घ मि.	अवड्ढ घ मि	सूर्यास्त घ मि
जन.	१	६–४१	७–२९	९–२३	१०–४३	१२–०४	२–४६	५–१९
,,	१६	६–३८	७–२६	९–२०	१०–४०	१२–०१	२–४३	५–२२
फर	१	६–३१	७–१९	९–२१	१०–४६	१२–०६	२–५९	५–२९
,,	१६	६–२२	७–१०	९–१२	१०–३७	११–५७	२–५०	५–३८
मार्च	१	६–१४	७–०२	९–०८	१०–३५	१२–०२	२–५६	५–४६
,,	१६	६–०३	६–५१	८–५७	१०–२४	११–५१	२–४५	५–५७
अप्रेल	१	५–५६	६–४४	८–५६	१०–२६	११–५६	२–५६	६–०८
,,	१६	५–४२	६–३०	८–४२	१०–१२	११–४२	२–४२	६–१८
मई	१	५–३४	६–२२	८–४१	१०–१५	११–४७	२–५४	६–२६
,,	१६	५–२६	६–१५	८–३३	१०–०८	११–४०	२–४६	६–३४
जून	१	५–२१	६–०९	८–३४	१०–११	११–४६	२–५९	६–३९
,,	१६	५–१८	६–०६	८–३१	१०–०८	११–४३	२–५६	६–४२
जुलाई	१	५–१८	६–०६	८–३८	१०–१८	११–५८	३–१८	६–४२
,,	१६	५–२१	६–०९	८–४१	१०–२१	१२–०१	३–२१	६–३९
अगस्त	१	५–२८	६–१६	८–४१	१०–१८	११–५३	३–०६	६–३२
,,	१६	५–३५	६–२३	८–४८	१०–२५	१२–००	३–१३	६–२५
सेप्टे	१	५–४५	६–३३	८–५२	१०–२६	११–५८	३–०५	६–१५
,,	१६	५–५५	६–४३	९–०२	१०–३६	१२–०८	३–१५	६–०५
अक्टो	१	६–०५	६–५३	९–०५	१०–३५	१२–०५	३–०५	५–५५
,,	१६	६–१५	७–०३	९–१५	१०–४५	१२–१५	३–१५	५–४५
न	१	६–२५	७–१३	९–१९	१०–४६	१२–१३	३–०७	५–३५
,,	१६	६–३३	७–२१	९–२७	१०–५४	१२–२१	३–१५	५–२७
दिस	१	६–३९	७–२७	९–२९	१०–५४	१२–१४	३–०४	५–२१
,,	१६	६–४२	७–३०	९–३२	१०–५७	१२–१७	३–०७	५–१८

नोट :—"इस समय के पाच मिनिट पश्चात् पच्चक्खाण पारना चाहिये।"

पच्चक्खाण कोष्टक

(इन्दौर)

मास	तारिख	सूर्योदय	नोकारसी	पोरिसी	साढ पोरिसी	पूरीमड्ढ	अवड्ढ	सूर्यास्त
		घ मि.	घ. मि.	घ. मि	घ. मि	घ मि	घ मि.	घ. मि.
जन.	१	७–११	७–५९	९–५३	११–१३	१२–३४	३–१६	५–५१
,,	१६	७–१४	८–०२	९–५६	११–१६	१२–३७	३–१९	५–०२
फर	१	७–१०	७–५८	१०–००	११–२५	१२–४५	३–३८	६–१२
,,	१६	७–००	७–४८	९–५०	११–१५	१२–३५	३–२८	६–२०
मार्च	१	६–५१	७–३९	९–४५	११–१२	१२–३९	३–३३	६–२८
,,	१६	६–४०	७–२८	९–३४	११–०१	१२–२८	३–२२	६–३३
अप्रेल	१	६–२६	७–१४	९–२६	१०–५६	१२–२६	३–२६	६–३९
,,	१६	६–०९	६–५७	९–०९	१०–३९	१२–०९	३–०९	६–४५
मई	१	५–५८	६–४६	९–०५	१०–३९	१२–११	३–१८	६–५०
,,	१६	५–५०	६–३८	८–५७	१०–३१	१२–०३	३–१०	६–५६
जून	१	५–४७	६–३५	९–००	१०–३७	१२–१२	३–२५	७–०१
,,	१६	५–४५	६–३३	८–५८	१०–३५	१२–१०	३–२३	७–०८
जुलाई	१	५–५१	६–३९	९–११	१०–५१	१२–३१	३–५१	७–११
,,	१६	५–५६	६–४४	९–१६	१०–५६	१२–३६	३–५६	७–१०
अगस्त	१	६–०२	६–५०	९–१५	१०–५२	१२–२७	३–४०	७–०५
,,	१६	६–०७	६–५५	९–२०	१०–५७	१२–३२	३–४५	६–५७
सेप्टे.	१	६–१३	७–०१	९–२०	१०–५४	१२–२६	३–३३	६–४०
,,	१६	६–१७	७–०५	९–२४	१०–५८	१२–३०	३–२७	६–२७
अक्टो	१	६–२२	७–१०	९–२२	१०–५२	१२–२२	३–२२	६–१३
,,	१६	६–२७	७–१५	९–२७	१०–५७	१२–२७	३–२७	५–५८
न.	१	६–३६	७–२४	९–३०	१०–५७	१२–२४	३–१८	५–४७
,,	१६	६–४५	७–३३	९–३९	११–०६	१२–३३	३–२७	५–३९
दिस.	१	६–५४	७–४२	९–४४	११–०९	१२–२९	३–१९	५–३९
,,	१६	७–०५	७–५३	९–५५	११–२०	१२–४०	३–३०	५–४२

नोट :—"इस समय के पाच मिनिट पश्चात् पच्चक्खाण पारना चाहिये।"

पच्चक्खारण कोष्टक

(उज्जैन)

मास	तारीख	सूर्योदय	नोकारसी	पोरिसी	साढ पोरिसी	पूरीमट्ट	अवट्ट	सूर्यास्त
		घ. मि	घ मि	घ मि	घ मि	घ. मि	घ मि	घ मि
जन.	१	७–१५	८–०३	९–५४	११–१२	१२–३१	३–०९	५–४६
,,	१६	७–१७	८–०५	९–५६	११–१९	१२–३८	३–१९	६–००
फर	१	७–१०	८–०३	९–५९	११–१९	१२–४०	३–२१	६–०९
,,	१६	७–०८	७–५५	९–५६	११–२०	१२–४४	३–३१	६–२०
मार्च	१	६–५०	७–३९	९–४४	११–११	१२–४०	३–३६	६–२९
,,	१६	६–३८	७–२६	९–३७	११–०७	१२–३७	३–३६	६–३५
अप्रेल	१	६–१८	७–०६	९–२५	१०–५९	१२–२८	३–३९	६–४५
,,	१६	६–०६	६–५४	९–१९	१०–५३	१२–२६	३–४०	६–५१
मई	१	५–५०	६–३९	९–०७	१०–४६	१२–२५	३–४२	६–५९
,,	१६	५–४२	६–३०	९–०३	१०–४४	१२–२७	३–४६	७–०७
जून	१	५–३५	६–२३	९–००	१०–४३	१२–२५	३–५०	७–१५
,,	१६	५–३४	६–२२	९–०१	१०–४४	१२–३२	३–५४	७–२०
जुलाई	१	५–३९	६–२६	९–०५	१०–४८	१२–३४	३–५९	७–२४
,,	१६	५ ४४	६–३२	९–०९	१०–४६	१२–३४	३–५९	७–२४
अगस्त	१	५–५५	६–४०	९–१३	१०–५४	१२–२४	३–५५	७–१६
,,	१६	६–००	६–४८	९–१६	१०–५४	१२–३१	३–४७	७–०२
सेप्टे	१	६–०७	६–५५	९–१८	१०–५४	१२–३०	३–४१	६–५२
,,	१६	६–१३	७–०१	९–१८	१०–५०	१२–२२	३–२६	६–३२
अक्टो.	१	६–२०	७–०८	९–१८	१०–४४	१२–१६	३–१२	६–११
,,	१६	६–२७	७–१५	९–२१	१०–४७	१२–१४	३–०७	६–००
न.	१	६–३७	७–२५	९–२३	१०–४९	१२–११	२–५७	५–४५
,,	१६	६–४५	७–३३	९–२८	१०–५०	१२–२२	२–५६	५–३९
दिस.	१	७–०९	७–४७	९–३९	१०–५७	१२–१०	२–५६	५–३४
,,	१६	७–०७	७–५५	९–४५	११–०५	१२–२२	३–००	५–३७

नोट :—"इस समय के पाच मिनिट पश्चात् पच्चक्खाण पारना चाहिये ।"

पच्चक्खाण कोष्टक

(रायपुर)

मास	तारीख	सूर्योदय	नोकारसी	पोरिसी	साढ पोरिसी	पूरीमट्ट	अवड्ढ	सूर्यास्त
		घ मि.	घ. मि	घ मि.	घ. मि	घ मि	घ मि	घ मि.
जन.	१	६–३७	७–२५	९–१९	१०–३९	१२–००	२–४२	५–२३
,,	१६	६–३४	७–२२	९–१६	१०–३६	११–५७	२–३९	५–२६
फर.	१	६–२७	७–१५	९–१७	१०–४२	१२–०२	२–५५	५–३३
,,	१६	६–२०	७–०८	९–१०	१०–३५	११–५५	२–४८	५–४०
मार्च	१	६–१२	७–००	९–०६	१०–३३	१२–००	२–५४	५–४८
,,	१६	६–०३	६–५१	८–५७	१०–२४	११–५१	२–४५	५–५०
अप्रेल	१	५–४१	६–२९	८–४१	१०–११	११–४१	२–४१	६–१९
,,	१६	५–४४	६–३२	८–४४	१०–१४	११–४४	२–४४	६–१६
मई	१	५–३६	६–२४	८–४३	१०–१७	११–४९	२–५६	६–२४
,,	१६	५–२९	६–१७	८–३६	१०–१०	११–४२	२–४९	६–३१
जून	१	५–२५	६–१३	८–३८	१०–१५	११–५०	३–०३	६–३५
,,	१६	५–२२	६–१०	८–३५	१०–१२	११–४७	३–००	६–३८
जुलाई	१	५–२३	६–११	८–४३	१०–२३	१२–०३	३–२३	६–३७
,,	१६	५–२६	६–१४	८–४६	१०–२६	१२–०६	३–२६	६–३४
अगस्त	१	५–३१	६–१९	८–४४	१०–२१	११–५६	३–०९	६–२९
,,	१६	५–३८	६–२६	८–५१	१०–२८	१२–०३	३–१६	६–२२
सेप्टे.	१	५–४७	६–३५	८–५४	१०–३८	१२–००	३–०७	६–१३
,,	१६	५–५६	६–४४	९–०३	१०–३४	१२–०९	३–१६	६–०४
अक्टो	१	६–०४	६–५२	९–०४	१०–३७	१२–०४	३–०४	५–५६
,,	१६	६–१४	७–०२	९–१४	१०–४४	१२–१४	३–१४	५–४६
न.	१	६–२३	५–११	९–१७	१०–४४	१२–११	३–०५	५–३७
,,	१६	६–३०	७–१८	९–२४	१०–५०	१२–१८	३–१२	५–३०
दिस.	१	६–३५	७–२३	९–२५	१०–५०	१२–१०	३–००	५–२५
,,	१६	६–३८	५–२६	९–२८	१०–५३	१२–१३	३–०३	५–२२

नोट :—"इस समय के पाच मिनिट पश्चात् पच्चक्खाण पारना चाहिये ।"

पच्चक्खाण कोष्टक

(ग्वालियर)

मास	तारीख	सूर्योदय घ मि	नोकारसी घ. मि	पोरिसी घ मि	साढ पोरिसी घ मि.	पूरीमड्ढ घ मि	अवड्ढ घ मि	सूर्यास्त घ. मि
जन.	१	६–४१	७–३७	९–३१	१०–५१	१२–१२	२–५४	५–११
,,	१६	६–४४	७–३२	९–२६	१०–४६	१२–०७	२–४९	५–१६
फर.	१	६–२६	७–१४	९–१६	१०–४१	१२–०१	२–५४	५–३४
,,	१६	६–१७	७–०५	९–०७	१०–३२	११–४२	२–४५	५–४४
मार्च	१	६–१७	७–०५	९–११	१०–३८	१२–०५	२–५९	५–५५
,,	१६	६–०५	६–५३	८–५९	१०–२६	११–५३	२–४७	६–०९
अप्रेल	१	५–५१	६–३९	८–५१	१०–२१	११–५१	२–५१	६–२१
,,	१६	५–३९	६–२७	८–३९	१०–०९	११–३९	२–३९	६–३१
मई	१	५–२९	६–१७	८–३६	१०–१०	११–४२	२–४९	६–४०
,,	१६	५–२०	६–०८	८–२७	१०–०१	११–३३	२–४०	६–४६
जून	१	५–१४	६–०२	८–२७	१०–०४	११–३९	२–५२	६–५०
,,	१६	५–१०	५–५८	८–२३	१०–००	११–३५	२–४८	६–४९
जुलाई	१	५–११	५–५९	८–३१	१०–११	११–५१	३–११	६–४५
,,	१६	५–१५	६–०३	८–३५	१०–१५	११–५५	३–१५	६–३८
अगस्त	१	५–२२	६–१०	८–३५	१०–१२	११–४७	३–००	६–२९
,,	१६	५–३१	६–१९	८–४४	१०–२१	११–५६	३–०९	६–१७
सेप्टे	१	५–४३	६–३१	८–५०	१०–२४	११–५६	३–०३	६–०६
,,	१६	५–५४	६–४२	९–०१	१०–३५	१२–०७	३–१४	५–५४
अक्टो	१	६–०६	६–५४	९–०६	१०–३६	१२–०६	३–०६	५–४२
,,	१६	६–१८	७–०६	९–१८	१०–४८	१२–१८	३–१८	५–३१
न.	१	६–२९	७–१७	९–२३	१०–५०	१२–१७	३–११	५–२१
,,	१६	६–३९	७–२७	९–३३	११–००	१२–२७	३–२१	५–१५
दिस.	१	६–४५	७–३३	९–३५	११–००	१२–२०	३–१०	५–१५
,,	१६	६–५०	७–३८	९–४०	११–०५	१२–२५	३–१५	५–१०

नोट :—"इस समय के पाच मिनिट पश्चात् पच्चक्खाण पारना चाहिये ।"

पच्चक्खाण कोष्टक

[(झाड़ी) जयपुर, (उड़ीसा)]

मास	तारीख	सूर्योदय घ मि	नोकारसी घ मि	पोरिसी घ मि.	साढ़ पोरिसी घ मि	पूरीमड्ट घ. मि.	अवड्ट घ. मि	सूर्यास्त घ. मि.
जन	१	६-३७	७-२५	९-१९	१०-३९	१२-००	२-४२	५-२४
"	१६	६-३३	७-२२	९-१५	१०-३५	११-५६	२-३८	५-२७
फर.	१	६-२७	७-१५	९-१७	१०-४२	१२-०२	२-५५	५-३२
"	१६	६-२०	७-०८	९-१०	१०-३५	११-५५	२-४८	५-४०
मार्च	१	६-१२	७-०१	९-०६	१०-३३	१२-००	२-५४	५-४८
"	१६	६-०४	६-५२	८-५८	१०-२५	११-५२	२-४६	५-५६
अप्रेल	१	५-५५	६-४३	८-५५	१०-२५	११-५५	२-५५	६-०५
"	१६	५-४६	६-३४	८-४६	१०-१६	११-४६	२-४६	६-१४
मई	१	५-३८	६-२६	८-४५	१०-१९	११-५१	२-५८	६-२२
"	१६	५-३१	६-१९	८-३८	१०-१२	११-४४	२-५१	६-२९
जून	१	५-२६	६-१४	८-३९	१०-१६	११-५१	३-०४	६-३४
"	१६	५-२३	६-११	८-३६	१०-१३	११-४८	३-०१	६-३७
जुलाई	१	५-२३	६-११	८-४३	१०-२३	१२-०३	३-२३	६-३७
"	१६	५-२५	६-१३	८-४५	१०-२५	१२-०५	३-२५	६-३४
अगस्त	१	५-३२	६-२०	८-४५	१०-२२	११-५७	३-१०	६-२८
"	१६	५-३८	६-२६	८-५१	१०-२८	१२-०३	३-१६	६-२२
सेप्टे	१	५-४७	६-३५	८-५४	१०-२८	१२-००	३-०७	६-१३
"	१६	५-५५	६-४३	९-०२	१०-३६	१२-१८	३-१५	६-०५
अक्टो	१	६-०४	६-५१	९-०४	१०-३४	१२-०४	३-०४	५-५६
"	१६	६-१२	६-३६	९-१२	१०-४२	१२-१२	३-१२	५-४८
न	१	६-२२	७-१०	९-१६	१०-४३	१२-१०	३-०४	५-३८
"	१६	६-२८	७-१६	९-२२	१०-४९	१२-१६	३-१०	५-३२
दिस	१	६-३७	७-२५	९-२७	१०-५२	१२-१२	३-०२	५-२३
"	१६	६-३७	७-२५	९-२७	१०-५२	१२-१२	३-०२	५-२३

नोट.—"इस समय के पाच मिनिट पश्चात् पच्चक्खाण पारना चाहिये।"

पच्चक्खाण कोष्टक

(अजमेर)

मास	तारीख	सूर्योदय	नोकारसी	पोरिसी	साढ पोरिसी	पूरीमड्ढ	अवड्ढ	सूर्यास्त
		घ मि.	घ मि	घ मि	घ मि	घ मि	घ मि	घ मि
मार्च	२०	६–३५	७–२३	९–२७	११–०८	१२–३९	३–४१	६–४२
,,	२६	६–२९	७–१७	९–३३	११–०५	१२–३७	३–४१	६–४५
अप्रेल	१	६–२२	७–१०	९–२९	११–०२	१२–३६	३–४३	६–४९
,,	७	६–१५	७–०३	९–२४	१०–५९	१२–३४	३–४३	६–५२
,,	१३	६–०९	६–५७	९–२०	१०–५६	१२–३२	३–४३	६–५४
,,	१९	६–०३	६–५१	९–१७	१०–५४	१२–३१	३–४४	६–५८
,,	२५	५–५८	६–४६	९–१४	१०–५२	१२–३०	३–४६	७–०१
मई	१	५–५४	६–४२	९–११	१०–५०	१२–२९	३–४६	७–०३
,,	७	५–४९	६–३७	९–०९	१०–४९	१२–२८	३–४८	७–०७
,,	१३	५–४५	६–३३	९–०६	१०–४७	१२–२८	३–४९	७–१०
,,	१९	५–४३	६–३१	९–०६	१०–४७	१२–२८	३–५१	७–१३
,,	२५	५–४१	६–२९	९–०५	१०–४७	१२–२९	३–५३	७–१६
,,	३१	५–३९	६–२७	९–०४	१०–४७	१२–२९	३–५४	७–१९
जून	६	५–३८	६–२६	९–०४	१०–४७	१२–३०	३–५६	७–२२
,,	१२	५–३८	६–२६	९–०५	१०–४८	१२–३१	३–५८	७–२४
,,	१८	५–३९	६–२७	९–०६	१०–४९	१२–३३	३–५९	७–२६
,,	२४	५–४०	६–२८	९–०७	१०–५१	१२–३४	४–०१	७–२८
,,	३०	५–४२	६–३०	९–०९	१०–५२	१२–३५	४–०२	७–२८
जुलाई	६	५–४४	६–३२	९–१०	१०–५३	१२–३६	४–०२	७–२८
,,	१२	५–४७	६–३५	९–१२	१०–५५	१२–३७	४–०२	७–२७
,,	१८	५–५०	६–३८	९–१४	१०–५६	१२–३८	४–०२	७–२५
,,	२४	५–५३	६–४१	९–१६	१०–५७	१२–३८	४–०१	७–२३
,,	३०	५–५६	६–४४	९–१७	१०–५८	१२–३८	३–५९	७–२०
अगस्त	५	५–५९	६–४७	९–१८	१०–५८	१२–३८	३–५७	७–१६
,,	११	६–०२	६–५०	९–१९	१०–५८	१२–३७	३–५४	७–११

मास	तारीख	सूर्योदय घ. मि.	नोकारसी घ मि.	पोरसी घ. मि.	साढ़ पोरिसी घ. मि.	पूरीमट्ट घ. मि.	अवड्ट घ मि	सूर्यास्त घ. मि.
सेप्टे	१७	६–०४	६–५२	९–२०	१०–५८	१२–३५	३–५१	७–०६
,,	२३	६–०७	६–५५	९–२१	१०–५७	१२–३४	३–४७	७–००
,,	२९	६–१०	६–५८	९–२१	१०–५७	१२–३३	३–४४	६–५५
,,	४	६–१२	७–००	९–२२	१०–५६	१२–३१	३–४०	६–४९
,,	१०	६–१५	७–०३	९–२२	१०–५५	१२–२९	३–३६	६–४२
,,	१६	६–१७	७–०५	९–२२	१०–५४	१२–२६	३–३०	६–३६
,,	२२	६–१९	७–०७	९–२२	१०–५३	१२–२४	३–२७	६–२९
,,	२२	६–१९	७–०७	९–२२	१०–५३	१२–२४	३–२७	६–२९
,,	२८	६–२२	७–१०	९–२२	१०–५२	१२–२२	३–२२	६–२१
अक्टो	३	६–२५	७–१३	९–२३	१०–४९	१२–२१	३–१७	६–१६
,,	९	६–२८	७–१६	९–२३	१०–५१	१२–१९	३–१४	६–०९
,,	१५	६–३१	७–१९	९–२५	१०–५१	१२–१८	३–११	६–०४
,,	२१	६–३४	७–२२	९–२५	१०–५१	१२–१६	३–०७	५–५८
,,	२७	६–३७	७–२५	९–२६	१०–५१	१२–१५	३–०४	५–५३
न	२	६–४१	७–२९	९–२८	१०–५२	१२–१५	३–०२	५–४९
,,	८	६–४५	७–३३	९–३०	१०–५३	१२–१५	३–००	५–४५
,,	१४	६–४९	७–३७	९–३२	१०–५४	१२–१६	३–००	५–४२
,,	२०	६–५४	७–४२	९–३६	१०–५७	१२–१७	३–५९	५–४०
,,	२६	६–५८	७–४६	९–३९	१०–५९	१२–१९	३–५९	५–३९
,,	२	७–०३	७–५१	९–४२	११–०१	१२–२१	३–००	५–३८
दिस.	८	७–०७	७–५५	९–४५	११–०४	१२–२३	३–०१	५–३९
,,	१४	७–११	७–५९	९–४९	११–०८	१२–२६	३–०४	५–४१
,,	२०	७–१४	८–०२	९–५२	११–११	१२–२९	३–०७	५–४३
,,	२६	७–१७	८–०५	१०–५५	११–१४	१२–३२	३–१०	५–४६
,,	१	७–१९	८–०७	१०–५७	११–१६	१२–३५	३–१३	५–५०
जन	२	७–२१	८–०९	१०–००	११–१९	१२–३८	३–१७	५–५४
,,	१३	७–२१	८–०९	१०–०१	११–२१	१२–४०	३–२०	५–५९
,,	१६	७–२०	८–०९	१०–०१	११–२२	१२–४२	३–२३	६–०४
,,	२५	७–१९	८–०७	१०–०१	११–२२	१२–४४	३–२६	६–०८
,,	३१	७–१६	८–०४	१०–००	११–२२	१२–४५	३–२९	६–१३

मास	तारीख	सूर्योदय घ मि	नोकारसी घ मि	पोरसी घ मि	साढ पोरिसी घ मि.	पूरीमट्ट घ मि.	अवट्ट घ. मि.	सूर्यास्त घ. मि.
फर.	६	७–१४	७–०२	०९–००	११–२३	१२–४६	३–३२	६–१८
,,	१२	७–०९	७–५७	०९–५७	११–२१	१२–४६	३–३४	६–२२
,,	१८	६–०४	७–५२	०९–५४	११–१९	१२–४५	३–३५	६–२५
,,	२४	६–५९	७–४७	०९–५२	११–१९	१२–४४	३–३७	६–२९
,,	२	६–५४	७–४२	०९–४८	११–१५	१२–४४	३–३८	६–३३
मार्च	८	६–४८	७–३६	०९–४५	११–१४	१२–४२	३–३९	६–३६
,,	१४	६–४२	७–३०	०९–४१	११–११	१२–४१	३–४०	६–३९
,,	२०	६–३५	७–२३	०९–३७	११–०८	१२–३९	३–४१	६–४२

नोट .—"इस समय के पाच मिनिट पश्चात् पच्चक्खाण पारना चाहिए।"

पच्चक्खाण कोष्टक

(अम्बाला)

मास	तारिख	सूर्योदय	नोकारसी	पोरिसी	साढ पोरिसी	पूरीमड्ढ	सूर्यास्त
		घ मि	घ मि	घ. मि	घ मि	घ मि	घ मि
जन	१	७-२६	८-१४	९-५९	११-१४	१२-३१	१७-३५
„	१६	७-२७	८-१५	१०-०२	११-२०	१२-३७	१७-४६
फर	१	७-२१	८-०९	१०-०१	११-२१	१२-४०	१७-५९
„	१६	७-११	७-५९	९-५७	११-२०	१२-४३	१८-१२
मार्च	१	६-५८	७-४६	९-४९	११-१४	१२-४०	१८-२१
„	१६	६-४१	७-२९	९-४०	११-०९	१२-३८	१८-३४
अप्रैल	१	६-२३	७-११	९-२८	११-०२	१२-३४	१८-४५
„	१६	६-०४	६-५२	९-१६	१०-५२	१२-२८	१८-५१
मई	१	५-४७	६-३५	९-०६	१०-४५	१२-२५	१९-०३
„	१६	५-३४	६-२२	८-५९	१०-४२	१२-२३	१९-११
जून	१	५-२८	६-१६	८-५६	१०-४०	१२-२४	१९-१९
„	१६	५-२८	६-१६	८-५८	१०-४२	१२-२७	१९-२५
जुलाई	१	५-३०	६-१८	९-००	१०-४६	१२-३०	१९-३०
„	१६	५-३५	६-२३	९-०३	१०-४८	१२-३१	१९-२७
अगस्त	१	५-४६	६-३४	९-१०	१०-५२	१२-३३	१९-१९
„	१६	५-५६	६-४४	९-१४	१०-५३	१२-३१	१९-०६
सेप्टे	१	६-०५	६-५३	९-१६	१०-५२	१२-२७	१८-४९
„	१६	६-१२	७-००	९-१७	१०-५०	१२-२२	१८-३१
अक्टो	१	६-२२	७-१०	९-२०	१०-४९	१२-१७	१८-११
„	१६	६-३०	७-१८	९-२२	१०-४७	१२-१३	१७-५५
न	१	६-४३	७-३१	९-२७	१०-४९	१२-१०	१७-३७
„	१६	६-५५	७-४३	९-३४	१०-५३	१२-१२	१७-२८
दिस.	१	७-०७	७-५५	९-४१	१०-५८	१२-१५	१७-२३
„	१६	७-१८	८-०६	९-५०	११-०६	१२-२२	१७-२५

नोट :—दिये हुए समय से पांच मिनट ज्यादा गिनना ।

पच्चक्खाण कोष्टक

(आगरा)

मास	तारीख	सूर्योदय	नोकारसी	पोरिसी	साढ पोरिसी	पूरीमट्ट	अवट्ट	सूर्यास्त
		घ मि.	घ. मि	घ मि.	घ मि.	घ मि	घ मि	घ मि
जन	१	७–०४	७–५२	९–४५	११–०६	१२–२६	३–०७	५–४७
,,	१६	७–०७	७–५५	९–५०	११–१०	१२–३२	३–१५	५–५७
फर	१	७–०३	७–४४	९–५०	११–१३	१२–३६	३–२३	६–०९
,,	१६	६–५५	७–४३	९–४६	११–१२	१२–३७	३–२८	६–१८
मार्च	१	६–४६	७–३४	९–४१	११–३८	१२–३५	३–३०	६–२४
,,	१६	६–३२	७–२०	९–३२	११–०२	१२–३१	३–३१	६–३०
अप्रेल	१	६–१६	७–०४	९–२१	१०–५४	१२–२६	३–३१	६–३६
,,	१६	६–०२	६–५०	९–१२	१०–४७	१२–२२	३–३२	६–४२
मई	१	५–४०	६–३८	९–०५	१०–४२	१२–१९	३–३४	६–४८
,,	१६	५–४२	६–३०	९–०१	१०–४०	१२–१९	३–३७	६–५५
जून	१	५–३७	६–२५	८–५९	१०–४०	१२–२०	३–४१	७–०२
,,	१६	५–३६	६–२४	८–५९	१०–४१	१२–२२	३–४५	७–१८
जुलाई	१	५–४०	६–२५	९–०३	१०–४५	१२–२६	३–४६	७–१०
,,	१६	५ ४६	६–३४	९–०७	१०–४८	१२–२८	३–४९	७–११
अगस्त	१	५–५३	६–३४	९–११	१०–५०	१२–२८	३–४६	७–०३
,,	१६	५–५९	६–४७	९–१३	१०–५०	१२–२६	३–४०	६–५३
सेप्टे	१	६–०५	६–५३	९–१४	१०–४८	१२–२२	३–३१	६–३९
,,	१६	६–०९	६–५७	९–१३	१०–४५	१२–१७	३–२१	६–३६
अक्टो	१	६–१५	७–०३	९–१४	१०–४३	१२–१२	३–११	६–०९
,,	१६	६–२०	७–०८	९–१३	१०–४१	१२–०८	३–०२	५–५५
न.	१	६–२८	७–१६	९–१७	१०–४२	१२–०६	२–५५	५–४३
,,	१६	६–३७	७–२५	९–२२	१०–४५	१२–०७	२–५२	५–३६
दिस.	१	६–४९	७–३५	९–२९	१०–५०	१२–११	२–५३	५–३४
,,	१६	६–५७	७–४५	९–३८	१०–५८	१२–०८	२–५८	५–३८

नोट :—दिये हुए समय से पांच मिनिट अधिक गिनना।

शुद्धि पत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६	१६	ममः	नमः
५१	१६	दा	दो
७१	१९	मूत्र	सूत्र
८९	३	पश्चिम	दक्षिण
१६१	३	आयबिल	आयंबिल
पृष्ठ संख्या		१४८	१८४
२१४	९	ओल	ओली
२१९	३	उपावास	उपवास
२३९	२५	याग्य	योग्य
२६१	८	पाछे	पीछे
२८८	२	यानि	यानी
४२९	१	सारगोपम	सागरोपम
४४०	१७	सूर	सूर्ये
४४३	१२	१६६	१६७
४४३	१५	१६६	१६८
४४४	१	१६७	१६९
४४४	४	१६८	१७०
४४४	७	१६९	१७१

पृष्ठ ४३७ का तप

१५७ श्री सुंदरी तप और विधि (ला.)

इस तप में साठ आयंबिल करना। उद्यापन में ज्ञान व सिद्ध की पूजा भक्ति करना। 'नमो सिद्धाण' पद की माला गिनना। स्वस्तिक, खमासमण आदि आठ २ करना।